

श्री:

# बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

प्रथम भाग

टीकाकार

श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

AM 0204862 Code 1-SAN-83911770 Vol 1

16 UNIVERSITY OF ILLINOIS

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन

बम्बई-४

UNIVERSITY OF  
ILLINOIS LIBRARY  
AT URBANA - CHAMPAIGN  
ASIAN



Digitized by the Internet Archive  
in 2013



श्रीः

# बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

प्रथम भाग

टीकाकार

श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन

बम्बई-४

संस्करण- सन् १९९५ सम्वत् २०५२

मूल्य १६० रुपये मात्र

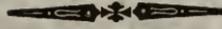
सर्वाधिकार-प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Bombay-400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune-411013.

R  
127.2  
.V4131  
Vol

ASX

## प्रस्तावना.



श्रीमान् भरतखंडनिवासी वैद्यजनोंको सविनय विदित करनेमें आता है कि, इस संसारका मूल केवल शरीर है. जिस शरीरके उपभोगकेवास्तेही अनेक प्रकारकी युक्तियोंके साथ अनेक अनेक इस संसारके पदार्थ तैरयार होते हैं. ऐसा कोई पदार्थ देखनेमें और सुन्नेमें नहीं आता है कि, जिस पदार्थका उपयोग इस शरीरको नहीं होय. और चार प्रकारके पुरुषार्थोंको वश करनेमें इस जीवमात्रको शरीरके सिवाय दूसरा साधन नहीं है कि,—जिससे वो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ए चतुर्विध पुरुषार्थ साधले. इस्में प्रमाण यह है कि, “देहादुत्पद्यते पुंसः पुरुषार्थचतुष्टयम्” ऐसे इस पुरुषार्थचतुष्टयको कारणीभूत इस शरीरको रक्षण करना यह सर्व जीवमात्रको इष्टहै, इस शरीरको रोगरहित रखना यहही इसका रक्षण है. इससे तो यह सिद्ध भया कि, यदि शरीर है और वह सदा रोगग्रस्त है तब उसकरके कौनसा पुरुषार्थ हो सक्ता है? इसवास्ते पुरुषार्थोंका साधन आरोग्य ( नीरोग शरीर ) ही कहना यहही योग्य है. इस्में यह प्रमाण है कि, “धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्” अब देखिये विद्वज्जन हो! प्रथम तौ कहा है कि, पुरुषार्थसाधन शरीर है. अब कहा कि, पुरुषार्थ साधन आरोग्य है. ऐसी दो प्रकारकी उक्ति क्योंकर होती है? ऐसे संदिग्ध विषयमें विचार करनेसे यह सिद्ध होता है कि, इन दोनों उक्तिओंसे एकही अर्थ निकलता है कि, रोगरहित शरीरही पुरुषार्थोंका साधन है, अब उस शरीरके आरोग्यका और जीवन कहिये आयुष्य तथा कल्याणका हरण करनेमें रोग निरंतर तत्पर रहते हैं. इस्में यह शार्ङ्गधरका प्रमाण है कि, “रोगास्तस्यापहन्तारः श्रेयसो जीवितस्य च” इसवास्ते उन रोगोंका नाश होना यहही शरीरका रक्षण है.

ऐसे इस शरीरके रक्षणके वास्ते चिकित्सा कहिये औषध आदिकोंका उपचार करना आवश्यक है. अब अमुक रोग होय, तौ उसपर अमुक चिकित्सा करना चाहिये, ऐसा ज्ञान होनेके वास्ते तिसट आदि आचार्योंने केवल लोकोपकारार्थ आयुर्वेदके ग्रंथ बनाये हैं, यह आयुर्वेद साक्षात् उपवेद है. इस्में यह प्रमाण है कि “ऋग्वेदस्योपवेदोयमायुर्वेद इति स्मृतः। सृष्ट्युत्पादनचित्तेन स्मृतः पूर्वं स्वयंभुवा॥” इत्यादि। इस आयुर्वेदकी संहिता पृथक् पृथक् बहोतही होगई हैं. परंतु ये संहिता-ग्रंथ बहोतही कठिन है. इसीसे उन सब ग्रंथोंको कोई प्रायः नहीं पढसक्ता है.

इस हेतुसे सर्वसाधारण मनुष्यमात्रको उस आयुर्वेदका सहजहीमें ज्ञानहोनेके वास्ते हमारा ( बृहन्निघंटुरत्नाकर ) ग्रंथमें प्रयत्न है.

इस पुस्तकको मथुरानिवासी पंडित दत्तराम चौबे इन्होंसे बनवाकर हमने अपने "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें छपाया है. इस सर्वभी ग्रंथका आरंभसे लगाकर सब रजिष्टरी हक राजनियमके अनुसार हमने अपने स्वाधीन रक्खा है. कोईभी महाशय अविचारसे छपनेकी चेष्टा नहीं करे.

अब हम अपने ग्राहकजनोंको प्रार्थना करते हैं कि--यह चौथे वर्षका चतुर्थ भागभी तैयार होकर आप लोगोंके दर्शनकी इच्छा कर रहा है. इस वास्ते सुजन वैद्यलोग इसको अपना उदार आश्रय देकर कृतकृत्य करेंगे. और इसके साहाय्यसे रोगोंका विनाश करके अपने और दूसरेके शरीरको आरोग्य करके सर्वकार्यदक्ष शरीरद्वारा धर्मादिक चतुर्विधपुरुषार्थोंको प्राप्त होकर अपने मानवजन्मको सफल करेंगे, इति शम् ।

---

आपका कृपाभिलाषी-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना-कल्याण-मुंबई.

---

## द्रष्टव्य सूचना ।

लीजिये ! देखिये ! अवश्य देखिये ! निरन्तर देखिये !

फिरभी देख लीजियेगा !

ऐसा कौन मनुष्य होगा कि, जिसको वैद्यविद्यासे प्रीति न होगी, और साल-भर में दो चार दफे इसके अनुशरण कर्ता वैद्य का आश्रय न लेताहो । क्योंकि यह देह रोगोंका घर है । यथा “ शरीरं रोगमन्दिरम् ” अतएव सर्व देशहितैषी, राजा महाराजा और सत्पुरुष वैद्यकी अत्यन्त तन मन धनसे प्रतिष्ठा करतेहैं तथा वाग्भट, वैद्यको प्राणोंका आचार्य्य लिखते हैं । “ राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्य्यनिवे शयेत् ” अर्थात् राजा प्राणाचार्य्य ( वैद्य ) को अपने घरके पास रखे । इस वाक्य को भारतवासी राजा महाराजा और सेठ साहूकार आदि तो सामान्य मानते हैं परन्तु मानना अंग्रेजोंका सत्य है कि विना डाक्टरके पत्ताभी नहीं हिलाते । इसी कारण देखिये कि जैसे हृष्टपुष्ट अंग्रेजहैं, वैसे इस आर्यावर्त के मनुष्य बहुत थोड़े निकलेंगे । यह वैद्यविद्या ऐसी वस्तु है कि जो सर्वथा कुछ नहीं पढ़े वेभी एकदो औषधि अवश्य कंठाग्र रखतेहैं । और तो क्या पशु, पक्षी, आदिभी जब उनके रोग होते हैं, तो वेभी वनस्पति आदि खाकर वमन, विरेचनद्वारा अपनी देहकी रोगों से रक्षा करते हैं, अब जो मनुष्य होकें रोगोंसे देहरक्षा न करे, वो पशुओंसेभी बढ़कर है । इस लिखनेसे हमारा यह प्रयोजन है, आज कल इस भारतखंडमें बहुतसे मनुष्योंने देशोन्नतिपर कमर बांध रखी है परंतु जिसदेहसे अनेक अलभ्य वस्तुओंका लाभ हो सक्ता है, उसकी ओर कुछभी दृष्टि नहीं है । प्रत्येक वर्षमें हजारों मनुष्य इन रोगरूप शत्रुओंके द्वारा वध किये जाते हैं । अतएव हम सबको चाहिये कि, जैसे बने तैसे अपनी देहरक्षा सर्व प्रकार करे । क्योंकि नीतिमें लिखा है कि आपत्तिके अर्थ धनकी रक्षा करे, और धनसे स्त्री पुत्रादिकी रक्षा करे, तथा धन और स्त्री पुत्रादि द्वारा अपने आपकी रक्षा करनी चाहिये । सो देहरक्षा वैद्य पर निर्भरहै । परंतु वैद्योंकी तरफ देखते हैं तो निरक्षर भट्टाचार्य जिनको यहभी ज्ञान नहीं है कि मिदानधिकित्सा किस चिडियाका नामहै और राजका आतंक न होनेसे माछी, काछी, धोबी, कोरी, आदि नीच जात जिसकी इच्छा हुई वो दो पार झूठी मूठी दवाई ले वैद्य बन बैठे ।

## मालाकारश्चर्मकारोनापितोरजकस्तथा वृद्धारण्डाविशेषेणकलौपञ्चचिकित्सकाः ॥

यथा ।

अर्थ—माली, चमार, नाई, धोबी और वृद्ध रंडा छी, ये पांच कलियुगके वैद्य हैं देखो ऐसे वैद्योंके होनेसे कैसा अनर्थ हुआ है कि, इनके आगे अब पढ़े लिखे वैद्य की पूछ कम होगई और इसी कारण हिन्दुस्थानमें आयुर्वेद शास्त्रका पठन पाठन दिन प्रति दिन अस्तप्रायसा होगया ।

दूसरे ऐसेही वैद्योंसे अब वैद्योंकी औषधका विश्वास जाता रहा । और मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि आज कल हकीमोंकी और डाक्टरोंकी औषध तत्काल फलदायक है और जो शारीरक अर्थात् देहके अवयवोंका ज्ञान, तथा चीरना फाडना, तथा यंत्र और शस्त्र इत्यादि इनके हैं वो, हमारे वैद्य शास्त्रमें तो देखनेकोभी नहीं हैं ऐसे ऐसे अनेक कारणोंको सोचा तो यही निश्चय हुआ ।

कि यह केवल अपने बड़ेग्रन्थोंके पठन पाठन उठ जानेका कारण है यदि अपने ग्रन्थोंको देखें तो कदापि डॉक्टर और हकीमोंकी विद्यामें लालसा न होवे । दूसरे इस उष्ण प्रधान देशमें यूरोप आदि शीतदेशोंकी अतितीक्ष्ण औषधोंकी अपेक्षा हमारी भारतीय मृदुवीर्य्य औषधि सर्वथा कल्याण कर्ता है इससे हमको चाहिये कि अपने प्राचीन ग्रन्थोंको अवश्य देखें; परन्तु प्रथम उन ग्रन्थोंका मिलना कठिन, यदि मिलेभी और शुद्धाशुद्ध मिले तो फिर क्या कामके और शुद्धग्रन्थभी मिले तो उनके पढानेवाले तथा पढनेवाले न मिलेंगे, इन सब कारणोंको विचार यह निश्चय हुआ कि ।

कोई ऐसा ग्रन्थ रचाजाय कि जिसके देखनेसे ही सर्व आयुर्वेदके विषय सुगम रीतिसे मालूम होजावे और जो जो विषय जिस २ ग्रन्थके उत्तम होवें वो इसमें यथाक्रमपूर्वक लिखे जावें, तथा उचित २ स्थानोंमें फारसी इंग्रेजीका भी मत प्रकाशित कराजावे यह विचार हमने बृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रन्थ रचनेका प्रारंभ करा ।

इस ग्रन्थमें आयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्याय, शिष्योपनयनीयाध्याय, अध्ययनसंप्रदानीयाध्याय, प्रभाषणीयाध्याय, इसके अनन्तर, १० अध्यायोंमें शारीरक, जिसमें ( गर्भवतीके नियम, मनुष्यके देहके संपूर्ण अवयवोंका पृथक् २ वर्णन विस्तार पूर्व-

क कियाजायगा ) उपरांत बालकके जन्मोत्तरविधि, प्रसूताके नियम, बालककी रक्षाविधान, बालककी प्रकृतिवर्णन, देशवर्णन, काल वर्णन, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, अवस्था वर्णन, व्याधि आदिके लक्षण, चिकित्सा वर्णन, यंत्राध्याय, शस्त्राध्याय, विशिखानुप्रवेशनीयाध्याय, शकुन, दूत, कालज्ञान, औषधके लक्षण, और औषध परिभाषा, द्रव्यकी परीक्षा, औषध ग्रहणमें औषधकी, संकेत, प्रतिनिधि, द्रव्यगत पंचपदार्थ, दीप्तादिगुण, हरीतक्यादि, सर्व औषधोंके प्रसिद्ध नाम, संस्कृतनाम, और यथाप्राप्त अंग्रेजी फारसीके नाम गुण ।

औषधोंके तोल हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी; स्वरस, मंथ, हिम, फांट, काथ, तैल, घृत, आदि की विधि; धातुका शोधन मारण सविस्तर वर्णन होगा; वमन, विरेचन, अनुवासन, स्वेदन, और स्नेहनविधि, धूम्रपान, गंडूषविधि, जोक लगाना, दागना, फस्तखोलना, नेत्रप्रसादन कर्म, नाड़ीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, स्पर्श, स्वर, और मलपरीक्षा, अग्रोपहरणीयाध्याय, योग्यासूत्रीय, क्षारपाक, दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञाना, कर्णवेध और बंधन, आमपक्वणीय, त्रिद्वैषणीय, हिताऽहित, कृत्याकृत्य इन अध्यायोंका वर्णन, निदान, पूर्व-रूप, रूप, उपशय, और, संप्राप्ति का वर्णन, ज्वररोग का ज्योतिषद्वारा निर्णय, ज्वर का निदान, ज्वर की चिकित्सा, ( जिस्में हिम, फांट, काथ, गोली, तैल घृत, पाक, चूर्ण, आसव, रस, और मंत्रादि द्वारा ज्वरका निवारण तथा फारसी चिकित्सा, अंग्रेजी निदान चिकित्सा, भी कुछ कहा है ) ज्वरका कर्मविपाक तथा धर्मशास्त्रकी विधिसे प्रायश्चित्त वर्णन—इसी प्रकार अतीसार संग्रहणी, ववासीर, पांडू, रक्तपित्त, क्षई, खासी, श्वास, से आदिले बालविरोग, स्त्रीरोग और विषरोगपर्यंत की चिकित्सा, लिखी है, तिसके पीछे वाजीकरणाधिकार अर्थात् नपुंसक की चिकित्सा, और रसायनाधिकार लिखा जायगा, । ए सब विषय इस ग्रन्थमें विस्तार पूर्वक वर्णन करे हैं । प्रथम संस्कृत श्लोक और उसके नीचे सरल भाषा टीका लिखी जायगी । और अन्य ग्रंथोंसे इस ग्रन्थमें यह अति विचित्रता है कि जो प्रकर्ण लिखाहै वी इसमें गुरु शिष्यके संवाद पूर्वक लिखाहै. इसमें सर्व पठन पाठन कर्ता मनुष्योंके इसके विषय बहुत ठीक २ कंठाग्र होसकते हैं ।

इस ग्रन्थमें यह भी नियम रहेगा कि, चरक, सुश्रुत, वाग्भट, और भावप्रकाशमें जो विषय उत्तम हैं उन सबकी भाषाटीका करके इसमें लिखेंगे, बहुत कहाँतक

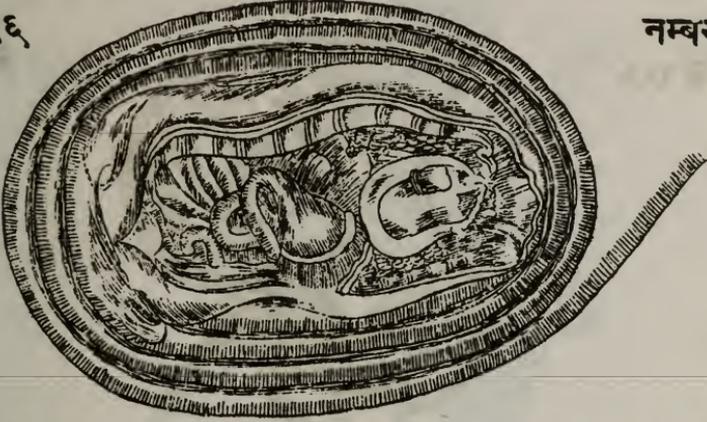
लिखे यह एक ही ग्रन्थ भारतवासी पुरुषोंके लिये ऐसा है कि अब दूसरे ग्रन्थ लेनेका कुछ प्रयोजन न रहैगा. जिनको थोडाभी शास्त्रमें परिचय है उनको यह ग्रन्थ अति उपकारी होगा. सर्व साधारण गृहस्थोंको अपने देहकी और अपने संतति आदि की रक्षार्थ इस ग्रन्थकी एक एक प्रति घरमें अवश्य रखनी चाहिये । अल-मतिविस्तरेण ।

**आपका-दत्तराम चौबे मथुरा निवासि०**

## गर्भाशयका चित्र.

पृष्ठ ११६

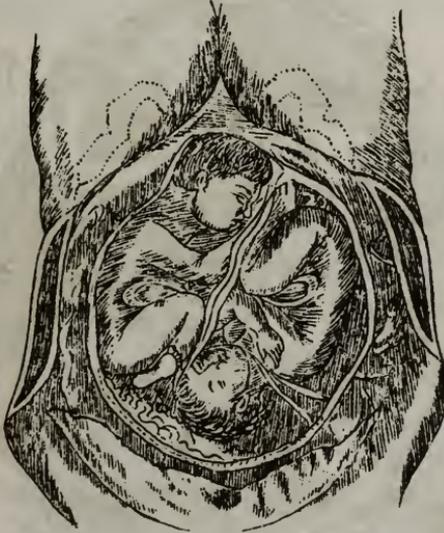
नम्बर १



## यमलगर्भका चित्र.

पृष्ठ १२६

नम्बर २



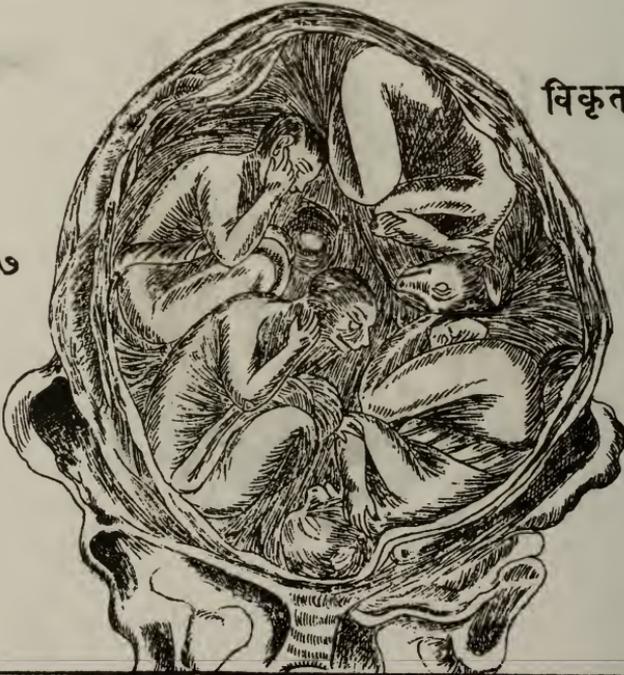
# अनेक गर्भका चित्र.

पृष्ठ १२६



नंबर ३

पृष्ठ १२७



विकृताकृति.

नंबर ३

# राक्षसी गर्भका चित्र.

पृष्ठ १३२

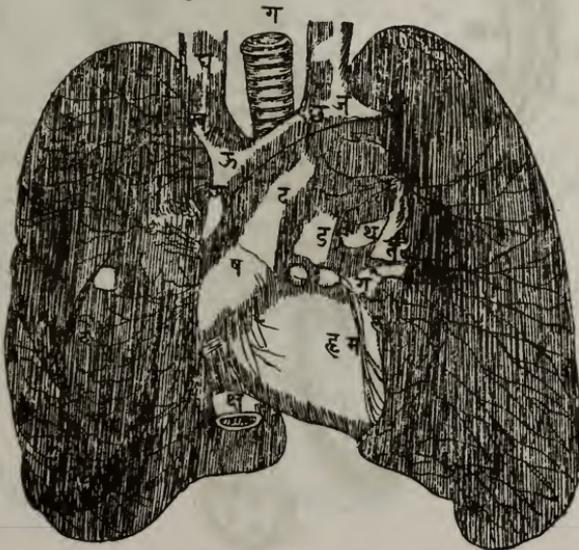
नंबर ४



# फुफ्फुस (फेंफडा)

पृष्ठ १८०

नंबर ५



इस फुफ्फुसचित्रमें ग श्वासनाड़ी इसके द्वारा मुखनासाकृष्ट बाहरकी वायु फुफ्फुसमें प्रवेश करेहैं.

ष मूल अलनाड़ी.

ह. आभ्यंतर कंठशिरा.

ज.छ.भ.रव ये विशेष २ शिरा.

ञ ऊर्ध्वस्थूल महाशिरा.

ट धमनी मूल.

च ऊर्ध्वस्थ दक्षिण हृत्प्रकोष्ठ

ड दक्षिण फुफ्फुस धमनी.

थ धामनिक प्रणाली.

त वायु फुफ्फुस धमनी.

ह निम्नस्थ दक्षिण हृत्प्रकोष्ठ.

म हृद्गर्भोपवृत्ति.

क्ष निम्नस्थूल महाशिरा.

ण ऊर्ध्वस्थ वाम हृत्प्रकोष्ठ.

ल निम्नस्थ वाम हृत्प्रकोष्ठ.

फ फुफ्फुस

क फुफ्फुसका ऊर्ध्वखण्ड

द फुफ्फुसका मध्यखंड और नीचे का खंड.

## पुंजननेंद्रिय.

पृष्ठ १९१

नम्बर ६



इस पुंजननेंद्रियसंज्ञक चित्रमें क रस्ति वा मूत्राशय.

ध उपस्थिकास्थिसन्धि.

तट मेदुभूमि.

ड कलायिका.

फ अण्डकोश.

घ बीजकोश

तट इस जगेसें उ पर्यंत मेदु

मु लिङ्ग-मुंड

य लिंगसरित् वा लिंगग्रीवा.

ल असंसक्त अग्रचर्म.

प लिंगगात्र.

द बस्तीका अधोदेश.

अ मूत्रस्रोतः

च रेतोनाडी शुक्रवाहिनी.

ख मूत्रनाडीरन्ध्र

छ लक्

न शलाका व्यवहारकी अवस्था लिंग

इस प्रकार आकृष्ट तथा गुदा क-

रके इस रन्ध्रमें शलाका प्रवेश

करी जाती है.

## स्त्रीजननेंद्रिय.

पृष्ठ १९३

नंबर ७



इस स्त्रीजननेंद्रिय संज्ञक चित्रमें भ भगमणि.

न भगोष्ठ.  
 ध भगपक्ष.  
 द भगलिंग  
 त योनि वा स्त्रीन्द्रियविवर.  
 गग जरायु वा गर्भाशय.  
 य डिम्ब कोश.  
 ट मूत्रनाडी.  
 छ वस्ति वा मूत्राशय.

प गुदा  
 ठ उपस्थिकास्थिसंधि.  
 भ्र पशस्त रज्जु.  
 क कटिस्थनिम्नकशेरुका.  
 च-च-च त्रिकास्थीका ऊर्ध्वश.  
 व त्रिकास्थीका निम्नांश  
 ख-ख कलावृत निम्नांश.

इस नरकंडूल संज्ञक चित्रमें न गुल्फ सन्धि और उस जगेकी सात हड्डी इसके अग्रभागमें पांच पैरकी उंगली.

ढ गुल्फसन्धि.  
 ठ तथा ड जंघास्थि अर्थात् जंघा-  
 की दो हड्डी.  
 ज जानुसन्धि.  
 ट जान्वस्थि वा घोटू.  
 ङ ऊर्ध्वस्थि  
 ज वंक्षणासन्धि.  
 थ श्रोण्यस्थि.  
 छ हस्ताङ्गुलि सकल.  
 छ यहांसें लेकर च पर्यंतके अंशमें  
 पांच रकभास्थि.  
 च मणिबन्धस्थ पटुंवेकी आठ हड्डी.

ड. और घ प्रकोष्ठस्थ (कलाईकी)  
 दो हड्डी.  
 ग कूर्परसन्धि अर्थात् कोहनीकी-  
 सन्धि.  
 ख प्रगण्डस्थ अस्थि अर्थात् बा-  
 जूकी हड्डी.  
 द स्कंधसन्धि तथा अंसास्थि.  
 क पृष्ठवंश इसके सन्मुख अरोस्थि  
 इनके उभय पार्श्वस्थ जत्रुहयक  
 रके सहित मिला हुआ है.

पृष्ठवंश क यहाँसे लेकर गुह्य देशके पश्चात् भागमें समाप्त हुआ है। इसके निम्न खंडका नाम त्रिक है।

द यहाँसे लेकर उरोस्थिपर्यंत जन्तुद्वयक-हाती है।

त पाशुओंका समूह है।

पृष्ठवंश अर्थात् पीठके बांसके ऊपर में वदनमंडलास्थि तथा करोट्यस्थि-आदि जाननी।

पृष्ठ २३७

नंबर ८



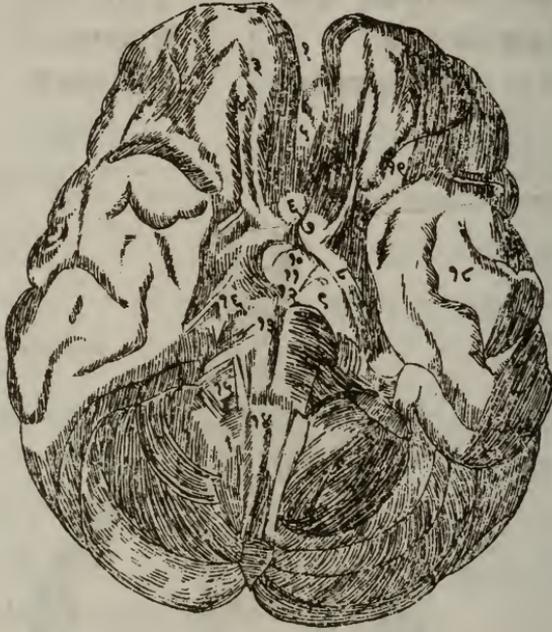
नरकङ्काल

अथवा मनुष्य अस्थिपंजर.

मस्तिष्क संबन्धिचित्र.

पृष्ठ २४०

नंबर ९



इस मस्तिष्क संबन्धीचित्रमें १-

१८-१९-२० चिन्हपर्यन्त

१ क्षुद्रमस्तिष्क.

३ मस्तिष्कका अग्रखंड.

४ घ्राणस्नायु.

७ दर्शनस्नायु

२-३-४ चिन्ह इत्यादिसें लेकर

मस्तिष्कका नीचेका प्रतिरूप तिनहोंमें.

८ दर्शनस्नायुप्रदेश.

९ नेत्रसंदकस्नायु.

१० दृष्टिसन्धि.

१२ पश्चाच्छिद्रान्वितप्रदेश.

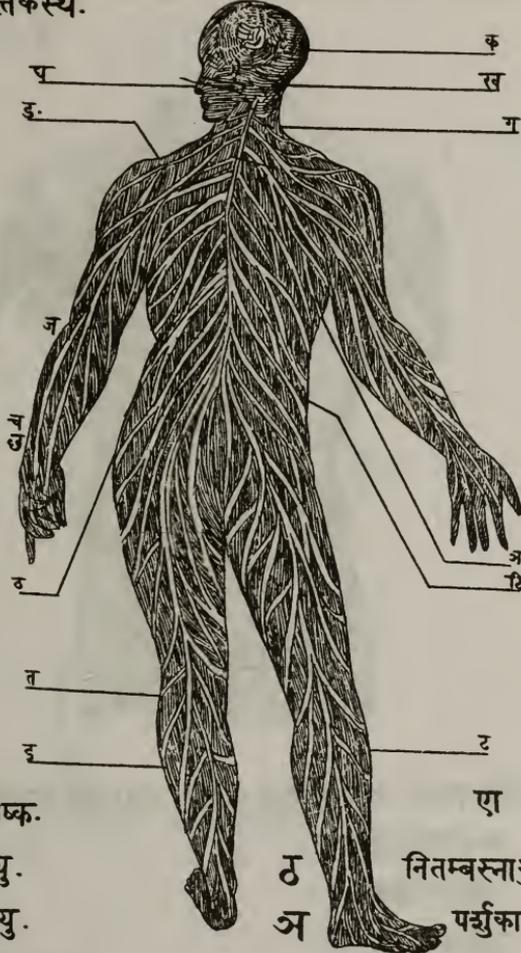
## स्नायुप्रदर्शक चित्र.

इस चित्रमें क मस्तकस्थ.

बृहत् मस्तिष्क.

पृष्ठ २४१

नंबर १०



ख क्षुद्रमस्तिष्क.

ग ग्रीवास्नायु.

घ चदनस्नायु.

ङ प्रगंडसन्धिस्नायु.

ज प्रगंडस्नायु.

च प्रकोष्ठस्नायु.

छ प्रकोष्ठनिम्नस्नायु

झ करतलस्नायु

ए

ठ नितम्बस्नायु.

अ पशुकाभ्यंतर स्नायु.

इ जानुपश्चात् स्नायु.

ट जान्वभिमुख स्नायु.

ए पदतल स्नायु.

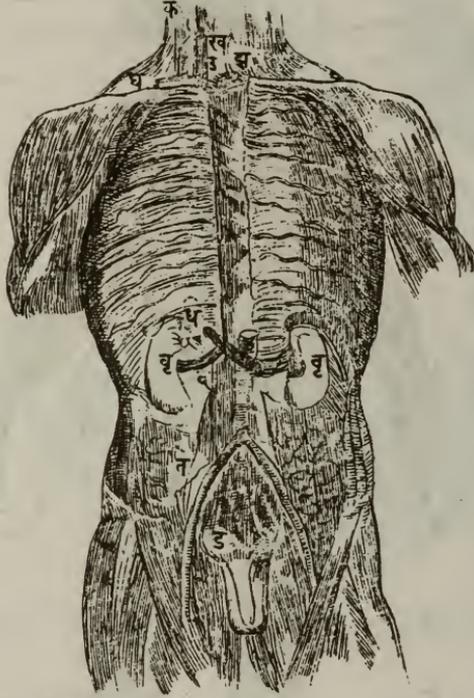
टि कटिस्नायु.

त ऊरुस्नायु.

## शिराप्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ २७०

नंबर ११



इस शिराप्रदर्शक चित्रमें क रव ग्रीवा पार्श्वस्थ बाह्य तथा अभ्यंतर कंठ शिरा.

- ग अनारम्यात शिरा.  
 घ जनुनिम्नशिरा.  
 वृ वृकद्वय.  
 द वृकशिरा.  
 ध ऊर्ध्ववृकग्रंथिशिरा.  
 ड रेतो रज्जू शिरा.  
 थ बाह्य वस्तिशिरा.

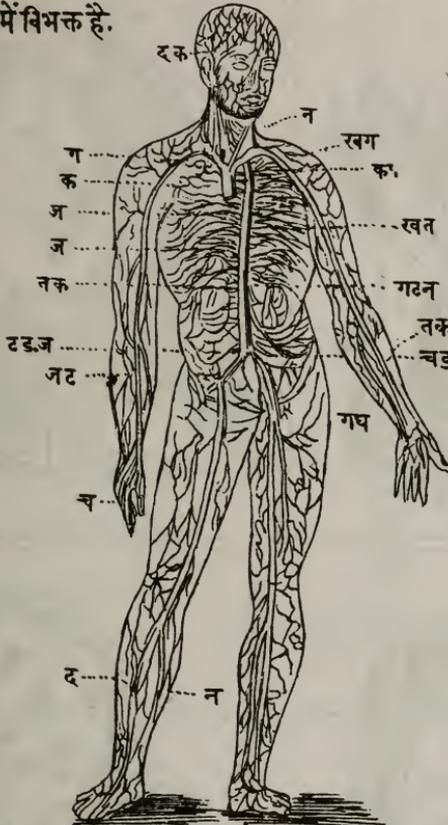
जनुके नीचे उर्ध्वस्थ महाशिरा तथा वस्तीसें अधस्थ महाशिरा.

## धमनी प्रदर्शक चित्र.

इस धमनी प्रदर्शक चित्रमें स्व ग धमनी मूल यह ऊर्ध्वभिमुखी पश्चाद्गामी तथा निम्न-  
मुखी ये दोन अंशोंमें विभक्त है.

पृष्ठ ३०२

नंबर १२



द क कपालस्थधमनी.

झ न गलस्थधमनी.

ग कंठस्थ धमनी.

क कक्षनाडी

ज धमनीस्कंधवावक्षःस्थमूलनाडी.

त ड उदरस्थमूलनाडी.

टड.जं अभ्यंतर(भीतरकी) बस्तिनाडी

ज ट बाह्य(बाहरकी) बस्तिनाडी

च उदरस्थनाडी

द नलकास्थीय धमनी.

न जानुपश्चात् धमनी.

व जानुस्थ सन्मुख नाडी.

ख त पशुकाभ्यंतर धमनी.

ह क प्रगंडीयनाडी.

त क मणिबंधस्थनाडी.

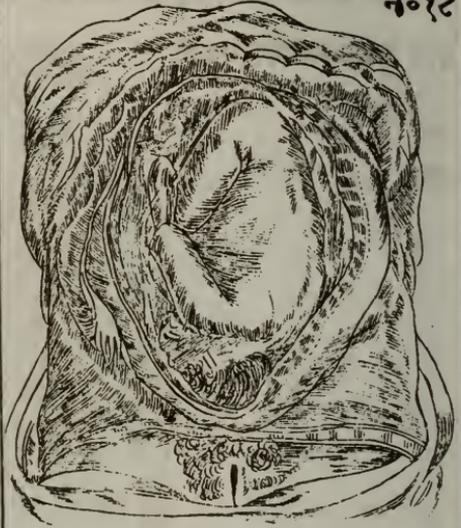
ग घ प्रकीर्णीय धमनी.

# मूढगर्भप्रदर्शकचित्र.

पृष्ठ ३३६



नं० १८



## मूढगर्भवेधक विविध शस्त्र.



हड्डी काले  
का शस्त्र.

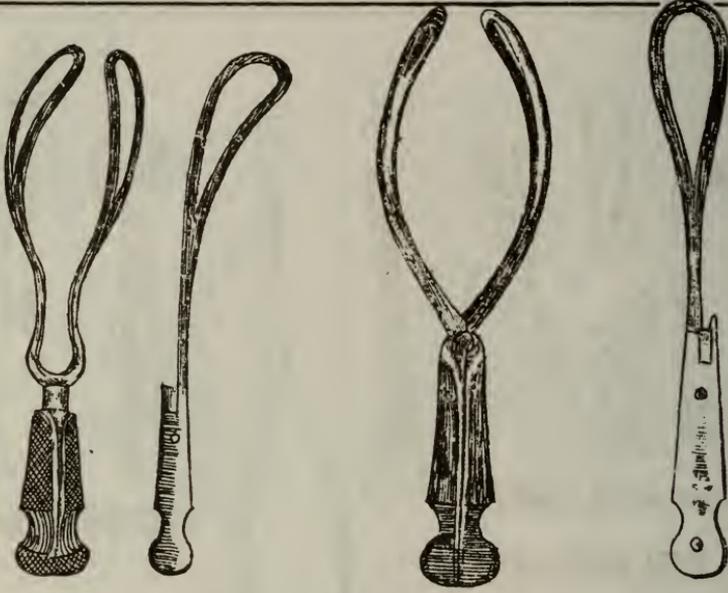
अस्थि ब्रण अथवा अस्थि घात होनेके पश्चात् हड्डीके सडे हुए भाग काटनेको विविध हथियार.

हड्डी नोडनेका शस्त्र.

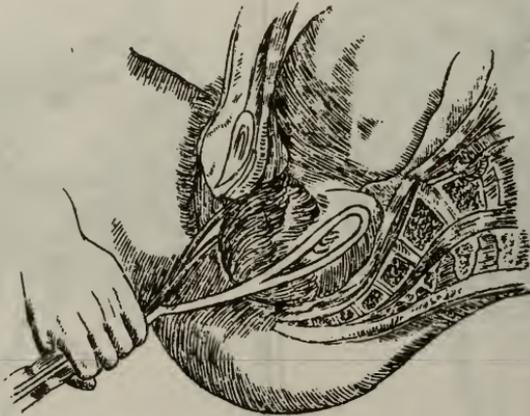
हड्डी पकडनेका चित्र.



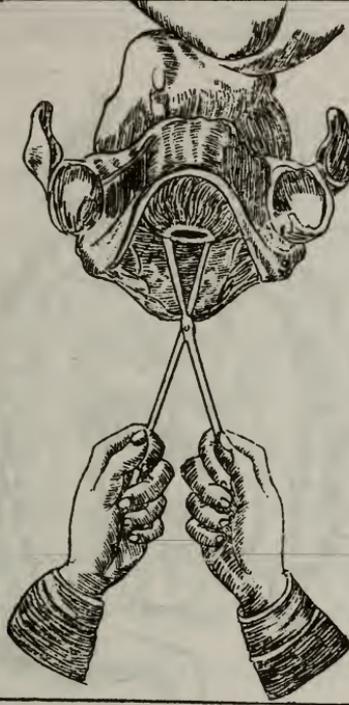
मूढगर्भ निकालनेके शस्त्र.



मूढगर्भ-आहरण-प्रदर्शक  
चित्र.



मूढ गर्भ निकालने का चित्र.



मूढ गर्भ तोड़ने के शस्त्र.



शिरभेदनकर्त्ता

शस्त्र और उसको लैच.



मस्तक भेदन करने के पिछाडी

रवोपडी पकड़ने का शस्त्र.



शिरमें गड़ायकर ईयनेका आंकडा.

## अन्न (आंतडे) प्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ४४०

नंबर २०



इस आंतडेके चित्रमें २ गलनालीका शेषांश, अन्ननाड़ी मुखसें लेकर इस स्थान आमाशयसें मिलित होती है.

१-२-३-४ ये चिन्ह गर्भप्रवेशित नाड़ीके हैं. ५ इस आकृति विशिष्ट यन्त्रको आमाशय (पाकस्थली) अन्न मुखसें गल नाड़ीमें होकर इस स्थानमें

पतित होती है। ५-६ चिन्हांकित अधोमुख गामिनी नाडी ग्रहणी। इस स्थानमें सूक्ष्म नाडी विशेष मार्गमें यकृत यहांसे पित्तरस आयकर आमाशयगत अन्नके साथ मिलता है।

५-६-७-८- चिन्हांकित बृहत् नाडी क्षुद्रांत्र तिनमें ५-६-चिन्हित भागका नाम ग्रहणी है। ग्रहणीके परे जो अंश उसको पक्काशय कहते हैं। इस जगेसे क्षुद्रान्त्र अतिशय कुंडलाकृति होकर अवस्थित है। मुक्त द्रव्य आमाशयसे समुदाय क्षुद्रांत्र परिवेष्टन करके तथा विविध पाचक रसके साथ मिलकर और जीर्ण होकर रहता है। क्षुद्रांत्रके निम्नवर्ती कोई दो अंश कारण विशेष करके कोषादिमें प्रवेश कर इसीका नाम अंत्रवृद्धि पीडा।

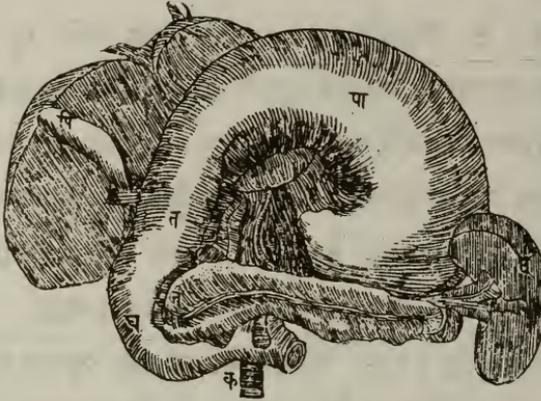
९-१०-११-१३-१४- इत्यादि चिन्हित नाडी स्थूलान्त्र इनमें ९-११ चिन्हके तरफ अर्थात् दक्षिण पार्श्वके अंशके ऊर्ध्वगामी स्थूलान्त्र तथा १३-१४ चिन्हवाले अर्थात् वामपार्श्वके अंशके अधोगामीको स्थूलान्त्र कहते हैं। इन दोनोंके मध्यक्षुद्रान्त्रोंके ऊर्ध्वस्थ अनुप्रस्थ अंशको अनुप्रस्थ स्थूलान्त्र कहते हैं। प्रवाहिकादि पीडा स्थूलान्त्रमें विशेष करके अधोगामी स्थूलान्त्रोंमें क्षत-पीडा होनेसे रक्तादि विसृत होता है।

१५- अंक चिन्हित निम्नाभिमुख अंत्रांशको गुदा कहते हैं। इसका सर्व निम्नांश गुह्यद्वार रूप परिणामको प्राप्त हुआ है। प्रवाहिकादि रोग इसी स्थानमें तथा क्षतादि होते हैं। तथा इसी स्थानमें बवासीरके मस्से होते हैं। इस निम्नाभिमुख अंत्र तथा उसके ऊर्ध्वस्थ स्थूलान्त्रांशको मलाशय कहते हैं। अधोगामी अंश (गुदा) पुरीषनिर्गमक है।

## पाकस्थली प्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ३४०

नंबर २०



इस चित्रमें यय यकृत्.

पा आमाशयके (पाकस्थलीक)  
अधोश.

पि पिनाशय

त आमाशयके अध स्थ छिद्र.

घ ग्रहणिका अंशविशिष.

क उदरप्रविष्ट धमनीस्कंध.

झ लोम वा तिलयंत्र.

ज क्लोममूर्च्छा.

ड. क्लोमदेह.

न क्लोमपुच्छ.

द श्लिहा.

ए आमाशयका ऊर्ध्वछिद्र.

गग उदरयक्षोअवधायक (वक्षस्थ-  
लस्थ) पेशीके दो स्तंभ.

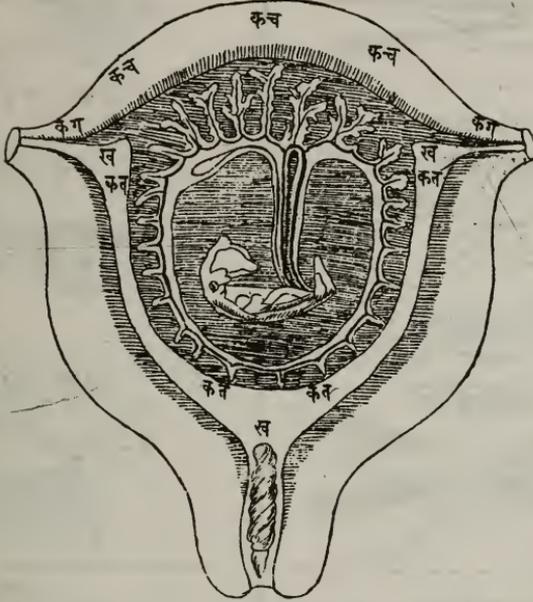
च मूल पित्तप्रणाली.

फली श्लिहरवात.

## भ्रूणगर्भस्थिति प्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ३४५

नंबर २१



इसचित्रमें ख ख ख जरायुगृह.

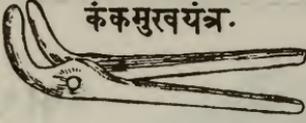
कत- कत- कत- कत- अस्थायिनी भ्रूणावरक कला.

कग- कग- अस्थायिनी जरायु वेष्टिका कला.

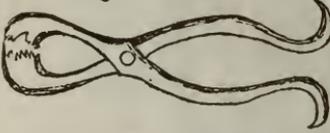
कच- कच- अस्थायि जरायु वेष्टक डिम्बकला.

इस चित्रमें जरायुस्थ भ्रूणकी अवस्थिति प्रदर्शित करी है.

## यंत्राध्यायके चित्र.



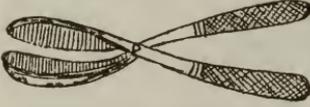
सिंहमुखयंत्र.



श्वानमुखयंत्र.



ऋक्षमुखयंत्र.



भृंगराजमुखयंत्र.



काकमुखयंत्र.



वृकास्ययंत्र.



जरखमुखयंत्र.



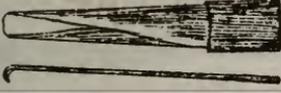
चुरी.



संदशयंत्र.



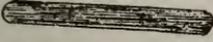
तालयंत्र.



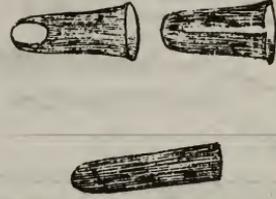
नाडीयंत्र.



स्तुहियंत्र.



अशोयंत्र.



अंगुलिनाणयंत्र.



योनित्रणेषायंत्र.



नाडित्रणक्षालनयंत्र.



जलोदरयंत्र.



वस्तियंत्र.



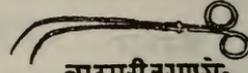
शलाकायंत्र.



गर्भशंकुयंत्र.

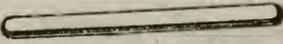


यौग्मशंकुयन्त्र.



अश्मरीहरणयंत्र.

शलाकायंत्र.



छेदनशस्त्र.



शस्त्राध्यायकेचित्र.

मंडलाग्रशस्त्र.



वृद्धिपत्रशस्त्र.



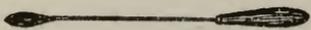
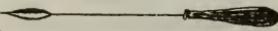
उत्पलशस्त्र.



सर्पास्यशस्त्र.



एषणीशस्त्र.



वेतसपत्रशस्त्र.

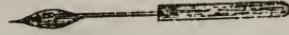


कुशपत्रशस्त्र.



आरी मुख शस्त्र.

ब्रीहिमुख शस्त्र.



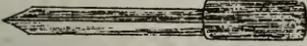
कुठारिका शस्त्र.



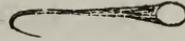
शलाका शस्त्र.



मुद्रिका शस्त्र.



बडिश मुख शस्त्र.



करपत्रशस्त्र



कर्नरी (केंची) शस्त्र



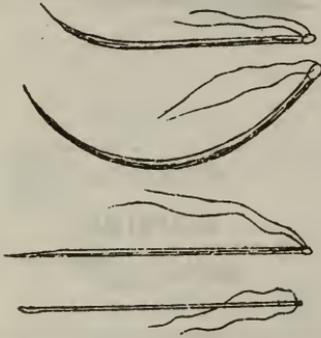
नखशस्त्र



दंतलेखनशस्त्र.



### सूचिशस्त्र



### कूर्चशस्त्र.



### कर्णछेदनशस्त्र.



### सूचना.

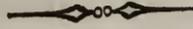
समस्त विद्याओंमें आयुर्वेद विद्या उच्चतम है. इसमें भी और अशोंकी अपेक्षा शारीर स्थान और अस्त्रचिकित्सा प्रकर्णका जानना सर्व वैद्योंके आवश्यक है. यद्यपि इस शस्त्रचिकित्साका बहुतसे मतुष्य अनादर और निंदा करते हैं परंतु वे मूर्ख हैं. हमारे समस्त पूर्वाचार्य शकच्छेदन करके शिष्यको दिखाते थे. ऐसे ग्रन्थ औपधेनव. औरम्न. सुश्रुत. पौष्कलावत आदि महर्षियोंको बनाए हुए अनेक ग्रन्थ थे. परंतु हमारे और हमारे शास्त्रोंके द्रोही यवनादिकोंके अधिपत्य होनेसे वो ग्रन्थ अस्तप्रायसे होगए. दूसरे इस शस्त्रचिकित्साका बड़ा भारी प्रमाण वेद. रामायण भारतदि ग्रंथ देते हैं. क्यों कि हमारे इस देशमें प्रथम बाणोंसे युद्ध होता था तब अवश्य शस्त्रवैद्योंकी आवश्यकता रहती थी इसीसे हम कहते हैं कि, वैद्योंको अवश्य पठनीय यह शारीर और शस्त्रविद्या है. शेष अन्यरसालमें कहेंगे.

भवदीय आयुर्वेदोद्धारसंपादक,

दत्तराम चोबे. श्रीमथुरा.

# बृहन्निघंटुरत्नाकरके शारीरस्थानकी

## अनुक्रमणिका.



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण .... ..	१	वैद्यकशास्त्रकेसंबंधादिचतुष्टयविषयकप्रश्न .... ..	११
कृष्ण, धन्वन्तरि, सूर्य, शिवगौरी, गणपति .... ..	११	उक्तप्रश्नकाचरकोक्तउत्तरकथन ....	७
सरस्वतीऔरआयुर्वेद .... ..	२	सुश्रुतकेमतसंयोजन .... ..	११
ग्रंथकर्ताकीवंशपरम्परा ....	११	दैववादीमतानुसारचिकित्सा आदिक्रियाओंकोनिष्फलत्वकथन .... ..	८
सर्वोपकारीविद्याविषयकप्रश्न और उत्तर .... ..	११	इसमेंशौनककावाक्य .... ..	११
सर्वोत्तमआयुर्वेदविद्याहैइसमें वाग्भटकाप्रमाण .... ..	११	उक्तमतकाखंडनतथादैवऔर क्रियादोनोंकोमुख्यता कथन .... ..	११
चरककाप्रमाण .... ..	३	इसमेंकेशवार्किकाप्रमाण .... ..	११
शार्ङ्गधरकाप्रमाण .... ..	११	शार्ङ्गधरकाप्रमाण .... ..	११
ग्रन्थान्तरोंकाप्रमाण .... ..	११	याज्ञवल्क्यऋषिकावाक्य ....	९
बृहन्निघंटुरत्नाकरग्रंथरचनेके विषयमेंप्रश्नऔरउत्तर ....	११	शकुनवसन्तराजग्रंथकाप्रमाण ....	११
ग्रंथोंकोविषयपरत्वउत्तमताऔर तद्द्वाराइसग्रंथकीसर्वोत्कृष्टताकथन .... ..	४	उसमेंयाज्ञवल्क्यकादृष्टान्त तथाकेशवार्किकाप्रमाण .... ..	११
गुप्तविषयोंकाइसग्रंथमेंप्रकाश ....	११	चरककाप्रमाणटिप्पणीमें ....	११
इसशास्त्रकीनिर्दामेंप्रमाण ....	११	भावप्रकाशोक्तआयुर्वेदकेलक्षण ....	१०
तथाउसकाखंडनऔरआयुर्वेद कोश्रेष्ठत्वप्रतिपादन ....	११	चरकोक्तआयुर्वेदकेलक्षण ....	११
प्रमाण .... ..	५	आयुर्वेदशब्दकीनिरुक्ति ....	११
चरककाप्रमाण .... ..	११	सुश्रुतऔरभावप्रकाशद्वाराप्रयोजन .... ..	१२
तथाप्रमाणपूर्वकशुल्क(मौल्य) जीवीवैद्यकीनिन्दा ....	११	आयुर्वेदकेसामान्यलक्षण ....	११
आयुर्वेदशास्त्रकीउत्पत्ति ....	६	आयुर्वेदकोअष्टाङ्गत्वकथन ....	११
अध्यायकेआदिमेअथशब्दकाप्रतिपादन .... ..	११	अठअङ्गोंकेनाम .... ..	१३
		शल्यतंत्र .... ..	१४
		शालाक्यतंत्र .... ..	११

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
कायचिकित्सा ....	१४	रसरत्नाकरऔररसेन्द्रचिंताम	
भूतविद्या ....	१५	णिकाप्रचार ....	३४
कौमारभृत्य ....	११	माधवनिदानकाप्र० ....	११
अगदतंत्र ....	११	अन्यनिदानग्रंथकर्त्ताओंकेनाम ....	११
रसायनतंत्र ....	११	दुर्जनभयशंका निरास ....	३५
वाजीकरणतंत्र ....	१६	चक्रदत्तग्रंथकानिर्माण ....	११
वाग्भटकेअनुसारआठअंग	११	राजनिघंटु ....	११
आयुर्वेदकेगौरवोत्पादनार्थआ		भावप्रकाश ....	३६
गमशुद्धि ....	११	इसशास्त्रमेंपुरुषसञ्ज्ञा ....	३८
ब्रह्मदेवकाप्रादुर्भाव ....	१७	उसपुरुषमेंक्रियाकथन ....	११
दक्षप्रजापतिकाप्रादुर्भाव ....	११	लोककोद्वैविध्यकथन ....	११
अश्विनीकुमारकाप्रादुर्भाव	११	तथाचतुर्विधभूतग्राम ....	११
इन्द्रप्रादुर्भाव ....	१९	चतुर्विधव्याधियोंकेलक्षण ....	३९
आत्रेयप्रादुर्भाव ....	११	उनकेरहनेकास्थान ....	११
भरद्वाजमुनिप्रादुर्भाव ....	२१	चतुर्विधव्याधिकीचिकित्सा ....	११
चरकप्रादुर्भाव ....	२५	प्राणियोंकेआहारकानिर्णय ....	४०
धन्वन्तरिप्रादुर्भाव....	२६	दोप्रकारकीऔषध ....	११
सुश्रुतकाप्रादुर्भाव ....	२७	स्थावरके ४ भेद ....	११
वाग्भटप्रादुर्भाव ....	३०	जङ्गमके ४ भेद ....	४१
वृद्धत्रयी ( चरकसुश्रुतवाग्भट )		स्थावरजङ्गमोंसँग्रहणीयअङ्ग ....	११
कीप्रशंसा ....	११	पार्थिवकालकृतपदार्थोंकाप्र-	
कलियुगमेंवाग्भटसंहिताकोप्र		योजन ....	११
धानत्व....	३१	शरीरीविकारोंकावर्णन ....	४२
अठारहसंहिताओंकेनाम ....	११	आगन्तुरोगोंकावर्णन ....	११
रसग्रन्थोंकाप्रचार....	११	मानसिकविकारोंकीचिकित्सा ....	११
रसग्रन्थोंकेविशेषप्रचारहीनेका		पुरुषग्रहणकाप्रयोजन ....	४३
निर्णय....	११	व्याधिग्रहणसँप्रयोजन ....	११
रसोंकोश्रेष्ठता ....	३२	क्रियाग्रहणसँप्रयोजन ....	११
रसवैद्यकीप्रशंसा ....	३३	आयुर्वेदशास्त्रपढनेकाफल ....	११
प्राचीनरसग्रन्थनिर्माणकरनेवाले		* इतिप्रथमतरङ्गः ॥ १॥ ....	११
आचार्योंकेनाम ....	११		

विषय	पृष्ठ
<b>शिष्योपनयनीयाध्यायः</b>	
प्रथमशिष्यकोशास्त्रकीपरीक्षा करना ....	४४
आचार्य ( गुरु ) की परीक्षा ....	४५
पठनपाठनकेउपाय ....	४६
तहांअध्ययनविधिःकल्प अध्यापनविधितहांप्रथमशि- ष्यकीपरीक्षा....	४७
ब्राह्मणआदित्रिवर्णकेउपनीय त्वकहतेहै ....	४८
कुलगुणसम्पन्नशूद्रकोभीपढने कीआज्ञा ....	४८
दीक्षादेनेकीविधि ....	४९
ब्राह्मणकोत्रिवर्णकेउपनयनक रनेकीआज्ञा....	४९
एवंक्षत्रीआदिकोद्विवर्णऔरए कवर्णकेउपनयनकरनेकी आज्ञा ....	५०
अग्निसाक्षीकरकेशिष्यकोनिय- मोपदेश ....	५०
तथाआचार्यकोअपनेविषयमें प्रतिज्ञा ....	५०
द्विजादिअनाथोंकेप्रतिस्वबांध वसदृशविनाद्रव्यकेचिकि त्साकरनेकीआज्ञा ....	५०
व्याधआदिदुष्टजीवोंकेचिकि त्साकरनेकानिषेध ....	५०
अनध्यायाः ....	५०
* इतिद्वितीयतरंगः २	
<b>अध्ययनसंप्रदानीयाध्यायः</b>	
पठनपाठनकीविधि ....	५१

विषय	पृष्ठ
पठनसमयकेनियम ....	५२
बोलनेकीऔरशास्त्रमेंअभ्यास होनेकेउपाय ....	५२
पढकरक्रियाओंकोभीअवश्य जाननेकीआज्ञा ....	५३
शास्त्रपढकरक्रियाहीनवैद्यको चिकित्साकरनेमेंअनधिका- रित्वकथन ....	५३
शास्त्रहीनक्रियाज्ञातावैद्यकोरा- जदंड्यत्वकथन ....	५४
शास्त्रऔरक्रियादोनोंकेजानने वालेवैद्यकोश्रेष्ठता ....	५४
मूर्खवैद्यकीऔषधखानेकानि षेध ....	५४
दुष्टवैद्यराजाकेदोषसँलोभवशहो मनुष्योंकोमारताहै ....	५४
उभयकर्म (शास्त्र वा क्रिया) ज्ञा तावैद्यकीप्रशंसा ....	५४
* इतितृतीयतरङ्गः ३	
<b>प्रभाषणीयाध्यायः</b>	
प्रभाषणकाप्रयोजनदिखातेहै ....	५५
पठितशास्त्रकाप्रयोजनजानेवि नावैद्यकीनिंदा ....	५५
द्रव्यरसवीर्यादिकोंकावारंवार विचारना ....	५५
अन्य ( व्याकरणज्योतिष ) शास्त्रादिकोंकेविषयोंको त तशास्त्रद्वाराजानना ....	५५
वैद्यकोबहुश्रुतत्वहोनेकीआव श्यकता ....	५५
शास्त्रहीनवैद्यचोरकेसमानहै ....	५५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
चोरीआदिसैविद्यापढनेकोनि		प्रकृतिऔरविकारोंके विषय ....	६४
फलत्वकथन ....	५७	अध्यात्म ....	६५
* इतिचतुर्थतरङ्गः ४		अधिदैव....	११
अथ		श्रोत्रादिकोंकोअध्यात्मादि ....	११
<b>शारीरस्थान</b>		पुरुषलक्षण ....	६६
प्रथमशारीरज्ञानकाप्रयोजन ....	५८	प्रकृतिपुरुषकासाधर्म्यऔरवैधर्म्य	
शारीरकविद्या ....	११	जीवोंकेलक्षण ....	६७
शारीरकविद्याकाप्रयोजन ....	११	महत्तत्त्वकोत्रिगुणात्मकत्व ....	६८
शारीरज्ञानविनाचिकित्साकरने		पुरुषकोत्रिगुणात्मकत्व....	११
कानिषेध ....	५९	जीवकोत्रिगुणात्मकत्व ....	६९
अपठितशारीरककेवैद्यकोराज		प्रकृतिकोषड्विधत्व ....	११
दंडनीयत्वकथन ....	११	स्वाभाविकमत ....	११
<b>सर्वभूतचिंताशारीराध्यायः १</b>		ईश्वरमत....	११
सृष्टिक्रमकथन ....	६०	कालकोईश्वरत्व....	७०
परमात्माकास्वरूप ....	११	यादृच्छिकमत ....	११
प्रकृतिकास्वरूप....	११	नियमितमत ....	११
प्रकृतिकोसर्वजीवाश्रयत्व ....	६१	परिणामवादीमत ....	११
अव्यक्तसेसर्वजीवोंकीउत्पत्ति ....	११	स्वभावमत ....	७१
अहंकारकोत्रिविधत्व ....	६२	तथा ....	११
अहंकारकेकार्य ....	११	अग्रिकोईश्वरत्वतथाजीवत्व ....	७२
इन्द्रियोंकेनाम ....	११	कालभीप्रकृतिकाभेदहै ....	११
पंचभूतोंसंतन्मात्रोत्पत्ति ....	११	यादृच्छिकमतकाप्रमाण ....	११
पंचतन्मात्राओंकेनाम ....	६३	कर्मवादीमतकाप्रमाण ....	११
विषयकहतेहै ....	११	परिणामकोहेतुत्व ....	११
भूतोत्पत्ति ....	११	प्रकृतिहीकारणऐसेंस्वमतकहतेहैं	७३
उत्पत्तिप्रकार ....	११	स्वभावमतखण्डन ....	११
चौवीसतत्त्वतथाबुद्धीन्द्रियोंके		नियमितमतखण्डन ....	७४
विषय ....	६४	कालमतखण्डन....	११
कमेंन्द्रियोंके विषय ....	११	इसशास्त्रकासिद्धांत ....	११
प्रकृति तथा १६ विकार ...	११	शरीरकहतेहै ....	११
		सर्वमतोंकीएक्यता ....	७५

विषय	पृष्ठ
चिकित्सास्थानकोदिखातेहै ....	७५
वैद्यशास्त्रप्रतिपाद्यकहतेहै ....	७६
विषयोंकीपंचभौतिकत्वकहतेहै ....	११
स्वविषयग्राहकत्वऔरअन्य	
विषयनिषेधकहतेहै....	११
अन्यसांख्यादिकोंसंक्षेत्रज्ञके	
विषयमेंआयुर्वेदकाभेदकहतेहै	७७
नित्यत्वकैसेहैसोदिखातेहै	११
इसविषयमेंभोजकावचन	११
सर्वमत्तोकाउपसंहार	७८
असर्वगतजीवोंकोसर्वयोनिगम	
नकहतेहैं	११
इसविषयमेंअनुमान	११
प्रत्यक्षप्रमाणसंक्षेत्रज्ञक्योंनहीं	
जानाजायसोकहतेहै	११
वैद्यककेअनुमतपुरुषकीषड्धातु	
कसंज्ञाकहतेहै	७९
उसपुरुषकोऔषधोपयोगित्वक	
हतेहै	११
मनकेसंयोगकरकेजीवकेगुणहो	
तेहै	११
प्रकृतिकेगुण	११
सतोगुणयुक्तमनकेलक्षण.	८०
रजोगुणयुक्तमनकेलक्षण.	११
तमोगुणयुक्तमनकेलक्षण	११
आकाशकेगुण.	८१
वायुकेगुण.	११
अग्निकेगुण.	११
जलकेगुण	११
पृथ्वीकेगुण.	११
आकाशकेधर्म.	८२

विषय	पृष्ठ
पवनकेधर्म.	८२
अग्निकेधर्म.	११
जलकेधर्म.	११
पृथ्वीकेधर्म	११
अथपञ्चीकरण	११
कारणगुणकीकार्यमेंव्याप्ति	८३
कार्यमेंकारणकीव्याप्ति	८४
इस्मेंप्रमाण	११
पृथ्वीजलमेंकैसेरहतीहै	११
सबकाउपसंहार	८५
* इतिपंचमतरङ्गः ५	...

### शुक्रशोणितशारीराध्यायः

दुष्टशुक्रकेलक्षण	८६
वातादिसंदुष्टशुक्रकेल०....	११
दुष्टशुक्रमेंसाध्यासाध्य	८७
आर्त्तवकेदोष	११
आर्त्तवकीपरीक्षा	११
आर्त्तवकेसाध्यासाध्य	८८
शुक्रदोषकीचिकित्सा	११
कुणपरतेवालेपुरुषकीचि	
कित्सा	८९
ग्रन्थिवान्दरेतकीचिकित्सा	११
पूयरेतकीचिकित्सा	११
क्षीणरेतकाउपचार	११
मलगंधिशुक्रकाउपचार....	९०
शुक्रदोषमेंसामान्यउपचार	११
शुद्धशुक्रकेलक्षण	११
वाग्भटोक्तशुद्धशुक्रकेलक्षण	११
आर्त्तवदोषकेसामान्यलक्षण	९१
आर्त्तवदोषमेंसामान्यउपचार	११
सर्वआत्तवदोषोंकीपथ्यकहतेहै	९२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शुद्ध आर्तवकेलक्षण ....	१२	स्त्रीपुरुषदोनोंकोपुत्रचितवनका	
रक्तप्रदरकेलक्षण ....	१३	प्रकार ....	१८
असृग्दरकेदोषसंबंधकृततथा		इसमेंबृहत्संहिताकाप्रमाण ....	१९
व्याधिस्वभावकृतसामा		रजोदर्शकेअनंतरज्ञानकरकेप्र-	
न्यलक्षण ....	११	थमपतिकादर्शन ....	११
रक्तप्रदरमेंअवस्थापरत्वउप		प्रथमभर्ताकेदेखनेमेंकारण ....	११
चार ....	११	पुष्पस्नानकाप्रमाण ....	११
आर्तवकीअप्रवृत्तिलक्षणवि		पुष्पस्नानकीऔषधि ....	१००
कृति ....	११	इच्छितरूपवान्पुत्रप्राप्तिहोने	
चिकित्सा ....	१४	काउपाय ....	१०१
ऋतुकालमेंसुपुत्रोत्पादकस्त्रि		उपाध्यायद्वारापुत्रेष्टीकरण ....	१०२
योकेउपचार....	११	पुत्रेष्टीकीविधि ....	११
नियम न पालनेकेदोष....	११	शूद्रास्त्रीकोपुत्रेष्टीकीविधिऔर	
प्रथमरजोदर्शमेंशुभाशुभफल		संयोगकीसाफल्यता....	१०३
औरमुहूर्त्त ....	१५	श्यामलोहिताक्षपुत्रहोनेकाउ	
रजोदर्शमेंमासफल-टी० ....	११	पाय ....	११
पक्षफल-टी० ....	१६	पुत्रेष्टीकेअनंतरकर्म ....	१०४
वारफल-टी० ....	११	गर्भाधानमेंनियम ....	११
लग्नफल-टी० ....	११	गर्भाधानमेंस्त्रीकेनियम ....	११
कालपरत्वफल-टी० ....	११	तथागर्भसंभवसैंपूर्वकृत्य....	११
नक्षत्रफल-टी० ....	११	प्रीतिहीनास्त्रीसैंसंभोगकरनेके	
वस्त्रपरत्वफल-टी० ....	११	दोष ....	१०५
बिन्दुफल-टी० ....	११	पुरुषकेउपचार ....	११
निंद्यरजोदर्शकहतेहै ....	१७	स्त्रीकेउपचार ....	११
रजस्वलाकेनियम ....	११	पञ्चीसवर्षकेपुरुषकोबारहवर्ष	
तथावाग्भटोक्तनियम ....	११	कीस्त्रीसैंसंयोगहोना	
तथाअन्यफल ....	११	यहकथन ....	११
स्थलभेदकरकेफल ....	११	वाग्भटकेमतसैंसोलहवर्षकीस्त्री	
अशुभफलापवाद-टी०....	११	औरवीसवर्षकापुरुषहोना ....	१०६
रजस्वलाकीचाण्डालीआदि		छोटीअवस्थामेंपुरुषस्त्रीकेसंग	
संज्ञा ....	१८	होनेकेअवगुण ....	११

विषय	पृष्ठ
शरीरकी ४ अवस्था ....	१०६
इसमेंप्रमाण ....	१०७
तथामनुकाप्रमाण ....	११
गमनयोग्यपुरुषकहतेहैं ....	११
मैथुनकरनेमेंवर्ज्यपुरुष....	१०८
मैथुनकरनेमेंयोग्यस्त्री ....	११
अयोग्यस्त्री ....	११
बारहवर्षकेउपरांतमहीनेकीम हीनेरजोदर्श....	११
गर्भग्रहणमेंयोग्यसमय ....	१०९
ब्राह्मणक्षत्रीआदिकीस्त्रियोंकी गर्भधारणकीशक्ति ....	११
गर्भाधानमेंनिषिद्धऔरविहित काल ....	११
रजोदर्शकीनिवृत्तिमेंस्त्रीसंग करना ....	११०
त्रिरात्रिस्त्रीवर्जनमेंयुक्तिचतुर्थरा त्रिसैउत्तरोत्तरगमनकाफल ....	११
वाग्भटकाप्रमाण ....	१११
सायंकालभोगभवनमेंप्रवेश होनेकीविधि ....	११
शय्यापरस्थितहोनेकीविधि ....	११२
ज्योतिषीकीआज्ञापूर्वकशय्या पर वामपैरऔरदक्षिणपै रधरकेचढनेकीआज्ञा ....	११
गर्भाधानकामुहूर्त्त ....	११
शय्याकेलक्षण ....	११
गर्भाधानमेंस्त्रीपुरुषोंकेदोष सर्वदोषरहितस्त्रिपुरुषोंकेगमन कीविधि ....	११३
गर्भाधानमेंपढनेकेमंत्र ....	११४

विषय	पृष्ठ
स्त्रीकोगर्भाधानकेसमयउत्तान शयनकीआज्ञा ....	११४
स्त्रीकेनीचेपुरुषकोसोनावर्जित तथाकुबडी करवटवालीस्त्री मेंगर्भाधानकानिषेध ....	११
प्रसंगवसभगकीतीननाडियो कावर्णन ....	११५
समीरणानाडीकाफल ....	११
चान्द्रमसीनाडीकाफल....	११
गौरीनामकनाडीकाफल ....	११६
गर्भाशयकास्वरूप ....	११
एकवारस्त्रीसंगकरकेफिरएकम हीनेकेअनंतरगमनकीआ ज्ञा ....	११
सद्योगृहीतगर्भकेलक्षण....	११७
गर्भवतीकेआचार ....	११
लक्ष्मणकास्वरूप ....	११
लक्ष्मणकेउखाडनेकी और ला नेकीविधि ....	११
व्यक्तिकेपूर्वहीपुंसवनादिकर्म कीआज्ञा ....	११८
पुंसवनकर्मकरनेमेंशास्त्रार्थ पुंसवनप्रयोग ....	११९
इसजगत्सपेदकटेलीकोदेनेकी विधिलिखनाभूलसैरहग याहैसोजानलेनाऋतुक्षेत्र जलऔरबीजकेदृष्टांतसैग र्भकीस्थितिकावर्णन ....	१२०
गर्भप्रवेशमेंदृष्टान्त ....	११
विधिपूर्वकहोनेवालेगर्भका फल ....	१२१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गर्भकेकालागोरादेहहोनेमेंका		ईर्ष्यकेलक्षण ....	१२९
रण ....	१२१	इसमेंहेतु ....	११
इसीविषयमेंमतान्तर ....	१२२	छयाकृतिषंडकेलक्षण ....	११
उन्मत्त अपस्मारी स्त्रैण अल्पा-		स्त्रीषंडकेलक्षण ....	१३०
यु आदि अनेकरोगग्रस्तबा-		षंडसंग्रहश्लोक ....	११
लकहोनेमेंकारण ....	११	षंडोंकेलिङ्गनउठनेमेंकारण ....	११
अंगोंमेंविकृतिहोनेकेकारण ....	१२३	अनुक्तदेहवाणीऔरमनइनकेभे...	
बंध्याऔरवार्त्तानामकस्त्रीव्या		दकाहेतु ....	१३१
पदोंकावर्णन ....	१२४	अतिपापसैंदुष्टसंतानकीउत्पत्ति	११
बंध्यऔरतृणपूलिनामकपुरुष		स्वप्नमैथुनसैंगर्भसंभव ....	११
व्यापदोंकावर्णन ....	११	सर्पविच्छूआदिगर्भसैंप्रगट	
जात्यन्ध, रक्ताक्ष, पिङ्गाक्ष, शुक्ला....		होनेकाकारण ....	१३२
क्ष, विकृताक्षहोनेकेकारण	११	कुबड़ेआदिबालकहोनेमेंकारण....	११
गर्भाशयमेंपुरुषकेसंयोगहोनेसैं		विकृतगर्भहोनेमेंकारण ....	११
स्त्रीकीआर्त्तवप्रवृत्ति ....	१२५	गर्भाशयमेंबालककेमलमूत्रनक	
तथापुरुषकेवीर्यकीप्रवृत्ति ....	११	रनेकाकारण....	११
बालसंज्ञा ....	१२६	गर्भमेंबालककेनरोनेकाकारण ....	१३३
मातापिताकेरोगसैंसंतानके		गर्भमेंबालककेश्वास निद्राआ	
रोगहोताहै ....	११	दिलेनेकी विधि ....	११
यमल ( जोडा ) होनेमेंकारण....	११	शरीरजन्यअवयवोंकेसन्नि	
आधिकपुत्रकन्याहोनेमेंकारण ....	११	वेशोंकाहेतु ....	११
एकसंतानअधिकपुष्टऔरएक		पूर्वजन्माभ्यासकेसदृशबुद्ध्या	
न्यूनहोनेमेंकारण ....	१२७	दिकहोतीहैं ....	११
देरीमेंसंतान होनेकाकारण ....	११	कर्मकोमुख्यता ....	१३४
विनागर्भकेगर्भसदृशलक्षण ....	११	इतिषष्टतरङ्गः ६	
पांचषंडोंकीउत्पत्तिकाकारण		<b>गर्भावक्रान्तिशारीराध्यायः</b>	
तिनमेंप्रथमआसेक्यषंड		शुक्रआर्त्तवकास्वरूप ....	१३४
केलक्षण ....	१२८	शुक्रआर्त्तवमेंपञ्चभूतोंकासाह	
सौगंधिकषंड ....	११	चर्य ....	१३५
कुम्भिकषंड ....	११	गर्भकीअवतरणक्रिया ....	११
तथाकुम्भिलकीउत्पत्ति ....	११	गर्भमेंकौनरहताहैयहकहतेहै ....	१३६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
जीवगर्भमें किस प्रकार प्रवेश कर		सद्योगृहीतगर्भके लक्षण ....	१४५
ताहै ....	१३७	वाग्भटका प्रमाण ....	११
जीवका प्रमाण ....	११	गर्भरहनेके लक्षण ....	११
भावप्रकाशकामत ....	१३८	गर्भवतीके उपचार ....	१४६
एकरूप जीव अनेकरूपके संधार		गर्भवतीके वर्जित आचार ....	११
णकरताहै ....	११	गर्भवतीके दुःखसँग गर्भको दुःखही	
स्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेका कारण ....	११	ताहै इसमें प्रमाण ....	१४७
दारुवाही आचार्यका प्रमाण ....	१३९	गर्भवतीकी सामान्य चिकित्सा ....	११
नपुंसकहोनेमें वसिष्ठकामत ....	११	आवश्यकमें तीक्ष्ण औषधोंके दे	
समविषमतिथियोंमें शुक्र और		नेकी आज्ञा ....	११
रजोवृद्धि होती है इसमें वैखान		गर्भकी मासपरत्व अदस्था	
सकामत ....	११	द्वितीयमास ....	१४८
मज्जामूत्रादिका प्रमाण ....	१४०	पुरुषस्त्रीनपुंसकहोनेकी परीक्षा ....	११
स्त्रीके शुक्रहोनेमें प्रमाण ....	१४१	गयी भोज आदिके मतसँ पिंडा	
पुत्रेष्टि आदिकर्मसँ उत्तमसंतान		दिकोंका स्वरूप ....	११
की उत्पत्ति ....	११	तृतीयमास ....	१४९
दोषधातुमलादिकके प्रमाण		स्त्रीपुरुषहोनेकी दूसरी परीक्षा ....	११
कानिषेध ....	१४२	चतुर्थमास ....	११
अपत्यजन्मनेका काल		भावप्रकाशसँ अङ्गप्रत्यंगोंका वर्णन	११
अदृष्टार्त्तवक्रतु ....	११	द्वितीय अंगका वर्णन ....	१५०
अदृष्टार्त्तवक्रतुमतीके लक्षण ....	११	तीसरे अंगका वर्णन ....	११
संकुचितयोनिमें वीर्यप्रवेश नहीं		चतुर्थ अंगका वर्णन ....	१५१
होवे ....	१४३	पंचमषष्ठ और सप्तम अंगका वर्णन	११
आर्त्तवप्राप्तिका काल और स्वरूप		अष्टम अंगका वर्णन ....	१५३
आर्त्तवके प्रवृत्तिनिवृत्तिहोने		गर्भवतीके नामान्तर ....	१५४
का काल ....	११	गर्भिणीकी श्रद्धाभंगनिषेध ....	११
समविषमदिवसभेदकरके गर्भ		विकृत गर्भहोनेके और भी प्र	
भेद ....	१४४	माण ....	१५५
समविषमदिवसोंमें रज और शु		स्त्रीका दौर्हृदके सँ परिपूर्ण करना ....	११
क्राधिक्यहोनेमें विदेहका वचन		इन्द्रियोंके अपमानसँ गर्भकी विकृति	११
नपुंसकहोनेका कारण ....	११	दौर्हृदद्वारा गर्भके लक्षण ....	१५६

विषय	पृष्ठ
अनुक्तगर्भदौर्हृदसंग्रहश्लोक	.... १५७
दौर्हृदोंमेंप्रारब्धकारण	.... १५७
चतुर्थमासकीव्यवस्था	.... १५८
पंचममास	.... १५९
छठमहीना	.... १५९
सप्तममास	.... १५९
अष्टममास	.... १५९
अष्टममासमेंप्रगटबालकेनेजी वनेकाकारण	.... १५९
प्रसूतकासमय	.... १६०
संग्रहोक्तगर्भकासन्निवेश	.... १६०
भोजनकेविनागर्भवृद्धिमेंकारण	.... १६१
अङ्गविभागपूर्वकपोषणकाज्ञान	.... १६१
इसविषयमेंभोजकावाक्य	.... १६१
गर्भवृद्धिकाक्रम	.... १६२
गर्भकेजोप्रथमअंगहोताहैउसको कहतेहैं	.... १६२
शरीरमेंपितृजभाग	.... १६३
मातृजन्य	.... १६३
रसजन्य	.... १६३
आत्मजन्यपदार्थ	.... १६४
सात्विक राजस तामसज न्यपदार्थ	.... १६४
साम्यजपदार्थ	.... १६४
गर्भिणीकेपुत्रकन्यानपुंसकहो नेकेलक्षण	.... १६५
तथावागर्भटोक्तलक्षण	.... १६५
नपुंसकगर्भकेलक्षण	.... १६६
जोडाहोनेवालेगर्भकेलक्षण	.... १६६
ग्रन्थान्तरकाप्रमाण	.... १६६

विषय	पृष्ठ
गर्भवतीकेकायिकवाचिक मानसिकलक्षणोंसेपुत्रकेगुण	.... १६७
विकृतअवयवहोनेकाकारण	.... १६७
* इतिसप्तमस्तरङ्गः ७	

### गर्भव्याकरणशारीराध्यायः

प्राणवर्णन	.... १६७
अग्न्यादिकप्राणकौनसेकर्मसे शरीरकापालनकरतेहैं	.... १६७
यहशरीरअन्यसमवायिकारण करकेउत्पन्नहोताहैउनसब कोभावप्रकाशकहतेहैं	.... १६८
शार्ङ्गधरकेमतसे	.... १६९
सप्तत्वचा	.... १६९
ग्रन्थान्तरकामत	.... १६९
त्वचाकेभेदकहतेहैं	.... १७०
अवभासिनीत्वचाकाप्रमाण	.... १७०
द्वितीयत्वचा	.... १७१
तृतीयत्वचा	.... १७१
चतुर्थत्वचा	.... १७१
पंचमत्वचा	.... १७१
छठीत्वचा	.... १७१
सप्तमत्वचा	.... १७१
स्थूलअवयवोंकीत्वचाका प्रमाण	.... १७२
कलाकास्थान	.... १७२
कलाकाज्ञानप्रत्यक्षनहींहोता इसीसेदृष्टान्तकरकेकहतेहैं	.... १७२
कलाअदृश्यहैइसमेंप्रमाण	.... १७३
प्रथमकला	.... १७३
मांसमेंशिरारहनेकादृष्टान्त	.... १७३

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
द्वितीयकला ....	११	आशयोकीउत्पत्ति ....	११
रक्तादिरहनेमेंदृष्टांत ....	१७४	सप्ताशय ....	११
तृतीयकला ....	११	वाग्भटसैंआशयोका अनुक्रम ....	१८६
इसविषयमेंप्रमाण ....	११	वृक्क ....	११
वसाकास्वरूप ....	११	वृषणोत्पत्ति ....	११
चतुर्थकला ....	११	अथाण्डद्वयम् ....	११
सन्धिचलनविषयमेंदृष्टांत ....	११	अथ मूत्रयंत्राणि ....	१८७
पांचवीकला ....	१७५	अथ वस्तिः ....	१८८
कोष्ठोंकोकहतेहैं ....	११	अथ जननेन्द्रियम् ....	१८९
पांचवीकलाकोकोष्ठाश्रितत्व ....	११	अथ पुंजननेन्द्रियाणिसेद्रूमिः ....	१९१
छटवीकला ....	११	कलायिकाद्वयम् ....	११
इसविषयमेंसंग्रहकाप्रमाण ....	१७६	मेद्रः ....	११
सातवीकला ....	११	बीजकोशद्वयम् ....	१९३
शुक्रसर्वांगव्यापकहोनेमेंदृष्टांत ....	११	अथ स्त्रीजननेन्द्रियाणि ....	११
शुक्रगमनकामार्ग ....	१७७	भगमणि ....	१९४
इसमेंवाग्भटकाप्रमाण ....	११	भगोष्ठद्वय ....	११
वीर्यक्षरणकहतेहैं ....	११	भगपक्ष ....	११
गर्भवतीकेआर्त्तवकानिषेध ....	११	भगलिंग ....	१९५
स्तनदुग्धोत्पत्ति ....	११	सामिचन्द्र ....	११
अथ गुहातहांप्रथमगुहाकावर्णन ....	१७८	कलायिकाद्वय ....	११
मध्यगुहाकावर्णन ....	११	योनि ....	११
हृत्कोष्ठ( हृदय )कावर्णन ....	१७९	जरायु ....	१९६
फुफ्फुस( फेंफडे )कावर्णन ....	१८०	अथ स्तनद्वय ....	११
वाणीकेप्रवर्तनकाहेतु ....	१८१	मूलाधार ....	१९७
उण्डुक ....	१८३	हृदयोत्पत्ति ....	११
अधोगुहा ....	११	शरीरकोचेतनास्थानकहतेहैं ....	११
आंतडेआदिकीउत्पत्ति ....	११	हृदयकास्वरूप....	११
ऊष्मोत्पत्ति ....	१८४	प्रसंगवशानिद्राकावर्णन ....	१९८
पेश्युत्पत्ति ....	११	तामसीनिद्रा ....	११
पेशियोंकास्वरूप ....	११	स्वाभाविकीनिद्रा ....	११
स्नायुकीउत्पत्ति ....	१८५	वैकारिकीनिद्रा ....	११

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ.
इसमेंचरककाप्रमाण ....	१९९	शरीरकेक्षीणहोनेसेकोईअवयव	
पूर्वगद्यकरकेकहेहुएअर्थकोपुनः		वोंकीवृद्धिकहतेहैं ....	११
पद्यकरकेकहतेहैं ....	११	प्रसंगकरकेप्रकृतीकेरूपहेतु	
निद्रावस्यामेंस्वप्रदर्शनकैसे		लक्षणोंकोक्रमकरकेकहतेहैं	११
होताहै ....	११	प्रकृतिकीउत्पत्तिविषयमेंहेतु	
इन्द्रियोंकेलयकरकेआत्मा		कहतेहैं ....	११
निद्रितसादीखताहै....	११	इसमेंवाग्भटकाप्रमाण ....	११
दिनकीनिद्राकाविधिनिषेध ....	२००	वातकोमुख्यतादिखातेहैं ....	२०६
अतिनिद्राकेदोष ....	११	वातप्रकृतिकेलक्षण ....	११
अल्पनिद्राकेगुण ....	११	पित्तप्रकृतिकेलक्षण ....	२०७
निद्रानाशकेहेतु ....	२०१	कफप्रकृतिकेलक्षण ....	२०८
निद्रानाशकेउपचार ....	११	द्वंद्वजऔरसन्निपातजप्रकृति ....	२१०
अतिनिद्राबानेकाउपाय ....	११	प्रकृतिकेभावनपलटनेमेंकारण	११
रात्रिमेंनिद्रावर्जितमनुष्य ....	२०२	वातादिप्रकृतिइसमनुष्यकोदुःख	
दिनमेंकौनसेमनुष्योंकोसोना		नहींदेतेइसमेंप्रमाण ....	२११
चाहिये ....	११	मतान्तरसैप्रकृतियोंकेभेद ....	११
निद्राकेप्रसंगकरकेतन्द्राकेलक्षण.	११	ब्राह्मकायकेलक्षण ....	२१२
जंभाईकेलक्षण ....	११	माहेन्द्रकाय ....	११
छाँककेलक्षण ....	११	वरुणकाय ....	११
कृमकेलक्षण ....	२०३	कुबेरकाय ....	११
आलस्यकेलक्षण ....	११	गंधर्वकाय ...	२१३
कोईइंसजगेउत्कृशऔरग्लानिके		यमकाय ....	११
लक्षणकहतेहैं ....	११	ऋषिकाय ....	११
गौरवकेलक्षण ....	११	असुरकाय ....	११
मूर्छादिकोंकाकारण ....	२०४	सर्पकाय ....	२१४
गर्भवृद्धिविषयमेंअन्यहेतु ....	११	पक्षिकाय ....	११
स्रोतसोंकोआध्मानकीप्राप्ति ....	११	राक्षसकाय ....	११
सर्वदेहकीवृद्धि ....	११	पिशाचकाय ....	११
जैसे२ शरीरबढताहैतैसे २		प्रेतकाय ....	११
दृष्ट्यादिकनहींबढते ....	२०५	पशुकाय ....	२१५
		मत्स्यकाय ....	११

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वानस्पत्यकाय	.... ११	कूर्चक	.... २२६
त्रिविधिकायामेयथायोग्यचिकि- त्साकथन	.... ११	रज्जु	.... ११
आयुकाज्ञान	.... २१६	सेविनी	.... २२८
सुखायुकेलक्षण	.... २१७	संघात	.... ११
दीर्घायुकेलक्षण	.... ११	मतान्तर	.... ११
पीठआदिकीउत्तमता	.... २१८	अथस्थिन्यस्वरूप	.... ११
देहकोशुभत्व	.... ११	शरीरधारणमेंहड्डियोंको प्रधानता	.... २२९
सर्वगुणयुक्तदेहकीशतायु	.... २१९	कंकाल	.... ११
बलप्रमाणज्ञान	.... ११	हड्डियोंकाविशेषवर्णन	.... ११
आठप्रकारकेसारोंकेलक्षण-टि०	११	हड्डियोंकेपांचप्रकार	.... २३०
सत्वादिप्रकृतिवालोंकोसुखदुःखानु- भवकाप्रकार	.... २२०	पंचविधहड्डियोंकापृथक् २ वर्णनतहांअन्वस्थि	.... ११
देहकाप्रमाण	.... ११	कपालास्थि	.... ११
आयुबढानेवालेकर्म	.... २२१	नलकास्थि	.... ११
* इत्यष्टमस्तरङ्गः <		असमगात्रास्थि	.... २३१
<b>शरीरसंख्याव्याकरणाध्यायः</b>		रुचकास्थि	.... ११
गर्भसंज्ञा	.... २२१	अस्थिसंख्या	.... २३२
शरीरसंज्ञा	.... ११	शल्यतंत्रसेहड्डियोंकीसंख्या	.... ११
षडंग	.... २२२	शाखागतहड्डियोंकीसंख्या	.... ११
प्रत्यंग	.... ११	श्रोण्यादिगतहड्डियोंकी संख्या	.... ११
त्वगादिकोंकीसंख्या	.... ११	ग्रीवोर्ध्वगतहड्डियोंकीसंख्या	.... २३३
आशय	.... २२३	मतांतरसेहड्डियोंकीसंख्या	.... ११
स्रोतस्	.... ११	ऊर्ध्वशाखाकीहड्डियोंकी संख्या	.... ११
स्मरातपत्रकावर्णन	.... ११	मध्यभागस्थितहड्डियोंका स्वरूप	.... २३४
स्रोतसादिभेदमेंमतान्तर	.... ११	पांसुओंकावर्णन....	.... ११
स्रोतसोंकाग्रन्थान्तरसर्वेर्णन	२२४	शिरकीहड्डियोंकावर्णन	.... २३५
कंठरा	.... २२५	मुखकीहड्डियोंकावर्णन	.... २३६
हस्तादिगतकंठराओंके अग्रभाग	११		
अथजाल	.... ११		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ.
कर्ण ....	११	शल्यतंत्रकीउत्कृष्टता ....	२५१
जिह्वा ....	११	मृतदेहकोचीरकरदेखनेकीविधि....	११
अंगूठा ....	११	प्रत्यक्षदेखनेकाफल ....	२५२
औरभ्रूवपिप्रोक्तअस्थिसंख्या ....	२३७	देहप्रत्यक्षग्राह्यक्षेत्रज्ञ नहीं ....	११
हड्डियोंकीसंधियोंकावर्णन ....	११	शास्त्रद्वाराऔरप्रत्यक्षदेखनेका	
सन्धियोंकीसंख्या ....	२३८	फल ....	११
मध्यभागऔरग्रीवाआदिकी		* इतिनवमस्तरङ्गः ९	
संधि ....	११	<b>प्रत्येकमर्मनिर्देशशरीराध्यायः</b>	
उक्तसंधियोंकीगणना ....	२३९	मर्मोंकीसंख्या ....	२५३
पेशीस्नायुशिराआदिकीसंधि		मांसादिमेदकर्ममर्मोंकीसंख्या....	११
योंकी संख्याकाअनियम ....	११	मांसमर्म ....	११
स्नायवः ....	२४०	शिरामर्म ....	११
स्नायुसंख्या ....	२४१	स्नायुमर्म ....	२५४
हाथपैरकीस्नायुसंख्या ....	२४२	अस्थिमर्म ....	११
मध्यप्रान्तगतस्नायु ....	११	संधिमर्म ....	११
ग्रीवासैलेकरऊपरकाचतु		मर्मोंकेविशेषज्ञानहोनेकेवास्ते	
विधस्नायु ....	११	प्रदेशकहतेहैं ....	११
इसविषयमेंदृष्टांत ....	२४३	मर्मोंकेपांचप्रकार ....	२५५
स्नायुप्रसंसा ....	११	सद्यःप्राणहरमर्म ....	११
५०० पेशी ....	११	मर्मोंकेभेदकाकारण ....	२५६
पेशियोंकापृथक् २ वर्णन ....	११	मर्मभेदकेदूसरेकारण ....	११
मध्यप्रदेशकीपेशियोंकीसंख्या ....	२४४	मर्मोंमेंमांसादिकपांच है	
ऊर्ध्वप्रदेशकी ३४ पेशी ....	११	इसमेंप्रत्यक्षप्रमाण ....	२५७
स्त्रियोंकेपेशीअधिक ....	११	शिराकेप्रकार ....	११
पेशियोंकेस्थानविशेषकरकेस्व		एकदेशमर्माघातकर्के सर्व	
रूप ....	२४५	शरीरकोपीडातथाप्राणघात	११
इसमेंभोजकावचन ....	११	मर्मोंमेंशल्यअच्छानलगने	
मतांतरेणपेशीसंख्यानम् ....	२४६	सैं उसकीक्रियाकाविकल्प....	२५८
पेशियोंकेकर्म ....	२५०	सद्यःप्राणहरादिमर्मोंके	
मूढगर्भनिकालनेकेलियेग		विषयमेंकालावधि ....	११
र्भस्थिति ....	११		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
क्षिप्रादिमर्मोंकेस्थान ....	...	अपाङ्गसंज्ञकशिरामर्म ....	...
मांसमर्म तलहृदय ....	२५९	आवर्तसंज्ञकअस्थिमर्म ....	...
स्नायुमर्म कूर्चसंज्ञक ....	...	शंखनामकअस्थिमर्म ....	...
स्नायुमर्मकूर्चशिरस ....	...	उत्क्षेपसंज्ञकमर्म ....	२६६
संधिमर्मजानुसंज्ञक ....	...	स्थपणीशिरामर्म ....	...
मांसमर्मइन्द्रबस्तिक ....	...	सीमंतसन्धिमर्म....	...
संधिमर्म जानुसंज्ञक ....	२६०	शृंगाटकनामकशिरामर्म ....	...
आणिसंज्ञकस्नायुमर्म ....	...	अधिपतिशिरामर्म ....	...
शिरामर्मउर्वीसंज्ञक ....	...	मर्मोंकासूत्रोक्तप्रमाण	...
शिरामर्मलोहिताक्षसंज्ञक ....	...	मर्मोंकाप्रयोजन ....	२६७
स्नायुमर्म विटपसंज्ञक ....	...	हाथपैरटूटनेसंबन्धेहैऔरमर्म	...
मांसमर्म गुदासंज्ञक ....	२६१	भेदकरकेमरे हैं ....	...
मूत्राशयमेंबस्तिसंज्ञकमर्म	...	मर्मकौनसंकार्योंपयोगीहोतेहैं	...
नाभिमर्म ....	...	साकहते ....	२६८
आमाशयमर्म ....	...	मर्महतअनेकउपद्रवोंकरके	...
स्तनमूलशिरामर्म ....	२६२	मरताहै ....	...
रोहितसंज्ञकमांसमर्म ....	...	मर्माभिघातकरकेमनुष्यमरणमें	...
अपलापशिरामर्म ....	...	कारण ....	...
अपस्तंबशिरामर्म ....	...	सद्यःप्राणहरादिमर्मपंचकके	...
पीठकेमर्म ....	२६३	लक्षण ....	...
ककुंदरसंधिमर्म ....	...	रुजाकरमर्मोंकोकुवैद्यबिगाडेहैं	२६९
नितंबअस्थिमर्म....	...	मर्मसमीपचोटकरकेमर्मतुल्य	...
पार्श्वसंधिशिराबंधनमर्म....	...	पीडाकहतेहैं ....	...
बृहतीसंज्ञकशिरामर्म ....	...	मर्माभिघातविषयमेंवैद्ययत्न	...
अंशफलकमर्म ....	२६४	* दशमतरङ्गः १०	...
स्नायुबंधनअंशमर्म ....	...	शिरावर्णविभक्तिशारीराध्यायः	...
जत्रुमूलकेऊपरकेमर्म ....	...	सर्वशिरा ( नस-वा रगों )की	...
मातृकामर्म ....	...	संरूपा ....	२७०
कृकाटिकसंधिमर्म ....	...	शिराओंकेकार्य ....	...
विधुरसंज्ञकस्नायुमर्म ....	२६५	शिराओंकेअतिसूक्ष्मप्रकार	...
फणसंज्ञकस्नायुमर्म ....	...	दृष्टांतकरकेकहतेहैं ....	...

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
प्रमाण ....	११	शंखगतशिरावेध ....	२७७
शिराओंका और प्राणोंका आधा		मस्तकसीमंत और अधिपति	
राधेयभावसंबंधकहतेहैं ....	२७१	इनमेंशिरावेध ....	११
शिराओंकीगणना ....	११	गिनीहुईशिराओंकान्यूनाधि	
अंगविभागकरकेशिरासंख्या ....	११	क्यताकहते ....	११
कोष्ठगतशिराविभाग	२७२	मतांतरसेविशेषकहते हैं ....	११
नाडसैलेकरऊपरकेभागमेंशिरा		* एकादशतरङ्गः ११	
ओंकीसंख्या ....	११	<b>शिराव्यधविधिशरीराध्यायः</b>	
शिराश्रितवातादिकोंकेप्राकृत		फस्तखोलनावर्जित ....	२७९
औरवैकृतकार्य ....	११	रक्तस्त्रावमेंसाध्यविकार....	२८०
वातवाहिनीशिरागतकुपित		फस्तखोलनेमेंवर्जितमनुष्यों	
वातकेलक्षण ....	११	कीभीफस्तखोलना ....	११
पित्तकेकार्य ....	२७३	शिरावेधकेपूर्वकृत्य ....	२८१
पित्तवाहिनीशिरागतकुपित		वेधकाल ....	११
पित्तकेकार्य ....	११	शिरोत्थापनकाप्रकार ....	११
कफकेकार्य ....	११	पादादिगतशिरावेधनेकाप्रकार ....	२८२
विकृतकफकेकार्य ....	११	हस्तगतशिवरावेधप्रकार ....	११
रक्तकेकार्य ....	११	श्रीणीपीठ और कंधेइन्मेंशिरावेध	२८३
कुपितरक्तकेकार्य ....	२७४	कौनसीठौरशिरावेधकरेयहकहते	११
वातादिशिरासर्वदोषोंकोवहतीहै....	११	अनुक्तयन्त्रप्रकारकहतेहैं ....	११
सर्वदोषवहनेवालीशिराओंको		वेध्यशरीरकेतारतम्यकरके	
कहतेहैं ....	११	शस्त्रयोजना....	२८४
शिराओंकावर्णविभाग ....	११	शिरावेध....	११
वर्जितशिरा ....	२७५	सुविद्धशिराकेलक्षण ....	११
अवेध्यशिरा ....	११	दूषितशिराकेवेधहोनेसेप्रथमदु	
शास्त्रगतअवेधशिरा ....	११	ष्टरुधिरनिकलताहै यहदृष्टां-	
ठोडीकीशिरावेध ....	२७६	तदेकरकहते ....	११
जिह्वाकीशिरावेध ....	११	उत्तमविद्धहोनेपरभीरुधिरनानि	
नासिकाकीशिरावेध ....	११	कलनेकाकारण ....	२८५
अपांगकीशिरावेध ....	११	क्षीणमनुष्यकेरुधिरकाटनेपर	
नासानेत्रादिकोंमेंशिरावेध ....	११		

विषय	पृष्ठ
अत्यन्तघबडाहटहानेसैक- मकहते हैं ....	२८५
रक्तस्रावकाबहुधानिवेध ....	११
रक्तकाठनेकीपरमावधि ....	११
इसमेंप्रमाण ....	२८६
कौनसैरोगमेंकोन सीशिरावेधनी ....	११
अपचीरोगमेंशिरावेध ....	११
गृध्रसीरोगमेंशिरावेध ....	११
हस्तपादादिकोंमेंविशेष कहतेहैं ( प्लीहमेंशिरावेध ) ....	२८७
प्रवाहिकामेंशिरावेध ....	११
मूत्रवृद्धिमेंशिरावेध ....	११
विद्रधितथापार्श्वशूलमें शिरावेध....	११
बाहुशोषतथाअपबाहुक इनमें शिरावेध ....	२८८
तृतीयकज्वरमेंशिरावेध ....	११
चातुर्थकज्वरमेंशिरावेध....	११
अपस्मारमेंशिरावेध ....	११
उन्मादरोगमेंशिरावेध ....	११
जिह्वारोगमेंतथादन्तव्याधिमें शिरावेध ....	२८९
तालुरोगमेंशिरावेध ....	११
कर्णशूलऔरकर्णरोगमेंशि- रावेध ....	११
गन्धाग्रहणादिनासारोगमेंशि- रावेध ....	११
तिमिरपाकादिनेत्ररोगमेंशिरा....	११
दुष्टशिरावेधकेलक्षण ....	११
दुर्विद्धशिराओंकापृथक् २वर्णन....	२९०

विषय	पृष्ठ
शिरावेधनेमेंअत्यन्तसावधानी चाहिये ....	२९१
अयोग्यशस्त्रद्वारावेधनेकेअवगुण	११
इतरउपचारोंकीअपेक्षाशिरावेध- कीआधिक्यता ....	११
शिरावेधचिकित्साकाअर्धांगहै ....	२९२
अबस्निग्धादिपुरुषोंकोक्रोधादि- कसामान्यकरकेत्यागनेयो- ग्यहैयहकहते हैं ....	११
रक्तस्रावकरनेकेसाधन ....	११
स्थानभेदकरकेउपायविशेष कहतेहै ...	२९३

\* इतिद्वादशतरंगः

### धमनीव्याकरणंशरीराध्यायः

धमनीशब्दकीव्युत्पत्ति....	२९३
धमनीयोंकीसंख्या ....	११
शिराधमनीस्रोतसोंकाऐक्य कहते हैं ....	११
शिरादिकोंकेभेद ....	११
मतान्तर ....	२९४
उक्तमतकाखंडन ....	११
स्वधातुसमवर्णत्वकहतेहैं ....	११
मूलनियमकहतेहैं ....	११
कर्मभेद ....	२९५
आगमरूपचतुर्थहेतु ....	११
अबशिरास्रोतसादिपरस्पर भिन्नहै तथापिउनकेकर्म मिलेहुएदीखतेहैं ....	११
नाड्यादिकोंकीगतिकहतेहैं ....	२९६
धमनीयोंकेकर्म ....	११

विषय	पृष्ठ
धमनीकेकार्य ....	२९६
अधोगतधमनीकेकार्य ....	२९७
अधोगतधमनीसेऊर्ध्वशरीर- पोषणकैसेहोताहै ....	११
अधोगत ३० धमनीयोंकेकर्म ....	११
तिर्यग्गतधमनीकहतेहैं ....	२९८
शब्दादिग्राहिणीतथासर्गादि कारकधमनियोंकीप्रक्रिया ....	२९९
मतांतरसेधमनियोंकेकर्मआ- दिकहतेहैं ...	३००
स्त्रोतसोंकोकहतेहैं ....	३०२
स्त्रोतसोंकास्वरूप ....	११
अन्यमतकहतेहैं ....	३०३
स्त्रोतसोंकेभेद ....	११
प्राणवहस्त्रोतस् ....	११
अन्नवहस्त्रोतसोंकेमूल ....	११
उदकवहस्त्रोतसोंकामूल ....	३०४
रसवहस्त्रोतसोंकामूल ....	११
रक्तवहस्त्रोतस् ....	११
मांसवहस्त्रोतस् ....	११
मेदोवहस्त्रोतस् ....	११
मूत्रवहस्त्रोतस् ....	३०५
पुरीषवहस्त्रोतस् ....	११
शुक्रवहस्त्रोतस् ....	११
आर्तववहस्त्रोतस् ....	११
चिकित्सा ....	११
उद्धृतशल्यचिकित्सा ....	३०६
स्त्रोतोलक्षण ....	११

विषय	पृष्ठ
<b>गर्भिणीव्याकरणाध्यायः।</b>	
गर्भिणीकेनियम....	३०६
गर्भिणीकाअन्न ....	३०७
अन्यमत....	३०८
स्वमतकहतेहैं ....	११
गर्भिणीकोसूतिकागाराश्र- यणविधि ....	११
सूतिकागारकीविधि ....	११
सूतिकागारस्थितहोगर्भोत्पात्ति- केसमयकीवाटदेखना ....	३१०
तथाचरककामत ....	११
आसन्नप्रसवाकेलक्षण ....	११
आवीप्रादुर्भावकेअनंतरगर्भि- णीकोभूमिशयनकीआज्ञा ....	३११
गर्भिणीकेरक्षाबन्धनादिकर्मकर- केसघृतापेयादेनेकीआज्ञा ....	११
आसन्नप्रसवाकोपृथ्वीशयनके अनंतरतैलादिकीमालिस औरजंभाईलेनातथाडोल नेकीआज्ञा ....	११
गर्भवतीकोधूनीदेनाऔरगरम तैलसँउसकेपार्श्वकटीआदि- कीमालिस ....	११
तत्कालप्रसूताकेपासउत्तमअ नेकस्त्रीरहकरउसकोहितो पदेशकरे ....	३१२
अतिकष्टावस्थामेंसाटमेंशयन कराइसकीयोनिकोसाधन ....	११
गर्भकेवहनकीविधि ....	११

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गर्भिणीकोहर्षोत्पादन ....	३१३	स्तन्यकीप्रवृत्ति ....	३२४
तथाप्रसूतकेसमयप्रसूताकेक-		स्तन्यकेअल्पहोनेमेंकारण ....	११
र्णमेंज्मनीयमंत्र ....	११	स्तन्यवृद्धिहोनेकेउपायांतर ....	११
अर्जुनकेनामोंसेअभिर्मंत्रितकरेहु-		कलमधान्यकेलक्षण ....	११
एजलपीनेसेगर्भमोचन	११	दुष्टस्तन्यकेलक्षण ....	३२५
हर्षोत्पादनकाप्रयोजन ....	११	दुष्टस्तन्यकाशोधन ....	११
गर्भकेरुकनेमेंउपचार ...	३१४	बालककेरोगज्ञानकाउपाय ....	११
उपायांतर ....	३१५	बालककीमात्राकाप्रमाण ....	३२६
बालककेजन्मकेपश्चात्कर्म	११	ग्रंथान्तरकाप्रमाण ....	११
जातककर्म ....	३१६	प्रकारान्तरकरकेऔषधोपाय ....	३२७
अन्नप्राशन ....	३१७	ज्वरविषयमेंविशेषकहतेहैं ....	११
स्त्रियोंकेस्तन्यकीप्रवृत्ति...	३१८	बालककेतालुलटकानेकाउ	
प्रसूतास्त्रीकोनियमनपालने-		पाय ....	११
केदोष ....	११	बालककीनाभिफूलआनेकात-	
नामकरण ....	११	थागुदपाकहोजवेउसका	
धात्रीपरीक्षा ....	३१९	उपाय ....	११
अथस्तनसंपत् ....	३२०	घृतबालककोसदैवहितकारी	
अथस्तन्यसम्पत् ....	११	होताहै....	३२८
निषिद्धधायकेलक्षण ....	११	अथबालककीपरिचर्याविधि ....	११
अथस्तनपानविधि ....	३२१	उक्तपरिचर्याकाफल ....	११
अस्त्रावितदुग्धकेअवगुण	११	बालककीरक्षाकाप्रकार ....	३२९
अभिमंत्रणकेमंत्र ....	११	बालककोस्वाभाविकहितवस्तु ....	११
अनेकउपमाता (धाय) होनेकेदोष	११	माताकेदूधनहोवैऔरधायमिले	
दूधसूखनेकाकारण ....	११	नहीउससमयकीविधि ....	११
क्षीरउत्पन्नकारकप्रयोग ....	३२२	बालककेअन्नप्राशनकासमय ....	११
दूधकीपरीक्षा ....	११	बालककेकवलादिककासमय ....	३३०
दुष्टस्तन्यकेविकार ....	११	ग्रहोपसर्गकेलक्षण ....	११
कुमारकेरहनेकास्थान ....	३२३	कुमारकीपुरुषार्थसाधनहेतुभूत	
सूतिकाकेकपडेआदिमेंधूनी		क्रियाकहतेहैं ....	११
देनेकीऔषध ....	११	सहेतुकप्रतीकारगर्भस्त्रावकेलक्षण	३३१
पुनःस्तन्यस्वरूप ....	३२४		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गर्भस्त्रावकाउपचार ....	३३१	दूसराउपचार ....	३४६
तथा ....	११	मर्यादासेउपरान्तगर्भधारणकेदोष ....	११
आमरक्तकेअविरुद्धक्रिया ....	३३२	रोगविशेषकरकेगर्भिणीकी	
गर्भपातमेंउपचार ....	३३३	वमनक्रिया ....	३४७
यहविधिकिसलियेकरनीचाहिये	११	गर्भिणीकेआहारकानियम ....	११
उपविष्टकगर्भकेलक्षण ....	११	बालकोकोऔषधप्रमाण	
नागोदरगर्भकेलक्षण ....	३३४	विश्वामित्रोक्त ....	११
उपविष्टकनागोदरगर्भकी		इति शारीरभागः समाप्तः ।	
चिकित्सा ....	११	अथ शस्त्रचिकित्साप्रारंभः ।	
वृद्धकाश्यपकेमतसेशुष्कगर्भके		<b>अग्रोपहरणीयाध्यायः ।</b>	
लक्षण ....	११	त्रिविधकर्म ....	३४९
लीलाख्यगर्भकेलक्षण ....	११	शस्त्रकर्मकोअष्टविधत्व ....	११
उपायांतर ....	३३५	शस्त्रकर्मकेपूर्वकर्त्तव्य ....	३५०
गर्भिणीकेउदावर्तकायत्न ....	११	शस्त्रकर्म ( चीराआदि )	
मृतगर्भास्त्रीकेलक्षण ....	११	लगानेकीविधि ....	११
मृतगर्भास्त्रीकायत्न ....	३३६	चीरालगानेकाप्रमाणऔर	
मूढगर्भकीशस्त्रचिकित्सा	११	उसकेगुण ....	३५१
शस्त्रकर्म ....	३३७	प्रशस्तत्रणकेकर्म ....	११
मूढगर्भकेछेदनेकीविधि	११	शस्त्रकर्ममेंवैद्यकीउत्तमता ....	३५२
मूढगर्भस्त्रीकीसामान्य		विपरीतचीरादेनेकेउपद्रव ....	११
चिकित्सा ....	११	शस्त्रकर्मकाफलऔरशस्त्रकर्मके	
गर्भावस्थाकेअनुसारकर्म ....	३३८	पश्चात्कर्त्तव्यकर्म ....	११
जीवितगर्भकेछेदनकेअवगुण ....	११	रोगीकारक्षाकर्म....	३५३
त्याज्यमूढगर्भास्त्री ....	११	रक्षाविधानकेमंत्र ....	३५४
मूढगर्भहरणकेपश्चात्कर्त्तव्यकर्म....	११	रक्षाकेअनंतरकृत्य ....	११
बलातैलकीविधि ....	३४०	शस्त्रजनितपीडामेंचिकित्सा ....	३५६
मृतस्त्रीकेबालकनिकालने		<b>यंत्राध्यायः ।</b>	
कीआज्ञा ....	११	यंत्रोंकीसंख्या ....	३५६
अन्नविपाकक्रिया....	११	यंत्रव्यापिलक्षणपरिभाषा ....	३५७
णजन्मक्रम ....	३४५		
गर्भिणीकेप्रतिमासमेंउपचार ...	११		

विषय	पृष्ठ
स्वस्तिकादियंत्रोंकी संख्यां	३५७
यंत्र बनानेकी धातु और उनके बनानेकी युक्ति	११
स्वस्तिकयंत्र	३५८
संदंशयंत्र	३५९
तालयंत्र	११
नाडीयंत्र	३६०
शलाकायंत्र	११
उपयंत्र	३६१
यंत्रकर्म	३६२
अनेकशल्याकारकर्मोंकी बाहुल्यहोनेसे पूर्वोक्त संख्याका अनियम	३६३
यंत्रोंके दोष	११
यंत्रोंकी उत्तमता	११
स्वस्तिकयंत्रोंका विषयभेद	११
कंकमुखयंत्रको प्रधानता	३६४

### शस्त्रावचारणीयाध्यायः ।

शस्त्रोंकी संख्या	३६४
शस्त्रोंके अष्टविधकर्म	११
शस्त्रोंके पकडनेकी विधि	३६५
शस्त्रोंकी आकृति	३६६
शस्त्रोंके बनानेमें लंबावचौड़ावका प्रमाण	११
उत्तमशस्त्रके लक्षण	३६८
शस्त्रोंके दोष	११
शस्त्रोंकी धार	११
शस्त्रोंकी पायना	११

विषय	पृष्ठ
शस्त्रकोश	३६९
धारकी परीक्षा	११
अनुशस्त्र	३७०
अनुशस्त्रोंके विषय	११
अवशस्त्रगुणसंपत्कारण	११
शस्त्राभ्यास करनेके गुण	३७१

### योग्यासूत्रियाध्यायः ।

गुरुशिष्यको छेद्यादिकर्ममें योग्यकरे	३७१
गुरुशिष्यको दिखाने योग्यकर्म	११
योग्य करनेके गुण	३७२

### अष्टविधशस्त्रकर्मध्यायः ।

छेद्यकर्मके योग्य	३७३
भेदने योग्य	११
लेख्य योग्य	३७४
वेध्य और एष्य	११
अहार्य और स्वाव्य	११
सीव्यरोग	३७५
सीव्यवर्जितरोग	११
सीनेकी विधि	११
अथ सूची ( सुई )	३७६
बहुत दूर और बहुत समीप टांके लगानेके दोष	११
शस्त्रकर्मचतुर्विधव्यापादि	३७७
कुशस्त्रचलनेके अवगुण	११
मर्मविद्धके लक्षण	११
छिन्नभिन्नशिराके लक्षण	३७८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ .
घ्रायुविद्धकेलक्षण ....	३७८	कौशल्यतापूर्वकशस्त्र	
सन्धिस्थानमेंक्षतहोनेकेलक्षण ....	”	निपातन ....	३७९
अस्थिविद्धकेलक्षण ....	”	इति शस्त्रचिकित्साविधिः समाप्तः	
मांसमर्मविद्धकेलक्षण ....	३७९	इत्यनुक्रमणिक समाप्ता ।	
शस्त्रकर्ममेंकुवैद्यकीनिंदा ....	”		

ओ३म्

# बृहन्निघण्टुरत्नाकरः ।

श्रीशंवन्दे ।

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

मंगलाचरणम् ।

भजेराधाराध्यंरमितरमणीरञ्जितपदं  
रमातातानन्दातिशयगुरुगर्वापहनखम् ॥  
रमेशंगोविन्दंसुरवरकिरीटैरभिनृतं  
हरन्तंमेविघ्नंसपदिसमलङ्कृत्यवचसाम् ॥ १ ॥

रागादिरोगान्सतताऽनुषक्तानशेषकायप्रसृतानशेषान् ॥  
औत्सुक्यमोहारतिदान्जघान योपूर्ववैद्यायनमोस्तुतस्मै ॥ २ ॥

पायाद्रोहरिरुद्धभूवकलशंहस्तेसुधासंभृतं  
देवायेनकृतामराभगवतावारिव्रजाद्यश्चसः॥  
सर्वव्याधिविनाशनेतुकुशलोधन्वन्तरिर्देवता  
आरोग्यैकनिदानदोमुनिवरैश्चर्कादिभिःसंस्तुतः ॥३॥

यत्करस्पर्शनादेव विकसन्त्यब्जगाः श्रियः ॥  
तत्प्रसादेन वैद्यानां विकसन्तु यशःश्रियः ॥ ४ ॥

श्रीखंडभस्मार्चितचर्चिताङ्गौ मुक्तालिङ्गोल्लसदुत्तमाङ्गौ ॥  
शिवाशिवौनौमिसुमाल्यनागौ रत्नाग्निभाभूषितभालभागौ ॥५॥

हेरम्बोरम्यलम्बोदरमरुणवपुर्मूर्षकेसत्रिविष्टं  
विभ्रद्विभ्राजमानंकरकमललसत्पुस्तकंस्वास्तिकञ्च ॥

ध्यातुर्विघ्नं विनिघ्नन्मृदुमधुरमहामोदकामोदकामो  
गौरीसूनुर्गजास्योदिशतुगणपतिर्वीप्सयाऽभीप्सितार्थान् ॥ ६ ॥

स्फटिकाक्षसुधाकलशाभयकच्छपिकावरपुस्तदरेषुकरा ॥  
धृतशौक्तिकमौक्तिकहारवराशरदिन्दुमुखीहृदिमेवसताम् ॥ ७ ॥

वक्रादृष्टफलस्ययस्यपरमेशेनोदितत्वादिह  
प्रामाण्यनिगमेषुसिध्यतिकिलादृष्टार्थसामादिषु ॥  
सत्यंशाश्वतमुत्तमोत्तमतमंशास्त्रेषुसर्वेषुवा  
आयुर्वेदमुपास्महेवयमिमंतंसर्वविद्याकरम् ॥ ८ ॥

अथग्रंथकर्तृवैशपरंपरा ॥

श्रीमन्माथुरमण्डलेद्विजकुलेश्रीमाथुरीयान्वये  
गोपीनाथप्रपाठकश्चयज्ञसाइलाध्योभवत्सूरिभिः ॥  
तत्पुत्रस्तपसानिधिर्गुणनिधिः श्रीवासिरामोभवत्  
तत्पुत्राःकुलभूषणाः समभवन्नामानितेषांब्रुवे ॥ ९ ॥  
श्रीचन्द्रस्तदनुस्वधर्मनिपुणः श्रीरामचन्द्राभिध-  
स्तद्भ्रातातृतीयोबभूवसुभगोनाम्नाहरिश्चन्द्रकः ॥  
तत्पौत्रःकिलकृष्णलालजनितःश्रीदत्तरामाभिधः  
रत्नान्तंहिबृहन्निघंटुममलंकुर्वेसतांप्रीतये ॥ इति ॥

शिष्य-हेगुरो ! इस मनुष्यको परम हितकारी विद्या कौनसी है,

गुरु-आयुर्वेद विद्या,

शिष्य-कौन कारणोंसे आयुर्वेद हितकारी है,

गुरु-धर्मार्थ काम मोक्षका कारणभूत देहकी रक्षा कर्ता यही शास्त्र है,

अत एव यह ग्रंथ सर्वजनादरणीय है, सो वाग्भट्टमैत्री लिखा है ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

अर्थ-धर्म धन और सुखका साधनरूप जो आयु ( जीवन ) उसकी कामना करके मनुष्यको आयुर्वेदशास्त्रका अत्यन्त आदर करना चाहिये । अर्थात् आरोग्यके शत्रु रोग है, सो इस आयुर्वेदके पढनेसे और इसके लिखे अनुसार वर्तव करनेसे नष्ट होते हैं, चरकमुनिमैत्री लिखा है ॥

धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

रोगास्तस्यापहन्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

अर्थ-धर्म अर्थ काम और मोक्षका कारण नैरोग्य है, उस आरोग्यके और जीवनाद्वारा जो कल्याण होताहै उसके रोग हरण करता है, उसी प्रकार शार्ङ्ग-धरमें लिखा है ॥

अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेत्ररः कर्मविपाकवित् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥

अर्थ-कर्मके विपाकके जाननेवाला पुरुष अपनी देहकी रक्षा करे क्योंकि धर्म अर्थ काम और मोक्षका साधन देहही है ।

ग्रंथान्तरे च ॥

देहादुत्पद्यते पुंसः पुरुषार्थचतुष्टयम् ।

न नीरोगः स कुत्रापि तच्छान्तिस्तु चिकित्साया ॥

अर्थ-पुरुषार्थचतुष्टय ( धर्म अर्थ काम मोक्ष ) पुरुषके देहसे प्रगट होते हैं, वो देह कहींभी नीरोग नहीं है, उन रोगोंकी शान्ति चिकित्सा करके होय है ॥

शिष्य-प्रथमही आयुर्वेदके अनेक ग्रंथ विद्यमान हैं फिर बृहत्रिषंडुरत्नाकर बनानेका क्या प्रयोजन है ॥

गुरु--इह खलु चतुर्वर्गसाधनं शरीरं, तच्चायुःपराधीनं, तद्विघ्न-

कारिणो रोगाः तदभावहेतुचिकित्साप्रतिपादकतयातिसटा-

द्याचार्याणामायुर्वेदशास्त्रेप्रवृत्तिः तद्व्रंथानामतिदुर्ज्ञेयतयाइदा

नीतनानामप्रवृत्तेः सुकरोपायेनज्ञानार्थमेतस्मिन्ग्रन्थेप्रयत्नः ॥

अर्थ-इस संसारमें चतुर्वर्गसाधनरूप शरीर है वह शरीर आयुके अधीन है, उस आयुके नाशक रोग हैं, उन रोगोंको नाशक चिकित्सा है, इस चिकित्साके प्रतिपादक तिसटादि आचार्योंकी आयुर्वेदशास्त्रमें प्रवृत्ति है, परंतु तिसटादि आचार्योंके बनाय ग्रंथ अतिकठिन हैं, इसीसे अद्यावधिपर्यंत उन ग्रंथोंको कठिनताके कारण कोई नहीं पढता, इस निमित्त सर्वसाधारण पुरुषोंके सहजमें ज्ञान होनेके निमित्त इस बृहत्रिषंडुरत्नाकर ग्रंथमें हमारा प्रयत्न है, अर्थात् अनेक क्लिष्ट ग्रंथ पठनपाठनमें जो असमर्थ हैं उनको इस ग्रंथद्वारा सहज ज्ञान हो-जायगा, दूसरे प्राचीन ग्रंथोंकी प्रणाली संलग्न नहीं हैं, अर्थात् जिसजगह जो वस्तु

लिखनी चाहिये सो नहीं लिखी, इस दोषको हमने बृहन्निघण्टुरत्नाकरमें दूर कर-  
दीना है, तीसरे किसी ग्रंथका निदान किसीकी चिकित्सा किसीका शारीर उत्तम  
है, जैसे किसीने लिखा है ॥

**निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।  
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते ॥**

अर्थ—निदानग्रंथोंमें माधव श्रेष्ठ है, सूत्रस्थान वाग्भटका, शारीरक सुश्रुतका,  
और चरकका चिकित्सा प्रशंसनीय है, इस कारण जो स्थल जिस ग्रंथमें उत्तम  
दीखा वो इसमें लिखा है, और प्रमाणान्तरभी लिखे हैं । अब इस ग्रंथ बनानेका  
चौथा कारण औरभी लिखते हैं ॥

**प्रयोगाः परतन्त्रेषु ये गूढाः सिद्धसूचिताः ।  
तानेव प्रकटीकर्तुमुद्यमं किल कुर्महे ॥**

अर्थ—चतुर्थ अन्य ग्रंथोंमें जो रहस्य प्रयोग सिद्धोंके कहेहुए हैं, उनके प्रगट  
करनेको हमारा इस बृहन्निघण्टुरत्नाकर बनानेमें उद्योग है ॥

शिष्य—आप तो इस्को चतुर्वर्गदाता कहते हो, परंतु शास्त्रोंके मतसे आयुर्वे-  
दकी अधमशास्त्रोंमें गणना है, यथा ॥

**उत्तमा वेदविद्या च शास्त्रविद्या च मध्यमा ।  
अधमा ज्योतिषविद्या वैद्यविद्याधमाधमा ॥**

अर्थ—वेदविद्या उत्तम है, शास्त्रविद्या मध्यम है, और ज्योतिषविद्या अधम-  
विद्याओंमें है, तथा वैद्यविद्या तो अधमसेभी अधम अर्थात् नीचेसँभी अत्यंत  
नीच विद्या है । और मनुमहाराजने ३ अध्यायमें वैद्यको भोजन कराना तथा  
वैद्यके भोजन करना वर्जित करा है । औरभी बहुतसे प्रमाण हैं कि वैद्यविद्या  
अधम है ॥

गुरु—तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु यह जो निषेध है सो अधम वैद्यके प्रति  
है, और यह श्लोक किसी मूर्खका नवीन कल्पना कराहुआ है, क्योंकि आयुर्वेद  
सनातन है । और इसके आचार्यभी ब्रह्मा, दक्ष, इन्द्र, चरक, सुश्रुत, भरद्वाज,  
अत्रि, पराशर आदि ऋषि हैं । यदि यह अधम शास्त्र है तो चरक, सुश्रुत, भर-  
द्वाज आदि ऋषियोंको दूषण आना चाहिये । दूसरे यह शास्त्र ऋग्वेदका उपवेद  
है, यथा ।

ऋग्वेदस्योपवेदोयमायुर्वेदइतिस्मृतः ॥

सृष्ट्युत्पादनचित्तेन स्मृतः पूर्वं स्वयंभुवा ॥

अर्थ-यह ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद कहा है, इसको सृष्टि रचनेके प्रथम ब्रह्माने प्रगट करा है । और सुश्रुतने इसको अथर्ववेदका उपांग लिखा है इसके पढनेका फल चरकमुनिने इस प्रकार लिखा है ।

तदिदंशाश्वतंपुण्यंसौख्यंवृत्तिकरंपरम् ॥

स्वर्ग्ययज्ञस्यमायुष्यंयदिसम्यक्प्रकल्पितम् ॥

अर्थ-यह शास्त्र पुण्य, सुख और जीविकाका करनेवाला सनातन है । यदि इसको यथार्थविधिसे करे तो स्वर्ग, यज्ञ और आयुष्यको देवे, इस श्लोकमें जो ( यदि सम्यक्प्रकल्पितं ) यह पद है, इससे निश्चय होता है, कि जो वैद्यके लक्षण और शास्त्रके कहे अनुसार न वर्त्ते उसको पाप, दुःख, अपयज्ञ और नरककी प्राप्ति होती है । अर्थात् शास्त्रहीन, निर्दयी, मौल्य लेकर चिकित्सा करनेवाले वैद्यकी निंदा है । और मनुमहाराजनेभी ऐसेही वैद्यका निषेध लिखा है, यथा ।

नक्षत्रसूचिनंविप्रंभिषजंशुल्कजीविनम् ॥

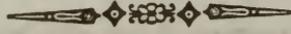
तद्वत्पौराणिकांश्चापिवाह्ममात्रेणापिनार्चयेत् ॥

अर्थ-नक्षत्रसूची ज्योतिषी और मोल लेकर औषध देनेवाला वैद्य, उसीप्रकार द्रव्य ठहराकर कथा वाचनेवाला पौराणिक, इन्होंका वाणीमेंभी सत्कार न करे । किंतु तिरस्कार करदे । इस शास्त्रका माहात्म्य और वैद्यके लक्षण आगे कहेंगे ॥

शिष्य-आपने आयुर्वेदका अच्छा प्रतिपादन करा, इसको सुनके मुझको इसके पढनेकी अत्यन्त लालसा उत्पन्न हुई है । इससे अब आप आयुर्वेदकी उत्पत्ति वर्णन करो ।

गुरु-

# अथातो आयुर्वेदोत्पत्तिनामा- ध्यायव्याख्यास्यामः ॥



यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः सुश्रुताय ।

अर्थ—अब हम आयुर्वेदोत्पत्ति नामक \* अध्यायकी व्याख्या करेंगे । जैसे भगवान् धन्वन्तरिने सुश्रुत शिष्यके प्रति सुश्रुत ग्रन्थमें कही है ॥

तत्र प्रथममेव ग्रन्थसंदर्भप्रारम्भे, तदसमापनकारणविघ्नविना-  
शनपरमाप्ताचारपरंपरापरिप्राप्तमंगलाचरणमुचितमिति; त-  
दाचरणीयत्वे प्रचुरतरविघ्नशंकाशंकितचेतसांप्रचुरतरविघ्न-  
भङ्गायप्रचुरतरमङ्गलमेव शिष्यशिक्षयिषयाप्रत्याध्यायम-  
ग्रतोऽथशब्दोपादानेनाचचार ॥

अर्थ—तहां प्रथम ग्रन्थके प्रारंभमें, ग्रन्थकी समाप्तिके कारण और विघ्न-  
विनाशनार्थ मंगलाचरण करना चाहिये । यह शिष्टाचार परंपरा चली आती है ।  
इसीसे तदाचरणीय होनेसे और प्रचुरतर शंकाशंकित चित्तवाले पुरुषोंके संपूर्ण  
विघ्न दूर करनेके अर्थ, प्रचुरतर मंगल शिष्यशिक्षाके अर्थ प्रत्येक अध्यायके  
प्रथम अथशब्दके उपादान करके करा है । अर्थात् ग्रंथके बननेमें विघ्न न होय;  
इस कारण प्रत्येक अध्यायके प्रथम अथशब्द मंगलवाची धरा है ।

शिष्य—ननु किमभिधेयार्थकमिदंशास्त्रंप्रयोजनमपिकिम् ?

अर्थ—शिष्य प्रश्न करे है, कि हे गुरु! इस आयुर्वेदशास्त्रमें कौन विषय है  
और क्या प्रयोजन है, जैसा लिखा है ।

ज्ञातार्थज्ञातसंबंधं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ।

ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनम् ॥

\* अक्षरोंसे शब्द, शब्दोंसे पद, पदके समुदायसे वाक्य, वाक्यके समूहसे प्रकरण,  
प्रकरणके समूहसे अध्याय, अध्यायके समुदायसे स्थान और स्थानके समुदायसे तंत्र  
होता है ।

अर्थ-ज्ञातार्थ और ज्ञात संबंध सुननेको, श्रोता ( सुननेवाले )की प्रवृत्ति होती है, इसी कारण ग्रन्थके आदिमें प्रयोजनसहित संबंध कहना चाहिये । अर्थात् जबतक प्रयोजन, संबंध, विषय और अधिकारी ये ४ नहीं जाने जाय तबतक मनुष्य किसी शास्त्रके पढनेमें प्रवृत्त नहीं होता है । अन्यत्रभी लिखा है ।

### प्रयोजनमनुद्दिश्यनमन्दोपिप्रवर्तते ॥

अर्थ-विना प्रयोजन मूर्खभी किसी कार्यको नहीं करे, अतएव हे गुरो ! आप आयुर्वेदशास्त्रके संबंधचतुष्टय कही, अर्थात् इस शास्त्रमें कौन विषय, क्या संबंध, क्या इस शास्त्रका प्रयोजन और कौन पढनेका अधिकारी है ।

गुरु-आयुर्वेदका प्रयोजन चरकमुनिने इसप्रकार लिखा है ।

### धातुसात्म्यक्रियाचोक्तातन्त्रस्यास्यप्रयोजनम् ॥

अर्थ-धातु ( रस, रुधिर, मांसादि ) के समान करनेवाली क्रियाही इस आयुर्वेदशास्त्रका प्रयोजनरूप है, अर्थात् बढीहुई धातुओंको घटाना और घटी हुईयोंको बढाना, तथा जो स्वयंसमान है उनको घटनेबढनेसे रक्षा करना, यही इस शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है । उपाय और उपेयरूप इस शास्त्रमें संबंध है । \* हेतु, लिंग और औषधात्मक, तीनस्कंधोंका प्रतिपादन यही इसमें विषय है । और ब्राह्मण इसके पढनेका अधिकारी है, परंतु कोई आचार्य्य कहते हैं कि "तज्जिज्ञासुः " अर्थात् इसके पढनेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य, त्रिवर्णको अधिकार है, और कुल गुण संपन्न शूद्रकोभी पढनेका अधिकार है। यह सुश्रुत कहता है, अब ।

### सुश्रुतके मतसे प्रयोजन कहते हैं ॥

वत्स सुश्रुत? इहखल्वायुर्वेदप्रयोजनंव्याध्युपसृष्टा-

नांव्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्यरक्षणञ्च ॥

अर्थ-धन्वन्तरी कहते हैं कि हेवत्स सुश्रुत ! इस आयुर्वेदशास्त्रका यही प्रयोजन है कि रोगग्रस्त मनुष्योंको रोगोंसे ( औषधादि देकर ) रोगरहित करना, और रोगरहितों को ( हित आहार विहारादि आचरण साधन कराकर ) रोगोंसे रक्षा करना अर्थात् अहित आचरणके सेवनसे कदाचित् रोगीन होजाय ।

\* धातु समान करनेवाला यह शास्त्र है, इसीसे इस्को प्रयोजनवान् शास्त्र कहते हैं । इसके पढनेसे और अर्थ जाननेसे तथा इस शास्त्रविहित विधिके अनुष्ठान करने से, आरोग्यरूप उपेयकी प्राप्ति, और नैरोग्य देह होनेसे अर्भाष्ट पूर्ण आयुकी प्राप्ति होती है, उस्से परमपुरुषार्थरूप मोक्षकी प्राप्ति सुलभ है, इसी कारण वास्तवसे यह शास्त्र उपायरूप है ।

शिष्य-हे गुरो ! जिस मनुष्यके प्रारब्धमें जो दुःख या सुख लिखा है वो अवश्य भोगना पड़ेगा, फिर यत्न करना व्यर्थ है, जैसे लिखा है "अवश्यमेवभोक्तव्यं कृतंकर्मशुभाऽशुभम्" शौनकभी कहते हैं । यथा ॥

येनतुयत्प्राप्तव्यं तस्यविपाकंसुरेशसचिवोपि ।

यःसाक्षान्नियतिज्ञः सोपिनशक्तोन्यथाकर्तुम् ॥

अर्थ-जिसकी जो वस्तु प्राप्त होनेवाली है, उसको विपाकका जाननेवाला इन्द्रका सचिवभी अन्यथा नहीं करसके, उसीसै प्राचीन सदसत् कर्मकी अवश्य भावित्व है ।

गुरु-ऐसा कहोगे तो औषधादि भक्षण मुहूर्त्तादि देखना और दुकान आदि करना, तथा पुरश्चरणादि कर्मको असत्यता आवेगी, इसीसैं दैव ( प्रारब्ध ) और यत्न ( उद्योग ) दोनोंही सफल है, केशवार्किनेभी लिखा है ।

फलेद्यदिप्राक्तनमेवतत्किं कृप्याद्युपायेषुपरःप्रयत्नः ॥

श्रुतिस्मृतिश्चापिनृणानिषेधविध्यात्मकेकर्मणिकिंनिषण्णे

इति ॥

अर्थ-प्राक्तन कर्मही फले हैं । कदाचित् तुम ऐसा मानोगे तो खेती करना आदि उपायोंमें मनुष्यको प्रयत्न करना व्यर्थ है, तथा श्रुतिस्मृतिनिषेध विधिवाले कर्म करनाभी निरर्थक है, " न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्न बाहुभ्यां नदीन्तरे-न्न संशयमभ्यापयेत् " अर्थात् वृक्षपर न चढ़े, कूपको उल्लंघन न करे, नदीको हाथोंसैं न तरे, तथा जहां प्राणका संदेह होय उस स्थानमें न जाय, इत्यादि आश्वलायनके वचनोंको और आयुर्वेदशास्त्रको व्यर्थता आवेगी, और शार्ङ्ग-धर्ममें लिखा है ।

दिव्यौषधीनांवहवःप्रभेदा वृन्दारकाणामिवविस्फुरन्ति ॥

ज्ञात्वेतिसंदेहमपास्यधीरैःसम्भावनीयाविविधप्रभावाः ॥

अर्थ-दिव्यौषधोंके अनेक भेद हैं, और वे देवतोंके सदृश प्रकाशवान् हैं, अर्थात् देवतोंके समान फलके देनेवाली हैं । इस प्रकार जानके धीर पुरुष संदेहको दूरकर अनेक प्रभाववाली औषधोंको जाने इस जगह देवताओंके सदृश जो प्रभाव लिखा है उसको असत्यता आवेगी, अतएव कर्मकी सिद्धि केवल दैवसैं नहीं है किन्तु पुरुषार्थसैंभी होय है सो याज्ञवल्क्य ऋषि लिखते हैं ॥

दैवपुरुषकारेपिकर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता ।  
तत्रदैवमभिव्यक्तंपौरुषंपौर्वदैहिकम् ॥

अर्थ—कर्मकी सिद्धि, अर्थात् भले बुरे फलकी प्राप्ति होना, यह केवल दैवसेही नहीं है, किंतु पुरुषार्थसेभी होती है । क्योंकि पूर्वकृत पुरुषार्थकोही दैव कहते हैं । वो अल्प उद्योगसे महाफल देता है, ऐसाही शकुनवसंतराज ग्रंथमें लिखा है ।

पूर्वजन्मजनितंपुराविदः कर्मदैवमितिसंप्रचक्षते ।  
उद्यमेनसमुपार्जितंतदावांच्छितंफलतिनैवकेवलम् ॥

अर्थ—पूर्वजन्मके कर्मको दैव कहते हैं । वह उत्तम उद्योगद्वारा वांचित फल देता है । स्वयंही फल नहीं दे सकता, इसीसे उद्योग और दैव दोनोंकोही मुख्यता है । उसको याज्ञवल्क्य दृष्टान्त देकर कहते हैं ।

यथाह्येकेनचक्रेण रथस्यनगतिर्भवेत् ।  
तद्रूपुरुषकारेणविनादैवंनसिध्यति ॥

अर्थ—जैसे एक पैयेसै रथ नहीं चले, उसी प्रकार विना पुरुषार्थ ( उद्योग ) के दैव सिद्ध नहीं होता, केशवार्किभी लिखता है ।

प्राक्कर्मबीजंसलिलानलोर्वीसंस्कारवत्कर्मविधीयमानम् ।  
शोषायपोषायचयस्यतस्य तस्मात्सदाचारवतांनहानिः ॥

अर्थ—पूर्वजन्मान्तरोपार्जितकर्म दैव कहाता है । उसके निमित्त इस जन्ममें क्रियमाण कर्म सुखाने और पोषणार्थ होता है, जैसे बीजको जल, गरमी और पृथ्वीका संस्कार, अर्थात् जैसे उत्तम बीज जल खात आदिके देनेसे जल्दी ऊगकर बढता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका कर्म इस जन्मके अच्छे उद्योगसे बढता है, अन्यथा क्षीण होजाता है । इसी कारण आयुर्वेदशास्त्रद्वारा, प्रथम निदानादिसे परीक्षा कर, औषध सेवन और शांति दुकान और मुहूर्त्तादि देखना आदि सदाचारवाले पुरुषोंकी हानी नहीं होती \*

तथाचचरकेविमानस्थानस्यतृतीयाध्याये च ।

\* किन्तु खलु भगवन् ! नियतकाल प्रमाणमायुः सर्वं नवेति । भगवानुवाच । इहाम्नि वेश ! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते । दैव पुरुषकारेचस्थिते ह्यस्यबलाबलम् १ दैवमात्मकृतं विद्यात्कर्मयत्पूर्वदैहिकम् । स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियतेयादिहापरम् २ बलाबलविशेषोस्तिततयो रपिचकर्मणोः । दृष्टंहि त्रिविधं कर्म हीनमध्यममुत्तमम् ३ तयोरुदारयोर्युक्तिर्दीर्घस्यस्य ४

शिष्य-हे गुरो ! मेरे मनमें कर्म और उद्योग इन दोनोंमें कौन बड़ा है यह भ्रम था सो आपने दोनों मुख्य कहे यह ठीक है, मैंनेभी बहुतसे प्रारब्ध मानने-वाले देखे परंतु विना उद्योग किसीको न देखा इसीसै उद्योग अवश्य कर्तव्य है । अब आप आयुर्वेद किसको कहते हो सो कहो ।

गुरु-आयुर्वेदके लक्षण भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखे है ।

स्यच । नियतस्यायुषो हेतुविपरीतस्यचेतरा ४ मध्यमामध्यमस्येष्टाकारणंशृणुचापरम् । दैवं पुरुषकारेण दुर्बलंरूपहन्यते ५ दैवमचेतरत्कर्मविशिष्टेनोपहन्यते । दृष्ट्यायदेकेमन्यन्ते नियतमानमायुषः ६ कर्मकिंचित्कालेविपाकेनियतमहत् । किंचिन्न कालनियतप्रत्ययैः प्रतिबोध्यते ७ तस्मादुभयदृष्टत्वादेकान्तग्रहणमसाधु । निदर्शनमपिचात्रोदाहरिष्यामः । यदि हिनियतकालप्रमाणमायुः सर्वस्यादायुष्कामानां नमन्त्रौषधिमणिमङ्गलवल्गुपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्राणिपातगमनाद्याः क्रियाइष्टयश्चप्रयोज्येरन् । नोद्भ्रान्तचण्डचपलगोगजोष्ट्रखरतुरगमहिषादयः पवनादयः दुष्टाः परिहार्याः स्युः । नप्रपातागिरिविषमदुर्गाम्बुवेगाः तथानप्रमत्तोन्मत्तोद्भ्रान्तचण्डचपलमोहलोभाकुलमतयोनारयोःनप्रवृद्धोऽग्निर्नच विविधविषयाश्रयाः सरीसृपोरगादयः । नसाहसंनदेशकालचर्यान्नरेन्द्रप्रकोपइत्येवमादयो भावनाभावकराः स्युरायुषः सर्वस्यनियतकालप्रमाणत्वात् नचानभ्यस्ताकालमरणभयनिवारकाणामकालमरणभयमागच्छेत्प्राणिनाम् । व्यर्थाश्चारम्भकथाप्रयोगबुद्धयः स्युर्महर्षीणांरसायनाधिकारे । नापिन्द्रो नियतायुषश्शत्रुंवेज्रेणाभिहन्यात् । नाश्विनावार्त्तभेषजेनोपपादयेतानर्षयोर्यथेष्टं आयुस्तपसाप्राप्त्युर्नचविदितवेदितव्यापमहर्षयः ससुरेशाः सम्यक्पश्येयुरुपदिशेयुराचरेयुर्वापिचसर्वचक्षुषामेतत्पर्यदैन्द्रं चक्षुरिदं चास्माकंप्रत्यक्षंयथापुरुषसहस्राणामुत्थायोत्थायाऽऽहवंकुर्वतामकुर्वतांचतुल्यायुष्टुंतथाजातमात्राणामप्रतिकाराच्चाविषप्राशिनांचाप्यतुल्यायुष्टुंनचतुल्योयोमउपदानघटकानां चित्रघटकानांचोत्सीदताम् । तस्माद्धितोपचारमूलं जीवितंअतोविपर्ययान्मृत्युरपि चदेशकालात्मगुणविपरीतानांकर्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रियापयोगः । सम्यक्सर्वातियोगसन्धारणमसंधारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतांसाहसानांचवर्जनमारोग्यानुवृत्तौउपलभामहेहेतुरुपादिशामः । सम्यक्पश्यामश्चेति ।

अतःपरमग्निवेश उवाच । एवंसतिअनियतकालप्रमाणायुषांभगवन् ! कथंकालमृत्युरकालमृत्युर्भवतीति । तमुवाचभगवानात्रेयः । श्रूयतामग्निवेश ! यथायानसमायुक्तोऽक्षः प्रकृत्यैवाक्षगुणैरुपेतः सर्वगुणोपपन्नोवाह्यमानायेथाकालंस्वप्रमाणक्षयादेवावसानंगच्छेत्तथायुः शरीरोपगतंप्रकृत्यायथावदुपचर्यमानंस्वप्रमाणक्षयादेवअवसानंगच्छति । समृत्युकाले । यथाचसएवाऽक्षोऽतिभारिधीष्ठतत्वाद्धिषमपथादपथादक्षचक्रभङ्गाद्वाहावाहकदोषादिनिर्मोक्षात्पर्यसनादनुपाङ्गान्तराव्यसनमापद्यते । तथायुरप्ययथाबलमारम्भाद्यथाश्रयभ्यवहरणद्विषमभ्यवहरणाद्विषमशरीरन्यासादातिमैथुनादसत्संश्रयादुर्दानिवेगाविनिग्रहात् । विधार्थवेगाविधारणाद्भवतिषाग्न्युपतापादाभिघातादाहारविवर्जनाच्चान्तराव्यसनमापद्यते । तथाज्वरादीनप्यातङ्कान्मिथ्योपचरितानकालमृत्यूनृपश्याम इति ।

आयुर्हिताहितंव्याधिनिदानश्मनंतथा ।  
विद्यतेयत्रविद्वद्भिः सआयुर्वेदउच्यते ॥

अर्थ—आयुका हित और अहित तथा व्याधि ( रोग ) का निदान, और श्मन ( चिकित्सा ) जिसमें होय उसको आयुर्वेद कहते हैं । तथा च चरके ।

हिताऽहितंसुखंदुःखमायुस्तस्यहिताहितम् ।  
मानञ्चतच्चयत्रोक्तमायुर्वेदःसउच्यते ॥

अर्थ—चरक कुछ विशेष कहता है कि- हित, अहित, सुख और दुःख, चार प्रकारकी आयु हैं, । इन चारों प्रकारकी आयुनका हित और अहित तथा आयुका प्रमाण, और अप्रमाण, ये संपूर्ण जिसमें होय, उसको आयुर्वेद कहते हैं । १ तहां शरीर मानसिक रोगोंसैं रहित, यौवनवान्, सामर्थ्यके अनुसार बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ज्ञान, विज्ञान, इन्द्रियार्थ बल समुदाय, श्रेष्ठ भोग और यथेष्ट विचारवान् पुरुषकी सुख आयु कहाती है । २ इसैं विपरीत असुख आयु जाननी । ३ सर्व प्राणीयोंका हितैषी, सदुपदेशकर्ता, सत्यवादी, विचारके कार्य कर्ता, अप्रमत्त, त्रिवर्गसेवी, पूजनीयोंका पूजन कर्ता, ज्ञान विज्ञान साधक, वृद्धसेवी, तपस्वी, इस लोकका और परलोकका ज्ञाता, स्मृति और मतिमान् पुरुषकी आयुको हितआयु कहते हैं । इसे विपरीतको अहित आयु जाननी ।

शिष्य—अब आयुर्वेदकी निरुक्ति कहो ।

गुरु—आयुर्वेदकी निरुक्तिभी भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है ।

अनेनपुरुषोयस्मादायुर्विन्दतिवेत्तिच ।  
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेदइतिस्मृतः ॥

अर्थ—इस शास्त्रद्वारा पुरुष अपनी आयुको प्राप्त हो और दूसरेकी आयुको जाने, इसी कारण मुनीश्वर इस शास्त्रको आयुर्वेद ऐसैं कहते हैं ।

शिष्य—आयु किस को कहते हैं ।

गुरु—शरीरजीवयोर्योगोजीवनं । तेनावच्छिन्नःकालआयुः ॥

अर्थ—देह और जीवके संयोग को जीवन कहते हैं, उस जीवनके अनवच्छिन्न कालको अर्थात् नियमित समयको आयु कहते हैं ।

सुश्रुतेच ।

आयुरस्मिन्विद्यतेऽनेनवाआयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः ॥

अर्थ—अब सुश्रुतके मतसे आयुर्वेदकी निरुक्ति कहते हैं, शरीर इन्द्रिय सत्वात्मक संयोगको आयु कहते हैं, सो आयु इस शास्त्रमें है, इसीसै इस्को आयुर्वेद कहते हैं । अथवा । आयु जिस करके जानी जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं । अथवा । जिस्से आयुका विचार करा जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं । अथवा । आयु जिस करके प्राप्त हो उसको आयुर्वेद कहते हैं ।

शिष्य—अपनी और दूसरेकी आयु कौन कारणोंसैं प्राप्त होती है और जानी जाती है सो हेतु कहो ।

गुरु—आयुर्वेदद्वाराऽऽयुष्याप्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि ज्ञात्वातेषांसेवनत्यागाभ्यामारोग्येणायुर्विन्दति । तेनैवहेतुनापरस्याप्यायुर्वेत्ति च ॥

अर्थ—आयुर्वेदद्वारा, आयुष्यके बढ़ानेवाले और आयुष्यके नाश करनेवाले, द्रव्य, गुण और कर्म, जानकर जो आयुष्यके वृद्धि कर्ता होय, उनका सेवन और जो आयुष्यके नाशक हैं उनका त्याग करनेसै आयुकी वृद्धि होती है, तब मनुष्य आयुष्यको प्राप्त होता है इन्ही पूर्वाक्त कारणोंसैं दूसरे मनुष्यकी आयु जान सकता है ।

आयुर्वेदके सामान्यलक्षण ॥

इहखल्वायुर्वेदोनामयदुपाङ्गमथर्ववेदस्याऽनुत्पाद्यैवप्रजाः  
श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्चकृतवान्स्वयम्भूः ॥

अर्थ—यह आयुर्वेद जो अथर्ववेदका उपाङ्ग है, उसको सृष्टि रचनेके प्रथमही, ब्रह्मदेवने एक लक्ष श्लोक और एक हजार अध्याय जिस्में ऐसा आयुर्वेद संहिता नामसै निर्माण करा, अर्थात् प्रथम आयुर्वेद प्रगट कर पीछे सृष्टि रचना करी, इस जगह ब्रह्माको आयुर्वेदकर्ता न समझना, किंतु, आयुर्वेदसंग्रहकर्ता जानना, क्योंकि आयुर्वेद अथर्ववेदका उपाङ्ग होनेसैं नित्य और सनातन है ।

ततोऽल्पायुष्वमल्पमेधस्त्वञ्चावलोक्यनराणाम्भूयो-  
ऽष्टधाप्रणीतवान् ॥

अर्थ—तदनन्तर ( संसारमें अधर्म प्रवृत्त होनेसैं ) मनुष्योंकी अल्प आयु और अल्प बुद्धि देख उसी आयुर्वेदके पुनः आठ विभाग करे, क्योंकि जब थोडा

जीवन और उसमेंभी मंदबुद्धिवाले पुरुष होने लगे, तो पूर्वोक्त १००००० लक्ष श्लोककी संहिता कंठाय होना दुर्घट जानके, आठ विभाग ( टुकड़े ) करे ।

शिष्य-आठ विभाग कौनसे हैं सो कहो ।

गुरु-हे वत्स ! आयुर्वेदके आठ विभाग ये हैं ।

**शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य-  
मगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति ॥**

अर्थ-अब पूर्वोक्त आठ विभागोंको कहते हैं जैसे कि- १ शल्य, २ शालाक्य, ३ कायचिकित्सा, ४ भूतविद्या, ५ कौमारभृत्य, ६ अगदतन्त्र, ७ रसायनतन्त्र, और ८ वाजीकरणतन्त्र ।

१ शल्य हरण, अर्थात् कांटा, खोवरा, तीरकी भाल आदि, निकालना प्रधान है जिसमें उस तन्त्रको शल्यतन्त्र कहते हैं । २ जिसमें शलाका, ( सलाई ) का कर्म, अर्थात् नेत्ररोगकी चिकित्सा प्रधान है, उसको शालाक्यतन्त्र कहते हैं । ३ जिसमें काय ( अग्नि ) की चिकित्सा है उसको कायचिकित्सा कहते हैं । अथवा । जिसमें काय ( देह ) की चिकित्सा कहते हैं, उसको कायचिकित्सातन्त्र कहते हैं । ४ जिसमें भूत ( देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, नाग और पिशाच) इन आठोंको जिससे जाने उस विद्याको भूतविद्या कहते हैं । अथवा । भूत वेशादि शान्ति कर्ता विद्याको भूतविद्या कहते हैं । ५ बालकोंका भरण, पोषण आदि जिसमें, उस तंत्रको बालतंत्र कहते हैं । ६ जिसमें विषका प्रतिकार है, उस तंत्रको अगद-तंत्र कहते हैं । ७ जिसमें रस ( रस रुधिर आदि ) पुष्ट करनेकी विधि हो, उसको रसायनतंत्र कहते हैं । अथवा । रस कहिये रस, वीर्य, विपाकादि, आयुप्रभृ-तिकारणोंके विशिष्ट लाभोपायको रसायन कहते हैं, उसके अर्थ जो तंत्र, उसको रसायनतंत्र कहते हैं । ८ जिस्से मनुष्य स्त्रीके विषयमें घोंडेके सदृश सामर्थ्यको प्राप्त होय, उसको वाजीकरणतंत्र कहते हैं । कोई आचार्य ऐसा अर्थ करते हैं कि, वाजी शुकके वेगका नाम है, वह शुकका वेग जिन पुरुषोंमें है, उनको वाजिन्, ऐसा कहते हैं । अब जो अवाजी अर्थात् वीर्यवेगरहित पुरुषोंको वीर्यवेगयुक्त जिस्से करा जाय उसको वाजीकरण कहते हैं, कोई आचार्य शुक-कोही वाजी कहते हैं, अर्थात् वीर्यरहितोंको वीर्ययुक्त जिस्से करा जाय उसको वाजीकरण कहते हैं, । उसके अर्थतंत्रको वाजीकरणतंत्र कहते हैं ।

अब आयुर्वेदके अंगोंके लक्षण कहते हैं ।

## शल्यतंत्रम् ॥

तत्र शल्यं नाम । विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलोह  
लोष्टास्थिवालनखपूयास्रावान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं  
यंत्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चयार्थञ्च ॥

अर्थ—पूर्वोक्त आठ भेद कहे उनमेंसे जो अनेक प्रकारके तृण, ( तिनका घास, कठोर तृण, खोबरा, कांटा, गोखरू आदि ) काष्ठ, ( लकड़ीकी फांस आदि ) पाषाण, ( पत्थरकी कत्तल आदि ) घूल, लोह, ( सुई आदि ) लोष्ट, ( कंकर ठीकरी आदि ) हाड, बाल, नख, ( नाखून ) आदिके लगनेसे अथवा, अंतर्गत शल्य, ( तीर वगेरह आदि ) सें जो घाव होजाता है और उस घावमें उक्त वस्तुओंका कुछ भाग रहजानेसे घाव दुष्ट होकर उसमेंसे राध, रुधिर आदि निकले, तथा स्त्रियोंके मूठ गर्भ निकालनेके वास्ते, जो यंत्र ( स्वस्तिकादि ) शस्त्र, ( मंडलाग्र करपत्रादि ) द्वारा पूर्वोक्त शल्योंका निकालना, तथा क्षार, अग्निदाह ( दागना ) और व्रणके अच्छे प्रकारसे जाननेके अर्थ जो शास्त्र है उसको शल्यतंत्र कहते हैं ।

## शालाक्यम् ।

शालाक्यं नाम । ऊर्ध्वजत्रुगतानां रोगाणां श्रवणनयनवदन  
घ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ—जिसमें जत्रु ( कंठ अथवा हासियेके ) ऊपर अर्थात् कान, नेत्र, मुख और नाक आदि शब्दसे शिर, कपालमें होनेवाले रोगोंके अर्थ जो ग्रंथ उसको शालाक्यतंत्र कहते हैं ।

## कायचिकित्सा ।

कायचिकित्सा नाम । सर्वाङ्गसंसृतानां व्याधीनां ज्वरातीसा  
रक्तपित्तशोषोन्मादाऽपस्मारकुष्ठमेहादीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ—सर्वांगमें होनेवाले रोग, जे ज्वर, अतीसार, रक्तपित्त, काश्य, उन्माद, अपस्मार, ( मृगी ) कोढ़ और प्रमेहादिकोंके शमनार्थ चिकित्साको, कायचिकित्सा कहते हैं ।

## भूतविद्या ।

भूतविद्या नाम । देवासुरगंधर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनाग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ॥

अर्थ—देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, पिशाच और नाग आदिग्रहों करके व्याप्त चित्तवाले पुरुषोंके ग्रह शान्ति करनेके निमित्त जो शान्तिबली देना आदि कर्मको भूतविद्या कहते हैं ।

## कौमारभृत्यम् ।

कौमारभृत्यं नाम । कौमारभृत्यधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ—बालकका पालना, माताके दूधके शोधनार्थ, तथा दुष्ट दुग्धसे होनेवाली शरीरकी व्याधी और दुष्टग्रहोंसे प्रगट आगन्तु व्याधियोंके शमनार्थ, तो जो कर्म है, उसको कौमारभृत्यतंत्र कहते हैं ।

## अगदतंत्रम् ।

अगदतंत्रं नाम । सर्पकीटलूतावृश्चिकमूषिकादिदुष्टविषव्यञ्जनार्थं, विविधविषसंयोगविषोपहतोपशमनार्थम् ॥

अर्थ—सर्प, कीट, ( खाणखजूरा अथवा विच्छू आदि ) लूता ( मकड़ी आदि ) विच्छू, मूसा आदिके काटनेसे जो मनुष्योंके देहमें विष फैल जावे उसके ज्ञानार्थ और अनेक प्रकारके भेद स्थावर जंगम आदि विष, तथा ( घृत शहत आदि ) संयोग विषसे ग्रस्त मनुष्योंके कल्याणार्थ जिसमें चिकित्सा करी है, उसको अगदतंत्र कहते हैं ।

## रसायनतंत्रम् ।

रसायनतंत्रं नाम । वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगोपहरणसमर्थञ्च ॥

अर्थ—जिससे मनुष्य अपनी वयका स्थापन अर्थात् १०० वर्षकी आयु हो, तथा आयुकी वृद्धि, अर्थात् सौवर्षसे अधिक दोसौ तीसो वर्ष की आयु ( ऊ-

मर ) करनेकी और बुद्धि तथा बलकर्त्ता और रोगनाशक उपायको रसायन-तंत्र कहते हैं ।

### वाजीकरणतंत्रम् ।

वाजीकरणतंत्रं नाम । अल्पदुष्टविशुष्कक्षीणरेतसामप्या यनप्रसादोपचयजनननिमित्तंप्रहर्षजननार्थञ्च । एवमयमायुर्वेदोऽष्टांगउपदिश्यते ॥

अर्थ—प्रकृतिसेही अल्पशुक्रवाले मनुष्योंके शुक्र बढ़ानेके निमित्त दुष्ट शुक्र, अर्थात् दूषित वीर्यके शोधनार्थ और शुष्कवीर्यवाले पुरुषोंके वीर्य पुष्ट करनेके निमित्त और क्षीणवीर्यपुरुषोंके वीर्योत्पादनार्थ और स्त्रियोंमें हर्षोत्पादनार्थ जो उपाय है, उसको वाजीकरणतंत्र कहते हैं । अथवा जिनकी २५ वर्षकी अवस्था नहीं है वो अल्पवीर्य कहाते हैं । और वृद्ध मनुष्योंको क्षीणरेतस कहते हैं । यह सुश्रुतका मत कहा इसमें शल्यतंत्र मुख्य होनेसे प्रथम कहा है । परन्तु वाग्भटने दूसरा क्रम कहा है उसकोभी कहते हैं ।

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ।

अष्टावङ्गानितस्याहुश्चिकित्सायेषुसंश्रिताः ॥

अर्थ—कायचिकित्सा, बालचिकित्सा, ग्रहचिकित्सा ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, ( शालाक्य ) शल्यचिकित्सा, दंष्ट्राचिकित्सा, ( अगद तंत्र ) जराचिकित्सा, ( रसायनतंत्र ) और वृष, अर्थात् वाजीकरणचिकित्सा, इसप्रकार कायादि आठ चिकित्सा आयुर्वेदके आठ अङ्ग हैं । इन आठों अंगोंमें चिकित्सा विद्यमान है, चिकित्साके लक्षण चरकमुनिने कहे हैं। यथा (चतुर्णाभिषगादीनांशस्तानांधातुवैकृते। प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ) अर्थात् उत्तम भिषगादि चतुष्टय, ( रोगी वैद्य-सेवक और औषध ) इनकी, दूषित धातु सुधारनेके अर्थ जो प्रवृत्त होना उसको चिकित्सा कहते हैं, यह वाग्भटका मत कहा इसमें कायचिकित्सा मुख्य है ।

आयुर्वेदके गौरवोत्पादनार्थ आगमशुद्धि कहते हैं ।

ब्रह्माप्रोवाच । ततःप्रजापतिरधिजगे । तस्मादश्विनौ । अश्वि

भ्यामिन्द्रः इन्द्रादहंमयात्विहप्रदेयमर्थिभ्यःप्रजाहितहेतोः ॥

अर्थ—प्रथम ब्रह्मदेवने कहा, उनसे दक्षप्रजापतिने पढ़ा, तिनसे अश्विनीकुमार और अश्विनीकुमारसे इन्द्र, इन्द्रसे धन्वन्तरि कहे हमने पढ़ा, अब मैं प्रजाके

कल्याणार्थ इस विद्याके पढ़नेवाले मनुष्योंको पृथ्वीमें देउंगा, इस ग्रंथशुद्धि कहने का यह प्रयोजन है कि यह आयुर्वेद सनातन है, यह सुश्रुतमें लिखा है ।

अब इस आयुर्वेदकी शुद्धीको विस्तारपूर्वक भावप्रकाशसे कहते हैं ।

### ब्रह्मदेवका प्रादुर्भाव ।

विधातार्थर्वसर्वस्वमायुर्वेदंप्रकाशयन् । स्वनाम्नासंहितांचक्रे  
लक्षश्लोकमयीमृजुम् ॥ ततःप्रजापतिदक्षं दक्षंसकलकर्मसु ।  
विधिधीर्नारिधिसाङ्गमायुर्वेदमुपादिशत् ॥

अर्थ—अथर्ववेदका सर्वस्व जिसमें ऐसा आयुर्वेदका प्रकाश करते हुए श्री-ब्रह्माजी अपने नामसे एक लाख श्लोककी सरल संहिता करते हुये ब्रह्मा इस सर्व कर्ममें कुशल और बुद्धिके समुद्ररूप ऐसे दक्ष प्रजापतिको अङ्गसहित आयुर्वेदका उपदेश करते भए ॥

### दक्षप्रजापतिका प्रादुर्भाव ।

अथ दक्षः क्रियादक्षः स्ववैद्यौवेदमायुषः ।  
वेदयामासविद्वांसौसूर्याशौसुरसत्तमौ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् क्रियामें कुशल ऐसे दक्ष प्रजापतिसो स्वर्गके वैद्य और सूर्य के अंशरूप, विद्वान्, तथा देवतामें उत्तम, ऐसे अश्विनीकुमारको आयुर्वेदका उपदेश करते भय ॥

### अश्विनीकुमारका प्रादुर्भाव ।

दक्षादधीत्यदस्रौ वितनुतः संहितांस्वीयाम् ।  
सकलचिकित्सकलोकप्रतिपत्तिविवृद्धयेधन्याम् ॥

अर्थ—दक्षसै पढ़कर वे अश्विनीकुमार, संपूर्ण वैद्यलोकको ज्ञान बढ़ानेको, अपनी श्रेष्ठ संहिताका विस्तार करते भए ॥

स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नंभैरवेणरुषाथतत् ।  
अश्विभ्यांसंहितंतस्मात्तौयातौयज्ञभागिनौ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् भैरव ( शंकर ) ने क्रोधवश होकर ब्रह्माका मस्तक छेदन करा, उसको अश्विनीकुमारोंने संधित करा । अर्थात् जोड़ दिया इसी कारण वो दोनों यज्ञके भागी हुए ।

देवासुररणेदेवादैत्यैर्यैसक्षताःकृताः ।  
 अक्षतास्तेकृताःसद्योदस्त्राभ्यामद्भुतमहत् ॥  
 वज्रिणोभूद्भुजस्तम्भःसदस्त्राभ्यांचिकित्सितः ।  
 सोमन्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेवसुखीकृतः ॥

अर्थ—जब देव और असुरोंके युद्धमें देवतोंको दैत्योंने अंगभंग [ घायल ] करे उस समय अश्विनीकुमारोंने तत्क्षण अंग जोड़ घावरहित करे यह अद्भुत कर्म करा । [ च्यवन ऋषिके प्रतापसै ] इन्द्रकी भुजाका स्तम्भ भया ( लंबा संकोच ऊंचा नीचा न होना ) उसकोभी अश्विनीकुमारोंने चिकित्सा करके अच्छा करा । सोमरहित चन्द्रमाको इन दोनों अश्विनीकुमारोंने सुखी करा ।

विशीर्णादशनाः पूष्णोनेत्रेनष्टेभगस्यच । शशिनोराजयक्ष्माऽ  
 भूदश्विभ्यान्तेचिकित्सिताः ॥ भार्गवश्च्यवनःकामीवृद्धःसन्  
 विकृतिंगतः ॥ वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्याम्पुनर्युवा ॥  
 एतैश्चान्यैश्चबहुभिः कर्मभिर्भिषजांस्वरौ । बभूवतुर्भृशंपूज्या  
 विन्द्रादीनां दिवोकसाम् ॥

अर्थ—पूषादेवताके दांत गिर पड़े, भगदेवताके नेत्र जाते रहे, चंद्रमाके खईका रोग हुआ, इन सबोंको अश्विनीकुमारोंने चिकित्सा कर अच्छा करा । भृगुऋषिके वंशमें प्रगट ऐसे जो च्यवन ऋषि कामी, और वृद्ध अवस्थाके प्रवाससै विकार अर्थात् वीर्यादिकके फेर फारसे बुरी चेष्टा होगई उनको अश्विनीकुमारोंने फिर वीर्य, वर्ण, और स्वरयुक्त कर ज्वान करदीने । इन कर्मोंसै, तथा और बहुतसे कर्मोंसै, वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवताओंमें पूजनीय हुए । भाव-प्रकाशमें ब्रह्माका शिर जोड़ना लिखा है और सुश्रुतमें यज्ञका शिर जोड़ा है ॥

यथा सुश्रुते ।

श्रूयतेहियथारुद्रेणयज्ञस्यशिरश्छिन्नमिति, ततोदेवाअश्विना  
 वभिगम्योचुः । भगवन्तौ नः श्रेष्ठतमौयुवांभविष्यथः । भव  
 द्र्यांयज्ञस्य शिरःसन्धातव्यम् । तावूचतुरेवमस्त्विति । अथ  
 तयोरर्थेदेवाइन्द्रंयज्ञभागेनप्रासादयन् । ताभ्यांयज्ञस्यशिरः  
 संहितमिति ॥

अर्थ—जैसे सुनते हैं कि, रुद्रने यज्ञका शिर काटा, तब संपूर्ण देवता अश्विनी-कुमार दोनोंके समीप जाकर यह वाक्य बोले कि तुम दोनों हम लोगोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ होओ, और तुम यज्ञका शिर जोड़ देओ, तब अश्विनीकुमार बोले बहुत अच्छा, ऐसैही होगा, तदनन्तर सब देवता अश्विनीकुमारोंके लिये इन्द्रको यज्ञ-भाग करके प्रसन्न कर्ते यज्ञभाग मांगा और अश्विनीकुमारोंने यज्ञका शिर जोड़ दिया ॥

### अथ इन्द्रप्रादुर्भावः ।

संहश्यदस्रयोरिन्द्रः कर्माण्येतानियत्नवान् । आयुर्वेदं निरुद्रेगं  
तौ यया चेशचीपतिः ॥ नासत्यौ सत्यसन्धेन शक्रेण किल याचि  
तौ ॥ आयुर्वेदं यथाधीतं ददतुः शतमन्यवे ॥ नासत्याभ्यामधीत्यै  
व आयुर्वेदं शतक्रतुः । अध्यापयामास बहूनात्रेयप्रमुखान्मुनीन् ॥

अर्थ—इन्द्राणीका पति, तथा यत्नवान् ऐसा जो इन्द्र सो उन दोनों अश्विनी-कुमारके इन सब आश्चर्यकारक कर्मोंको देख, उद्रेगरहित अर्थात् उत्साहपूर्वक आयुर्वेदविद्याको अश्विनीकुमारोंसे याचना करता हुआ, जब सत्यसंध इन्द्रनें दोनोंसे इस प्रकार याचना करी, तब अश्विनीकुमारोंने जैसे पढ़ा उसी प्रकार आयुर्वेद इन्द्रको देते भए । अश्विनीकुमारोंसे आयुर्वेदको इन्द्र पढ़कर, आत्रेय हैं मुख्य जिनमें ऐसे अनेक ऋषियोंको पढ़ाता हुआ ।

### आत्रेयप्रादुर्भावः ।

एकदा जगदालोक्य गदाकुलमितस्ततः । चिंतयामास भगवान्ना  
त्रेयोमुनिपुङ्गवः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं लोकानिरामयाः ।  
भवन्ति सामयाने तान्नाशकोमि निरीक्षितुम् ॥ दयालुरहमत्यर्थं  
स्वभावो दुरतिक्रमः । एतेषां दुःखतो दुःखं ममापि तद्दयेधिकम् ॥

अर्थ— एक समय चारों ओर रोगसैं व्याकुल ऐसा जगत्को देख, मुनिपुङ्गव भगवान् आत्रेयमुनि विचार करने लगे, क्या करूं, किधर जाऊं, कैसे मनुष्य रोग-रहित होंगे । में इन रोगियोंको रोगाकुल देखभी नहीं सकूँ; क्या करूं मेरा स्वभावही अतिदयालू है, यह स्वभाव दुरतिक्रम अर्थात् अमिड है । इन मनुष्योंके दुःखसैभी मेरा हृदय अधिक दुखी है ।

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम् । इति निश्चित्य भ

गवान् आत्रेयस्त्रिदशालयम् ॥ तत्रमन्दिरमिन्द्रस्यगत्वाशक्रं  
ददर्शसः ॥ सिंहासनसमासीनंस्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥ भासयन्तं  
दिशोभासाभास्करप्रतिमन्त्रिषा । आयुर्वेदमहाचार्यशिरो  
धार्यदिवोकसाम् ॥

अर्थ—अतएव मनुष्योंके रोग दूर करनेको मैं आयुर्वेद पढ़ूंगा । ऐसैं निश्चय कर आत्रेय भगवान् स्वर्गको गए, तहां स्वर्गमें इन्द्रके भवनमें प्राप्त हो इन्द्रके दर्शन करते हुए । दिव्य सिंहासनपर विराजमान, सुर और ऋषि जिसकी स्तुति कर रहे हैं, सूर्यकासा प्रकाश जिससै सर्व दिशाओंमें प्रकाश कर रहा है, सर्व देव-मान्य तथा आयुर्वेदका बड़ा आचार्य ऐसे इन्द्रको देखा ।

शक्रस्तुतं निरीक्ष्यैवत्यक्त्वा सिंहासनं ययौ ॥ तदग्रे पूजयामा  
सभृशं भूरितपः कृशम् ॥ कुशलं परिपप्रच्छ तथा गमनकारण  
म् ॥ समुनिर्वक्तुमारंभे निजागमनकारणम् ॥

अर्थ—इन्द्र आत्रेयऋषिको देखतेही शीघ्र सिंहासनको परित्यागकर सम्मुख आय बहुततपसैं कृश भए ऐसैं मुनिकी पूजा करता हुआ मुनिसैं कुशल पूछी, और आगमनका कारण पूछा, तब आत्रेयमुनि अपने आनेका कारण इस प्रकार कहते हुए ।

देवराज ! नजानासिदिव एव यतो भवान् । विधात्राविहितो य  
त्त्रिलोकीलोकपालकः ॥ व्याधिभिर्व्यथितालोकाः शो  
काकुलितचेतसः । भूतले सन्ति सन्तापन्तेषाहन्तुं कृपांकुरु ॥  
आयुर्वेदोपदेशं मे कुरु कारुण्यतो नृणाम् । तथेत्युक्त्वा सहस्राक्षो ।  
ध्यापयामास तं मुनिम् ॥

अर्थ—हे देव ! हे राजन् ! तुम केवल स्वर्गकही राजा नहीं हो ? किंतु ब्रह्मार्हे तुमको यत्नपूर्वक त्रिलोकीका राजा करा है । शोकसै व्याकुल हैं चित्त जिनके, और व्याधियोंसैं व्यथित ( पीड़ित ) मनुष्य पृथ्वीमें हैं उन्हेंके संताप हरण करनेको कृपा करो । मनुष्योंकी कष्टविचार मुझको आयुर्वेदका उपदेश करो, पश्चात् 'ठीक है' ऐसै कहिकर इन्द्रने आत्रेय ऋषिको आयुर्वेद पढ़ाया ।

मुनीन्द्र इन्द्रतः साङ्गमायुर्वेदमधीत्यसः । अभिनन्द्य तमाशी

भिराजगामपुनर्महीम् ॥ अथात्रेयोमुनिश्रेष्ठोभगवान्करुणा  
करः ॥स्वनाम्नासंहिताञ्चक्रेनरचक्रानुकम्पया॥ततोऽग्निवेशं  
भेडंचजातूकर्णपराशरम्।क्षीरपाणिञ्चहारीतमायुर्वेदमपाठयत् ॥

अर्थ—मुनीन्द्र जो आत्रेय से इन्द्रसै अङ्गसहित आयुर्वेद पढ़के तथा इन्द्रको आशीर्वादींसे प्रसन्न कर, फिर पृथ्वीमें पधारे । तदनन्तर दयासागर मुनिश्रेष्ठ भगवान् आत्रेय ऋषि मनुष्योंके समूहऊपर दया विचार अपने नामसै संहिता बनाते हुए । इनकी बनाई तीन संहिता हैं । ( बृहत् आत्रेय संहिता, मध्य आत्रेय संहिता, और लघु आत्रेय संहिता, यह बात इनहींकी संहितामें लिखी है ) तत्पश्चात् अग्निवेशको, भेडको, जातूकर्णको, पराशरको, क्षीरपाणीको, और हारीतको आयुर्वेद पढ़ाया ।

तन्त्रस्यकर्त्ताप्रथममाग्निवेशोऽभवत्पुरा । ततोभेडादयश्च  
क्रुः स्वंस्वं तन्त्रं कृतानि च ॥ श्रावयामासुरात्रेयं मुनिवृन्देन व  
न्दितम् । श्रुत्वा च तानि तन्त्राणि हृष्टोऽभूदत्रिनन्दनः ॥ यथा  
वत्सूत्रितन्त्रस्मात्प्रहृष्टामुनयो भवन् । दिवि देवर्षयो देवाः श्रु  
त्वासाध्वितिते ब्रुवन् ॥

अर्थ—पहले इस शास्त्रके कर्त्ता प्रथम अग्निवेशनामक मुनि भए, तिनके पीछे भेडादिक ऋषियोंने अपने अपने नामसै संहिता बनाई । अर्थात् अग्निवेशसंहिता, भेडसंहिता, जातूकर्णसंहिता, पराशरसंहिता, क्षीरपाणिसंहिता और हारीतसंहिता, ये छः ऋषियोंने छः संहिता बनाई । ये पुरानी संहिता हैं इसीसै इनको प्रधानता है, और जहां वैद्यककी छः संहिता कहीं हैं तहां इनहींका ग्रहण है, जैसे लीलावतीमें लिखा है “ षट्चभिषजोव्याचष्टत संहिताः ” इसप्रकार अग्निवेशादि ऋषि अपनी २ संहिता बनाय, मुनिसमूहसै वंदित ऐसे आत्रेयमुनिको सुनाते हुए वे अत्रिनन्दन इस प्रकार सबोंके ग्रंथोंको सुनकर अत्यंत हर्षित भए । यथार्थ शास्त्र रचनेसे सब मुनि आनंदित होते हुए और स्वर्गमें देवता तथा देवर्षि सुनकर ‘ बहुत सुन्दर ’ ऐसे बोले ।

भरद्वाजमुनिप्रादुर्भावः ।

एकदा हिमवत्पार्ष्वे देवादागत्य सङ्गताः । मुनयो बहवस्तेषां  
नामानिकथयाम्यहम् ॥ भारद्वाजो मुनिवरः प्रथमसमुपाग

तः । ततोद्गिरास्ततोगर्गोमरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ पुलस्त्योऽग  
स्तिरसितोवसिष्ठःसपराशरः। हारीतोगौतमःसांख्योमैत्रेयश्च्य  
वनोऽपिच ॥ जमदग्निश्चगार्ग्यश्चकाश्यपः कश्यपोपिच। नार  
दोवामदेवश्चमार्कण्डेयःकपिञ्जलः ॥

अर्थ—एक समय हिमालयपर्वतपर दैवइच्छासें बहुतसे मुनि आकर इकट्ठे हुए, उन्हींके नाम कहते हैं । मुनिनमें श्रेष्ठ भरद्वाज, प्रथम आए । तिनहोंके पीछे अ-  
द्गिरा और तत्पश्चात् गर्ग, मरीचिं, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अगस्ति, असित, वसिष्ठ,  
पराशर, हारीत, गौतम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, गार्ग्य, काश्यप, कश्यप,  
नारद, वामदेव, मार्कण्डेय और कपिञ्जल आए ।

शाण्डिल्यःसहकौण्डिन्यःशाकुनेयश्चशौनकः । आश्वलाय  
नसांकृत्यौविश्वामित्रःपरीक्षकः ॥ देवलोगालवोधौम्यःकाम्य  
कात्यायनावुभौ । काङ्कानयनोवैजवापःकुशिकोवादराय  
णिः ॥ हिरण्याक्षश्चलौगाक्षिः शरलोमाचगोभिलः । वैखान  
सावालखिल्यास्तथैवान्येमहर्षयः ॥

अर्थ—कौण्डिन्यसहित शाण्डिल्य, शाकुनेय, शौनक, आश्वलायन, सांकृत्य, वि-  
श्वामित्र, परीक्षक, देवल, गालव, धौम्य, काम्य और कात्यायन, ए दोनों, कां-  
कायन, वैजवाप, ( वैजपायभी पाठान्तर है ) कुशिक, बादरायण, हिरण्याक्ष,  
लौगाक्षी, शरलोमा, गोभिल, वैखानस और वालखिल्य, इनसै आदि ले और  
बहुतसे महर्षि आए ।

ब्रह्मज्ञानस्यनिधयोयमस्यनियमस्यच। तपसस्तेजसादीप्ताहूय  
मानाइवाग्रयः ॥ सुखोपविष्टास्तेतत्रसर्वेचक्रुः कथामिमाम्।  
धर्मार्थकाममोक्षाणामूलमुक्तंकलेवरम्॥ तपःस्वाध्यायधर्मा  
णांब्रह्मचर्यव्रतायुषाम् । हर्तारः प्रसृतारोगायत्रतत्रचसर्वतः॥

अर्थ—वे ब्रह्मर्षि ब्रह्मज्ञान, यम, तथा नियमकी निधि और होमी हुई अग्नि-  
का जैसा प्रकाश ऐसे तपके तेजसें प्रकाशवान्, सुखपूर्वक बैठे हुए सब ऋषि, इस  
प्रकार वार्ता करने लगे कि—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल देह है । इस प्रकार  
पूर्व कहा है, तप, स्वाध्याय ( पढना पढ़ाना ) धर्म, ब्रह्मचर्य, व्रत, और आयुष्य-  
के हरणकर्ता रोग सर्वत्र फैल रहे हैं ।

रोगाः काश्यकरावलक्ष्यकरादेहस्यचेष्टाहुरादृष्ट्यादीन्द्रि-  
यशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः ॥ धर्मार्थाखिलकाममु-  
क्तिषुमहाविघ्नस्वरूपा बलात् । प्राणानाशुहरन्तिसन्तियदिते  
क्षेमंकुतः प्राणिनाम् ॥

अर्थ—रोग शरीरको कृश करते हैं । बलका क्षय करै हैं । देहकी चेष्टाको  
हरण करै हैं । नेत्र आदि इन्द्रियोंकी शक्तीको क्षय करै हैं । सब अंगमें पीड़ा  
करते हैं । धर्म, अर्थ, अखिल काम, और मुक्तिमें महाविघ्नस्वरूप हैं । बलात्कार-  
से शीघ्र प्राणोंको हरण करलेते हैं । ऐसे रोग यावत् पर्यन्त विद्यमान हैं, तबतक  
दीन हीन मीनके सदृश विचारे प्राणियोंका कल्याण कहां हैं ।

तत्तेपांप्रशमायकश्चनविधिश्चिन्त्योभवद्भिर्बुधैर्योग्यैरित्यभि-  
धायसंसदिभरद्वाजंमुनितेऽब्रुवन् ॥ त्वंयोग्योभगवन् ! सहस्र  
नयनंयाचस्वलब्धंक्रमात् । आयुर्वेदमधीत्ययंगदभयान्मु-  
क्ताभवामोवयम् ॥

अर्थ—इसी कारण रोगोंके उपाय करनेमें योग्य और विद्वान् ऐसे तुम कर्के इन  
रोगोंके निवृत्ति करनेको कोई उपाय विचारना चाहिये । इस प्रकार आपसमें  
एकमती हो और विचार करके, सभामें बैठे हुए भरद्वाज मुनिके प्रति सब  
मुनीश्वर बोले । कि हे भगवन् ! तुम इस कार्य करने योग्य हो, इसीसै इन्द्रके  
पास जाकर याचना करो, और क्रमसै प्राप्त आयुर्वेदको अध्ययन करके, हम  
रोगके भयसै मुक्ति होवैं ।

इत्थंसमुनिभिर्योग्यैःप्रार्थितोविनयान्वितैः।भरद्वाजोमुनिश्रेष्ठो  
जगामत्रिदशालयं ॥ तत्रेन्द्रभवनंगत्वासुरर्षिगणमध्यगम्।दृष्ट-  
वान्बृहन्तारंदीप्यमानमिवाऽनलम् ॥ दृष्ट्वैसमुनिंप्राहभग-  
वान्मववामुदा । धर्मज्ञस्वागतन्तेऽथमुनिन्तंसमपूजयत् ॥

अर्थ—इस प्रकार जब सब योग्य मुनीश्वरोंने विनयपूर्वक प्रार्थना करी तब  
उनकी आज्ञा ले मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज इन्द्रलोकको जाते भये, तहां अमरावती पुरी,  
में इन्द्रके भवनमें प्राप्त हो, देवता और ऋषिगणमें विराजमान, अग्निके समान  
प्रकाशित, वृत्रासुरका नाशक इन्द्रको देखा, भगवान् इन्द्रभी अपने समीप आए

ऐसे भरद्वाज मुनिको देख हर्षपूर्वक कहने लगा, कि हे धर्मज्ञ ! आप भले पधारे, इस प्रकार कहि पीछे मुनिकी अर्घपाद्यादिसै पूजा करी ।

सोऽभिगम्यजयाशोर्भिरभिनन्द्यसुरेश्वरम् । ऋषीणांवचनं  
सम्यक्श्रावयन्मुनिसत्तमः ॥ व्याधयाहिसमुत्पन्नाः सर्वप्राणि  
भयंकराः । तेषांप्रशमनोपायं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥

अर्थ—मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे जो भरद्वाज मुनि इन्द्रके समीप जाय, जयशब्द और आशीर्वाद देकर इन्द्रकी स्तुति करी, तथा सब ऋषियोंके वचन सुनाये, कि मुनो देवेन्द्र ! सर्व प्राणियोंको भयंकर, ऐसी व्याधि जगत्में उत्पन्न हुई हैं उनके नाश होनेका उपाय होय, वह बराबर हमसै आप कहिये ।

तमुवाचमुनिसाङ्गमायुर्वेदंशतऋतुः ॥ पदैरल्पैर्मतिबुद्धाविपु  
लांपरमर्षये ॥ जीवेद्वर्षसहस्राणिदेहीनीरुड्निश्म्ययम् । हेतुलिङ्गौ  
षधज्ञानंस्वस्थातुरपरायणम् ॥ सोऽन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महा  
मुनिः । यथावदचिरात्सर्वबुधे तन्मना मुनिः ॥

अर्थ—विपुलबुद्धि जान, अल्प पदों करके अंगसहित आयुर्वेद, परमर्षि भरद्वाज मुनिके प्रति कहा । कि जिस आयुर्वेदको सुनकर रोगरहित ही मनुष्य हजार वर्ष जीवे है, तथा हेतु, लिङ्ग और औषधका ज्ञान जिस्से होय और स्वस्थ ( सु-स्त्री ) की रक्षा, आतुर ( दुस्त्री ) की निवृत्तिरूप प्रयोजन साधनरूप शास्त्रको इन्द्रने कहा ।

वह मुनि भरद्वाज अपार और त्रिस्कन्ध ( हेतुलिङ्गौषध ) वाले आयुर्वेदको थोड़े कालमें भले प्रकार पढ़े, और उसमें अच्छी रीतिसैं मन रखनेसैं इस शास्त्रका सर्व आशय जाना ।

तेनायुः सुचिरं लेभे भरद्वाजो निरामयम् । अन्यानापि मुनींश्चक्रे नी  
रुजः सुचिरायुषः ॥ तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषा ऋषयोखिलाः ॥  
गुणान्द्रव्याणिकर्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥ आरोग्यं ले  
भिरेदीर्घमायुश्च सुखसंयुतम् । आयुर्वेदोक्तविधिनाऽन्येऽपि स्यु  
र्मुनयो यथा ॥

अर्थ—इसी आयुर्वेद विद्याके द्वारा भरद्वाज मुनि रोगरहित पूर्ण आयुको प्राप्त

भये, और अन्य बहुतसै ऋषियोंको निरोगी तथा पूर्णायु करते भये, तिनके तंत्र-सै उत्पन्न भया ज्ञानरूपी चक्षु ऐसे अखिल ऋषि, गुण, द्रव्य, और कर्म देख आयुर्वेदकी विधिका आश्रय लेते हुए उसी विधिके अनुष्ठान करने सै सर्व ऋषि आरोग्य और सुखसंयुक्त दीर्घ आयुष्यको प्राप्त होते हुए । सर्व मुनीश्वर जैसे सुखी हुए उसी प्रकार आयुर्वेदविधिके सवनसै और भी मनुष्य सुखी होते हैं ।

### चरकप्रादुर्भावः ।

यदामत्स्यावतारेणहरिणावेदउद्धृतः । तदाशेषश्चतत्रैववेदं  
साङ्गमवाप्तवान् ॥ अथर्वान्तर्गतंसम्यक् आयुर्वेदञ्चलब्धवान् ।  
एकदासमहीवृत्तंद्रष्टुंचरइवागतः ॥ तत्रलोकान्गदैग्रस्तान्  
व्यथयापरिपीडितान् ॥ स्थलेषुबहुषुव्यग्रान्प्रियमाणांश्चट्ट  
ष्टवान् ॥ तान्हृष्ट्व तिदयायुक्तस्तेषांदुःखेनदुःखितः । अन  
न्तश्चिन्तयामासरोगोपशमकारणम् ॥

अर्थ-जिस समय हरि भगवान् ने मत्स्यावतार धारणकर वेदोंका उद्धार करा, उस समय श्रीशेषजीने उसी ठिकाने अंगसहित चारो वेद पढ़े । और अथर्ववेदके अंतर्गत जो आयुर्वेद है, उसकोभी प्राप्त होते भए, एक समय जैसे राजाका चर ( पर राज्यका वृत्तान्त जानने के कारण निर्मित चकर ) होय इस प्रकार, शेषजी आप पृथ्वीका वृत्तान्त देखनेको आये तहां पृथ्वीमें अनेक ठौर रोगोंसै ग्रस्त और पीड़ासै पीड़ित मुरझाए हुए और मरनेको तैयार ऐसे मनुष्योंको देखा, उनको देख अतिदयायुक्त तथा उनके दुःखसै अत्यन्त दुखी ऐसे शेष भगवान् मनुष्योंके रोगशांति होनेका कारण विचारने लगे ।

संचिन्त्यसस्वयंतत्रमुनेःपुत्रोबभूवह ॥ प्रसिद्धस्यविशुद्ध  
स्यवेदवेदाङ्गवेदिनः ॥ यतश्चरइवायातोानज्ञातःकेनचि  
द्यतः ॥ तस्माच्चरकनाम्नासौविख्यातःक्षितिमण्डले ॥ स  
भातिचरकाचार्योदेवाचार्योयथादिवि । सहस्रवदनस्यां  
शौयेनध्वंसोरुजांकृतः ॥

अर्थ-इस प्रकार शेष भगवान् अपने मनमें विचार करके, वेदवेदांग जानने-वाले और प्रसिद्ध ऐसे विशुद्ध मुनिके पुत्र हुए । किसी राजाका नौकर जैसे किसी परराज्यके वृत्तान्त जाननेको गुप्त होकर आवे उसके आनेको कोई नहीं जा-

ने, इसीसै शेष पृथ्वीऊपर चरक इस नामसै प्रसिद्ध हुए । शेष नारायणके अंश-  
रूप, तथा जिन्होंने रोगोंका नाश करा, ऐसे चरकाचार्य, जैसे देवोंके आचार्य बृ-  
हस्पति स्वर्गमें शोभित हैं । उसी प्रकार पृथ्वीमें शोभित हुए ।

आत्रेयस्यमुनेःशिष्याअग्निवेशादयोऽभवन् ॥ मुनयोवहव  
स्तेश्चकृतंतन्त्रंस्वकंस्वकम् ॥ तेषांतन्त्राणिसंस्कृत्यसमाहृत्य  
विपश्चिता ॥ चरकेणात्मनोनाम्नाग्रन्थोऽयंचरकःकृतः ॥

अर्थ—आत्रेय मुनिके अग्निवेशसै आदिके बहुत शिष्य हुए । उन्होंने इस  
आयुर्वेदसै अपने अपने न्यारे न्यारे शास्त्र रचे, उन सब ऋषियोंके ग्रंथ इकट्ठे कर  
तथा सुधारके विद्वान् ऐसे चरक मुनिने अपने नामसै यह चरक नाम ग्रन्थ रचा ।

धन्वन्तरिप्रादुर्भावः ।

एकदादेवराजस्यदृष्टिर्निपतिताभुवि । तत्रतेननरादृष्टाव्या  
धिभिर्भृशपीडिताः ॥ तान्दृष्ट्वाहृदयंतस्यदययापरिपीडि  
तम् ॥ दयार्द्रहृदयःशक्रोधन्वन्तरिमुवाचह ॥

अर्थ—एक समय देवराज इन्द्रकी दृष्टि पृथ्वीमें पड़ी तो अनेक मनुष्य रोगोंसै  
पीड़ित देखे, उन्हींको देख इन्द्रका हृदय दयासे बहुत पीड़ित हुआ, पश्चात् दयासै  
कोमल हृदयवाला इन्द्र धन्वन्तरिसे बोला ।

धन्वन्तरेसुरश्रेष्ठभगवन्किञ्चिदुच्यते । योग्योभवसिभूताना  
मुपकारपरोभव ॥ उपकारायलोकानांकेनकिन्नकृतंपुरा । त्रै  
लोक्याधिपतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादिरूपवान् ॥ तस्मात्त्वंपृथि  
र्वीयाहिकाशिमध्येनृपोभव । प्रतीकारायरोगाणामायुर्वेदंप्र  
काशय ॥

अर्थ—हे धन्वन्तरि ! हे सुरश्रेष्ठ ! हे भगवन् ! मैं आपसै कुछ कहताहूं सो आप  
सुनो, कि तुम प्राणियोंके उपकार करने योग्य हो, इसीसै उनके उपकार  
करनेमें तत्पर होओ, लोकोंके उपकारार्थ पहिले किसने क्या नहीं करा ! देखो  
त्रिलोकीके अधिपति विष्णु भगवान् मत्स्यादिरूपवाले हुए । अतएव आप  
पृथ्वीमें जाय काशीमें राजा होओ, तथा रोगोंके उपाय करनेके निमित्त आ-  
युर्वेदका प्रकाश करो ।

इत्युक्त्वासुरशार्दूलःसर्वभूतहितेप्सया । समस्तमायुषोवेदं  
धन्वन्तरिमुपादिशत् ॥ अधीत्यचायुषोवेदमिन्द्राद्धन्वन्त  
रिःपुरा । अभ्येत्यपृथिवीकाश्यांजातोबाहुजवेश्मनि ॥ ना  
म्रातुसोऽभवत्ख्यातोदिवोदासइतिक्षितौ । बालएवविरक्तो  
भूञ्चचारसुमहत्तपः ॥

अर्थ—इन्द्रसे आयुर्वेदका अध्ययन कर, धन्वन्तरि आप पृथ्वीऊपर आय काशीमें बाहुज ( क्षत्री ) के घरमें उत्पन्न हुए । पृथ्वीमें दिवोदास इस नाम-सें विख्यात हुए, वे धन्वन्तरि बालअवस्थामेंही विरक्तताको प्राप्त हुए, और घोर दुष्कर तप करा ।

यत्नेनमहताब्रह्मातंकाश्यामकरोन्मृपम् । ततोधन्वन्तरिर्लौ  
कैःकाशीराजोऽभिधीयते ॥ हितायदेहिनांस्वीयासंहितावि  
हिताऽमुना । अयंविद्यार्थिनोलोकान्संहितान्तामपाठयत् ॥

अर्थ—तदनन्तर ब्रह्माने बड़े यत्नसें उसको काशीमें राजा करा, पीछे उस ध-न्वन्तरिको मनुष्य ' काशीराज ' ऐसें कहने लगे, प्राणियोंके हितके कारण इन धन्वन्तरिने अपने नामकी संहिता बनाई, और उसको विद्यार्थियोंको पढ़ाई, इस संहिताको धन्वन्तरिसंहिता कहते हैं ।

### सुश्रुतस्य प्रादुर्भावः ।

अथज्ञानदृशाविश्वामित्रप्रभृतयोऽविदन् । अयंधन्वन्तरिः  
काश्यांकाशीराजोऽयमुच्यते ॥ विश्वामित्रोमुनिस्तेषुपुत्रंसु  
श्रुतमुक्तवान् । वत्स ! वाराणसीगच्छत्वंविश्वेश्वरवल्लभाम् ॥  
तत्रनाम्रादिवोदासःकाशीराजोस्तिबाहुजः । सहिधन्वन्तरिः  
साक्षादायुर्वेदविदांवरः ॥

अर्थ—तदनन्तर विश्वामित्रसें आदिले सब ऋषि ज्ञानदृष्टि सें जान गए कि, यह काशीराजा काशीमें धन्वन्तरिका अवतार है । यह विचार विश्वामित्र अपने पुत्र सुश्रुतसें बोले कि, हे वत्स ! विश्वनाथकी प्यारी काशीपुरीको जाओ तहां द्विवोदास काशीका राजा है, वह आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ साक्षात् धन्वन्तरि हैं ।

आयुर्वेदंततोऽधीत्यलोकोपकृतिहेतवे ।  
 सर्वप्राणिदयातीर्थमुपकारोमहामखः ॥  
 पितुर्वचनमाकर्ण्यसुश्रुतःकाशिकांगतः ।  
 तेनसार्द्धसमध्येतुंमुनिसूनुशतंययौ ॥

अर्थ—उनके पाससे सर्व प्राणियोंकी दयासे पवित्र, ऐसा आयुर्वेदका अध्ययन करो, कारण कि सब प्राणियोंऊपर दया करना यह तीर्थ है, और उपकार यह बड़ा भारी यज्ञ है, इस प्रकार पिताके वचनसुन सुश्रुत काशीको गए और उनके संग पढ़नेके निमित्त मुनीश्वरोंके सौ पुत्र गए ।

अथधन्वन्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम् ।  
 भगवन्तंसुरश्रेष्ठं मुनिभिर्बहुभिः स्तुतम् ॥  
 काशिराजं दिवोदासं तेऽपश्यन् विनयान्विताः ।  
 स्वागतं वशतिस्माह दिवोदासो यशोधनः ॥  
 कुशलं परिपप्रच्छ तथा गमनं कारणम् ।  
 ततस्ते सुश्रुतद्वारा कथयानासुरुत्तरम् ॥

अर्थ—तहां काशीमें जायकर वानप्रस्थ आश्रममें स्थित देवतान्में श्रेष्ठ अनेक मुनि जिनकी स्तुति कर रहे ऐसे सर्व सामर्थ्ययुक्त धन्वन्तरि काशीके राजा दिवोदासको विनययुक्त ऐसे सर्व सुश्रुतआदि देखते हुए । यशरूपी धनवाले दिवोदास उन ऋषियोंको आए हुए देख, बोले कि 'तुम भले पधारे' तथा कुशल पूछी और आगमनका कारण पूछा, तब वे सर्व ऋषिपुत्र सुश्रुतद्वारा उत्तर कहते हुए ।

भगवन् ! मानवान् दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीडितान् ।  
 क्रन्दतो म्रियमाणांश्च जातास्माकं हृदिव्यथा ॥  
 आमयानां शमोपायं विज्ञातुं वयमागताः ।  
 आयुर्वेदं भवानस्मानध्यापयतु यत्नतः ॥

अर्थ—कि हे भगवन् ! रोगोंसे परिपीडित, पुकारते और मरते हुए मनुष्योंको देख, हमारे हृदयमें पीड़ा उत्पन्न हुई है । इसी कारण रोगोंके नाश करनेका उपाय पूछनेको हम आपके पास आए हैं, सो आप हम सबको यत्नपूर्वक आयुर्वेदका उपदेश करो ।

अङ्गीकृत्यवचस्तेषां नृपतिस्तानुपादिशत् ।

व्याख्यातन्तेन ते यत्राज्जगृहुर्मुनयो मुदा ॥

काशिराजं जयाशोभि रभिनन्द्य मुदान्विताः ।

सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्थाजग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् ॥

अर्थ—वे काशिराज, उन सुश्रुतादि ऋषियोंके वचन अंगीकार कर, आयुर्वेद कहते हुए । उस व्याख्यानको वे ऋषि यत्रसे बड़े हर्षपूर्वक ग्रहण करते हुए । तदनन्तर काशिराजको ' तुम्हारी जय होय ' ऐसे आशीर्वाद देकर हर्षयुक्त तथा अपने अर्थको भले प्रकार सिद्धकर सुश्रुतादि ऋषि अपने २ घर गए । \* इसी प्रकार सुश्रुतमें भी लिखा है ।

प्रथमं सुश्रुतस्तेषु स्वतन्त्रं कृतवान् स्फुटं । सुश्रुतस्य सखायोऽ

पि पृथक् तन्त्राणिते निरे ॥ सुश्रुतेन कृतं तन्त्रं सुश्रुतं बहुभिर्य

तः । तस्मात्तत्सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षितिमण्डले ॥

अर्थ—तिन औपधेनवादि ऋषियों में सुश्रुतने अपना स्फुट ऐसा शास्त्र रचा । तथा सुश्रुतके मित्र [ औपधेनव, पौषकलावत, वैतरणौरभ्र, करवीर्य, गोपुररक्षित, आदि ] भी अपने अपने पृथक् पृथक् ग्रन्थ बनाते हुए, सुश्रुतने जो शास्त्र रचा उसको बहुतसे मनुष्योंने सुना इसीसे वह ग्रन्थ सुश्रुत नाम से पृथ्वीमें विख्यात हुआ । परन्तु सुश्रुत नाम से दो आचार्य हुए हैं । एक सुश्रुत दुसरे वृद्धसुश्रुत इन दोनोंमें यह निश्चय नहीं हो सके कि यह प्रसिद्ध सुश्रुत ग्रन्थ किसका बनाया है ।

\* अथ खलु भगवन्तममरवरऋषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरि-  
मौपधेनव-वतरणौरभ्र-पौष्कलावत-करवीर्यगोपुर-रक्षितसुश्रुतप्रभृतय ऊचुः ॥ भगवन् !  
शारीरमानसागन्तुस्वाभाविकैर्व्याधिभिर्विधिवदेनाभिघातोपद्रुतानसनाथानप्यनाथद्विचेष्टमा-  
नान्विक्रोशतश्च मानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीडाभवति, तेषां सुखैषिणां रोगोपशमार्थमा-  
त्मनः प्राणयात्रार्थञ्च प्रजाहितहेतोरायुर्वेदं श्रोतुमिच्छाम इहोपदिश्यमानम् । अत्रायत्तमैहिक-  
मामुष्मिकञ्च श्रेयः तद्भगवन्तमुपपन्नाः स्मः शिष्यत्वेनेति ॥ तानुवाच भगवान्स्वागतं वः  
सर्वेष्वमीमांस्या अध्याप्याश्च भवन्तो वत्सा अयमायुर्वेदोऽष्टाङ्गमुपदिश्यते । कस्मै किमुच्यतामि-  
ति । त ऊचुः अस्माकं सर्वेषामेव शल्यज्ञानमूलं कृत्वोपदिशतु भवानिति । स उवाचैवमास्त्विति ।  
त ऊचुर्भूयोपि भगवन्तमस्माकमेकमतीनां प्रतमाभिसमीक्ष्य सुश्रुतो भवन्तं पृच्छति अस्मै चोप-  
दिश्यमानं वयमप्याधारयिष्यामः सहोवाचैवमास्त्विति ।

## अथवाग्भटप्रादुर्भावः ।

ततः कालात्ययेजातेवाग्भटोभिषजांवरः । समुत्पन्नोधर  
प्यांवैधन्वन्तरिर्वाऽपरः ॥ आसीद्राजाऽधिराजस्यसत्यसं-  
धस्यधीमतः । ज्ञानिनः पाण्डवाश्रयस्यसभायांसुचिकित्स  
कः ॥ प्रबंधाबहवस्तेनप्रणीताहितकाम्यया । तेषामष्टाङ्गहृ  
दयसंहिताप्रथिताभुवि ॥ सावाग्भटाऽभिधानेनख्याताधर-  
णिमण्डले ॥

अर्थ—तदनंतर कुछ काल व्यतीत होनेपर, वैद्योंमें श्रेष्ठ, मानो दूसरा धन्वन्त-  
रि ऐसा पृथ्वीमें वाग्भट वैद्य प्रगट हुआ । यह राजाधिराज, सत्यसंध, ज्ञानी ऐसे  
युधिष्ठिर महाराज पांडवकी सभामें चिकित्सक ( वैद्य ) था इन्होंने अनेक ग्रन्थ  
लोकहितार्थ बनाए, तिनमें अष्टाङ्गहृदयसंहिता पृथ्वीमें विख्यात हुई, और वही  
वाग्भटसंहिताके नामसे पृथ्वीमें विख्यात है ।

चरकात्सुश्रुताच्चैवतन्त्रेभ्योऽन्येभ्यएवच ॥ सासंगृहीतायत्ने  
नलोकाऽनुग्रहहेतवे ॥ विचित्रंकौशलश्चास्यांचिकित्सासुप्र  
दर्शिता ॥ अनयोपकृतंसर्वजगदेतन्नसंशयः ॥

अर्थ—चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थोंसे लोकके कल्याणार्थ यत्नपूर्वक इस संहिता-  
का संग्रह करा है । इस संहितामें और चिकित्सामें इन्होंने अद्भुत चतुराई दि-  
खाई है अर्थात् चरक सुश्रुतमें बीस पच्चीस श्लोकमें जो कार्य करा है, वो इसमें  
दो चार श्लोकमेंही कर दीना है । इन्होंने यथार्थमें संपूर्ण जगत्का उपका-  
र करा है । इसी कारण इसकी आयुर्वेदकी बृहत् त्रयीमें गणना है । सो किसी-  
ने कहा भी है ।

सुश्रुतंनश्रुतंयेनवाग्भटोनैववाग्भटः

नाधीतश्चरकोयेनसवैद्योयमकिङ्करः ॥

अर्थ—अर्थात् सुश्रुत जिसने सुना नहीं, वाग्भट जिसने जिह्वागत न करा, और  
चरक जिसने पढा नहीं, वो वैद्य यमका दूत है इसी कारण बृहत्त्रयीमाठी वैद्य-  
की अत्यन्त प्रतिष्ठा है और कोई वैद्य यह कहते हैं कि अन्य १८ संहिता और यु-  
गोंके लिये हैं । परंतु वाग्भटसंहिता केवल कलियुगके लिये बनी है । यथा.

अत्रिः कृतयुगेचैवत्रेतायांचरकोमतः ।

द्रापरसुश्रुतः प्रोक्तः कलौवाग्भटसंहिता ॥

अर्थात् सतयुगमें अत्रिसंहिता, त्रेतामें चरकसंहिता, द्वापरमें सुश्रुत, और कलियुगके लिये तो वाग्भटसंहिता है ।

शिष्य—आपने कहा कि अन्य अठारह संहिता हैं वो कौनसी हैं सो कृपा-पूर्वक कहो ।

गुरु—अठारह संहितान्के नाम हारीतसंहितामें इस प्रकार लिखे हैं ।

हारीतसुश्रुतपराशरभोजभेडभृगुअग्निवेशचरकाश्च्यवनोऽप्यग  
स्तिः । वाराहवाग्भटनारायणनारसिंहाआत्रेयकात्रिशशिनःशि  
वभास्करोच ॥ सन्त्यष्टादशशिक्षाधन्वन्तेरर्वाग्भटंबहिष्कृत्य ॥

अर्थ—हारीत, सुश्रुत, पराशर, भोज, भेड, भृगु, अग्निवेश, चरक, च्यवन, अ-  
गस्ति, वाराह, वाग्भट, नारायण, नारसिंह, आत्रेय, अत्रि, चन्द्रमा, शिव और सूर्य,  
इनमें वाग्भटको त्यागनेसे अठारह संहिता आयुर्वेद शास्त्रकी कही हैं ।

शिष्य—चरक सुश्रुत वाग्भट आदिग्रन्थोंमें रस चिकित्सा कहीं नहीं लिखी  
फिर रसग्रन्थोंका प्रचार कैसें हुआ । गुरु—

रसग्रंथानां प्रादुर्भावः ।

भूतानुकम्पाप्रवणोमहेशः श्मशानवासीजगदादिनाथः । स्व  
वीर्ययुक्तागदयोगरत्नैःकीर्णानितन्त्राणिवहूनिचक्रे ॥ रसप्रव  
न्धास्त्वधुनातनायेतन्मूलकाएवकृताःसुधीभिः॥सृष्टिस्थितिध्वं  
सकृतोऽखिलानामनादिनाथस्यमहाप्रसादात् ॥

अर्थ—सर्व जगत्के आदिभूत, श्मशानवासी परमकारुणिक, भूतपति श्रीमहादेव  
उन्होंने स्वप्रकाशित, विविधतन्त्र स्ववीर्ययुक्त अर्थात् जिन्होंमें पारदसैं आदि ले  
अनेक रसादि औषध रोग दूर करनेको कही ऐसे अनेक तंत्र रचते हुए । और  
जितने आधुनिक रसग्रन्थ पंडितोंने बनाए हैं वे सब उन्हीं शिवप्रोक्त तंत्रोंसैं नि-  
काले हैं अतएव सब आधुनिक रस ग्रन्थोंकी जड़ प्राचीन तंत्र हैं ।

रसग्रन्थेषुतंत्रेषुधातुशोधनमारणे । विवृतेचविशेषेणरसरराज

स्यसंस्कृतिः ॥ चरकादौरसादीनांप्रयोगोनैवदृश्यते । अतः  
प्रचारएतेषांहितायजगतोमतः ॥

अर्थ—रसके ग्रन्थोंमें और तंत्रोंमें धातुओंका शोधन, मारण और विशेष करके पारदके संस्कार कहे हैं सो चरकादि ( सुश्रुत वाग्भटादि ) ग्रन्थोंमें रस-प्रयोग नहीं है । इसीवास्ते जगत्के कल्याणार्थ इनका प्रचार संसारमें है ।

शिष्य—रसग्रन्थोंका प्रचार विशेष कबसे हुआ, और प्राचीन ग्रन्थोंमें इनमें क्या विशेषता है ।

गुरु—पहले समयमें काष्ठादि औषधद्वारा वैद्य चिकित्सा करा कर्ते, क्योंकि रसोंके बनानेमें एक तो समय बहुत चाहिये, दुसरे द्रव्य विशेष खर्च होता है, तीसरे इनके बनानेमें सहायकभी दो चार मनुष्य अवश्य होने चाहिये । तथा रस, आसव और तैल आदि प्राचीन उत्तम कहे है । ऐसे ऐसे अनेक कारणोंसे प्राचीन वैद्य काष्ठादि जड़ी बूटीसे चिकित्सा करते, इसीसे रस ग्रन्थोंका प्रचार पहले समयमें थोड़ाथा, परन्तु जबसे इस भारतवर्षमें यवनोंका राज्य हुआ और उनके साथ उनके देशके यूनानी वैद्य आए । उन यूनानी वैद्योंने यहांके राजा बाबू लोगोंको अपनी स्वादिष्ट औषध देकर अपनी और अपने शास्त्रकी उत्तमता दिखाय, यहांके वैद्योंकी और यहांके शास्त्रोंकी निंदा करने लगे । इसी कारणसे वैद्योंकी जीविका नष्ट होने लगी, और दिन प्रतिदिन हकीमोंकी चाह विशेष होने लगी । तब हमारे गुरु घंटाल वैद्योंसे न सहा गया शीघ्र अपने प्राचीन रसशास्त्र रूप खजानेको खोला जैसे शत्रुकी चढाई देख राजा महाराजा अपने खजानेको खोलते है । बस जो इन्होंने रसोंको देना प्रारंभ करा तो यूनानी मुगलानी पठानियोंकी वानी बंद कर पानीसे भी पतले कर दिये । और जो यूनानी वैद्य रुक्का लिख रोगीके द्रव्य हरण करनेको सैकरों दवाई लिखतेथे, तथा अत्तारोंसे आधा तिहाई ठहरा कर उस रुक्केमें दो चार दवाई संकेत ( समस्या ) की लिख देते थे जो दमडीकी औषध उसके अत्तार साहब रुपया दो रुपये अथवाजैसा रोगी दखा वैसाही दो आने चार आने मांग लेते थे, यह अधर्म रसशास्त्रक प्रगट होते ही नष्ट होने लगा अर्थात् जो हकीमोंकी सेरो दवाई काम करती वो वैद्योंके रसोंकी पाव चावल आधे चावलकी मात्रा काम करने लगी । इसी कारण काष्ठादि औषधोंसे रसशास्त्रकी श्रेष्ठता है जैसे किसीने लिखा है ।

अल्पमात्रोपयोगित्वाद् रुचेरप्यसंगतः ॥

क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योरसोधिकः ॥

अर्थ—काष्ठादि औषधोंकी अपेक्षासें रसकी थोड़ी मात्रा उपयोगी होती है तथा काष्ठादि औषधोंके खानेसें अरुचि होती है, सो रसके भक्षणसें कदाचित् नहीं हो, और काष्ठादि औषधकी अपेक्षा रस जल्दी आरोग्यदाता है, इसीसे काष्ठादि औषधोंसे रसको आधिक्यता है ।

## अन्यच्च

मुक्त्वैकरसवैद्यन्तु लाभपूजायशस्तथा ॥

तृणकाष्ठौषधैर्वैद्यः कोलभेतवराटकाम् ॥

अर्थ—एक रसज्ञ वैद्यको छोड़, लाभ, पूजा और यशको कौन प्राप्त हो सकता है । तथा तृण काष्ठौषधोंके कौन वैद्य कौंडी ले सके है । और चंद्रोदय, मकरध्वज, मृत्युंजय, रूपरस, राजमृगांक, स्वर्णपर्पटी, वसंतकुसुमाकर, नागेश्वर, तामेश्वर, वंगेश्वर आदि रसोंके अनुपानभी दूध, मक्खन, मलाई, सहत, मिश्री, सोने चांदीके वर्क इत्यादि है । बस जबसे मुसलमानोंका आर्यावर्तमें आना हुआ, तबसेही रसशास्त्रके प्रचार होनेकी बहुधा जड़जमी,

शिष्य—प्राचीन रसग्रन्थकर्ता कौनसे हैं ।

गुरु—प्राचीन रसशास्त्र बनानेवाले आचार्यों के नाम रसरत्नसमुच्चयमें इस प्रकार लिखे हैं ।

आगमश्चन्द्रसेनश्चलङ्केशश्चविशारदः । कपालीमतमांडव्यौ  
भास्करः शूरसेनकः ॥ रक्तकोशश्चशम्भुश्चतथैकोनरवाहनः ।  
इन्द्रदोगोमुखश्चैकंबलिव्यालिवरेवच ॥ नागार्जुनः सुरानन्दो  
नागबोधिर्यशोधनः ॥ खण्डः कपालिकोब्रह्मागोविन्दोलुंपकोह  
रिः ॥ रसांकुशोभैरवश्चकाकचण्डीश्वरस्तथा । वासुदेवोऋष्य  
शृंगः क्रियातन्त्रसमुच्चयी ॥ रसेन्द्रतिलकोयोगीभालुकीमै  
थिलाह्वयः ॥ महादेवोनरेन्द्रश्चरत्नकारोहरीश्वरः ॥ एतेचान्ये  
चयेसिद्धरसशास्त्रप्रवर्तकाः ॥

अर्थ—आगम, चन्द्रसेन, लंकेश ( रावण ) कपाली, मांडव्य, भास्कर, शूरसेन, रत्नकोश, शम्भु, नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कंबलि, व्यालि, नागार्जुन, सुरानन्द, नागबोधि, यशोधन, खंड, कपालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लुंपक, हरि, रसांकुश, भैरव,

काकचंडीश्वर, वासुदेव, ऋष्यशृंग, क्रियातंत्रसमुच्चयी, रसेन्द्रतिलकयोगी, मालुकी, जनक, महादेव, नरेन्द्र, रत्नकार, हरीश्वर इनसे आदि ले और नित्यनाथ, गोरख, मुछंदरआदि सिद्ध रसशास्त्रके प्रवृत्तिकर्ता हैं ।

अथसिद्धो नित्यनाथः पार्वतीतनयः सुधीः ।

रसरत्नाकराख्यञ्चरसग्रंथंप्रणीतवान् ॥

रसेन्द्रचिन्तामणिनामधेयः । टुंटूनिनाथोभिषगग्रगण्यः ॥

रसेन्द्रयुक्तैर्विविधैश्चकार । सुभेषजैःकीर्णमतीवचित्रम् ॥

रसग्रंथप्रणेतारोभूवन्नन्येपिभूतले ।

सर्व्वएवहितेग्रन्थाआश्चर्यफलदायिनः ।

अर्थ—पूर्वोक्त ग्रन्थोंके अनन्तर पार्वती पुत्र ऐसे सिद्ध नित्यनाथने रसका ग्रन्थ रसरत्नाकर बनाया, औरभिषगूशिरोमणि टुंटूनाथने अनेक पारदके प्रयोगसहित सुन्दर औषध जिसमें ऐसा रसेन्द्रचिन्तामणि ग्रन्थ निर्माण करा । तदनन्तर और बहुतसे पंडितोंने अनेक रसग्रन्थ बनाए । वे सब ग्रन्थ आश्चर्यफलदायक हैं । उनमेंसे जो आज कल प्रचलित ग्रन्थ हैं उनके कुछ नाम लिखते हैं । रसार्णव, रसमञ्जरी, रसेन्द्रकल्पद्रुम, रसराजशंकर, रसहृदय, रसदीपक, रससिद्धिप्रकाश, रसेन्द्रकोश, रसालंकार, रसभूषण, इत्यादि हैं इन सबका संग्रह करके रसराज सुन्दर ग्रन्थ भाषाटीका सह निर्माण करा गया है ।

श्रीमाधवकरश्चन्द्रसूनुः सूरितमोभिषक् ।

नानाशास्त्रोद्धृतंचक्रेसंग्रहंरुग्निनिश्चयम् ॥

अर्थ—भिषगूशिरोमणि श्रीमाधवकरश्चन्द्रके पुत्र, अनेकशास्त्रोंका संग्रहकररुग्नि-निश्चयनामक ग्रन्थ करते हुए। यद्यपि, अंजननिदान, हंसराजनिदान, सुषेणनिदान, व्याडि आदि आचार्योंकेनिदान बहुत हैं । परन्तु सर्वोत्तम निदान माधवही है इस माधवनिदानकी मधुकोशटीकाकरतानें औरभी ग्रन्थकर्ताओंके नाम लिखेहैं । यथा-

भट्टारजेज्जटगदाधरवाप्यचन्द्रैः श्रीचक्रपाणिबकुलेश्वरसेन

भव्यैः ॥ ईशानकार्तिकसुकीरसुधीरवैद्यैर्मैत्रेयमाधवमुखै

लिखितंविचिंत्य ॥१॥ तन्त्रान्तराण्यपिविलोक्यममैषयत्नः

सद्भिर्विधेयइहदोषविधौसमाधिः ॥ मर्त्यैरसर्व्वविदुरैर्विहितेक

नाम ग्रन्थेऽस्तिदोषविरहः सुचिरन्तनेपि ॥ २ ॥

अर्थ—भट्टार, जेज्जट, गदाधर, वाप्यचन्द्र, श्रीचक्रपाणि, बकुलेश्वरसेन, ईशान, कार्तिक, सुकीर, मैत्रेय और माधव आदिका लेख विचार, तथा और अनेक तंत्रों-को देख इस ग्रन्थ बनानेमें हमारा प्रयत्न है इस ग्रन्थमें पंडितजनोंको समाधान करना चाहिये क्योंकि असर्वज्ञ मनुष्यकृत ग्रन्थमें दोषराहित्य कहाँ है ! अर्थात् दोषदृष्टिको परित्याग कर जहां कहीं अशुद्ध रहगया होय उसको सुधार देवे, परन्तु, जो दुष्टजन हैं वो इस बृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रन्थको देखकर दोषारोपण करेहींगे, उनसे हम नहीं डरते, जैसे लिखा है ।

तथापिक्रियतेग्रन्थः सन्तियद्यपिदुर्जनाः ।

नहिदस्युभयाल्लोकोदैन्यवानिहवर्तते ॥

अर्थ—यद्यपि संसारमें दुर्जन जन हैं तोभी हम ग्रंथ करते हैं। क्योंकि संसार चोरोंके भयसे दीनता नहीं ग्रहण करे, अर्थात् सेठ साहूकार चोरोंके भयसे कुछ अपने व्यवहारको नहीं छोड़ते ।

भ्रमद्भ्योव्याधिचक्रेभ्योरक्षितुं ह्यबलान्नरान् । नानातन्त्रप्रसू  
नेभ्योमधून्याहृत्ययत्नतः ॥ शास्त्रचक्राणिसंगूण्यदृष्ट्वासम्य  
क्फलाफलम् । चक्रपाणिश्चिकित्सात्ममधुचक्रंप्रणीतवान् ॥  
ग्रन्थेचक्रकृतेरीतिवैशद्यंपरिदर्शितम् । चिकित्सायां विशेषेण  
स्नेहादिपचनेतथा ॥ नान्यस्मिन्द्दृश्यतेचेद्ग्रन्थकौशलब  
न्धनम् । चिरंविद्योततांभूरिहृदयेऽयंसुसंग्रहः ॥

अर्थ—निरन्तर भ्रमणशील रोगचक्रसें दुर्बल मनुष्य गणोंकी रक्षा करनेके निमित्त, भिषग्वर चक्रपाणिदत्त, अनेक शास्त्रोंका सार संग्रह कर स्वनामक अर्थात् चक्रदत्त नाम चिकित्सा ग्रंथ बनाया । इस ग्रंथमें चिकित्साकर्मकी सुन्दर शृंखला दिखाई है और तैलआदि पाचनकी विधि उत्तम कही है । जैसी प्रणाली इस ग्रंथमें है ऐसी दूसरे ग्रंथमें कुशलता नहीं है, यह ग्रंथ पंडित लोगोंके हृदयमें बहुत कालपर्यंत प्रकाश करो. सुनते हैं कि, चक्रपाणिदत्तकृत चक्रदत्त ग्रंथमें निदान, निघंट और चिकित्सा सर्व वस्तु है परन्तु यह कलकत्तेमें जो छपा है वह संपूर्ण नहीं है ।

राजनिघण्टुः ।

नाम्नाश्रीनरसिंहपंडितवरः काश्मरिदेशोद्भवो नानाकोष-

महाब्धिमन्थनगतं रत्नोच्चयं यत्नतः ॥ एकीकृत्यनिबन्धबन्ध  
नमहोनिर्घण्टुराजाभिधं चक्रेलोकहितेऽप्याहितकरं द्रव्या  
भिधानार्थकम् ॥ १ ॥

कोषादस्मात्तथाऽन्येभ्यो द्रव्याणितद्गणान्गुणान् । यौरू  
पीयावनीभाषादेशभाषांतथैव च । सामग्र्येण तथोलाच्यक्रिया  
स्माभिर्विधीयते ॥

अर्थ—काश्मीर देशीय श्रीनरसिंह नामक पंडितवर, अनेक कोषरूप समुद्रका  
मन्थन कर उनसे अनेक शब्दोंको एकत्र कर, राजनिघंटु नामक सर्व लोकके क-  
ल्याणार्थ द्रव्याभिधान बनाया इस कोषसे तथा और कोशोंसे गुण और अवगुण  
विचार तथा अंग्रेजी यूनानी भाषाओंको विचार इस ग्रंथमें क्रिया लिखी है ।

### भावप्रकाशः ।

आसीन्मद्रेजनपदेविप्रोविद्वत्कुलोत्तमः । शिरोमणिःसद्भिष  
जांधन्वन्तरिरिवक्षितौ ॥ शास्त्राणांपारदृक्सम्यक्भावमिश्रे  
तिनामकः । वाराणस्यामवस्थायभूमिपानांमहात्मनाम् ॥ व  
हूनांबहुधासम्यग्रुजांकृत्वाप्रतिक्रियाम् । प्रतिष्ठांमहतींभूमौ  
लब्धवान्साधुपूजितः ॥

अर्थ—३०० तीनसौ वर्ष व्यतीत हुए तब मद्रदेशमें, विद्वान् ब्राह्मणों के उत्तम  
कुलमें, मानो द्वितीय धन्वन्तरि ऐसे शास्त्रके पारदर्शी, भावमिश्रनामक भिषक्शिरो-  
मणि प्रगट हुए । वे काशीपुरीमें वास करि तद्देशीय अनेक महात्मा राजाओंकी  
अनेकवार चिकित्सा कर बड़ी भारी प्रतिष्ठाको प्राप्तहुए ।

शिष्यानध्यापयामासयोवेदशतसंख्यकान् । महारत्नानिचो  
द्धृत्य आयुर्वेदमहाम्बुधेः । ग्रंथं भावप्रकाशाख्यं लोकानांहित  
काम्यया । प्रणीतवान्प्रयत्नेनवैद्यानामुपकारकम् ॥ आयु  
र्वेदप्रबंधानां ग्रन्थः सचरमः स्मृतः ।

अर्थ—जिन्होंने चारसौ ४०० शिष्योंको आयुर्वेदादि शास्त्र पढ़ाए, तथा आ-  
युर्वेदरूप समुद्रसे महारत्नरूप श्लोकोंका संग्रह कर, लोकोंके कल्याणार्थ भावप्र-

काश नाम ग्रंथ बनाते हुए । यह ग्रंथ वैद्योंका उपकारी है, यह जितने आयुर्वेदके ग्रंथहैं उनमें पिछला ग्रंथ है ।

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयोयोगरत्नानियत्नाल्लब्धा-  
स्वेस्वेनिबंधेदधुरखिलजनव्याधिविध्वंसनाय । तत्तद्ग्रंथा  
द्रुगृहीतैःसुवचनमणिभिर्भावमिश्रश्चिकित्साशास्त्रेजाड्या  
न्धकारंप्रशमयितुमिमंसविधत्तेप्रकाशम् ॥

अर्थ—आयुर्वेदरूपी समुद्रमेंसे, महाबुद्धिमन्त मुनीश्वरोंने योगरत्नरूपी रत्ना-  
को लेकर, अपने अपने ग्रंथोंमें धरे हैं । उन रत्नोंको समग्र मनुष्योंके रोग-  
नाशनार्थ उन्हीं उन्हीं ग्रन्थोंमेंसे ग्रहणकरके और भावयुक्त ऐसैं सुवचनरूपी म-  
णियोंसैं इस चिकित्साशास्त्रमें मूर्खताके अन्धकार दूर करनेके वास्ते ग्रन्थकर्त्ता  
आप यह प्रकाश करे है ।

पूर्वाचार्यैःप्रणीतेषुपूजनीयैर्महर्षिभिः । तंत्रेषुयानिरत्नानिता-  
न्यत्रापिप्रधानतः ॥ लभ्यन्तेन्यान्यपितथादृश्यन्तेयानिनकचि-  
त् ॥ तथालिप्यंतरेचापियत्क्वप्यन्यैर्नदृश्यते । पारस्यादिप्रदेशे  
षुजाताऔषधयश्चयाः ॥ आचार्येणगृहीतास्ताःपूर्वाचार्यैर्नत-  
त्कृतम् । व्याधेःफिरङ्गकारुयस्यलिखितंचात्रलक्षणम् । तस्यप्र-  
तिक्रियाचापितन्त्रेऽन्यस्मिन्नदृश्यते ॥

अर्थ—महर्षियोंकरके पूज्य ऐसे पूर्वाचार्योंके बने हुए ग्रन्थोंके श्लोक सब  
इस भावप्रकाशमें हैं और बहुतसैं ऐसे प्रयोग इसमें हैं, जो कहींहीं लिखे-पारसी  
( मुसलमानी ) प्रदेशोंमें होनेवाली औषधियोंके नाम गुण, प्राचीन आचार्योंने  
नहींलिखे वो सब इन्होंने लिखेहैं । तथा फिरंगरोगके लक्षण यत्न किसी ग्रंथमें नहीं  
है वो इन्होंने अपने ग्रंथमें लिखे हैं ।

अतःप्रतीयतेचायुःशास्त्राणांचरमोन्नतिः । जाताश्रीभावमिश्र  
स्यसमयेकुशलप्रदे । तदिमंचरमंग्रन्थवैद्यानांजीवनंमतम् ।  
श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भिर्भूमिदेवानाम् । भावप्रकाशनामाग्रं  
थोयंपठ्यतांसर्वैः ॥

अर्थ—इन पूर्वोक्त कारणोंसे मालूमहोता है कि इस भावप्रकाश ग्रंथकी उन्नति

भावमिश्रके समय पीछे हुई है। यह सबके पश्चात् बनाहुआ ग्रंथ वैद्योंका जीवनरूप है। श्रीपतिके चरणारविंदके प्रसादसैं, और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसैं भावप्रकाशनामक यह ग्रंथ तुम सर्व मनुष्य पढ़ो।

## इति आयुर्वेदप्रणेतृणांप्रादुर्भावः ।

अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायःपुरुषइत्युच्यते । तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठानं कस्माल्लोकस्य द्वैविध्यात् ।

अर्थ—इस आयुर्वेदशास्त्रमें, पञ्च महाभूत “पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश,” और शरीरी कहिये आत्मा, इनके संयोगको पुरुष कहते हैं। उस पुरुषमें शास्त्रोक्त कर्म हैं, क्योंकि वही पुरुष व्याधि और आरोग्यका आधार है, अर्थात् पुरुषमेंही शास्त्रोक्त चिकित्सा होती है, क्योंकि सर्व जीवोंके दो भेद हैं।

लोकोहिद्विविधः स्थावरोजङ्गमश्च । द्विविधात्मकएवाग्नेयः सौम्यश्चतद्भूयस्त्वात् । पञ्चात्मकोवा ।

अर्थ—लोक स्थावर और जंगमके भेदसैं दो प्रकारका है, वह स्थावर जंगमभी आग्नेय ( गरम ) और सौम्य ( शीतल ) के भेदसैं दो प्रकारका है, क्योंकि बहुधा प्राणिमात्र तेज और शीतल स्वभाववालेही होते हैं। अथवा सर्व प्राणी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशकी आधिक्यतासैं पांच प्रकारके हैं।

तत्रचतुर्विधोभूतग्रामः । स्वेदजाण्डजोद्भिज्जजरायुजसंज्ञः । तत्रपुरुषःप्रधानंतस्योपकरणमन्यत् । तस्मात्पुरुषोऽधिष्ठानम् ।

अर्थ—तहां पूर्वोक्त प्राणियोंका समूह चार प्रकारका है। स्वेदज ( १ ) अंडज, ( २ ) उद्भिज्ज, ( ३ ) जरायुज, ( ४ ) इन चारों प्रकारके प्राणियोंमें पुरुष ( मनुष्य ( ५ ) को प्रधानता है। और उस मनुष्य जातिके स्थावर जंगम स्वेदजादि उपकरण ( सामग्री ) अर्थात् साधन है। इसीसैं आयुर्वेदोक्त क्रियाओंका आधार पुरुष है।

( पंचमहाभूत शरीरी समवायः पुरुषः ) इसके कहनेसैं, पुरुषशब्द करके पश्वादिकोंकाभी बोध होता है। तथापि मनुष्यजातिकाही इस जगह पुरुषशब्द वाचक है।

( १ ) पसीनासैं जो होते हैं जुंआं लीख आदि ( २ ) जो अंडाओंसैं प्रगट होते हैं तोता चिरैया, सर्प आदि, ( ३ ) जो पृथ्वीको फोड कर प्रगट होते हैं

जैसे वृक्षादि ( ४ ) और जो जरा ( झिली ) हैं लिपटे माताके पेटसें प्रगट हो जैसे मनुष्य आदि ।

तद्दुःखसंयोगाव्याधयःइत्युच्यंते । तेचतुर्विधाआगन्तवःशारीरा मानसाः स्वाभाविकाश्चेति । तेषामागन्तवोऽभिघातनिमित्ताः । शारीरास्त्वन्नपानमूलावातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः । मानसास्तुक्रोधशोकभयहर्षविषादेर्ष्याभ्यसूयादैन्यमात्सर्यकामलोभप्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवन्ति । स्वाभाविकाःक्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयः ।

अर्थ—उस पुरुषको दुःख संयोग होनेको व्याधि अर्थात् रोग कहते हैं अथवा जिनके होनेसें, अथवा जिन करके, अथवा जिनसें मनुष्यको दुःख हो उनको रोग कहते हैं । वो व्याधि रोग ) चार प्रकारके हैं । आगंतुज, शारीरी, मानसिक, और स्वाभाविक, तिनमें तीर, तलवार, लाठी आदि चोट लगनेसें जो रोग होवे, उसको आगंतुज कहते हैं । अत्र अर्थात् विषम भोजन है कारण जिसमें और वात, पित्त, कफ, रुधिर, सन्निपात इन्होंकी विषमता है निमित्त जिन्होंकी उन व्याधियोंको शारीरी ( अर्थात् शरीरसे होनेवाली ) कहते हैं । क्रोध, शोक, भय, हर्ष, ( आनन्द ) विषाद ( पश्चात्ताप ) ईर्ष्या, निंदा, दीनता, मत्सरता, काम, लोभ, आदि शब्दसे—मान, मद, दम्भ, इत्यादि इच्छा और द्वेषसें होनेवाली व्याधियोंको मानसिक ( अर्थात् ) मनसें होनेवाली व्याधि कहते हैं । और भूख, प्यास, वृद्धता, मृत्यु, निद्रा आदि स्वाभाविक व्याधि ( रोग ) कहाते हैं । अर्थात् भूख प्यास ए ईश्वरनिर्मित हैं । इसीसें इन्होंका निवारण नहीं होता है । यदि पूर्वोक्त भूख प्यास आदि रोग दोषोंके घटने बढनेसें होवे ( जैसे भस्मकरोग, अतितृषा, विना समय बुढापा ) तो इनकी चिकित्सा होसकती है ।

तएतेमनःशरीराधिष्ठानाःतेषांसंशोधनसंशमना

हाराचाराःसम्यक्प्रयुक्तानिग्रहेतवः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त चतुर्विधव्याधि, मन और शरीरके आश्रय होती है । अर्थात् काम क्रोधादि रोग मनके आश्रय हैं । और ज्वरादि रोग शरीरके आश्रय होते हैं । तथा अपस्मार ( मृगी ) आदि व्याधि मन और शरीर दोनोंके आश्रित होती हैं । इन पूर्वोक्त ४ प्रकारकी व्याधि, ( १ ) संशोधन ( २ ) संशमन ( ३ ) आहार और ( ४ ) आचार ( ५ ) विधिपूर्वक सेवन करनेसे शांति होती है ।

## प्राणिनांपुनर्मूलमाहारोबलवर्णौजसांच । षट्सुर सेष्वायत्तोरसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः ।

अर्थ—प्राणियोंका कारण आहार ( भोजन ) है । केवल प्राणियोंकाही मूल नहीं है किंतु बल, वर्ण और ओज, ( लावण्यता ) काभी हेतु आहारही है । वह आहार मधुर आदि छः रसोंके अधीन है, रस द्रव्यके अधीन हैं ।

१ शोधन दो प्रकारका एक बहिराश्रय दूसरा अंतराश्रय, तहां शस्त्र, दागना, लेप आदिको बहिराश्रय, और वमन, विरेचन, अनुवासन, फस्त खोलने आदिको अन्तराश्रय शोधन कहते हैं ।

२ जो दूषित दोषोंको शोधन न करे, और जो दोष समान हैं उनको बढ़ावे नहीं, और कुपित दोषोंको समान करे, उस द्रव्यको संशमन कहते हैं । वो संशमन बाह्य अभ्यंतरके भेदसे दो प्रकारका है । तहां लेप, परिषेक, स्नान उवटना, फस्त खोलना, बस्तिकर्म, गंडूष, ( कुल्ला ) इत्यादि बाह्य संशमन है । और पाचन, लेखन, बृंहण, रसायन, वाजीकरण, विषप्रशमनादि, अभ्यंतर संशमन है ।

३ आहार ४ प्रकारका है १ भक्ष्य, २ भोज्य, ३ लेह्य, ४ चोष्य, फिर वह आहार तीन प्रकारका है । १ दोषप्रशमन, २ व्याधिप्रशमन, और ३ स्वस्थवृत्तिकर ।

४ देह, वाणी और मन, इनके कर्म को आचार कहते हैं । तहां खेलना, कूदना, डोलना आदि देहका कर्म है । पठना, पठाना आदि वाणीका कर्म है । ध्यान, चिंता, विचार, संकल्प आदि मानसिक कर्म है ।

५ विधिपूर्वक कहनेका यह प्रयोजन है कि, देश, काल, अवस्था, बल आदिको देखकर शोधनादि कर्म करने चाहिये ।

द्रव्याणिपुनरौषधयस्ता द्विविधाः स्थावराजङ्गमाश्च । ता-  
सांस्थावराश्चतुर्विधाः वनस्पतयो वृक्षा वीरुध औषधय इति ।  
तास्वपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः।पुष्पफलवन्तो वृक्षाः  
प्रतानवत्यः स्तंबिन्यश्च वीरुधः फलपाकनिष्ठाओषधयः।

अर्थ—द्रव्य औषधके अधीन है वह औषध दो प्रकारकी है, एक स्थावर, दूसरी जंगम, तिनमें स्थावर ४ प्रकारकी है वनस्पति, वृक्ष, वीरुध और औषधी, तिनमें फूलरहित फलवाली ( जैसे पाखर, गूलर आदि ) वनस्पति कहाती हैं । और जिन्होंमें फूल फल दोनों आवें ( जैसे आम, जामुन आदिको ) वृक्ष कहते हैं, और जो धरतीमें फैल जाती हैं अथवा छोटी गुल्मवान् हों ( जैसे करेला, गिलोय, शा-

लपर्णी, पृष्ठपर्णी, जवासे आदि ) इनको वीरुध कहते हैं, और जो फलके पकने से नष्टहोवे ( जैसे गेंहूँ, जो, चना आदि ) इन्को ओषधि कहते हैं ।

जङ्गमास्त्वपिचतुर्विधाः जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिजाः । त  
त्रपशुमनुष्यव्यालादयोजरायुजाः । खगसर्पसरीसृपप्रभृत  
योऽण्डजाः।कृमिकीटपिपीलकप्रभृतयःस्वेदजाः । इन्द्रगोप  
मण्डूकप्रभृतय उद्भिजाः ।

अर्थ—जंगम प्राणी भी ४ प्रकारके हैं । जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज, तिनमें पशु, मनुष्य, व्याल ( सर्प ) आदि जरायुज कहलाते हैं। पक्षी ( तोता, मैना, कोयल, मोर आदि ) सर्प, सरीसृप, आदि अंडज कहलाते हैं कृमि, कीट, चेटी, ( जूंआं, खटमल ) आदि स्वेदज अर्थात् पसीनेसे होनेवाले कहाते हैं । इन्द्र-गोप ( वीरवहूटी ) मेडका, वृक्षादि उद्भिज कहलाते हैं । व्याल शब्द करके हिंसक जीव सिंह व्याघ्रादिकोंका ग्रहण है, कोई आचार्य व्यालशब्द करके सर्पविशेष कहते हैं, यथा “ सर्पजातिषुअहिपताकाजरायुजेति” अथवा सर्पशब्दसे अजगर आदि मंदगामी सर्प जानने, और सरीसृपशब्दसे जल्दी चलनेवाले काले, पौनिया आदि सर्प जानने । आदिशब्दसे मच्छी, मगर आदि जानने । कहीं कहीं चेटी अंडासें और पृथ्वीसेभी होती है ।

तत्रस्थावरेभ्यस्त्वक्पत्रपुष्पफलमूलकन्दनिर्यासस्वरसाद  
यः प्रयोजनवन्तोजङ्गमेभ्यश्चर्मनखरोमरुधिरादयः ।

अर्थ—तिन स्थावर जीवोंसे त्वचा, ( छाल ) पत्ता, फूल, फल, जड़ कन्द, गोंद, रस आदिशब्दसे तेल, खार, भस्म, काँटे आदि ए कामके हैं अर्थात् स्थावरोसें ए अंग ग्रहण करने चाहिये और जंगम जीवोंके चर्म ( चाम ) नख, रोम, ( बाल ) रुधिर, और आदिशब्दसे मांस, वसा, हड्डी और खुर ए कामके हैं ।

पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनःशिलामृत्कपालादयः ।  
कालकृतास्तुप्रवातनिवाताऽऽतपच्छायाज्योत्स्नातमःशी  
तोष्णवर्षाहोरात्रपक्षमासत्व्यनादयः संवत्सरविशेषाः ।

१ काठ मलसें प्रगट होनेवाली उन्को कृमि कहते हैं, जैसे गिनार आदि । २ विच्छू  
छः बूंदवालेन्को कीट कहते हैं ।

तएतेस्वभावतएवदोषाणांसञ्चयप्रकोपप्रशमप्रतीकारहेतवः  
प्रयोजनवन्तश्च ।

अर्थ—पार्थिव कहिये पृथ्वीके विकारोंमें सोना, चाँदी, फटिक आदि मणि, मोती, मनसिल, मट्टी, खपरा और आदिशब्दसैं लोह, कीटी, धूल, विष, हरिताल, नोन, गेरू और सुरमा, आदि इन सबको काममें लाने चाहिये । तथा काल ( समय ) संबंधी वस्तुओंमें अत्यंत पवन, पवनका निरोध, धूप, छाया, चांदनी, अंधकार, सरदी, गरमी, वर्षा, दिन, रात्रि, पक्ष, महिना, ऋतु, अयन आदि संवत्सर-विशेष और आदिशब्दसैं निमिष, कला, काष्ठा, मूहूर्त्तादिक, जानने । अब इन्का प्रयोजन यह है कि-ए पूर्वोक्त स्थावर, जंगम, पार्थिव और कालकृत पदार्थ ये सब स्वभावहीसैं वात, पित्त, कफ आदि दोषोंके संचय, प्रकोप और प्रशमन ( शांति ) के हेतु होते हैं, तथा चिकित्सोपकारक होते हैं अर्थात् खील, सुगंधवाला, खस, लालचंदन, जलमें डारके पवनमें रातिभर धरा रखे तथा मैनफलोंको पवनरहित धू-हमें सुखावे इत्यादि प्रयोजन जानना ।

शरीराणांविकाराणामेषवर्गश्चतुर्विधः ॥ चयेकोपेशमेचैवहेतुरुक्तश्चिकित्सकैः ॥ आगन्तवश्चयेरोगास्तेद्विधानिपतन्तिहि ॥ मनस्यन्येशरीरेऽन्येतेषान्तुद्विविधाक्रिया ॥ शरीरपतितानान्तु शरीरवदुपक्रमः मानसानान्तुशब्दादिरिष्टोवर्गः सुखावहः ।

अर्थ—[ आहार, आचार, पार्थिव और काल भेदसैं ] शरीर विकारोंका यह चार प्रकारका वर्ग, संचय कोप और शांतिका कारण वैद्योंने कहा है, [ परंतु जैज-ट आहार आचारको छोड़ स्थावर, जंगम, पार्थिव और काल इस चतुर्वर्गको देहके रोगोंके संचय, कोप और शांतिका कारण मानता है ] परंतु इसके मतका पंजिका-वाला खंडन करता है । अब जो आगंतुक रोग अर्थात् किसी चोट आदि कारणोंसे प्रगटे हैं वह रोग दोप्रकारके हैं पहले जो मनसैं संबंध रखे दूसरे वो जो शरीर-सैं सम्बन्ध रखते हैं उन दोनोंकी दो प्रकारकी चिकित्सा है । जो शरीरमें पड़ते हैं जैसे तीर, तलवार आदिका घांव उन्की शरीरके अनुकूल चिकित्सा करनी चाहिये और मनमें होनेवाले रोग ( चिंता, उद्वेग, ईर्ष्या आदि ) मन प्रसन्न करनेवाले ( शब्दादि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ) आदि वाञ्छित पदार्थ सुख देनेवाले होते हैं ।

एवमेतत्पुरुषोव्याधिरोषधंक्रियाकालइतिचतुष्टयंसमासेन  
व्याख्यातं । तत्रपुरुषग्रहणात्तत्तत्सम्भवद्रव्यसमूहोभूतादि

**रुक्तस्तदङ्गप्रत्यङ्गविकल्पाश्चत्वङ्मांससिरास्त्रायुप्रभृतयः।**

अर्थ—इस प्रकार पुरुष, व्याधि, औषध, क्रिया और काल यह चार वस्तु संक्षे-  
पसैं कही हैं यद्यपि पुरुषादिक पांच होते हैं तथापि चारही समझने अथवा क्रिया  
काल एकही जानना तहां पुरुषके ग्रहणसैं उस पुरुषसैं उत्पन्न द्रव्य समूह, (शुक्र,  
आर्तव ) और पंच महाभूत आदि तथा पुरुषके अंग ( मस्तकादि ) प्रत्यंग, ( चि-  
बुक आदि ) त्वचा, मांस नस आदिका ग्रहण करा जाय है ।

**व्याधिग्रहणाद्वातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः**

**सर्वैवव्याधयोव्याख्याताः । ओषधिग्रहणाद्द्रव्यगुणरसवी-  
र्यविपाकप्रभावाणामादेशः ।**

अर्थ—व्याधिके कहनेसैं वात, पित्त, कफ, रुधिर और सन्निपात इन्होंकी वि-  
षमता ( घाट वाट ) सैं उत्पन्न होनेवाली सर्व व्याधियोंका ग्रहण कियाजाय है ( स-  
र्वैव ) इसके कहनेसैं आंगंतुक, मानसिक, स्वाभाविक सर्व रोगोंका ग्रहण है ।

**क्रियाग्रहणाच्छेद्यादीनिस्नेहादीनिचकर्माणिव्याख्यातानि ।**

**कालग्रहणात्सर्वक्रियाकालानामादेशः । बीजंचिकित्सित-  
स्यैतत्समासेनप्रकीर्तितम् ॥**

अर्थ—क्रियाके कहनेसैं छेद्यादि ( अर्थात् छेद्य, भेद्य, लेख्य, आहार्य, विश्राव्य  
और सीव्य ) तथा स्नेह आदि( स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, स्थापन, अनुवासन,  
नस्य, कवलग्रहण, गंडूष, पाचन और संशमनादि ) कोंका ग्रहण है । और काल-  
के कहनेसैं संपूर्ण वमन विरेचनादि क्रियाओंका समय जानना चाहिये, अर्थात्  
अमुक समयमें विरेचनादि लेवे और अमुक समयमें चिरना फाड़ना आदि कर्म  
करने चाहिये यह चिकित्साका बीज संक्षेपसैं कहा है ।

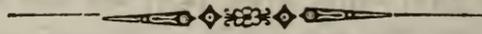
**स्वयम्भुवाप्रोक्तमिदं सनातनं पठेद्धियः काशिपतिप्रकाशितम् ॥**

**सपुण्यकर्माभुविपूजितो नृपैरसुक्षये शक्रसलोकतांब्रजेत् ॥ १ ॥**

अर्थ—अब इस शास्त्रका माहात्म्य कहते हैं, जो मनुष्य श्रीब्रह्मदेवप्रणीत तथा  
काशिपतिप्रकाशित इस सनातन शास्त्रको पढ़ेगा वह पुण्यकरनेवाला पृथ्वीमें राजा  
महाराजाओंसैं पूजित होवे और देहके अन्तमें इन्द्रके स्वर्गमें जावे ।

**इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मिते आयुर्वेदोद्धारवृहन्नि-  
घंटुरत्नाकरस्य पूर्वखंडे आयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्यायक-  
थनं नाम प्रथमतरङ्गप्रथमवीचिः ॥**

## ॥ अथ शिष्योपनयनीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥



अर्थ—आयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्याय कहनेके अनन्तर शिष्योपनयनीय अर्थात् जिसमें शिष्यको दीक्षा देनेकी विधि उस अध्यायकी व्याख्या करेंगे यह प्रकरण चरकसैं लिखते हैं । यद्यपि ब्राह्मणादि त्रिवर्णका उपनयन प्रथमही होजाता है तोभी आयुर्वेद पढ़नेके समय फिर उपनय होता है ।

**बुद्धिमानात्मनः कार्यगुरुलाघवे कर्मफलमनुबन्धं  
देशकालौ च विदित्वा युक्तिदर्शनाद्भिषक् बुभूषुः  
शास्त्रमेवादितः परीक्षेत ।**

अर्थ—बुद्धिमान् मनुष्य अपने छोटे बड़े कार्यमें कर्मफल अनुबन्ध ( प्रयोजन अधिकारी आदि ) देश कालको जानके युक्तिके देखनेसैं वैद्य होनेवाला पुरुष प्रथम शास्त्रकी परीक्षा करे ।

विविधानीह शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके तत्रयन्म  
न्येत महद्यशस्विवीरपूरुषाऽऽसेवितमर्थमाप्तजनस्यपूजि  
तं त्रिविधशिष्यबुद्धिहितमपगतपुनरुक्तदोषमार्षं सु-  
प्रणीतं सूत्रभाष्यसंग्रहक्रमं स्वाधारमनवपतितशब्दमकृ-  
ष्टशब्दं पुष्कलाभिधानं क्रमगतार्थमर्थतत्त्वनिश्चयप्रधानं  
सङ्गतार्थमसंकुलप्रकरणमाशुप्रबोधकलक्षणवच्चोदाहरणव  
च्चतदभिप्रपद्यते शास्त्रम् ॥

अर्थ—अनेक वैद्यकके शास्त्र लोक ( संसार ) में प्रचलित हैं; तिन्होंमें जिस ग्रंथ पढ़नेकी इच्छा होय उसको बड़े बहुतसे यशस्वी वीर पुरुषोंकर आसेवित ( अर्थात् पठित ग्रन्थ ) बहुतसै आप्तजन ( शिष्यों ) करके पूजित, त्रिविध ( उत्तम, मध्यम, अधम ) शिष्यकी बुद्धिको हितकारक, पुनरुक्तदोषरहित आर्ष अच्छे प्रकारसैं कहा सूत्रभाष्य संग्रहका क्रम जिसमें सुंदर आधारवाला हो जिस्में शब्द न गए होवें, बडा जिस्का नाम होय, क्रमपूर्वक प्राप्त अर्थ जिस्का, और अर्थतत्त्वका निश्चय प्रधान जिस्में, संगत अर्थ हो अर्थात् असंगत अर्थ न हो, न्यारे न्यारे प्रकरण, शीघ्रबोध करानेवाला, लक्षणवान्, उदाहरणवान् ऐसे शास्त्रका आश्रय लेवे अर्थात् ऐसे शास्त्रको पढ़ना चाहिये ।

## ह्येवंविधममलइवादित्यस्तमोविधूयप्रकाशयति सर्वततोऽनन्तरमाचार्य्यंपरीक्षेत । तद्यथा

अर्थ—ऐसा उज्ज्वल शास्त्र सूर्यके समान हृदयका अंधकार दूर करके ज्ञानको प्रकाश करता है । इस प्रकार प्रथम शास्त्रकी परीक्षा करके पीछे आचार्य्य ( गुरु ) की शिष्य परीक्षा करे. सो इस प्रकार ।

पर्य्यवपातश्रुतंपरिदृष्टकर्माणंदक्षंदक्षिणंशुचिंजितहस्तमुपक  
रणवन्तं सर्वेन्द्रियोपपन्नंप्रकृतिज्ञंप्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतवि  
द्यमनसूयकमकोपनंक्लेशक्षमांशिष्यवत्सलमध्यापकंज्ञापनास  
मर्थमित्येवंगुणोह्याचार्य्यः स्वक्षेत्रमार्त्तवोमेघइवसस्यगुणैः सु  
शिष्यमाशुवैद्यगुणैः सम्पादयति ॥

अर्थ—आयुर्वेद पढनेवाले मनुष्यको ऐसा आचार्य्य करना चाहिये कि, जिसका शुद्ध श्रुत अर्थात् यथार्थ शास्त्रोंको सुना हो । और गुरुके समीप रह कर संपूर्ण औषधादि, तथा नाडी, मूत्रकी परीक्षा आदि कर्म गुरुको करते हुये देखे हो चतुर हो, सरल हो, पवित्रतासै रहता हो । जितहस्त अर्थात् चोर न हो तथा जिसके स-मीप औषधबनानेके और चीरने फाडने आदिकी सर्व सामिथी होवे । सर्व इन्द्रीवा-ला होवे, अर्थात् ( लुला, लंगडा, टोंटा, काना, नकटा, अपाद ऐसा नहो ) दूसरे मनु-ष्यकी प्रकृतिका जाननेवाला और बुद्धिका जाननेवाला हो, जिसने बहुत विद्या-ओंका संग्रह करा हो चुगल और क्रोधी, न होवे यदि औषध आदि बनानेमें क्लेश ( दुःख ) हो उसको सहनेवाला हो, शिष्यको प्यार करनेवाला, पढानेवाला स-मझानेमें समर्थ, इत्यादि गुणवाला आचार्य्य उत्तम शिष्यको वैद्य गुणोसै शीघ्र परि-पूर्ण कर देवे । जैसे ( खेत ) के गरमी आदि दूषणोंको मेघ दूर कर घास आदि सै खेतको परिपूर्ण कर देता है ।

तमुपसृत्यारिराधयिषुरुपचरेदग्निवच्चदेववच्चराजवच्चपितृवच्च  
भर्तृवच्चाऽप्रमत्तस्ततस्तत्प्रसादात्कृत्स्नंशास्त्रमधिगम्यशास्त्र  
स्यदृढतायामभिधानस्यसौष्ठवस्यार्थस्यविज्ञानेवचनेऽस्यश  
क्तौचभूयः प्रयतेतसम्यक् । तत्रोपायाव्याख्यास्यन्ते । अध्य  
यनमध्यापनंतद्विद्यासम्भाषेत्युपायाः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त सर्व गुण संपन्न गुरुके समीप जायकर, प्रसन्न करनेको गुरुकी अ

यि, देवता, राजा, पिता और भर्ता ( स्वामी ) इनके सदृश सेवा करे । तदनंतर गुरुकी प्रसन्नतासें संपूर्ण शास्त्रोंको प्राप्त हो शास्त्रोंकी दृढताको और नामके विख्यात होनेके लिये, तथा अर्थ जाननेको बोलनेकी शक्ति बढनेके वास्ते, फिर शास्त्रमें अच्छी रीतिसैं यत्न करे । तहां शास्त्रमें प्रवृत्ति होनेके उपाय कहते हैं । पढना, पढाना और उस शास्त्रका संभाषण करना ए तीन उपाय हैं । तहां प्रथमपढनेकी विधि कहते हैं ।

### तत्राध्ययनविधिकल्पः ।

कृतक्षणः प्रातरुत्थायोपव्युषंवाकृत्वाऽऽवश्यकमुपस्पृश्योद  
कंदेवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाऽऽचार्यैभ्योनमस्कृत्य समेशु  
चौदेशेषुखोपविष्टोमनःपुरसरीभिर्वाग्भिः सूत्रमनुक्रामन्पुन  
रावत्तबुद्ध्यासम्यगनुप्रविश्यार्थतत्त्वसंज्ञापरिहारप्रमाणार्थं  
मेवाऽपराह्णैरात्रौचशश्वदपरिहापयन्नभ्यस्येदित्यध्ययनविधिः

अर्थ-निश्चित करा है समय जिसने, ऐसा विद्याभिलाषी प्रातःकाल, अथवा चार पांच घड़ी रात शेष रहने पर उठे, और मल मूत्र परित्याग आदि आवश्यक कर्मसें निवृत्त हो, दांतन कुरला आदिकर स्नानादिक करे पीछे देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्य, इनको प्रणाम करे, पीछे समान और पवित्र स्थानमें सुखपूर्वक बैठे, मनको एकाग्र कर वाणीसें सूत्रका उच्चारण वारंवार करे, और शास्त्रमें बुद्धिको प्रवेश कर उसके अर्थ और तत्वको जानना चाहिये । तथा जो दोष होवें उसके परिहार और प्रमाण तथा प्रमाणके अर्थकोभी जाने । सायंकाल और रात्रिको छोडकर बाकी समयोंमें पढना चाहिये यह पढनेकी विधि कही ।

### अथाध्यापनविधिः ।

अध्यापनेकृतबुद्धिराचार्यः शिष्यमादितः परीक्षित तद्यथा  
ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामन्यतममन्वयवयःशीलशौर्यशौचाचार  
विनयशक्तिबलमेधाधृतिस्मृतिमतिप्रतिपत्तियुक्तं [ अक्षुद्रक  
र्माणमव्यङ्गमव्यापन्नेन्द्रियनिभृतमनुबद्धमव्यसनिनमध्ययना  
भिकाममत्यर्थविज्ञानकर्मदर्शनेचानन्यकार्यमलुब्धमनाल  
सं ] तनुजिह्वौष्ठदन्ताग्रमृजुवत्क्राश्लिनासंप्रसन्नचित्तवाक्चे  
ष्टकेशसहस्रभिषकशिष्यमुपनयेत् । विपरीतगुणनोपनयेत् ॥

अर्थ—पढानेवाला आचार्य प्रथम शिष्यकी इस प्रकार परीक्षा करे ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य, इनमेंसे किसी जातका हो उत्तम कुल ( इस जगे कुलशब्दसे आयुर्वेदाध्ययनकर्त्ता कुलसे प्रयोजन है ) नई अवस्था अथवा तरुण अवस्था शील स्वभाव, शूरवीर, बाहर भीतरसे शुद्ध; परंपरागत कुल, देश और लौकिक आचारवाला, नीतवाला, उत्साहवाला, बली, बुद्धिवान्, धृति (जिहा और लिंग इन्द्रियका जीतने वाला ) पटीहुई अथवा देखी वस्तुको स्मरण रखनेवाला, अप्राप्त वस्तुको ज्ञानवान्, बड़े भारी कामको करनेवाला, सर्व अंग और सर्व इन्द्रिा जिसके होवे, वशीभूत, किसी कार्यमें बंधा न हो, जुआ, चोरी, वैश्यागमन, आदि व्यसनवाला न होवे । पढनेकी और ज्ञान कर्मके जाननेकी इच्छावाला, पढनेके सिवाय जिसको दूसरा कार्य न हो, लोभी न हो, आलसी न होय, और जीभ, होठ, दांत ए पतले होवे मुख, नेत्र, नाक, ए जिसके सुडोल और देखने योग्य हो, जिसकी प्रसन्न चित्त, वाणी, और चेष्टा, होवे । दुःखको सहनेवाला, ऐसे शिष्यको वैद्य उपनयन करे । और जो गुण कहे इनमें विपरीत गुणवाले शिष्यको उपनयन ( दीक्षा ) न देवे ।

उपनीयस्तुब्राह्मणः उदगयनेशुकृपक्षप्रशस्तेऽहनिपुष्यहस्त  
श्रवणाऽश्वयुजामन्यतमेननक्षत्रेणयोगमुपगतेभगवतिशशिनि  
कल्याणेतिथिकरणसुमुहूर्तेस्नातः कृतोपवासोमुण्डःकषायव  
स्त्रसंवीतःसमिधोऽग्निमाज्यमुपलेपनमुदककुम्भांश्च सगन्धह  
स्तमाल्यदामहिरण्यान्हेमरजतमणिमुक्ताविद्रुमक्षौमपरिधि  
कुशलाजसर्षपाऽक्षतांश्चशुक्लाश्चसुमनसोग्रथिताग्रथिता मेध्या  
न्भक्ष्यान्गन्धांश्चपिष्टापिष्टानादायोपतिष्ठस्वेति ॥

अर्थ—उपनीय ( दीक्षाके योग्य ) तो ब्राह्मण है । उत्तरायण, शुकृपक्ष, उत्तम-दिवस, पुष्य, हस्त, श्रवण और अश्विनी, इनमेंसे कोई नक्षत्रपर चन्द्र होवे कल्याण कर्त्ता तिथि, करण, और मुहूर्त्त होवे, तब गुरु शिष्यसे कहे कि अमुक समय पर स्नान कर उपवास करना क्षौर कराकर मुंडित हो गेरुअ रंगके वस्त्र पहिन कर समिधा, अग्नि, घृत, उपलेपन ( लीपना ) जल भरे कलश, सुगन्धितवस्तु माला, डोरी, सौना, चांदी, मणि, मोती मूंगा, रेशमीवस्त्र, यज्ञके वृक्ष, कुशा, खील, सरसो, अक्षत, सपेद चावल, सुंदर फूल और फूलोंकी माला, पवित्र और भोजनके पदार्थ, चंदन इनमें पिसे हुए तथा विना पिसे ( चून, धान, आदि ) सर्व सामिथी लेकर तैयार रहना इस प्रकार सुन शिष्य उसी प्रकार, करे ।

तमुपस्थितमाज्ञाय शुचौसमेदेशे प्राक्प्रवणे उदक्प्रवणेवा  
 चतुष्किष्कुमात्रंचतुरस्रस्थण्डिलं गोमयोदकेनोपलिप्तं दर्भैः  
 संस्तीर्य । यथोक्तेचन्दनोदकुम्भक्षौमहेमहिरण्यरजतमणिमु  
 क्ताविद्रुमालकृतंमध्यभक्ष्यगन्धशुक्लपुष्पलाजसर्षपाऽक्षतोप  
 शोभितंकृत्वा । पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्चदेवताः पूजयित्वावि  
 प्रान्भिषजश्च तत्रोल्लिख्याभ्युक्ष्यच दक्षिणतोब्रह्माणंस्था  
 पयित्वाऽग्निमुपसमाधाय खादिरपलाशदेवदारुविल्वानांस  
 मिद्भिश्चतुर्णांवाक्षीरवृक्षाणांन्यग्रोधोदुम्बराश्चत्थमधूकानांदाधि  
 मधुघृताक्ताभिर्दार्वाभिर्होमिकेनाविधिनास्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात् ॥

अर्थ—गुरु शिष्यको उपस्थित जान पवित्र और समान देशमें तथा जिस स्थान  
 में वेदी बनावे वहा सैं अथवा उत्तरसैं मिली हुई चौकोन चार वितस्त अथवा  
 चार हाथकी वेदी रचे उसको गोवर सैं लीपे, और उसपर कुशा बिछावे । तथा पूर्वो-  
 क्त चन्दन जलके कलश रेशमी कपड़े, चांदी, सोना, सोनेके पात्रआदि, मणि,  
 मोती और मूंगा आदिसे यज्ञस्थानको सुशोभित करै । तथा पवित्र भोजन कर-  
 नेके पदार्थ, सुगंधिक पदार्थ ( अत्तर आदि ) सफेद फूल, खील, सरसों और चा-  
 वल आदिसे शोभितकरे । फूल, खील, भात और रत्नोंसे देवता ब्राह्मण तथा  
 वैद्योंका पूजन करके पश्चात् वेदीको कुशाओंसे झाडके तथा जल छिडककर वेदी  
 के दक्षिणमें ब्रह्माको स्थापन करै । पीछे वेदीमें अग्निको स्थापन कर खैर, टाक,  
 देवदारु और बेल इनकी समिधा अथवा वड़, गूलर, पीपर और महुआ इनक्षीर  
 वाले वृक्षोंकी समिधाओंको दही, सहत, घृतमें डबोयके, तथा और जो हवन करने  
 योग्य लकड़ी उनको होमकी विधिसे होमे तथा स्रुवा से घृतकी आहुति देवे ॥

सप्रणवाभिर्महाव्याहृतिभिस्ततःपतिदैवतमृषींश्चस्वाहाकार  
 ञ्चकुर्यात् शिष्यमपिकारयेत् ।

अर्थ—ओंकारसहित महाव्याहृतिओंसे हवन करे ( यथा ओं भूः स्वाहा, ओं  
 भुवः स्वाहा, ओं स्वः स्वाहा, ओंभूर्भुवःस्वः स्वाहा ) इसी क्रमसे देवताओंको  
 भी आहुति देवे । जैसे ( ओं ब्रह्मणे स्वाहा, ओं प्रजापतये स्वाहा, ओं विष्णवे  
 स्वाहा ) इसी प्रकार ऋषियोंके नामसैं हवन करे चकारसैं वैद्यविद्याके प्रवर्तक

प्राचीन आचार्योंके नामसे हवन करे । इस प्रकार वैद्य आप होम करे और शिष्यसे भी करावे ।

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति । राज-  
न्यो वैश्यस्य वैश्यो वैश्यस्यैवेति । शूद्रमपि कुलगुणस-  
म्पन्नं मंत्रवर्ज्यमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ॥

अर्थ—ब्राह्मण त्रिवर्ण ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ) का उपनयन करसक्ता है, क्षत्री ( क्षत्री, वैश्य ) दो वर्ण का, और वैश्य केवल अपनीही जातिको दीक्षा देसक्ता है कोई आचार्य कहते हैं कि श्रेष्ठ ( कायस्थादि ) कुलमें प्रगट और श्रेष्ठ गुणयुक्त मंत्र रहित तथा उपनयन रहित शूद्रकोभी पढाना उचित है ।

ततोऽग्निं त्रिःपरिणीयाऽग्निसाक्षिकं शिष्यं ब्रूयात् । कामक्रोध-  
लोभमोहमानाहङ्कारेर्ष्यापारुष्यपैशुन्या नृतालस्यायशस्या  
निहित्वानीचनखरोम्णाशुचिनाकषायवाससासत्यव्रतब्रह्मच-  
र्याभिवादनतत्परेणावश्यं भवितव्यम् । मदनुमतस्थानगम-  
नशयनासनभोजनाध्ययनपरेण भूत्वा मत्प्रियहितेषु व-  
र्तितव्यमतोन्यथातेवर्तमानस्याधर्मो भवत्यफलाचविद्याच-  
नप्राकाश्यं प्राप्नोति ॥

अर्थ—पीछे अग्निकी तीन परिक्रमा कराय अग्निके साक्षी शिष्यके प्रति गुरु इस प्रकार कहे । कि हे वत्स ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, अहङ्कार, ईर्ष्या, कठोरता, चुगली, असत्य, आलस्य और अपयश कर्ता कर्मोंको छोड देना, तथा नख, बालोंको सदैव दूर कराते रहना ( अर्थात् क्षौर सदैव कराते रहना ) पवित्रता से रहना गेरुआ रंगे वस्त्र धारण करना, सत्य बोलना, वेदके जो व्रत लिखे हैं उनको करना, ब्रह्मचर्यमें तत्पर रहना, और आचार्यसे आदि ले बडोंको प्रणाम करना, इत्यादि बातों में सदैव तुमको तत्पर रहना चाहिये, मेरी आज्ञानुसार जाना, सोना, बैठना, भोजन करना और पढना चाहिये । मेरे प्रिय और हितकारी कर्मोंमें वर्तना चाहिये । यदि तू पूर्वोक्त मेरे कहनेके विपरीत वर्तेंगा तो तुझको अधर्म होगा, और तेरी पढी हुई सब विद्या निष्फल होवेगी, कदाचित् प्रकाशित न होगी ।

अहंवात्त्वयिसम्यग्वर्तमानेयद्यन्यथादर्शास्या-  
मेनोभागभवेयमफलविद्यश्च ॥

अर्थ—फिर गुरु अपने नियमोंको इस प्रकार कहेकि, यदि तू मेरे साथ निष्क-  
पटतासैं वर्त्तेगा और फिर में तेरे साथ ( पढानेमें ) कपट करूंगा तो में पापभागी  
और मेरी पढी हुई विद्या निष्फल होवेगी ।

**द्विजगुरुदरिद्रमित्रप्रव्रजिनोदिनसाध्वऽनाथाऽभ्युपगतानाञ्च  
त्मबान्धवानामिवस्वभेषजैः प्रतिकर्तव्यमेवंसाधुभवति ॥**

अर्थ—रोगियोंके साथ वर्त्ताव करनेके नियम गुरु शिष्यसैं कहे, कि ब्राह्मण,  
गुरु, ( माता, पिता, बडा भाई आदि ) दरिद्रि, मित्र, संन्यस्त, दीनजन, साधु  
( सत्पुरुष ) अनाथ और प्रदेशी इन्होंकी अपने बांधवोंके ( पिता पुत्रादिके ) स-  
दृश चिकित्सा करनी चाहिये इस प्रकार करनेसैं तुमको अच्छा है \*

**व्याधशाकुनिकपतितपापकारिणांचनप्रतिकर्तव्य  
मेवंविद्याप्रकाशते मित्रयशोधर्मार्थकामांश्चप्राप्नोति**

अर्थ—व्याध ( अहेरिया, कंजर, चाण्डाल आदि हिंसक प्राणी ) शाकुनिक (चि-  
रीमार आदि पक्षियोंका पकडनेवाला ) पतित ( जातिभ्रष्ट वर्णसंकर आदि )  
और पापकर्ता ( वेइयागामी, लोंडेवाज आदि ) इन्होंकी चिकित्सा ( इलाज ) न  
करना । इस प्रकार करनेसैं विद्याका प्रकाश होता है और मित्र, यश, धर्म, धन  
और कामनाओंकी प्राप्ति होती है ।

**॥ अनध्यायानाह ॥**

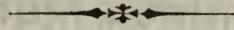
कृष्णेऽष्टमीतन्निधनेऽहनीद्विकृष्णेतरेप्येवमहर्द्विसंध्यम् । अ  
कालविद्युत्स्तनयित्नुघोषेस्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु ॥ १ ॥  
श्मशानयानोयतनाहवेषुमहोत्सवोत्पातिकदर्शनेषु । ना  
ध्येयमन्येषुचयेषुविप्रानाधीयतेनाशुचिनाचनित्यम् ॥ २ ॥

अर्थ—कृष्ण पक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी, और अमावसकी, तथा शुक्लपक्षमेंभी  
अष्टमी, चौदश और पूर्णमासीको तथा सायंकाल और प्रातःकालकी दोनों स-  
न्ध्याओंमें, तथा अकाल ( कुसमय ) में, विजुरी चमकना और मेघका गर्जन,  
अथवा अकालविद्युतके कहनेसैं ( पौष आदि चार महिनेकी वर्षा जाननी ) उ-

\* इस प्रमाण के माननेवाले वैद्य संसार में विरले हैं श्रेष्ठ वैद्य वोहि है जो दुष्टोंकी  
चिकित्सा नहीं करते ।

स्में, तथा देशोपद्रव ( भाजड, मरी, आदि ) में, तथा स्वदेश राजाकी पीडामें, इमशानमें, घोडा, हाथी, आदिकी सवारीमें बैठकर, वधस्थान ( कसाईखाने ) में संग्राममें, महोत्सव ( विवाह, यज्ञोपवीतादि ) त्रिविधि उत्पात ( दिव्य, भौम, अन्तरिक्ष ) इन्होंमें और जिसमें ब्राह्मण नहीं पढे जैसे प्रतिपदा आदि तिथी इन्में, हे पुत्र ! तुमको न पढना चाहिये । तथा अपवित्रता सैं भी कभी न पढना ।

इतिआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे पूर्व० शिष्योपनयनीयाध्यायकथनं नामप्रथमतरङ्गस्य द्वितीयवीचिः ॥ २ ॥



शिष्य—हे गुरो! अब आप इस आयुर्वेद पढनेका क्रम कहो ।

गुरु—हे वत्स! पढनेका क्रम सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है सो सुनो ।

अथातोऽध्ययनसंप्रदानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—शिष्योपनयनीयाध्याय कहनेके पश्चात् अब हम अध्ययनसंप्रदानीय अर्थात् जिसमें पढनेकी परिपाटी है उस अध्यायको कहेंगे ।

अथ वत्स ! तदेतदधीतं यथातथोपधारयमयाप्रोच्यमानम् ।

अथ शुचयेकृतोत्तरासङ्गायाव्याकुलायोपस्थितायाऽध्ययन

कालेशिष्याय यथाशक्तिगुरुरुपदिशेत्, पदंपादं श्लोकंवा ।

तेच पदपादश्लोका भूयः क्रमेणाऽनुसन्धेया एवमेकैकशो

घटयेदात्मनाचानुपठेत् ।

अर्थ—हे वत्स ! यह आयुर्वेद शास्त्र जिस प्रकार पढना चाहिये, वह क्रम में कहताहूं, उस्को सावधान होकर धारण अर्थात् कंठाग्र कर । आवश्यक कर्मसैं निवृत्ति होचुकाहो, तथा स्नानादिद्वारा पवित्र हो, और उत्तरीय वस्त्रको वामस्कंध पर धारण करनेवाला, अव्याकुल, पढनेके समय आचार्यको प्रणाम करचुकाहो, ऐसैं शिष्यके अर्थ, गुरु यथाशक्ति आयुर्वेद शास्त्रका उपदेश करे । अर्थात् पढावे, एक २ पद, एक एक पाद, एक एक श्लोक, अर्थात् अल्प बुद्धिवाले शिष्यको चौथाई श्लोक, मध्य बुद्धिवालेको आधा २ श्लोक, और तीव्र बुद्धिवालेशिष्यको गुरु एक-एक श्लोक पढावे । जबतक शिष्यके । समझमें न बैठें तब तक गुरुको चाहिये कि

उस्को अच्छी रीतिसैं समझावे, क्योंकि “ वक्तुरेवहितज्जाड्यंश्रोतायत्रनबुध्यते ” अर्थात् ( वो कहनेवालेहीकी मूर्खता है कि जिस्को सुननेवाला न समझे ) पीछे गुरुसैं भले प्रकार पढ़के शिष्यको चाहिये कि आप उस गुरुकी पढ़ाईहुई संधाकी घोख कर कंठाग्र कर लेवे, पश्चात् गुरु आगे पढ़ावे । अर्थात् जिस्को चौथाई श्लोक बताया उस्को चौथाई औरभी बतावे, आधे वालेको एक, और एक श्लोक वालेको दूसरा श्लोक बतावे । पीछे जो थोड़ा पढ़ा है उस्को उस्सैं विशेष पढ़े हुए शिष्यके आधीन कर देवे । और शिष्यके शीघ्र कंठाग्र करानेके अर्थ शिष्यके संग गुरुभी बराबर बोले ।

## पठनसमयके नियम ॥

अद्रुतमविलम्बितमविशङ्कितमननुनासिकं व्यक्ताक्षरमपी  
डितवर्णमक्षिभ्रुवौष्ठहस्तैरनभिनीतं सुसंस्कृतं नात्युच्चैर्ना  
तिनीचैश्वस्वरैः पठेन्नचान्तरेणकश्चिद्भजेत्तयोरधीयानयोः ॥

अर्थ--बहुत जल्दी जल्दी न पढ़े, तथा बहुत धीरे धीरेभी न पढ़े, संदेहको त्याग कर पढ़े, और अननुनासिक अर्थात् गिनगिनाय कर न बोले ऐसैं बोले कि सब अक्षर स्पष्ट दूसरेको सुनाई देवे । वर्णोंको चवायके न बोले, भौंह, होठ, और हा-योंको, न चलावे । अर्थात् बहुतसे बालकोंके नेत्र, भौंह, हाथ, और सर्व शरीर पढ़ते समय हिला करते हैं । इस अपगुणको छोड़ देना चाहिये । पृथक् २ वर्ण सुनाई देवे, न बहुत जोरसैं बोले, न बहुत मंदस्वरसैं पढ़े, और पढ़ते समय गुरु शिष्यके बीचमें होकर न निकलना चाहिये ।

शुचिर्गुरुपरोदक्षस्तन्द्रानिद्राविवर्जितः । पठेदेतेनविधिना  
शिष्यः शास्त्रान्तमामुयात् । वाक्सौष्टवेऽर्थविज्ञानेप्रागल्भ्ये  
कर्मनैपुणे । तद्भ्यासेचसिद्धौचयतेताऽध्ययनान्तगः ॥

अर्थ--पवित्र, गुरुकी सेवामें तत्पर, चतुर, तन्द्रा और निद्राकरके रहित, इस प्रकारको शास्त्र पढ़े तो वह शिष्य भलेप्रकार शास्त्रोंके पारको प्राप्तहोवे । वाणी की सौष्टव अर्थात् बोलनेकी सुन्दररीति सीखनेको, शास्त्रके अर्थ जाननेको, और शास्त्रमें प्रगल्भ ( डीट ) होने को, तथाकर्म ( क्रिया ) में निपुण होनेको, और इन पूर्वोक्तोंके अभ्यासकी सिद्धीके लिये, पढ़ाहुआ विद्यार्थी यत्नकरे । अर्थात् केवल पढ़नेमात्रसेही वैद्य नहींहोता, शास्त्रको पढ़के बराबरके स्वाध्यायियोंसे शास्त्रार्थ कराकरे । तो बोलनेकी शक्ति बढे । और पढ़ेहुए शास्त्रको नित्य विचार करके

विनापठे ग्रन्थको अपनी बुद्धिसे लगावे । जो स्थल आपसे न लगे उसको भी गुरु से अर्थ पूछलीया करे । और अपने पढ़े में जो भ्रम होवे उसको भी गुरु से पूछ लीया करे । इसप्रकार करनेसे शिष्यकी अर्थमें प्रवीणता होती है । तथा गुरु जहां कहीं सभामें जावे तहां शिष्यको संग लेजावे, उस सभामें जो पण्डित हैं उन के साथ शिष्यका शास्त्रार्थ करावे, जहां कहीं शिष्य घबरावे उसीजगह सावधान करता रहे, पीछे जब अपने घरमें आवे तब शिष्यसे कहे कि देख तैनें अमुकस्थान में अशुद्ध बोला सो ऐसा नहीं ऐसा है । और अमुककी टीका अच्छा प्रतिपादन करा, परन्तु उसमें यह बात तुमको कहनी और भी चाहिये, और देखो तुम्हारे प्रतिपक्षिने अमुक बात कैसी उत्तमताके साथ कही और अमुक स्थानमें वो चूका या परन्तु तुमने नहीं जाना । इसप्रकार शिष्यको शिक्षा देनसे शिष्य बोलने चालनेमें प्रगल्भ ( दीट ) होता है । बोलनेका प्रकार चरक ग्रन्थके विमानस्थानकी अष्टम अध्यायमें लिखा है सो देखलेना । इसी प्रकार जो रोगी आवे उसकी नाडी प्रथम गुरु आपदेखे, पीछे शिष्यको दिखावे, और उस शिष्यसे पूछे कि इसकी कौनदोषकी नाडी है, जब वो कहे अमुक दोषकी है, तब उससे पूछे किसप्रकार यदि वो उसकी चालका वर्णन ठीक ठीक करे तो कहे ठीक है। और यदि वो कुछकाकुछ कहे तो उसको समझाय देवे, इसीप्रकार मूत्रपरीक्षा, नेत्र परीक्षा, मलपरीक्षा और निदान आदिको गुरु आपकरे । और शिष्यको बताया करे, तथा तैल बनाना, रसों का बनाना, इनमें भी औषध, जल, तेल, आदिका अनुमान गुरु शिष्यको बतावे । तथा भट्टीका बनाना, वकआदि यंत्रोंका बनाना, कच्ची पक्की धातुकी परीक्षा, मणियोंकी परीक्षा, इत्यादि सर्ववस्तु गुरु शिष्यको बतावे । इसप्रकार सिखानेसे शिष्य सर्व कर्ममें प्रवीण होता है ।

एतदवश्यमध्येमधीत्यचकर्माप्यवश्यमुपासितव्य  
मुभयज्ञोहिभिषग्राजार्हो भवति ।

अर्थ—यह आयुर्वेद शास्त्र अवश्य पठितव्य है । और पढ़कर इसके कर्मोंको अवश्य सीखे क्योंकि शास्त्र और शास्त्रकी क्रिया दोनों का जाननेवाला वैद्य राजाओंके योग्य होता है । यथा ।

यस्तुकेवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ।  
समुह्यत्यातुरम्प्राप्यप्राप्यभीरुरिवाऽऽहवम् ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल शास्त्रका ज्ञाता हो, अर्थात् केवल शास्त्रको पढ़ाहो और कर्म

( कर्त्तव्यता ) में मूढ़ हो अर्थात् क्रिया न जानताहो वह रोगीको देखके घबड़ाता-  
है, जैसे संग्रामको देख कायर पुरुष डरै है ।

यस्तुकर्मसुनिष्णातोधाष्टर्याच्छास्त्रवहिष्कृतः ॥

ससत्सुपूजांनाप्रोतिवधंचार्हतिराजतः ॥

अर्थ—जो वैद्य कर्ममें निष्णात अर्थात् क्रिया करनेमें कुशल हो, परन्तु शास्त्र  
न पढ़ाहो, और टीठता पूर्वक वैद्य बने, वह श्रेष्ठ पुरुषोंमें सत्कार नहीं पाता है ।  
और राजा से वधको प्राप्तहोता है । अर्थात् राजाको चाहिये कि ऐसे टीठ वैद्योंको  
प्राणान्त दण्ड दें \*

उभावेतावनिपुणावसमर्थौस्वकर्मणि । अर्द्धवेदधरावेतावेक  
पक्षाविवद्विजौ ॥ औषध्योऽमृतकल्पास्तुशस्त्राशनिविषो  
पमाः । भवन्त्यज्ञैरुपहृतास्तस्मादेतौविवर्जयेत् ॥

अर्थ—इन दोनों अर्थात् न शास्त्रमें कुशल, और न क्रियामें कुशल, ऐसा वैद्य  
वैद्यविद्याके करनेमें असमर्थ जानना । ए दोनों ( शास्त्र पढ़ा और क्रियाओंका  
जाननेवाला ) अर्द्ध आयुर्वेदके धारण करनेवाला इनकी गति नहीं, जैसे एक  
पंखवाला पक्षी कुछ कामका नहीं, उसी प्रकार ये दोनों वैद्य जानने, अमृत तुल्य-  
भी औषध मूढ़वैद्यकी संग्रह करीहुई, शस्त्रकी अनी और विषके तुल्य होतीहै, इसीसे  
ए दोनों ( केवल शास्त्रका ज्ञाता और केवल क्रियाकुशल वैद्य ) वर्जित कहे हैं, अर्थात्  
जो औषधोंके गुणको तो शास्त्रद्वारा जानता है, आर उनके रूपको न जाने तथा  
औषध के रूपको तो जानता हो और उनके संयोगविधि तथा गुणको न जाने वे  
दोनों औषधके लेने देनेमें वर्जित हैं ।

छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु । सनिहन्तिजनंलो  
भात्कुवैद्योऽनृपदोषतः ॥ यस्तूभयज्ञोमतिमान्ससमर्थोऽर्थ  
साधने । आहवेकर्मनिर्वोदुं द्विचक्रः स्यन्दनोयथा ॥

अर्थ—जो वैद्य छेद्यादि ( छेद्य, भेद्य विस्त्राव्य आदि ) और स्नेहादि ( स्नेहन,  
रोपण, वमन, विरेचन आदि ) कर्ममें मूर्ख है अर्थात् छेद्य कर्मोंमें स्नेहादि कर्म  
करे । और स्नेहादि कर्ममें छेद्यआदि कर्म करतेहैं । वे खोटे वैद्य राजाके दोषसे

\* न मालुम हमारे इस देश में जैसे अधर्मी वैद्योंकी अपेक्षा अंग्रेज बहादुरोंने क्यों  
कर रखी है ।

लोभवश हो मनुष्योंको मारते हैं। और जो शास्त्र और क्रिया दोनोंको जानते हैं वो बुद्धिव न् वैद्य प्रयोजन ( आरोग्य ) करनेमें समर्थहैं। जैसे संग्राममें दो पहिये का रथ कर्मसाधकहोता है।

इति श्रीआयुर्वेदोद्दारे बृहन्निघंटुरत्नाकरस्य पूर्वखंडे  
अध्ययनसम्प्रदानीयाध्यायकथनं नाम  
तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥



अथातःप्रभाषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-गुरु कहते हैं कि हे वत्स ! पढ़ेहुए शास्त्रका फिर कहना उसको प्रभाषण कहते हैं वह प्रभाषण है जिस अध्यायमें उसकी हम व्याख्या करेंगे।

॥ प्रभाषणका प्रजोजन दिखाते हैं ॥

अधिगतमप्यध्ययनमप्रभाषितमर्थतः खरस्यचन्दनभा  
रवाहइवकेवलंपरिश्रमकरंभवति ॥

अर्थ-पढाहुआ भी शास्त्र अर्थद्वारा करके अप्रभाषित होवे, अर्थात् जो ग्रंथपढ़ हुआ है परन्तु विना अर्थके जाने वह केवल परिश्रम कारी है। जैसे गधेके ऊपर चन्दन का बोझा केवल भार देनेवाला होता है।

यथाखरश्चन्दनभारवाहीभारस्यवेत्तानतुचन्दस्य । एवंहि  
शास्त्राणिवहून्यधीत्यचार्येषुमूढाः खरवद्वहंति ॥

अर्थ-जैसे चन्दनके भारका वहनेवाला गद्धा, केवल भार ( बोझा ) को जानता है। उस चन्दनके सुगन्धादि गुणोंको नहीं जाने, इसी प्रकार बहुतसे शास्त्रोंकी भी पढ़ा, परन्तु उनशास्त्रोंके प्रयोजनोंको न जाना वह गधेके सदृश शास्त्रोंका बोझा धारण करनेवाला है। अर्थात् उसको शास्त्रज्ञाता नहीं कहना।

तस्मादायुर्वेदशास्त्रांविदिषुणाह्यनुपदपादश्लोकार्द्धश्लोकम  
नुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च ।

अर्थ—इसीसे आयुर्वेद शास्त्रका जाननेवाला, चोंथाई चोंथाई श्लोक आधा आधाश्लोक । एक एक श्लोक । गुरुको शिष्यके प्रति भले प्रकार कहना चाहिये । और शिष्यको सावधान चित्तसे सुनना चाहिये । अथवा गुरुकहै और उसी प्रकार शिष्यसे सुने इसजगे ( अनु ) शब्द वीप्सा वाचक है ।

करमात्सूक्ष्माहि द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकदोषधातुमलाशयम  
 र्मसिरास्रायुसन्ध्यऽस्थिगर्भसम्भवद्रव्यसमूहविभागास्तथा  
 प्रनष्टश्लयोद्धरणव्रणविनिश्चयभग्नविकल्पाः साध्ययाप्यप्र-  
 त्याख्येयताच । विकाराणामेवमादयश्चाऽन्येविशेषाः सहस्र  
 शोयेविचिन्त्यमानाविमलविपुलबुद्धेरपिबुद्धिमाकुलीकुर्युः  
 किंपुनरल्पबुद्धेः । तस्मादवश्यमनुपदपादश्लोकार्थश्लोकम  
 नुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च ।

अर्थ—क्योंकि द्रव्य ( स्थावरादि ) रस ( मधुरादि ) गुण ( गुरु लघु आदि ) वीर्य ( शीतोष्णादि ) विपाक ( कटु मधुरादि , दोष ( वात पितादि ) धातु ( रस रक्तादि ) मल ( दोष, मलमूत्रादि ) आशय ( शारीरोक्त ७ ) मर्म ( १०७ ) शिरा ( ७०० ) नाडी ( ९०० ) सन्धि ( २१० ) हड्डी ( ३०० ) तथा गर्भसम्भव द्रव्य ( शुक्र शोणितादि ) द्रव्यादि विभागके समूह बहुत सूक्ष्म हैं । यह सूक्ष्म शब्द द्रव्य रस आदि प्रत्येकके साथ लगे हैं । तथा प्रनष्ट श्लय ( त्वचा आदिमें चुभाहुआ ) व्रण विनिश्चय ( वातादिभेदसँ १६ प्रकारका ) भग्न ( दो प्रकारका ) इत्यादि विकल्प ( भेद ) आंर साध्य याप्य ( चकार जो है उससँ सुसाध्य और कृच्छ्रसाध्य , इत्यादिनाम हैं जिन्होंके, इसी प्रकार औरभी बहुत पदार्थ हैं । ( जैसें आठ प्रकारके शस्त्र कर्मोंकी विधि ) आदि हजारों प्रकार के हैं । जिनको गुरुसँ विचारभी करे परन्तु विमल और अतितीव्र बुद्धिवान् मनुष्योंकी बुद्धि उनके विचारमें ( गुरुके विना)अतिशय करके व्याकुल होती है अर्थात् द्रव्यादिविभाग ऐसँ सूक्ष्महै कि बडे बडे पण्डितोंकीभी समझमें नहीं आवै । फिर अल्पज्ञ अर्थात् थोड़ीबुद्धिवाले हैं उन्होंका तो क्या कहना है? कोई आचार्य ऐसा अर्थ करता है, कि हजारों वार सुनकर चिंतवनभी करे, परन्तु उन्कोभी नहीं आवै । और जिन्होंने कभी नहीं सुना उन्का तो क्याही कहना है ? इसी कारण इस आयुर्वेदशास्त्रको पद पद, पाद पाद, आधा आधा श्लोक, एक एक श्लोकके क्रमसँ अवश्य गुरु शिष्यके प्रति कहे, और शिष्यसँ फिर सुने ।

अन्यशास्त्रविषयोपपन्नानांचार्थानामिहोपनिपतितानामर्थव  
शास्त्रेषांतद्विद्येभ्य एवव्याख्यानमनुश्रोतव्यम् । कस्मान्नह्येक  
स्मिन्शास्त्रेशक्यःसर्वशास्त्राणामवरोधकर्तुम् ।

अर्थ—अन्य शास्त्रोंके विषय, प्रयोजन वससैं इस आयुर्वेद शास्त्रमें जो आवे, उन्को उन्के मुख्य शास्त्रोंसैं जाने ( अर्थात् जैसें दोषशब्द दुष् वैकृत्ये धातुसैं सिद्ध होता है । तों इस्को व्याकरणसैं जाने । पदार्थोंका वर्णन और तर्कविषय न्यायशास्त्रसैं जाने । ज्योतिषका प्रकरण ज्योतिषसैं । इत्यादि जानने चाहिये ) क्योंकि सर्व शास्त्रोंका विषय एकही शास्त्रमें नहीं आ सके है, जैसें लिखा है ।

एकंशास्त्रमधीयानोनविद्याच्छास्त्रनिश्चयम् ।

तस्माद्बहुश्रुतः शास्त्रविजानीयाच्चिकित्सकः ॥

अर्थ—एक शास्त्रका पढनेवाला वैद्य, उस शास्त्रके यथार्थ सार पदार्थको नहीं जान सके । इसी कारण बहुश्रुत अर्थात् जिसने बहुत शास्त्र सुने हैं वह शास्त्रोंका यथार्थ प्रयोजनको जानेगा । परन्तु ग्रन्थके पढे विना केवल बहुश्रुत वैद्य नहीं हो सक्ता । इस लिये वैद्यको उचित है कि- सर्व शास्त्रोंके विषयोंको सुनता रहे । और पढनेभी चाहिये ।

विना पढे वैद्यकी निंदा ॥

शास्त्रंगुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्यचासकृत् ।

यःकर्मकुरुतेवैद्यःसवैद्योऽन्येतुतस्कराः ॥

अर्थ—जो वैद्य गुरुमुखसैं शास्त्रको पढे, और पाठ तथा अर्थको बारम्बार विचारके चिकित्सा करता है, वोही वैद्य है, और तो चोर है । अर्थात् विना गुरुमुख पढे और विचारे कदाचित् वैद्य न बने, क्योंकि वह विद्या फलीभूत नहीं होती । जैसें लिखा है ।

विद्यांग्रहीतुमिच्छन्तिचौर्यच्छद्मबलादिना ।

नतेषांसिध्यतेकिंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥

अर्थ—जो विद्या चोरीसैं, कपटसैं अथवा जबरदस्तीसैं लेना चाहे उन्की मणि-परीक्षा, मंत्रविद्या और औषध, आदिशब्दसैं ज्योतिष, धर्मशास्त्र, आदिकी सिद्धि नहीं होवे, इसीसैं गुरुमुखसैं पढा शास्त्र फलीभूत होता है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्वारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे प्रभाषणीयाध्याय-

कथनं नामचतुर्थतरङ्गः ॥ ४ ॥

ओ३म् ॥

॥ श्रीशंभुन्दे ॥

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

## अथ शारीरस्थानमारभ्यते ॥

तहां प्रथमशारीरज्ञानका प्रयोजन कहते हैं

दोषधातुमलादीनामाधारस्तुवपुर्यतः ।

तत्सरूपमतोज्ञातुं शारीरं प्राङ्निरूप्यते ॥

अर्थ-वातादि दोष, रसरक्तादि धातु, तथा धातुओंके मल और आदिशब्द-सै मल, मूत्र, नाडी हड्डी आदि जानने । इन सबका आधार शरीर है, उस शरीरके स्वरूप जाननेके अर्थ प्रथम शारीरका निरूपण करते हैं ।

शिष्य-शारीर किस्को कहते हैं? ।

गुरु-शारीर उस विद्याको कहते हैं: जिस्में देहके प्रत्येक अङ्ग और उपांग आदिका वर्णन है ।

जैसे ग्रन्थान्तरमें लिखा है ।

अङ्गप्रत्यङ्गजीवाऽऽशयधमनिशिरास्त्रायुभिः कण्डराभिः ।

पेश्यस्थित्वक्कलाभिर्निजमलसहितैर्द्धातुभिः सन्धिभिश्च ॥

वातैः पित्तैर्वलासैः प्रकृतिभिराखिलैर्मर्मरन्ध्रोपधातुः ।

स्रोतःश्रेणीगुणैरप्यमलतराधियः साभिशारीरमाहुः ॥

अर्थ-अङ्ग, प्रत्यङ्ग, जीव, आशय, धमनी, नस, नाडी, कंडरा, पेसी, हड्डी, त्वचा, कला और इन्होंके मल, रस, रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, शुक्र, सान्ध, वात-पित्त, कफ, प्रकृति, मर्म, छिद्र, उपधातु, स्रोतोंकी ( इन्द्रियोंकी ) श्रेणी, इन सबके वर्णनको उत्तम बुद्धिवाले पुरुष शारीर कहते हैं ।

शिष्य-शारीर विद्याके जाननेसै और क्या प्रयोजन हैं? ।

गुरु-हे पुत्र ! निज और आगंतुज रोगोंका आधार यही देह है । इसीसै इस

देहके रक्षार्थ अनेक महर्षियोंने हेतु, लिङ्ग और औषधवान् त्रिस्कंधवाले इस आयु-वेदके अनेक ग्रन्थ रचे हैं । उन ग्रन्थोंके द्वारा चिकित्सा करके देहकी अवश्य रक्षा कर्त्तव्य है । क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका दाता यही देह है ।

परन्तु वैद्यको लिखा है कि प्रथम निदानपूर्वरूपादिद्वारा रोगका निश्चय करके फिर चिकित्सा करनी चाहिये । परन्तु उसमेंभी विना शारीरक जाने वैद्यको चिकित्सा करनेका अधिकार नहीं है ।

अर्थात् जब तक इस बातको वैद्य भले प्रकार न जानलेवे कि, यह शरीर कौन कौन वस्तुओंसे बना है, और कैसे बना है, तथा कौन कौनसी हड्डी, नाड़ी, नस, आशय आदि देहके किस किस विभागोंमें हैं । और वो कितने हैं । तथा वे कौन कारणोंसे बिगड़ते हैं । और उनके सुधारनेकी क्या रीति है । तब तक चिकित्सा करनेका अधिकारी नहीं है ।

जैसे बृहद्योगतरंगिणीमें लिखा है ।

**यः शारीरमविज्ञायशस्त्रक्षाराग्निकर्मसु ।**

**प्रवर्त्ततेसौखलतिवर्त्मनीवगतेक्षणः ॥**

अर्थ— जो वैद्य शारीर विद्याके ज्ञान विना शस्त्रकर्म ( चीरना फाड़ना ) क्षारकर्म और अग्निकर्म ( दागना आदि ) करता है उसकी चिकित्सा निष्फल होती है । जैसे अंधे मनुष्यका रस्ता चलना । अर्थात् जैसे विना जानीहुई रस्तेमें चलने-वाला अंधा ठोपर खाता है और गिरता है उसी प्रकार विना शारीरकके जाने वैद्य अंधेके समान चिकित्सारूप मार्गमें ठोपर खाता है और गिरता है । ऐसा वैद्य राजा कर्के दंड्य है । जैसे ग्रन्थान्तरमें लिखा है ।

**परिचितआयुर्वेदस्त्रिस्कन्धोयेननैवशारीरम् ।**

**हन्यात्तमाशुनृपतिर्देशान्त्रिःसारयेत्स्वकीयाद्वा ॥**

अर्थ—जिस वैद्यनें त्रिस्कन्धवान् आयुर्वेद तो पढा परन्तु उपेक्षापूर्वक उसमेंसे शारीरकको न पढा ऐसे वैद्यको राजा फांसी आदिसे शीघ्र मारडाले और ब्राह्मण-आदिको अपने राज्यसे निकाल देवे ।

शिष्य—अब आप शारीरकका वर्णन करो ।

गुरु— अब तुमसे हम सुश्रुतोक्त दश अध्यायोंसे शारीरकका वर्णन करते हैं और जो वार्त्ता सुश्रुतसे विशेष हैं वो ग्रन्थान्तरसे कहेंगे तहां प्रथम सर्वभूतचिन्ता-शारीराध्यायको कहते हैं ।

अथातः सर्वभूतचिन्ताशरीरं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—ग्रन्थके प्रारम्भमें मंगलाचरण होता है, ऐसा शिष्टाचार चला आता है—इसीसे अथशब्दके प्रयोगसे मंगलाचरण करके स्थ वर जंगम आदि भूतोंकी अथवा पृथ्वी तेज आदि महाभूतोंकी चिन्ताका प्रतिपादन इसग्रन्थमें करतेहैं । अर्थात् ए कैसें उत्पन्न हुए और इन्होंके कौनसे लक्षण हैं तथा इन्होंके कौनसे कार्य हैं ऐसा विचार इस ग्रन्थमें प्रतिपादन करा है, इसीसे इस ग्रन्थको सर्वभूतचिन्ता कहते हैं । फिर उसको शरीरके अधिकार ( प्रधानता ) करके किया इसीसे उसको शरीर कहते हैं, उस शरीरका व्याख्यान करते हैं [ गयी ] आचार्य [ अथातः सर्वभूतचिन्ता नाम शरीरम् ] ऐसा पाठ कहताहै ।

एतस्यनिबन्धस्यफलंचिकित्सा । चिकित्सापुरुषस्य । पुरुष  
स्तुचतुर्विंशतितत्त्वजीवात्मसमवायस्तस्माच्चातुर्विंशतितत्त्वा  
नांजीवात्मनश्चस्वरूपनिरूपणायसृष्टिक्रममाह ॥

अर्थ—इस निबन्ध ( ग्रन्थ ) का फल चिकित्सा है । वह चिकित्सा पुरुषका करा जाता है । सो पुरुष चौबीस तत्व और जीवात्माके एकत्र होनेको कहतेहैं, इसीसे चौबीस तत्वों\*के और जीवात्माके स्वरूप निरूपणार्थ सृष्टिक्रम कहते हैं ।

परमात्माका रूप ।

आत्माज्योतिश्चिदानन्दरूपो नित्यश्चनिःस्पृहः ।

निर्गुणः प्रकृतेर्योगात्सगुणः कुरुते जगत् ॥

अर्थ—आत्मा जो है सो स्वयंज्योति चिदानन्दस्वरूप इच्छा रहित और निर्गुण है । वह अपनी मायाके संयोगसे इच्छादिगुक्त होकर इस जगत्को उत्पन्न करै है । आत्मा और परमात्मा उसी ईश्वरके नामभेद हैं ।

सत्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतेः समाः ।

साजडापि जगत्कर्त्विपरमात्मचिदन्वयात् ॥

अर्थ—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ए तीनगुण मायाके हैं । और सम हैं ।

\* ( पांचज्ञानेन्द्रि ) नेत्र नाक कान जीभ और त्वचा ( पांच कर्मेन्द्रि ) हाथ पैर वाणी लिंग और गुदा ( पंचमहाभूत ) पृथ्वी तेज वायु जल आकाश ( चार अन्तःकरण ) मन बुद्धि चित्त अहंकार ( पांचसूक्ष्म ) शब्दः स्पर्श रूप रस गंध ए चौबीस तत्व कहते हैं ।

वह माया जड़भी है परन्तु परमात्मारूपी चैतन्यके संबन्धसे जगत्को उत्पन्न करती है । सत्का प्रकाशक सतो गुण कहाता है । और वह सत्व प्रकाशकर्ता ज्ञान-रूप और सुखका कारणरूप है । रज जो है सो रागात्मक है, और दुःखका कारण है । जिस्से मनुष्य ग्लानिको प्राप्तहो वह तमोगुण कहाता है । वह तमोगुण बुद्धिका आच्छादन करताहै, और मोह होनेका कारण है । वे गुण समहैं, अर्थात् प्रकृतिरूप हैं उसी प्रकार न्यूनाधिक होनेसे विकृति कहाते हैं ।

अब सुश्रुतको उपदेश करते हुए धन्वन्तरि प्रकृतिके स्वरूप-

विशेषको कहते हैं ।

**सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूप-  
मखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम ।**

अर्थ-अव्यक्त कहिये मूलप्रकृति सर्वभूतोंका कारण होकर स्वयं अकारण है । तथा कार्य कारण नहीं है अर्थात् अविकृत है । तथा स्वतंत्र सत्व रज तम रूप होकर अव्यक्त, महान्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा ऐसे आठरूपवाली है । तथा सर्व स्थावर जंगमात्मक जगत्के प्रगट होनेका कारण है । इसके कहनेसे कार्य और कारणकी तादात्म्यता दिखाई । जैसे गुडके गणपतीका गुड़ही नैवेद्य उसीप्रकार अव्यक्त होकर व्यक्तका कारण । कोई आचार्य, अव्यक्त महान् अहंकार और पंच महाभूत ए मूलप्रकृतिके आठ रूप कहते हैं । कोई धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य, आठ रूप कहते हैं । कोई मन, बुद्धि, अहंकार और महाभूत ए प्रकृतिके आठ रूप हैं । ऐसा कहते हैं ।

**तदेकंबहूनांक्षेत्रज्ञानामधिष्ठानसमुद्रइवौदकानांभावानाम् ।**

अर्थ-वह अव्यक्त, अविवेच्यावयव होकर सर्व कर्म जीवोंका आश्रय है । जैसे समुद्र, सर्व ( नदी, नद, सरोवर, तलाव आदि ) जलोंका आधार है । कोई आचार्य [ औदकानां भावानाम् ] इस पदका अर्थ चराचर मत्स्य पद्मादिक ऐसा करते हैं ।

शिष्य-एक अव्यक्त अनेकधर्मवाले पुरुषोंका कैसे कारण है ?

गुरु-हे प्रियवर ! अब हम सर्वभूतोंकी उत्पत्ति कहते हैं ।

अव्यक्तसे सर्वभूतोंकी उत्पत्ति ।

**तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यतेतल्लिङ्गकएव ।**

अर्थ—तस्मात् कहिये, आत्माके प्रतिबिंबित जो अव्यक्त तिरमें सत्व, रज, तम, स्वभावात्मक, महत्तत्त्व उत्पन्न होता है ।

तल्लिङ्गाच्चमहतस्तल्लिङ्गकएवाऽहङ्कारउत्पद्यते ।

अर्थ—शुद्ध सतोगुणरूप महत्तत्त्वसे सत्व, रज, तमोगुणात्मक, अहंकार उत्पन्न होता है \* यह चरकमें लिखा है ।

अहङ्कारको त्रिविधत्व कहते हैं ।

सचत्रिविधोवैकारिकस्तैजसोभूतादिरिति ।

अर्थ—[ यहां वैकारिकादि ] संज्ञा पूर्वाचार्योंने व्यवहारके अर्थ करीहै अर्थात् वो अहंकार, सात्त्विक, राजस और तामस ऐसे तीन प्रकारका है । तहां वैकारिक ( सात्त्विक ) तैजस ( राजस ) और भूतादि ( तामस ) जानना ।

अहङ्कारके कार्य्य कहते हैं ।

तत्रवैकारिकादहंकारात्तल्लक्षणान्यवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते ।

अर्थ—राजस सहाय, तथा तामस गुणांशाभियुक्त, सात्त्विक अहंकारसे प्रकाश-लक्षणवाली एकादश इन्द्री उत्पन्न हुई ।

इन्द्रियोंके नाम ।

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्हस्तोपस्थपायुपादम-  
नांसीति । तत्रपूर्वाणिपञ्चबुद्धीन्द्रियाणि इतरा  
णिपञ्चकर्मेन्द्रियाणि।उभयात्मकंमनः ॥

अर्थ—कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, वाणी, हाथ, लिंग, गुदा, पैर, और मन, ये ११ इन्द्री हैं । तिनमें पहिली पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं, तथा पांच कर्मेन्द्रिय हैं । और उभयात्मक ग्यारहवां मन है । अर्थात् मनके बिना दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंका व्यवहार नहीं होता ।

पंचभूतोंसे तन्मात्रोत्पत्ति ।

भूतादेरपितैजससाहाय्यात्तल्लक्षणान्येवपञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते ।

\* शुद्धसत्वस्ययाशुद्धासत्याबुद्धिः प्रवर्तते । ययाभिनन्त्यतिबलंमहामोहमयं तमः ॥ सर्व-  
भावस्वभावज्ञायथाभवातीनिस्पृहः । ययानोपैत्यहङ्कारेनोपास्तेकरण्यया ॥

अर्थ—राजस सहाय, सत्वांशयुक्त तामस अहंकारसे मोहलक्षणवाली पंचतन्मात्रा उत्पन्न होती है । अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये विषय हैं ।

तद्यथा । शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं  
रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति ।

अर्थ—जैसे शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, और गन्धतन्मात्रा ।

विषय कहते हैं ।

तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः ।

अर्थ—तिन तन्मात्राओंके विशेष कहिये अनुभवयोग्य जे दुःख सुख मोह तिनसै युक्त होवे, वे विशेष शब्दादिक ऐसे जानने, तहां अनुद्भूतस्वभाव ऐसी बाह्य इन्द्रियोंसै उन तन्मात्राओंकी योगी ग्रहण करते हैं ।

तन्मात्राण्यविशेषाणि ।

अर्थ—वे तन्मात्रा अति सूक्ष्म है । अतएव अनुभवयोग्य जे सुखादिक धर्म तिनसै युक्त नहीं हो सके ।

भूतोंकी उत्पत्ति ।

तेभ्यो भूतानि व्योमाऽनिलाऽनलजलोर्व्यः ।

अर्थ—तिन शब्दादि तन्मात्राओंसै आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीये पंच महाभूत उत्पन्न हुए । उन्का प्रकार कहते हैं ।

उत्पत्तिप्रकार ।

एकोत्तरपरिवृद्ध्याशब्दादयउत्पद्यन्ते

अर्थ—तिन शब्द तन्मात्रादि पांचोंसै एकोत्तरवृद्धिके क्रमसै शब्दादि गुण-विशिष्ट आकाश आदि पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं । जैसे शब्दतन्मात्रासै शब्द-गुणवाला आकाश प्रगट हुआ । और शब्दतन्मात्रासहित स्पर्शतन्मात्रासै शब्द, स्पर्शगुणवाला वायू ( पवन ) प्रगट हुआ । तथा शब्द, स्पर्श, तन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रासै शब्दस्पर्शरूपगुणवान् तेज ( अग्नि ) प्रगट हुआ । तथा शब्द, स्पर्श, रूपतन्मात्रासहित रसतन्मात्रासै शब्द, स्पर्श, रूप, रसगुणवान् जल प्रगट हुआ । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तन्मात्रा सहित गंधतन्मात्रासै शब्द,

स्पर्श, रूप, रस, गुणवान् पृथ्वी प्रगट हुई । [ पतंजलि मुनिके मतानुसार शब्दादिकोंसैही आकाश आदिकी उत्पत्ति है ] इस प्रकार शब्दादिकोंका आकाशादि महाभूतोंसै अभिन्नत्व सूचना कर उपसंहार कहते हैं ।

## २४ तत्व तथा बुद्धीन्द्रियोंके विषय । एवमेषांतत्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता तत्रबुद्धीन्द्रियाणांशब्दादयोविषयाः ।

अर्थ—इस प्रकार इन तत्वोंकी समग्र चौबीस संख्या कही है । तिनमें श्रोत्रादि बुद्धीन्द्रियोंके शब्दादिक विषय जानने ।

कर्मेन्द्रियोंके विषय ।

## कर्मेन्द्रियाणायथासंख्यंचनादानानन्दविसर्गविहरणानि ।

अर्थ—कर्मेन्द्रियोंके विषय, यथासंख्य अर्थात् यथाक्रमसै कहते हैं । वाणीका विषय भाषण, ( बोलना ) हांथोंका लेना देना, लिंगेन्द्रीका विषयानन्द, गुदाका मलोत्सर्ग, पैरोंका गमन ( चलना ) ऐसै पांच विषय जानने । कहे हुए चौबीस तत्वोंके अन्य धर्म दिखाते हैं ।

८ प्रकृति व १६ विकार.

## अव्यक्तमहानअहङ्कारः पंचतन्मात्राणि चेत्यष्टौप्रकृतयःशेषाःषोडशविकाराः ।

अर्थ—अव्यक्त, महान्, अहंकार, पंचतन्मात्रा ए प्रकृति है । अर्थात् औरोंके कारणभूत है । अव्यक्त प्रथम कहआए है तथापि अव्यक्त प्रकृतिही है इसकी दृष्ट सूचनार्थ पुनः कहा है । [ तन्मात्राणि चेति ] इसमें जो चकार है उस्का [ प्रकृतयः ] इस पदसै संबन्ध है । इससै महदादिक सात प्रकृति होकर कार्यवान् विकृतभी होते है । महदादिकोंको अव्यक्त निरूपित होनेमें प्रकृतित्व और श्रोत्र दि षोडश विकारोंको विकारनिरूपित प्रकृतित्व जानना । [ शेषाः ] कहिये पंचमहाभूत तथा षोडशइन्द्री होनेसै ऐसै चौबीस तत्व हैं । तिनमें बुद्ध्यादिकोंको प्रकाशत्व करके प्रधानता है इसीसै जिनमें प्रकाश और जहां स्थितहोकर प्रकाश करते हैं तथा जिसके अनुग्रहसै प्रकाश करते हैं तत्प्रकारत्रयोंको अधिभूतादि भेदों कर्के कहते हैं ।

स्वस्वश्चैषांविषयोऽधिभूतम् ।

अर्थ—[एषां] कहिये बुद्धि, अहंकार, मन, तथा श्रोत्रादि बुद्धीन्द्रिय और वाणी आदि, कर्मेन्द्रिय और मन इन्का स्वस्वविषय कहिये बुद्धिका विषय निश्चय अहंकारका विषय अधिमंतव्य, मनका संकल्प विकल्प और शब्दादिक विषय ए सर्व पंचमहाभूतोंमें स्वरूपसंबंध करके रहते हैं, अतएव इन्को अधिभूत कहते हैं । कोई आचार्य ऐसा पाठान्तर कहते हैं ।

### [ स्वस्वएषांविषयोऽधिभूतम् ]

अर्थ—बुद्ध्यादि त्रयोदशोंका जो स्वकीय विषय अर्थात् भोगसाधन उसकी अधिभूत संज्ञा जाननी ।

अध्यात्म ।

### स्वयमध्यात्मम् ।

अर्थ—ये बुद्ध्यादिक स्वतः अध्यात्म अर्थात् [ आत्मनि अधि इत्यध्यात्मम् ] आत्मशब्द इस जगे शरीरवाची है अर्थात् बुद्ध्यादिक शरीरका आश्रय करके रहते हैं । इसीसे अध्यात्म कहाते हैं ।

अधिदैवत ।

अधिदैवतञ्च । अथबुद्धेर्ब्रह्मा अहङ्कारस्येश्वरः मनसश्चन्द्रमाः दिशः श्रोत्रस्य त्वचो वायुः, सूर्यश्चक्षुषो रसनस्यापः, पृथिवी घ्राणस्य, वाचोग्निः, हस्तयोरिन्द्रः, पादयोर्विष्णुः, पायोर्मित्रं, प्रजापतिरुपस्थस्योति ॥

अर्थ—देवताओंको इन्द्रियोंके अधिष्ठाता होनेसे अधिदैवत है । उन्को बुद्ध्यादिकोंमें प्रगट करते हैं । जो जो देवता विश्वरूप विष्णुके जिस जिस अवयव ( अंग ) से प्रगट हुआ, वही २ देवता उसी २ अंगका अधिदैवत हुआ । इस कहनेका कारण यह है कि, देवताओंके विना इन्द्रियोंका प्रकाश अर्थात् स्वस्वविषय ग्रहण नहीं होवे । अब उन देवताओंको कहते हैं । बुद्धिका ब्रह्मा, अहंकारका रुद्र, मनका चन्द्रमा, कानोंकी दिशा, त्वचाका पवन, नेत्रोंका सूर्य, जिह्वाका जल, नासिकाकी पृथ्वी, वाणीका अग्नि, हायोंका इन्द्र, पैरोंका विष्णु, गुदाका मित्रदेवता, शिश्र ( लिंग ) का प्रजापति अधिदैवत जानना ।

श्रोत्रादिकोंको अध्यात्मादिस्वरूप ।

यथाश्रोत्रमध्यात्मं श्रोतव्यमधिभूतं दिशोऽधिदैवतम् ।

अर्थ—श्रोत्रेन्द्रियका मांसगोलक जो कर्ण सो अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदैव । त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, पवन अधिदैव । जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, जल अधिदैव । नेत्र अध्यात्म, रूप अधिभूत, सूर्य अधिदैव । नासिका अध्यात्म, गंध अधिभूत, पृथ्वी अधिदैव। इसी प्रकार वाणी, हाथ, लिंग, गुदा, पैर, बुद्धि, अहंकार और मन ए अध्यात्म हैं। इनके भाषण, देना, लेना, विषयानंद, मलोत्सर्ग, गमन, निश्चय करना, अभिमान और मंतव्य ये अधिभूत हैं अर्थात् विषय हैं । और अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, मित्र, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, और चंद्रमा ये क्रमसँ वाणीआदिके अधिदैवत अर्थात् देवता हैं ।

पुरुषलक्षण ।

तत्रसर्वएवाचेतनएषवर्गःपुरुषः पञ्चविंशतितमः  
कार्य्यकारणसंयुक्तश्चेतयितासत्यप्यचैतन्येप्रधानस्य  
कैवल्यार्थप्रवृत्तिरुपदिशन्त्याचार्य्याः ॥

अर्थ—[ सर्वएवैषवर्गः ] कहिये अव्यक्तादि चतुर्विंशति तत्वोंका कारण अव्यक्त अचेतन है । इसीसँ उन्होंके कार्य्य जो महदादिक वेभी अचेतन जानने । इस्में दृष्टान्त जैसेँ, सुवर्णके कटक कुंडलादि [ पुरुषः पंचविंशतितमः ] अर्थात् पुरुष पंचविंशतितत्ववान्, कार्य्यगण कहिये विकारगण महदादिक, और कारण कहिये मूलप्रकृति उसके प्रतिबिंबित होकर उस्में चैतन्यता उत्पन्न करे हैं । वास्तवसँ परमात्मा निर्व्यापार, परन्तु लोहचुंबकके सान्निध्य करके जैसेँ लोहमें चैतन्यता होती है । उसी प्रकार प्रकृति और महदादिकोंमें चेतना प्रगट होती है । पुरुषस्य ] कहिये जीवोंके मोक्षार्थ [ प्रधान ] की अर्थात् मूलप्रकृतिकी आचार्य्य प्रवृत्तिमानते हैं । तात्पर्य्य यह है कि, पुरुष प्रकृतिसंयुक्त होनेसँ उसके जो सत्त्वादि गुण तत्संबन्धी सुख दुःखादि भोग भोगता है । और उसके न्हास होने ( छूटने ) सँ मुक्ति होती है । अचेतन कैसेँ प्रवृत्त होता है इस्में उदाहरण दिखाते हैं ।

क्षीरादिश्चात्रउदाहरन्ति ।

अर्थ—जैसेँ दूध अचेतनभी होकर बछड़ाकी वृद्धिके विषयमें प्रवृत्ति होता है । [ आदि ] शब्द करके अन्य दृष्टान्त दिखाते हैं । जैसेँ, एकान्तमें परम सुंदर कामिनीके सुरत ( क्रीडा ) उत्सवमें सुखातिशयोत्पादनके अर्थ असंज्ञक ( चेतनारहित ) शुक प्रवृत्त होता है ।

प्रकृतिपुरुषका साधर्म्य कहते हैं ।

अतऊर्ध्वप्रकृतिपुरुषयोःसाधर्म्यवैधर्म्यव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—[ अत ऊर्ध्व ] कहिये तत्त्वरूपानन्तर [ प्रकृति ] अव्यक्त और [ पुरुष ] आत्मा, इनके [ साधर्म्य ] समान धर्म तथा ( वैधर्म्य ) विपरीत धर्म, उन्होंको [ व्याख्यास्यामः ] कहिये कहते हैं ।

**उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिङ्गौ उभावप्य-  
नित्यौ उभावप्यनपरौ उभौचसर्वगताविति ॥**

अर्थ—प्रकृति पुरुष समानधर्मवान् हैं इस प्रमाणसें दोनों अनादि, व अनन्त, व अलिङ्ग, तथा दोनों लयरहित, किसी कालमें नाश नहीं होते, तथा दोनों [ अनपर ] कहिये जिनसें कोई परे नहीं तथा दोनों [ सर्वगत ] कहिये सर्वव्याप्त होकर स्थित । यह दोनोंके साधर्म्य कहिये अनादित्व धर्म, दोनोंके बीच समान रहते हैं ऐसें जानना ।

वैधर्म्य कहते हैं ।

**एकातुप्रकृतिरचेतनात्रिगुणाबीजधर्मिणी  
प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणीचेति ॥**

अर्थ—प्रकृति एक होकर, अचेतन, तथा त्रिगुणात्मक कहिये सत्त्वादिगुणत्रयकी समान अवस्थामें रहे हैं । तथा [ बीजधर्मिणी ] कहिये सर्व महदादि विकारोंकी बीजरूप रहे हैं । इसी सें बीजधर्मिणी कहते हैं । “गयी आचार्य” इस प्रकार कहता है कि, प्रलयकालमें भूत, इन्द्री, तन्मात्रा, अहंकार, तथा महान् इत्यादिक प्रकृतिमें बीजरूप करके रहते हैं । इसीसें उसको बीजधर्मिणी कहते हैं । तथा वही प्रकृति सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाला परमात्मा प्रभूके साथ क्षीभकी प्राप्त हो, समान अवस्थाको परित्याग कर तदनन्तर महदहंकारादिकके क्रम करके चराचर जगत्को प्रगट करे है, इसीसे प्रसवधर्मिणी कहते हैं । तथा ( अमध्यस्थधर्मिणी ) कहिये यह प्रकृति सत्त्वादिगुणोंकी राशि हैं, इसीसे सत्त्वादि स्वरूप सुख दुःखानुभव मध्यस्थको नहीं होवे । और इससे सुख दुःखानुभव होते हैं इसीसें अमध्यस्थधर्मिणी कहते हैं ।

जीवोंके लक्षण ।

**बहवस्तुपुरुषाश्चेतनावन्तोऽगुणाऽबीजधर्माणो  
ऽप्रसवधर्माणोमध्यस्थधर्माणश्चेति ॥**

अर्थ—( बहवः ) कहिये, एक कालमें सबका मरण होना असंभव है इसीसें पुरुष परमाणुओंके सदृश अनेक हैं । तथा चेतनायुक्त जानने । यदि पुरुष एकही

होता तो, एक मनुष्यके मरनेमें सर्व मनुष्य मर जावे, इस जगे ( पूः ) शब्द कर्के महदादिकोंका निर्मित सूक्ष्म शरीर, अर्थात् लिंग शरीर जानना । वह लिंग शरीर योगियोंकोही दीखता है । उस लिंग शरीरमें रहे उसको पुरुष कहते हैं । तथा वह पुरुष सत्त्वादि गुण रहित तथा वह पुरुष [ अभीजधर्माणः ] कहिये महाप्रलयमें जैसे महदादिक प्रकृतिके बीच रहते हैं । उस प्रकार पुरुषमें नहीं रहते इसीसै वह पुरुष अभीजधर्मक है । तथा [ मध्यस्थधर्माणः ] कहिये प्रीति, अप्रीति, विषाद, इनसै रहित है इसीसै इच्छा, द्वेषशून्य मध्यस्थके सदृश उदासीन है । अतएव मध्यस्थधर्मवान् पुरुष है ऐसै जानना । इस विषयमें सांख्यमत दिखाते हैं ।

तदुक्तंसांख्ये ।

तस्माद्विपर्ययात्सिद्धंसाक्षित्वमजस्यपुरुषस्य  
कैवल्यंमाध्यस्थंद्रष्टृत्वमकर्तृभावश्चेति ॥

अर्थ— ( तस्मात् ) कहिये प्रकृतिके वैधर्म्यरूप विपरीततासै, परमात्माको साक्षित्व, मोक्षप्रदत्व, मध्यस्थत्व, द्रष्टृत्व, अकर्तृभाव, इत्यादिक सिद्ध हुए । अब कहेहुएको उपसंहार करते हैं ।

महत्तत्त्वको त्रिगुणात्मकत्व ।

तत्रकारणाऽनुरूपंकार्यमिति कृत्वासर्वं  
एवैतेविशेषाःसत्त्वरजस्तमोमयाभवन्ति ॥

अर्थ—कारणके गुण कार्यमें नियम कर्के होते हैं । इसीसै प्रकृतिसै प्रगट भया जो महत्तत्व उसमें सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीन गुण हैं । प्रतिबिंबसंयुक्त जो पच्चीसवां पुरुष उसमेंभी सत्त्वादिक गुण हैं यह दिखाते हैं ।

पुरुषको त्रिगुणात्मकत्व कहते हैं ।

तदंजनत्वात्तन्मयत्वात्तद्गुणाएवपुरुषाभवन्तीत्येकेभाषन्ते ॥

अर्थ—पुरुषके सत्त्वादिक गुण प्रकाशकत्व तथा तन्मयत्व हैं, इसीसै वे सत्त्वादि गुण पुरुषके हैं । ऐसै कोई आचार्य कहते हैं । परन्तु सत्त्वादिरूप कर्के महत्तत्त्वादिकोंमें प्रतिबिंबित हुए इसीसै सत्त्वादिमय पुरुष ऐसे भासते हैं । जैसे तलाव सरोवरके जलमें जलके हिलनेसै सूर्य, चन्द्र, बिजली, आदिका प्रतिबिंबको हिलना कहते हैं । उसी प्रकार सत्त्वादिकोंमें प्रतिबिंबित पुरुष सत्त्वादिमय दीखते हैं । वास्तवसै सत्त्वादिमयत्व पुरुषको नहीं है ।

## तादृशाश्चतन्मयत्वात्तल्लक्षणत्वेनतद्गुणाः सुखिनोदुःखिनोमूढाश्चपुरुषाभवन्ति॥

अर्थ—उसी प्रकार पुरुष सत्त्वादि गुण होनेसे तन्मय है । इसीसे सत्त्वादिकोंके परिणाम सुखी, अथवा दुःखी, मूढ ऐसा भासते है [ गयी आचार्य ] कहता है, कि सत्त्वादिकों कर्के अंजन अर्थात् अभिव्यक्ति जिस्को ऐसा पुरुष है । सत्त्वादिकों कर्के महदादिकोंकी अभिव्यक्ति कैसे होती है ? इस लिये कहते हैं [ तन्मयत्वात् ] अर्थात् महदादिकोंकी कारण सत्त्वादिगुण राशि प्रकृति है । इसीसे वे तन्मय जानने । निर्बिकार पुरुषको तदंजनत्व कैसे है, इसमें दृष्टान्त देते हैं । जैसे स्फटिकमणिमें जपा ( गुड़हर ) पुष्पके समीप धरनेसें लाली दीखती है । उसी प्रकार नीले, पीले, रंग वाले कांचकी फानूसमें दीपक धरनेसें उस फानूसके संबंधसे दीपकके नीले, पीले, रंग बाह्यदृष्टि कर्के प्राप्त होते हैं । अथवा संध्याके समय जैसें सूर्यकी किरणोंसे आकाश रंग जाता है, उसी प्रकार पुरुषमें सत्त्वादिगुण जानने । ये पूर्वोक्त सर्व एक मत दिखातेहुए अपने मतको कहते हैं । [ वैद्यकेतु ]

प्रकृतिको षड्विधत्व दिखाते हैं ।

स्वभावमीश्वरंकालं यदृच्छानियतितथा ।  
परिणामञ्चमन्यन्ते प्रकृतिंपृथुदर्शिनः ॥

अर्थ—स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, नियति और परिणाम, ऐसें दीर्घदर्शी प्रकृतिके छः भेद मानते हैं । तिनमें स्वभाववादी सर्व जगत्के उत्पन्न होनेका स्वभावही मानते हैं ।

स्वाभाविक मत १ ।

कःकण्टकानांप्रकरोतितैक्ष्ण्यंविचित्रचित्रंमृगपाक्षिणाञ्च ॥  
माधुर्यमिशौकटुतामरीचेस्वभावतःसर्वमिदंप्रवृत्तम् ॥

अर्थ—कंटकको ( कांटेन् ) में तीक्ष्णता कौन करता है । पशु पाक्षियोंको चित्रविचित्र कौन करता है । ईस्त्रमें मिठास और मीरचमें चरपरापना कौन करता है । यह सब धर्म स्वभावहीसें प्रवृत्त हैं \* ईश्वरवादी स्थावर, जंगम प्राणियोंको स्वर्ग नर्कका कारण ईश्वर मानता है । यथा—

ईश्वरमत २ ।

अज्ञोजन्तुरनीशोयमात्मनःसुखदुःखयोः ।  
ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्स्वर्गनरकमेवच ॥

अर्थ—अज्ञानी प्राणी अपने आत्मके सुख दुःखके दूर करनेको असमर्थ है । ईश्वरका प्रेरित स्वर्ग अथवा नर्कको जाता है । काल कारण वादी सर्व जगत्का कारण काल है ऐसा मानता है इसमें प्रमाण दिखाते हैं । जैसे ज्योतिर्वित् श्रीपति लिखता है ।

कालको ईश्वरत्व ३ ।

प्रभवविरतिमध्यज्ञानसन्ध्यानितान्तं  
विदितपरमतत्त्वा यत्रतेयोगिनोऽपि ॥  
तमहमिहनिमित्तं विश्वजन्माऽत्ययाना—  
मनुमितमभिवन्दे भग्रहैःकालमीशम् ॥

अर्थ—जिस कालरूपी ईश्वरके विषे, परमार्थवेत्ता ऐसे योगीभी उत्पत्ति, नाश और मध्य, इन्का जो ज्ञान उस कर्के रहित होते हैं । तथा विश्वके उत्पत्ति, पालन और नाशका हेतु तथा अश्विन्यादि नक्षत्र और सूर्यादि ग्रहों कर्के जिस्का अनुमान होता है, ऐसे कालरूपी ईश्वरको हम नमस्कार करते हैं ।

यादृच्छिकमत ४ ।

योयतोभवतितत्रनिमित्तमितियादृच्छिकाः ॥

अर्थ—जो जिस्से होता है, उसीमें उसका निमित्त होता है । ऐसे यादृच्छिक मतावलंबी कहते हैं, इसमें दृष्टांत यथा [ तृणारणिनिमित्तोवह्निरिति ] जैसे तृणरूप अरणिसँ अग्नि उत्पन्न होकर उस अरणीको जलाता है ।

नियतिमत ५ ।

पूर्वजन्मार्जितधर्माधर्मौनियतिः ॥

अर्थ—पूर्वजन्मोपार्जित धर्म अधर्मही सर्व जगत्के कारण है । ऐसे नियतिवादी कहते हैं ।

परिणामवादिमत ६ ।

प्रधानमेवमहदहङ्कारादिरूपतयापरिणतंसर्वस्य  
निमित्तमितिपरिणामवादिनः ॥

अर्थ—प्रधानही महदहंकारादि रूप कर्के परिणाम पाते हैं । इसीसे वेही सबके कारण ऐसे परिणामवादी कहते हैं । ये पूर्वाक्त सर्व मत स्वमतानुकूलही है । कारण यह है कि आयुर्वेद सर्व परिषदस्वरूप है । इसीसे सुश्रुताचार्यनेभी स्वभावादि भेदसे षड्विध प्रकृतिके उदाहरण कहे हैं । तिनमें स्वभावको कारणत्व कहते हैं ।

स्वभावमत ।

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेवजायतेइति ॥

अर्थ—अंग और प्रत्यङ्ग इन्होंकी उत्पत्ति स्वभावसैही होती है ।

पुनश्च ।

सन्निवेशःशरीराणां दन्तानांपतनोद्गमौ ।

तलेष्वसम्भवोयच्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥

अर्थ—सर्व शरीरके अवयवोंकी रचना, तथा दांतोंका गिरना और ऊगना, तथा हाथपैरोंकी हथेली, और तरुआ, इन्में केशों ( बालों ) की अनुत्पत्ति ( न होना ) यह सब स्वभावसैही होता है ।

पुनश्चोक्तम् ।

धातुषुक्षीयमाणेषु वर्द्धतेद्वाविमौसदा ।

स्वभावंप्रकृतिंकृत्वा नखकेशावितिस्थितिः ॥

अर्थ—धातुओंके क्षीण होनेपरभी दो वस्तु सदैव बढ़ती है । एक नख ( नाखून ) और दूसरे बाल, इस्मेंभी कारण स्वभावही है ।

पुनरप्याह ।

निद्राहेतुस्तमःसत्वं बोधनेहेतुरुच्यते ।

स्वभावएववाहेतुर्गरीयान्परिकीर्तितः ॥

अर्थ—निद्राका कारण तमोगुण और जाग्रदवस्थाका कारण सतोगुण अथवा स्वभावही दोनों अवस्थाओंका कारण कहा है ।

अन्यत्राप्युक्तम् ।

स्वभावाल्लघवोमुद्गास्तथालावकपिञ्जलाः ।

स्वभावाद्गुरवोमाषा वराहमहिषादयः ॥

अर्थ—जैसे मूंग, लवापक्षी और तीतरपक्षी, ये स्वभावसैही हलके होतेहैं । और उरद, सुअरका मांसतथा भैंसा, आदि ऐं स्वभावसैही भारी हैं । ईश्वर-भी अग्निरूप होकर जीवतादिकोंका कारण कहाहै ।

अग्निको ईश्वरत्व तथा जीवत्व कहते हैं ।

जाठरोभगवानग्निरीश्वरोन्नस्यपाचकः ॥ सौक्ष्म्याद्रसानाददा  
नोविवेक्तुं नैव शक्यते ॥ अग्निमूलं बलंपुंसांबलमूलंच जीवितम् ॥

अर्थ—स्वतंत्र तथा षड्गुणैश्वर्यसंपन्न ऐसा ईश्वर जाठराग्नि होकर अन्नका परि-  
पाक करे हैं। तथा रसोंका ग्रहण करे हैं। परंतु सूक्ष्म है इसीसैं दीखता नहीं।  
बलका मूल कारण अग्नि, तथा बलमूलक जीवित है ऐसैं जानना।

कालभी प्रकृतिहीका भेद है ।

महाभूतविशेषास्तु शीतोष्णद्वयभेदतः । कालइत्यध्यव-  
स्यन्ति न्यायमार्गाऽनुसारिणः ॥

अर्थ—शीत, उष्ण इन भेदों कर्के, आकाशादि महाभूतविशेषोंका नैय्यायिक  
काल कहते हैं। वोह काल वातादिदोषोंके संचय, तथा प्रकोप और उपशम इन्हों-  
के द्वारा हेतु हैं ऐसैं इसी सुश्रुतके सूत्रस्थानकी छटवी ऋतुचर्याध्यायमें  
कहा है।

यादृच्छिकमतका प्रमाण ।

यदृच्छा पुनरलक्षितआकस्मिकःसर्वपदार्थाविर्भावः ॥

अर्थ—यदृच्छा कहिये अलक्षित होकर आकस्मिक ऐसा जो पदार्थका आवि-  
र्भाव उसैं यदृच्छा कहते हैं।

उक्तञ्च ।

यदृच्छयाचोपगतानिपाकंपाकक्रमेणोपचरोद्विधिज्ञः ॥ इत्यादि ।

अर्थ—सर्व वस्तु मात्र यदृच्छाकर्के परिणाम पाते हैं। इसीसैं विचारवान् पुरुष-  
को उसी क्रम कर्के आचरण करना चाहिये।

कर्मवादी मतका प्रमाण ।

ब्रह्मस्त्रीसज्जनवतो परस्वहरणादिभिः ।

कर्माभिःपापरोगस्य प्रादुःकुष्ठस्यसम्भवम् ॥

अर्थ—ब्राह्मणकी स्त्रीमें गमन करनेसैं, तथा परद्रव्यहरण इत्यादि पापकर्मोंके  
करनेसैं, कुष्ठादिक रोग उत्पन्न होते हैं। इसीसैं कर्मही कारण है।

परिणामको हेतुत्व कहते हैं।

जाठराग्नेस्तुसंयोगाद्यदुदेतिरसान्तरम् । रसानांप

रिणामान्ते सविपाकइतिस्मृतः ॥ ताएवौषधयः  
कालपरिणामात्परिणतवीर्याभवांतिहेमन्तेभवन्त्या  
पश्चसम्यक्परिणतस्याहारस्यसारोरसः । एवंबा-  
लानामपि वयःपरिणामाच्छुक्रप्रादुर्भावोभवति ॥

अर्थ-जठराग्निके संयोग कर्के अन्नसैं जो रसांतर उत्पन्न होता है । [ रस क-  
हिये उत्तम प्रकार जीर्ण हुआ आहारका सारांश ] रसके परिणाम होनेसैं उसको  
विपाक कहते हैं । उसी प्रकार औषधिकालपरिणाम कर्के पूर्ण वीर्य होती है ।  
जैसें हेमंत ऋतुमें उदक पूर्णवीर्य होते हैं । उसी प्रकार बालकोंके अवस्थाके  
परिणामकर्के वीर्यप्रादुर्भाव होता है । इस प्रकार स्वभावादिकोंको प्रकृतित्व वैद्यशास्त्र  
संमत है । ऐसें दिखाया है इस प्रकार वैद्यकानुमत पूर्वोक्त प्रकृति दिखाई है ।  
स्वभावादिक षट्पदार्थ अष्टरूपा प्रकृतिके पर्याय हैं । अथवा अन्य अर्थाभिधायित्व  
कर्के भिन्नार्थ है । यदि भिन्नार्थ है ? तो भिन्नार्थमेंभी दो भेद हैं । फिर भिन्नार्थ  
स्वभावादिकों कर्के क्या है । कुछ स्वभाव कर्के कुछ ईश्वर ऐसें मिलनेसैं जगत्का आरंभ  
होता है । अथवा स्वभावादिक पृथक् २ ही विश्व प्रगट करनेमें समर्थ है, इस  
प्रकार अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं [ जेजटाचार्यने ] ईश्वरको त्याग स्वभावादि-  
कोंको उस स्वरूप कर्के अवभास होनेसैं अभिन्न प्रकृतित्व प्रतिपादन करा है ।

प्रकृतिही कारण ऐसें स्वमत कहते हैं ।

परमार्थतस्तुगुणत्रयात्मिकाप्रकृतिरेवकारणं  
यतःस्वभावादयश्चत्वारःप्रकृतिपरिणामस्य  
धर्मविशेषतयाप्रकृतावेवान्तर्भवन्ति ।

अर्थ-वास्तव अर्थसैं तो गुणत्रयात्मिका प्रकृतिही सर्व जगत्का कारण है ।  
स्वभावादि चार प्रकृति परिणामके धर्मविशेष हैं । अर्थात् प्रकृतिमेंही इन्होंका  
अंतरभाव जानना ।

स्वभावमतखण्डन ।

स्वभावस्तावत्सत्त्वरजस्तमसांतद्विकाराणांपृथिव्यादिमहा  
भूतानाञ्चयादृशोविशेषइतिप्रकृतिपरिणामादन्योनभवति ॥

अर्थ-स्वभाव तो साकल्य कर्के सत्त्वादि गुण और उनके विकार पृथिव्यादि पंच-  
महाभूत इन्का परिणामविशेष कहाता है । इसीसैं स्वभाव प्रकृतिसैं भिन्न नहीं है ।

नियतमतखण्डन ।

नियतेरपिपूर्वकृतसदसत्कर्मरूपायारजोगुणपरिणामरू-  
पत्वेननप्रकृतेरन्यत्वम् ॥

अर्थ—नियति, पूर्वजन्मकृत जो शुभाऽशुभ कर्मके सदृश होता है, इसीसे रजोगुणके परिणाम रूप होनेसे वह नियति प्रकृतिसे भिन्न नहीं है ।

कालमतखण्डन ।

कालोपिचन्द्रार्कादिगतिःक्रियालक्षणः तथाचमहाभूता  
नांपरिणामविशेषाःशीतोष्णाभवन्ति ।

अर्थ—कालभी चन्द्र सूर्यादिक ग्रहों कर्के परिछिन्न इसीसे क्रियालक्षण तथा महाभूतोंके परिणामविशेष शीत, उष्ण, काल होता है इस्में पूर्वोक्त प्रमाण है । यथा “ महाभूतविशेषास्तुशीतोष्णद्वयभेदतः । कालइत्यध्यवस्यन्तिन्यायमार्गाऽनुसारिणः” अर्थात् शीत उष्णके भेद कर्के जो महाभूतविशेष उसको नैयायिक काल कहते हैं ।

क्रियात्वेनरजोगुणपरिणामित्वान्महाभूतविशे-  
षत्वाच्चनकालस्यप्रकृतेरन्यत्वम् ।

अर्थ—कालको क्रियात्व है । अर्थात् रजोगुणका परिणाम काल और महाभूतोंका परिणामविशेष शीत उष्णादि काल, इसीसे प्रकृति भिन्नकाल नहीं है । ईश्वर, पञ्चीसतत्वमय पुरुष और प्रकृतिका क्षोभक है । इसीसे उसको कारण कहते हैं । यदृच्छाभी आकाशादि महाभूतोंका परिणामविशेष है । इसीसे प्रकृति भिन्न नहीं है ।

इस शास्त्रका सिद्धान्त ।

किञ्चास्मिन्शास्त्रेप्रकृतिपरिणामात्मकंविश्वंपव्यते ॥

अर्थ—इस शास्त्रमें प्रकृतिपरिणामात्मक विश्व है, ऐसे कहा है ।

शरीर कहते हैं ।

सात्त्विकंकायलक्षणं राजसंकायलक्षणम् । तथासत्त्व  
बहुलमाकाशमित्यादि ।

अर्थ—काय कहिये शरीर, यह सतोगुणरजोगुणात्मक, तथा आकाश सत्वगुण-  
प्रधान है ।

सर्वमतोंकी ऐक्यता ।

तेचस्वभावादयःसमुच्चयेनजगदुत्पत्तौकारणभूताः ।  
तत्रप्रकृतिपरिणामस्योपादानत्वंस्वभावादीनांपञ्चानानिमित्तकारणत्वमिति ।

अर्थ—वे स्वभावादिक सर्व मिलकर जगत् उत्पन्न करते हैं । परन्तु उनमें प्रकृतिपरिणाम उपादान कारण है और इतरस्वभावादिक पांच निमित्तकारण जानने ।

तन्मयान्येवभूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत् ॥

अर्थ—आकाशादि पंचमहाभूत तन्मय है । अर्थात् अवकाश, घन, उष्ण, द्रव, स्वभावादि धर्मविशेष कर्के युक्त जो प्रकृतिपरिणाम उस कर्केवे पंचमहाभूत तन्मय होकर तद्गुणविशिष्ट है । क्योंकि सत्वबहुल आकाशयुक्तत्व ऐसैं पूर्व कह आए हैं; गयीआचार्य ( ततोजातानिभूतानि ) ऐसा पाठ कहकर व्याख्या करता है कि, स्वभावादिक निमित्तकारण उनसैं तथा प्रकृतिके परिणाम उपादान कारण उनसैं हुए जो आकाशादि पंचमहाभूत वे कारण गुणात्मक है ।

चिकित्सास्थानको दिखाते हैं ।

तैश्चतल्लक्षणःकृत्स्नो भूतग्रामोव्यजन्यत । तस्योपयो  
गोभिहितश्चिकित्सांप्रतिसर्वदा । भूतेभ्योहिपरत  
स्मान्नास्तिचिन्ताचिकित्सिते ॥

अर्थ—आकाशादिक भूतोंसैं स्थावर, जंगम, पृथिव्यादिकोंके जो लक्षण स्थिर, गुरु, कठिनत्वादि तिन कर्के युक्त ऐसैं अनेक प्रकारके भूतग्राम, प्रगट होते हैं । ( तस्य ) कहिये पंचमहाभूतारब्ध, तथा परस्परुपयोगी ऐसा भूतग्राम, उस्का प्रयोजन सर्व काल रोगनाश करनेके विषयमें कारण है । इसीसैं [ भूतेभ्यःपरम् ] अर्थात् पंचमहाभूतारब्ध जो भूतग्राम तिनसैं परे जे अव्यक्तादिक उनमें रोगापनयन विषयमें विचार नहीं है । जैसैं प्रथमाध्यायमें लिखा है ।

तत्रास्मिन्पञ्चमहाभूतशारीरसमवायःपुरुषइत्युच्यते । तस्मिन्पुरुषःप्रधानंतस्योपकरणमन्यत् ॥

अर्थ—यहां पंचमहाभूतोंका जो शरीरसमवाय अर्थात् शुक्रशोणितका संयोगविशेष उस्को पुरुष ऐसैं कहते हैं । उस पुरुष प्रकृतिका साधनभूतदेहमें चिकित्सा

होता है । इसीसैं देहसैं परे जे अव्यक्तादिक तिनका चिकित्सामें प्रयोजन नहीं है । यह अर्थ अन्यत्रभी दिखाया है ।

**यतोभिहितंतत्सम्भवद्रव्यसमूहोभूतादिरुक्तः ॥**

अर्थ—इस सूत्रकी बीजाध्यायमें व्याख्या करी है । परन्तु यहांभी शिष्यबो-  
धार्थ थोड़ासा व्याख्यान करते हैं । जिसकारण पुरुषके शुक्र शोणित संयोग कर्के  
पंचमहाभूत प्रधान स्थूलदेह वह भूतादि कहिये चिकित्साके उपयोगी हैं । इस मनु-  
ष्य देहसैं व्यतिरिक्त अन्य देह उपयोगी नहीं है ।

वैद्यशास्त्रप्रतिपाद्य कहते हैं ।

**भौतिकानिचेन्द्रियाण्यायुर्वेदेवर्ष्यन्ते । तथेन्द्रियार्थाः ।**

अर्थ—भौतिक इन्द्री और इन्द्रियोंके अर्थ इस आयुर्वेदमें वर्णन करे जाते हैं ।  
तहां श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण ये इन्द्री हैं । और शब्द, स्पर्श, रूप, र-  
स, गंध, ये इन्के अर्थ हैं ।

तथा चोक्तम् ।

**पञ्चभूतात्मकत्वेपि । श्रोत्रेखंस्पर्शनेवायुर्दर्शनेतेज  
उत्कटम् ॥ सलिलंरसनेभूमिघ्राणेतज्ज्ञैर्निरूपिता ॥**

अर्थ—सर्व इंद्रियोंको पंचमहाभूतात्मकत्व यद्यपि है, तथापि कर्णइन्द्रीमें आ-  
काश मुख्य, तथा त्वचामें पवन, नेत्रमें तेज, जीभमें जल और नाकमें पृथ्वी ये  
पंचभूत मुख्य हैं ।

विषयोंको पांचभौतिकत्व कहते हैं ।

**शब्दोवैहायसःस्पर्शो वायवीयःप्रकीर्तितः ।**

**रूपमाग्नेयमाप्यस्तु रसोगन्धस्तुपार्थिवः ॥**

अर्थ—शब्द आकाशसंबंधी, स्पर्श पवनसंबंधी, रूप तेजसंबंधी, रस जल-  
संबंधी और गंध पृथ्वीसंबंधी है, ए शब्दादिक पंचमहाभूतोंके विकार हैं । परंतु  
जिस महाभूतका जिस इन्द्रीमें अधिकता है, वोह शब्दादि गुण उसी इन्द्री कर्के  
ग्रहण कराजाय है । ऐसैं दिखाते हैं ।

स्वविषयग्राहकत्व और अन्यनिषेध कहते हैं ।

**इन्द्रियेणेन्द्रियार्थन्तु स्वंस्वंगृह्णातिमानवः ।**

**नियतंतुल्ययोनित्वान्नाऽन्येनाऽन्यमितिस्थितिः ॥**

अर्थ-मनुष्य इन्द्रियों कर्के तिसी तिसी विषयका ग्रहण करता है। जैसे नेत्र नियम कर्के रूपकोही ग्रहण करते हैं उसी प्रकार शब्दको कान, स्पर्शको त्वचा, रसकी जीभ, गंधको नासिका नियम पूर्वक ग्रहण करे हैं। इस विषयमें हेतु कहा है। [ तुल्ययोनित्वात् ] अर्थात् अपनी अपनी योनिके प्रति जाते हैं, जैसे जल जलके प्रति जाता है। [ नान्येनान्यम् ] अर्थात् अन्य इन्द्रियों कारण भूतके विना दूसरा विषयका ग्रहण नहीं होवे।

अन्यसांख्यादिकोंसेक्षेत्रज्ञकेविषयमेंआयुर्वेदकाभेदकहतेहैं।

नचायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्तेसर्वगताः क्षेत्रज्ञाःकितर्ह्यायुर्वेदे  
असर्वगताःपुरुषाउपदिश्यन्तेसत्वोपाधित्वात् ॥

अर्थ-आयुर्वेदशास्त्रमें सत्वोपाधि होनेसे क्षेत्रज्ञको सर्वगत नहींमानते किंतु असर्वगत मानतेहैं। सांख्यादिशास्त्रोंमें क्षेत्रज्ञको सर्वगत मानते हैं। क्षेत्रज्ञ एकदेशीहै इसीसे अनित्यता आई इससे [ नित्याश्चोपदिश्यन्तेइतिशेषः ] अर्थात् पुरुष नित्य है ऐसे मानते हैं।

नित्यत्व कैसें सो दिखाते हैं।

असर्वगतेषुक्षेत्रज्ञेषुनित्येषुनित्यपुरुषव्यापकत्वाद्धेतूनुदाहरन्ति ॥

अर्थ-असर्वगत जो क्षेत्रज्ञ नित्य उसमें नित्यत्वप्रतिपादक ऐसें सत्कारणत्वा-दिक हेतुओंको दिखाते हैं।

तथाहि। सन्नात्मासुखादिलिङ्गोपलम्भात् अविष-  
योकारणश्चअतो नित्यः ।

अर्थ-आत्मा सत्तावान् कहिये भूत भविष्यत् वर्तमान् कालमें हैं इसका यह कारण है कि, उसको सुख दुःखादि लिंगोंका अनुभव होता है। इसीसे अदृश्य होकर कारण है, अतएव नित्य है।

इस विषयमें भोजका वचन।

शुभाशुभाभ्यांकर्मभ्यां प्रेरणान्मनसोगतेः ॥ देहादेहांतरंया  
ति कृमिवच्छाश्वतोव्ययः ॥ नित्यइत्युच्यतेसद्भिः सन्नका  
रणवान्यतः ॥ इति ।

अर्थ-शुभाऽशुभ कर्म कर्के तथा मनकी गतिकी प्रेरणासें यह जीव पहली देहसें दूसरी देहमें जाता है। इस्में दृष्टान्त है। जैसे, तिनकाकी गिनार दूसरे

तिनकाको पकड़ पहले तिनकाको छोड़ती है, उसीप्रकार पुरुष देहांतरको प्राप्त होता है । इसीसैं पुरुष शाश्वत, अव्यय नित्य और अकारण है, ऐसैं बुद्धिमान् कहते हैं ।

सर्वमतोंका उपसंहार ।

आयुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तेषु असर्वगताः क्षेत्रज्ञानित्याश्चेति ।

अर्थ—आयुर्वेदशास्त्रके सिद्धान्तमें पुरुष, असर्वगत, तथा नित्य ऐसा है । \* असर्वगत जीवोंको सर्वयोनि गमन कहते हैं ।

तिर्य्यग्योनिमानुषदेवेषु संसरन्ति धर्माऽधर्मनिमित्तम् ॥

अर्थ—तिर्यक् योनि, पशु पक्ष्यादिक तथा मनुष्य, देव, उन्हांमें पुरुष जन्म पाते हैं । उस विषयमें धर्म और अधर्म कारण है । परंतु तिर्यक् योनिमें बहुत जन्म होते हैं । इसीसैं सूत्रमें तिर्यक् पद प्रथम धरा है । तदनंतर मनुष्य धरा अर्थात् पाप पुण्य समान होनेसैं मनुष्यदेह मिलताहै । और पुण्यप्रधान देवदेह कभी किसीको मिलती है, इसीसैं देवशब्द मूलमें सबसे पिछाड़ी धरा है ।

इस विषयमें अनुमान ।

ते एतेऽनुमानग्राह्याः सुखदुःखोपलब्धिरूपेण लिङ्गे-  
नाव्यभिचारिणा ।

अर्थ—वे आत्मा सुख दुःखोपलब्धिरूप लक्षणद्वारा अनुमान करके ग्रहण करे जाते हैं । आत्माके विना सुख दुःखका अनुभव नहीं होता है । जैसे, धूँआसैं अग्निका अनुमान होता है । उसी प्रकार सुख दुःखोपलब्धि आत्मज्ञानका कारण होता है ।

प्रत्यक्षप्रमाणसैं क्षेत्रज्ञकैसैं नहीं जाना जायसोकहते हैं ।

परमसूक्ष्माश्चेतनावन्तः । शाश्वतलोहितरेतसः  
सन्निपातेषु अभिव्यज्यन्ते ।

अर्थ—क्षेत्रज्ञ परम सूक्ष्म परमाणुके सदृश चेतनावन्त नित्य ऐसा हैं, इसीसैं दीखता नहीं है \* यदि ऐसा है तो उत्पन्न कैसे होता है सो कहते हैं, ( लोहितरेतसः ) अर्थात् आत्मा परम सूक्ष्म ऐसा होनेसैं पंचभूतात्मक जो शुक्र शोणित उन्हांके संयोगसैं प्रगट होता है । जैसे त्रसरेण अन्यत्र नहीं दीखे परंतु झरोखामें सूर्यकी किरणोंसैं स्पष्ट दीखता है ।

वैद्यककेअनुमतपुरुषोंकीषड्धातुकसंज्ञाकहतेहैं ।

एषएवचसूक्ष्मपुरुषाणांभूतानाञ्चसंयोगोवैद्यके  
षड्धातुकःपुरुषःपरिभाषितः ॥

अर्थ—वैद्यकशास्त्रमें सूक्ष्मपुरुष तथा पंचमहाभूतोंके संयोगको षड्धातुकपुरुष कहते हैं । षड्धातुक यह संज्ञा कैसे करी इसलिये प्रथमाध्यायका प्रमाण देते हैं ।

यतोभिहितंपञ्चमहाभूतशरीरिसमवायःपुरुषइति ॥

अर्थ—पंचमहाभूत और शारीरि कहिये आत्मा, इनके संयोगको पुरुष कहते हैं ।

उसपुरुषकोऔषधोपयोगित्वकहतेहैं ।

सएषकर्मपुरुषश्चिकित्साऽधिकृतः ॥

अर्थ—वह पुरुष कर्मफल भोक्ता है इसीसे चिकित्सित कर्मफलकोभी प्राप्त होता है ।

मनकेसंयोगकर्केजीवकेगुणहोतेहैं ।

तस्यसुखदुःखेच्छाद्वेषोप्रयत्नःप्राणापानौ  
उन्मेषनिमेषौबुद्धिर्मनःसंकल्पविचारणा  
स्मृतिविज्ञानमध्यवसायोपलब्धिश्चगुणाः ।

अर्थ—सुख, दुःख, इच्छा, वैर, कार्यारंभकउत्साह, वक्रसंचारीपवन, अधोवायु, नेत्रोंका खुलना मूदना, बुद्धि, ( निश्चयात्मक अंतःकरणविशेष ) मन ( संकल्प-विकल्पात्मक ) संकल्प ( ऊहाऊपोह ) स्मृति ( अनुभूत पदार्थस्मरण ) विज्ञान ( शिल्पशास्त्रादिकोंका बोध ) अध्यवसाय ( बुद्धिका व्यापार ) और उपलब्धि ( शब्दादिविषयोंकी प्राप्ति ) ए कर्म पुरुषके सोलह गुण हैं और इन्हींको कला कहते हैं । ' गयी ' आचार्य कहता है कि, सुख ( प्रीति ) दुःख ( अप्रीति ) इच्छा ( सुखहेतुकी लालसा ) द्वेष ( दुःखहेतुकी मनसैं अनिच्छा ) प्रयत्न ( मनप्रवृत्तिक उत्साह ) मन ( संकल्पात्मक लक्षण ) उस मनका संकल्प ( विषयोंमें दोष गुण कल्पना ) बाकी सब अर्थ समान है ।

प्रकृतिके गुण ।

सत्वंरजस्तमस्त्रीणिविज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः ॥

तैश्चयुक्तस्यचित्तस्यकथयाम्यखिलान्गुणान् ॥

अर्थ—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ए तीन प्रकृतिके गुण हैं । इन तीनों गुण युक्त ऐसा जो चित्त उसके संपूर्ण गुण पृथक् पृथक् कहते हैं ।

सतोगुणयुक्तमनकेलक्षण ।

आस्तिक्यंप्रविभज्यभोजनमनुत्तापश्चतथ्यंवचो  
मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्चकरुणाज्ञानञ्चनिर्दम्भता ।  
कर्मानिन्दितमस्पृहंचविनयोधर्मःसदैवादरा  
देतेसत्वगुणाऽन्वितस्यमनसोगीतागुणाज्ञानिभिः ॥

अर्थ—आस्तिक्य ( अर्थात् धर्म मोक्ष यह लोक परलोक आदिको मानना ) अन्नका विभागीकरण भोजन करना, क्रोध रहित, सत्य वचन, मेधा ( ग्रंथाकर्षण शक्ति ) बुद्धि ( तत्कालविषया ) धृति ( मनका नियमन ) अथवा धृति ( भूत, प्रेत, काम, क्रोध और लोभादिकोंके आवेशसै राहित्य ) क्षमा, करुणा, आत्म-ज्ञान, निष्कपट, ( निन्दित कर्मोंमें घृणा विनय, सदैव धर्मका आदर, ( अथवा निद्रारहित, स्पृहारहित और निष्काम, ऐसी क्रियाको कर्म कहते हैं ) उसका करनेवाला, ए सतोगुण युक्तवाले मनके गुण हैं ।

रजोगुणयुक्तमनकेलक्षण ।

क्रोधस्ताडनशीतताचबहुलंदुःखंसुखेच्छाऽधिका  
दम्भः कामुकताप्यलीकवचनंचाधीरताऽहंकृतिः ॥  
ऐश्वर्यादभिमानिताऽतिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं  
प्रख्याताहिरजोगुणेनसहितस्यैतेगुणाश्चेतसः ॥ २ ॥

अर्थ—क्रोध, किसीको मारना अत्यंत दुःख, सुखकी अधिक इच्छा, दंभीकामी, अथवा कामना राखनी, मिथ्या बोलना, अधीरता, अहंकारी, ऐश्वर्यसैं अधिक अभिमान, अत्यंत आनन्द, सर्वत्र देश विदेशोंमें डोलना ' अधृति अर्थात् चित्तका डमाडोल होना, अकरुण, अर्थात् निर्दयता, यह सुश्रुतमें अधिक पाठ है ' ये लक्षण रजोगुणयुक्त चित्तके हैं । दंभ नाम बकवृत्ति अर्थात् बगला भगतको कहते हैं ।

तमोगुणयुक्त मनके लक्षण ।

नास्तिक्यंसुविषण्णतातिशयिताऽऽलस्यंचदुष्टामर्तिः  
प्रीतिर्निन्दितकर्मशर्मणिसदानिद्रालुताऽहर्निशम् ।

अज्ञानंकिलसर्वतोपिसततंक्रोधान्धतामूढता  
प्रख्याताहितमोगुणेनसहितस्यैतेगुणाश्चेतसः ॥

अर्थ—नास्तिकता (यह लोक परलोक, शास्त्र और ईश्वर नहीं है) अत्यंत खेद, अति आलस्य, दुष्टबुद्धि, निन्दित कामोंमें तथा निन्दित सुखमें निरंतर प्रीति, दिन-रात निद्रावाच, अज्ञान, निरंतर सर्वत्र क्रोधसे अंध होजाना, मूढता ये सब तमोगुणसहित चित्तके लक्षण हैं ॥ अब पंचमहाभूतोंके गुण कहते हैं ।

आकाशके गुण ।

आन्तरिक्षाःशब्दःशब्देन्द्रियंसर्वच्छिद्रसमूहोविविक्तताच ।

अर्थ—आकाशके गुण । शब्द तथा शब्देन्द्रिय, तथा सर्वच्छिद्रसमूहोंकी विविक्तता अर्थात् सर्वशरीरसंबंधी जे पदार्थ शिरा, स्नायु, हड्डी, पेशी, इत्यादिक उनको जातिव्यक्ति कर्के पृथक् २ करना इतने गुण हैं ।

वायुके गुण ।

वायव्याःस्पर्शःस्पर्शेन्द्रियंसर्वचेष्टासमूहःसर्वशरी  
रस्पन्दनंलघुताच ।

अर्थ—वायुके गुण । स्पर्श, स्पर्शेन्द्रिय, तथा सर्व चेष्टासमूह, तथा सर्व देहका स्पन्दन होना, तथा लघुता ( हलकापना ) ये गुण जानने ।

तेज ( अग्निके गुण ) ।

तैजसाःरूपंरूपेन्द्रियंवर्णःसन्तापोभ्राजिष्णुताप  
क्तिरमर्षःतैक्षणमाशुक्रियाशौर्यविक्रान्तता ।

अर्थ—तेजके गुण कहते हैं । रूप, नेत्रइन्द्री, वर्ण, संताप ( गरमी ) कांति, पक्ति ( उदराग्नि कर्के अन्नका पाक ) अमर्ष ( क्रोध ) तैक्षण ( तीखापना ) तथा सर्व कामोंमें शीघ्रता और शूरवीरता ।

जलके गुण ।

आप्यारसोरसनेन्द्रियंसर्वद्रवसमूहोगुरुताशैत्यंस्नेहोरेतश्च ।

अर्थ—जलके गुण कहते हैं । रस, जिह्वा इंद्री, सर्वद्रवसमूह, गुरुता ( भारीपना ) शैतलता, स्नेह और रेत ।

पृथ्वीके गुण ।

पार्थिवास्तुगंधोगन्धेन्द्रियंसर्वमूर्तिसमूहोगुरुताचेति ।

अर्थ—पृथ्वीके गुण कहते हैं । गंध, गंधेंद्रिय ( नासिका ), सर्व मूर्तिसमूह तथा भारीपना और कठिनता ये पृथ्वीके गुण कहे । अब आकाशादि पंचमहा, भूतोंको सत्त्वादिगुणमयत्व दिखाते हैं ।

आकाशके धर्म ।

तत्रसत्त्वबहुलमाकाशप्रकाशकत्वात् ।

अर्थ—आकाश प्रकाशक है, इसीसैं उसमें सतोगुण बहुत है ।

पवनके धर्म ।

रजोबहुलोवायुश्चलत्वात् ।

अर्थ—वायु चंचल हैं, इसीसैं उसमें रजोगुण अधिक है ।

अग्निके धर्म ।

सत्त्वरजोबहुलोग्निः प्रकाशकत्वाच्चलत्वाच्च ।

अर्थ—तेज प्रकाशक और चंचल है इसीसैं उसमें सतोगुण रजोगुण बहुतहै ।

जलके धर्म ।

सत्त्वतमोबहुलाआपःस्वच्छत्वात्प्रकाशकत्वाद्भ्रुवाचरणत्वात् ।

अर्थ—जल स्वच्छ, तथा प्रकाशक, तथा भारी हैं । इसीसैं उसमें सतोगुण और तमोगुण बहुत है ।

पृथ्वीके धर्म ।

तमोबहुलापृथ्वीअत्यन्तावरकत्वात्

अर्थ—पृथ्वी अत्यंत भारी है । इसीसैं उसमें तमोगुण बहुत है ।

अथ पञ्चीकरणम् ।

अन्योन्यानिप्रविष्टानिसर्वान्येतानिनिर्दिशेत् । स्वे

स्वेद्रव्येषुसर्वेषांव्यक्तंलक्षणमिष्यते ॥

अर्थ—आकाशादि पञ्चमहाभूत अन्योन्य मिले हुए हैं उन्होके लक्षण अपने अपने द्रव्योंमें प्रगट हैं ( वेदान्तके मतसैं पंचीकरण इस प्रकार है जैसे मानो कि, एक पृथ्वी सेरभरकी है । उसके आध २ सेरके दो विभाग कीने, उनमेंसैं आध सेरके १ टुकडेकी तो पृथक् धरा, और दूसरे आध सेरके टुकडेके आध आध पावके ४ टुकडे करके, अग्नि, जल पवन और आकाश, इन चारोंमें मिलाय दिये

तो देखो पृथ्वीमें आधा तो अपनाही विभाग है और चार विभाग आध २ पावके अग्नि, जल, पवन और आकाशके हैं । इसी रीतसें अग्निमें आधा अपना हिस्सा है बाकीके जल, पवन, आकाश और पृथ्वीके विभाग हैं, इसी रीतसें औरभी जल, पवन, आकाशके विभाग करनेसें और उसी रीतसें आपसमें मिलनेसें पंचीकरण कहाते हैं । )

कारणगुणकीकार्यमेंव्याप्तिकहतेहैं ।

**तत्रशब्दगुणमाकाशंमारुतेप्रविष्टंशब्दस्पर्शगुणत्वमारुतस्य ।**

अर्थ—वैद्यकका मत कहते हैं । तहां शब्दगुण आकाश, पवनमें प्रवेश हुआ, इसीसें वायुमें शब्द गुण आकाशका है । तथा स्वनिष्ठ स्पर्श ऐंसें दो गुण हैं । तथा आकाश पवन ये दोनों अग्निमें प्रवेश हुए, इसीसें शब्द, स्पर्श और तेजका गुण रूप, ये तीन गुण अग्निमें हैं । आकाश, वायु, तेज, ये जलमें प्रवेश हुए, इसीसें शब्द, स्पर्श, रूप तथा स्वनिष्ठ रस, ऐसे चार गुण जलमें हैं । तथा आकाश, वायु, तेज, जल, ये पृथ्वीमें प्रवेश हुए उसीसें पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा स्वनिष्ठ गुण गंध ऐंसें पांच गुण हैं ।

**एवंव्योमानिलानलजलोर्वीणांपरस्परप्रवेशकत्वानुप्रवेश  
कत्वेतावत्स्थितानामन्योन्यानुप्रवेशकत्वमुक्तम् ।**

अर्थ—इस प्रकार आकाशादि पंचमहाभूत परस्पर आपसमें प्रविष्ट अनुप्रविष्ट होकर रहते हैं उनको अन्योन्यानुप्रविष्टत्व कहा है । अन्य आचार्य ( अन्योन्यानुप्रविष्टानि ) इस पदका औरही प्रकारसें व्याख्यान करते हैं ।

**तत्राकाशोपिभूरेणुरूपेणावस्थितासूक्ष्मरूपेण  
तोयेतेजोनुगतस्यमारुतस्यसंचरणादाकाशोपव  
नदहनतोयान्यपिबोद्धव्यानि ।**

अर्थ—तहां आकाशमें, पृथ्वी अणुरूप करके रहती है । और पवन सूक्ष्मरूप करके रहती है । जल और तेज इन्में संचार करते हैं । इसीसें आकाशमें पवन, तेज, जल और पृथ्वीभी रहती है ऐसा जानना ।

**तथावायावप्याकाशंव्यवस्थितंव्यापकत्वात्**

अर्थ—उसी प्रकार व्यापक होनेसें पवन आकाशमें स्थिति है ।

इस विषयमें प्रमाण ।

## अनुष्णशीतस्पर्शोऽयंद्रव्यज्ञैर्वायुरिष्यते । दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥

अर्थ—न गरम और न शीतल ऐसा जिसका स्पर्श, उसको नव द्रव्यके जानने-वाले पवन कहते हैं परंतु वह पवन, तेजयुक्त होनेसे गरमी करती है। अर्थात् गरम मालूम होती है। और सोम ( चन्द्र ) के संबन्धसे शीतलता करती है। अर्थात् सूर्यके सम्बन्धसे गरमी करे है और चंद्रके संबन्धसे शीतलता करे है। अथवा सोम ( जलसंयुक्त होनेसे ) सरदी करे है। इससे यह सिद्ध हुआ की पवन, जल और तेज मिली हुई है। तथा पवनमें पृथ्वी परमाणुरूपसे रहती है। उसी प्रकार व्यापक होनेसे, अग्निमें आकाश भी रहता है। और प्रेरणात्मक होनेसे उस अग्निमें पवन भी रहता है। तथा अग्निमें जल भी अनुमान होता है। इस्का कारण यह है, कार्य और कारणका ऐक्य है। अर्थात् जल कारण और अग्नि कार्यरूप है। जलसे अग्नि प्रगट होती है, ऐसे अनेक प्रमाण हैं। दूसरे समुद्रमें वाड़वाग्नि रहती है ऐसे लोकप्रसिद्ध भी है।

### भूमिरपिभौमादिरूपेणतेजसिव्यवस्थिता ।

अर्थ—पृथ्वी भी भौमादिरूप करके तेजमें रहती है।

अथ कार्यमें कारणकी व्याप्ति ।

### अथतोयद्रव्येप्याकाशंवाव्यवस्थितंव्यापकत्वात्

अर्थ—व्यापक होनेसे जलमें आकाश भी रहता है तथा पवन तरंग बबूला आदिका कारण है इसीसे जलमें रहती है। अग्नि भी जलसे उत्पन्न है इसीसे उसमें रहती है।

इस्में प्रमाण ।

### अद्भ्योग्निर्ब्रह्मनक्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् ।

### एवंसर्वत्रगंतेजःस्वासुयानिषुशाम्यति ॥

अर्थ जलसे अग्नि, ब्रह्मसे नक्षत्र, पत्थरसे लोह, उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सर्वत्र रहनेवाले तेज, अपने २ कारणमें शांत होते हैं।

पृथ्वी जलमेकैसैरहती है।

### भूमिरपितोयद्रव्येऽणुरूपेणव्यवस्थिता

अर्थ—पृथ्वी जलमें परमाणुरूपसे रहती है।

## तथापृथिव्यामपिआकाशपवनदहनतोयान्येवंभू मेःप्रविभागीयेपञ्चविधायाभूमेःप्रोक्तत्वात् ।

अर्थ—पृथ्वीमें भी आकाश, पवन, अग्नि, और जल रहते हैं । इस्में प्रमाण है कि, जिस स्थलमें पृथ्वीके विभाग कहे हैं, उस जगे पांच प्रकारकी भूमि कही है । इस प्रकार पंचमहाभूतोंको अन्योन्यानुप्रविष्टत्व कहा है । इसीको वेदांतवादी पंचीकरण कहते हैं । ( स्वस्वद्रव्येषु सर्वेषामिति ) अर्थात् अपनी २ द्रव्यमें आकाशादिकोंके प्रगट लक्षण हैं । जैसे आकाश द्रव्यमें आकाशलक्षण शब्द प्रगटहै । उसी प्रकार सर्वत्र जानना सबका उपसंहार ।

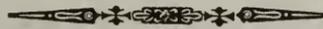
## अष्टौप्रकृतयःप्रोक्ताविकाराः षोडशैवतु । क्षेत्रज्ञश्चसमासेनस्वतन्त्रपरतन्त्रतइति ।

अर्थ—अव्यक्त, महान्, पंचतन्मात्रा इस प्रकार आठ प्रकृति कही हैं । तथा कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग, और मन, ये ग्यारे इन्द्री । तथा आकाश, पवन, अग्नि, जल, और पृथ्वी, ये पंचमहाभूत, ये सोलह विकार कहे । स्थूल, सूक्ष्म, शरीरको जो जाने उसको क्षेत्रज्ञ और उसी क्षेत्रज्ञको पुरुष कहते हैं । इस प्रकार पञ्चीस तत्वका निरूपण [ स्वतंत्र ] कहिये शल्यतन्त्र-सें और [ परतंत्र ] कहिये शालाक्यतंत्रसें अथवा परतंत्र कहिये सांख्यशास्त्रमें करा है ।

## शारीरेनिबन्धसंग्रहस्य भाषायां सर्वभूतचिंता शरीराध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्नघंठुरत्नाकरे सौश्रुतशारीरे पंचमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

## अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



चिकित्सामें पुरुषको मुख्यता है, वह पुरुष शुक्रशोणितके संयोगसें प्रगट होता है, यह प्रथम अध्यायमें कहि आये हैं । परंतु इस जगे शुद्ध शुक्रशोणित ( रुधिर ) से गर्भोत्पत्ति होती है इसीसें शुक्रशोणितकी शुद्धीका प्रतिपादन करते हैं ।

## अथातः शुक्रशोणितशुद्धिशरीरं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—पञ्चीस तत्व निरूपणके अनंतर, शुक्रशोणित शुद्धीशरीरको कहते हैं ।

शुक्रशोणित इन्होंमें शोणितशब्द स्त्रियोंके आर्तव संज्ञक रुधिरका बोधक जानना । शुद्धि कहिये दुष्ट वात पित्त कफादिकोंका मिलाप न होना, वह शुद्धि वातादिकों सँ दुष्ट हुआ जो शुक्र उसीकी जानना ।

दुष्टशुक्रके लक्षण ।

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपगंध्यनल्पग्रन्थिपूतिपू  
यक्षीणरेतसःप्रजोत्पादनेनसमर्थाः ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ, रुधिर इनसँ दूषित वीर्य जिस्का, तथा कुणप ( मुर्दा-कीसी ) गंधि, बहुत तथा गांठदार, दुर्गंधवान्, राधके सदृश, अर्थात् दुर्गंधयुक्त राधके समान, तथा क्षीणवीर्य ऐसैं पुरुष संतान प्रगट नहीं कर सक्ते । तहां कहते हैं कि, यह जो लिखा है कि दुष्टवीर्य वाले, संतान नहीं कर सक्ते सो नहीं है, किंतु शुद्ध संतानोत्पत्ति नहीं कर सक्ते, ऐसा जानना क्योंकि रोगोंसँ जो अशुद्ध तथा वातादिसँ दूषित शुक्रवालोंकेभी जन्मांध, बहरे, गूंगे, लंगड़े लूले, आदि पुत्र होते हैं ।

वातादिसँदुष्टशुक्रकेलक्षण ।

तत्रवातवर्णवेदनंवातेन, पित्तवर्णवेदनंपित्तेन, श्लेष्मवर्ण  
वेदनंश्लेष्मणा, शोणितवर्णपित्तवेदनंरक्तेन, कुणपगंध्यन  
ल्पश्चरक्तेन, ग्रंथिभूतंश्लेष्मवाताभ्यां, पूतिपूयनिभंपित्त  
श्लेष्मभ्यां, क्षीणशुक्रंप्रागुक्तं, पित्तमारुताभ्यांमूत्रपुरीष  
गंधिःसर्ववर्णवेदनंसन्निपातेन ।

अर्थ—दुष्ट वातादि दोष उन्होंमें, वादी सँ दुष्टशुक्र वातके वर्ण काला लाल आदि रंग, और तोदादि पीड़ासहित होता हैं । यद्यपि वातका कोई वर्ण नहीं है, तौ भी वातसँ दूषित मनुष्यमें कृष्ण लाल कृष्ण अरुणादि वर्ण भासते हैं, वे वायुके वर्ण जानने ।

शिष्य एक वातसँ अनेक पीड़ा तोदभेदादिक कैसें होती है ?

गुरु—इस्का यह कारण है कि “बहुकारणंप्रकोपस्य” अर्थात् वायुकोप होनेके अनेक कारण है । इसीसँ अनेक प्रकारके विकार होते हैं । गंध पवनकी नहीं है, तथा पित्त कर्के दूषित हुए शुक्रमें गरमी, दाह और पीत नील वर्ण तथा मुर्देकीसी गंध, तथा दुर्गंधयुक्त राधके सदृश होता है । और कफसँ दूषित शुक्रका कफकासा वर्ण, और कफके विकारयुक्त होता है । तथा रुधिरसँ दूषित शुक्र लाल रंग,

और पित्तविकारोंसें युक्त होता है । तथा रुधिरसें दूषित शुक्रमें मुर्देकीसी गंध, और बहुत होता है । ( यद्यपि रुधिर औरोंको दूषित नहीं कर सक्ता, क्यों कि रुधिरहीको वात पित्त और कफ ये तीनों दोष दूषित करते हैं । परंतु इस जगे रुधिरसें दूषित शुक्रका ऐसैं व्यवहार होता है । जैसें घृत, तैलसें दुग्ध हुआ, तात्पर्य यह है कि जैसें घृत तैल आदि अग्निसैं तत्ते होकर दूसरे मनुष्यको पजारतेहैं । उसी प्रकार रुधिर, वातादिकों सें दूषित होकर शुक्रको दूषित करता है ) कफ और वादीसें दूषित शुक्र गांठवाला होता है । तथा पित्त कफसें दूषित शुक्र दुर्गंधयुक्त राधके समान होता है। तथा पित्त वायु सें दूषित कफ क्षीण होता है। इस क्षीण-शुक्रके लक्षण प्रथम सूत्र स्थानमें दोष धातु मल क्षय वृद्धि विज्ञानीयाध्यायमें कह आयेहैं । सन्निपातसें दूषित शुक्र मूत्र विष्ठाकीसी दुर्गंधवाला, तथा पूर्वोक्त सर्व दोषोंके विकारयुक्त होता है ।

दुष्टशुक्रमेंसाध्यासाध्य ।

तेषुकुणपग्रन्थिपूयक्षीणरेतसःकृच्छ्रसाध्याः मूत्रपु  
रीषरेतसोऽसाध्याः ।

अर्थ—पूर्वोक्त दूषित शुक्रोंमें कुणप, ग्रंथी, पूय, और क्षीण, ये चार प्रकारके शुक्र कृच्छ्रसाध्य । और मूत्र पुरीष गंधवाले शुक्र असाध्य । और बाकीके साध्य हैं ।

आर्त्तवके दोष ।

आर्त्तवमपित्रिभिर्दोषैःशोणितश्चतुर्थैःपृथग्द्वंद्वैः  
समस्तैश्चोपसृष्टमबीजंभवति ।

अर्थ—आर्त्तवभी, वात पित्त कफ दोषोंसें, और रुधिरसें, तथा द्वंद्वज दोषोंसें, तथा समस्त दोषोंके मिलनेसें, दूषित हुआ गर्भ धारण करनेके योग्य नहीं रहता है ।

आर्त्तवकी परीक्षा ।

तदापिदोषवर्णवेदनाभिज्ञैर्यम् ।

अर्थ—दूषित आर्त्तवके लक्षण पूर्वोक्त वातादिकोंके वर्ण और विकार करके जानने, अर्थात् जो शुक्रके वर्णभेद कहे हैं वही आर्त्तवकेभी जानने ।

आर्त्तवकेसाध्यासाध्यलक्षण ।

तेषुकुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यंसाध्यम  
न्यच्चेति । आर्तवदोषायाप्यानभवन्ति ॥

अर्थ—आर्तव दोषोंमें कुणपगंधि आर्तव, ग्रंथि आर्तव, दुर्गंधयुक्त आर्तव, राधके सदृश आर्तव, क्षीण आर्तव, मूत्र और पुरीष गंध वाले आर्तव, ये असाध्य हैं । और बाकीके साध्य जानने । आर्तव दोष व्याधिके स्वभावसैं याप्य नहीं होते, अब आगे शुक्रदोषकी चिकित्सा कहते हैं ।

शुक्र दोष चिकित्सा ।

तेष्वाद्यान्शुक्रदोषांस्त्रीन्स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ।

क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथाचोत्तरवास्तिभिः

अर्थ—तिन शुक्र दोषोंमें, पहले कुणपगंधादिक तीन दोष, घृतादि स्नेह पान, पसीने, वमन, विरेचन, निरूहबस्ति, अनुवासनबस्ति, तथा उत्तरबस्ती कर्के दूर करे । ( निरूहादिबस्ति कहिये मउ मूत्रादि द्वारोंमें होकर चिकनाई मिली कषायादिकोंकी पिचकारी छुटानेके प्रयोग ) ये सब यथा यथा प्रकर्णमें वर्णन करे जावेंगे । पुनः उत्तरबस्ति कहनेसैं विशेष कर्के उत्तरबस्तिको सर्वउपचारोंमें श्रेष्ठता दिखाई है ।

“ कुर्याद्वातादिभिर्दुष्टैस्वौषधम् ।

अर्थ—वातादि दूषित शुक्रमें वातादिहरण कर्ता औषध करनी चाहिये. तहां वातकुपितमें वातहरण कर्ता चिकनाई घृतादि गरम औषध, खट्टे, नॉनके पदार्थ आदि, पित्त कुपितमें, मीठे, शीतल, कसेले, आदि पदार्थ, कफ कुपितमें कडुए, रूखे, कसेले पदार्थ देने चाहिये ।

विशेष करके वातज शुक्र दोषमें, यव, थूहर, सैंधानॉन, त्रिफला, और खटाई, डालके घृतमें सिद्ध करे इस्में जवाखार मिलाके पीना चाहिये । तथा वेलगिरी, विदारीकंद, करके सिद्ध घृतमें दूध मिलाय कैं निरूहणबस्ती देवे । तथा दूध, कुलीरके रस करके सिद्ध कराहुआ तेलसैं अनुवासन और उत्तरबस्ति करनी चाहिये ।

पित्त दूषित शुक्रमें, तालमखाने, गोखरू, और गिलोय, इन्के काटेसैं सिद्ध और मूर्वा, मुलेटी डाला हुआ घृतको पीवे । तथा निसोतका चूर्ण मिला घृतसैं जुल्लाव देना, छाल, और श्रीपर्णीके रससैं सिद्ध घृतमें दूध मिलाय निरूहबस्ती, मुलेटी, काकमुद्गा करके सिद्ध तैल करके अनुवासन और उत्तरबस्ति कर्म करने चाहिये ।

कफ दूषित शुक्रमें, पखानभेद, दुपतिया और आमले इन्के काढे कर्के सिद्ध, पीपर और मुलहठीका चूर्ण, मिला हुआ घृतका पान । मैनफलके काथ करके वमन कराना, दंती और वायविडंगके चूर्णको तैलमें मिलायकर पीने कर्के जुल्लाम देना । अमलतास और मैनफलके काढेसँ निरूह बस्ती, मुलहठी, पीपल करके सिद्ध करे हुए तैलसँ अनुवासन, और उत्तरबस्ती लेनी चाहिये ।

कुणपरेतवालेपुरुषकीचिकित्सा ।

पाययेत्तनरंसर्पिर्भिषक्कुणपरेतसि ।

धातकीपुष्पखदिरोदाडिमाज्जुनसाधितम् ॥

पाययेदथवासर्पिः शालसारादिसाधितम् ।

अर्थ—जिस पुरुषके वीर्यमें मुद्दे कीसी दुर्गंध आवे, उसको वैद्य धायके फूला, खैरसार, अनारकी छाल और कोहकी छालका काढा अथवा कल्क करके सिद्ध करा गौका घृत पिवावे । अथवा रालका कल्क काढा आदि करके उसमें घृतको सिद्ध कर पिवाना चाहिये ।

ग्रंथिवानरेतकीचिकित्सा ।

ग्रन्थिभूतेशठीसिद्धं पालाशेवापिभस्मनि ॥

अर्थ—जिस्का वीर्य गांठसदृश होवे, उसको कचूरके कल्क अथवा काथ करके सिद्ध कराहुआ घृत पिवावे । अथवा ढाकके खार कर्के सिद्ध घृतको पिवावे । तहाँ प्रमाण कहते हैं, ढाककी भस्म १ आढक, ( २५६ तोले ) जल ६ आढकमें ओटावे, जब चतुर्थांश रहे, तब उसको उतारके कपड़ेमें छान लेवे पीछे गौघृत १ प्रस्थ उसमें मिलाय, चूल्हे पर चढावे जब सब जल जरजाय घृत मात्र शेष रहे तब उतार लेवे, इस प्रकार घृत सिद्ध सर्वत्र करना चाहिये ।

पूर्यरेतकीचिकित्सा ।

परूषकवटादिभ्यांपूर्यप्रख्येचसाधितम् ।

अर्थ—परूषकादि “परूषकवराद्राक्षा ” तथा न्यग्रोधादिगण “ न्यग्रोधपिप्पले-ति ” ये प्रथम सूत्र स्थानमें कहि आए हैं, इन औषधोंके कल्क, अथवा काढेमें घृत सिद्ध करके राधके समान वीर्यवाले पुरुषको पीना चाहिये ।

क्षीणरेतउपचार ।

प्रागुक्तंवक्ष्यतेयच्चतत्कार्यक्षीणरेतसि ।

अर्थ—जिस्का वीर्य क्षीण हो गया हो, उस पुरुषको पूर्वोक्त स्वयोनिवर्द्धन द्रव्य, तथा आगे वाजीकरणाधिकारमें क्षीण वीर्यवालोंको जो औषध कहेंगे, वो देनी चाहिये ।

मलगंधिशुक्रकाउपाय ।

विट्प्रभेतुपिबेत्सिद्धं चित्रकोशीरंहिंगुभिः ।

अर्थ—जिस पुरुषका वीर्य मल मूत्रकी गंधसमान हो गया हो, उस पुरुषको चित्रक, उसीर, और हींग, इन्का कल्क अथवा काटा कर उसमें गौका घृत सिद्ध कर पीवे । यद्यपि मल मूत्र गंधवान् शुक्र रोग असाध्यहै तथापि विष्ठादि गंध दूर करनेको यह उपचार करे । सर्वथा यह रोग नहीं जाता, परंतु किसी आचार्यका यह मत है कि मल गंधवान् शुक्र साध्य हैं, इससे इस जगे मल शब्दसे विष्ठाका ग्रहण है, मूत्रका नहीं है । अर्थात् मल गंधवान् शुक्र अच्छा होसक्ता है परंतु मूत्र गंधवान् शुक्र तो सर्वथा असाध्य है । इसीसे ग्रंथ कर्त्ताने इका उपायभी नहीं कहा । मल गंधवान् शुक्र पर वैद्य संग्रहवाला कुछ विशेष लिखे है\*

शुक्रदोषमेंसामान्यउपचार ।

स्निग्ध्वान्तं विरक्तञ्च निरूहमनुवासितम् ।

योजयेच्छुक्रदोषार्त्तसम्यगुत्तरवस्तिना ।

अर्थ—जिस पुरुषका वीर्य कुणप ( मुर्दे ) किसी दुर्गंधयुक्त हो जावे उस पुरुषको स्नेह, वमन, विरेचन, निरूहवस्ति, अनुवासनवस्ति, और उत्तरवस्ति इत्यादि उपचारको करना चाहिये ।

शुद्धशुक्रके लक्षण ।

स्फाटिकाभंद्रवांस्निग्धं, मधुरंमधुगंधिच शुक्रमिच्छति ।

अर्थ—जो शुक्र स्फाटिकसदृश निर्दोष हो कर कुछ पतला तथा स्निग्ध, मधुर, तथा जिस्में मद्यकीसी गंध आती होवे, वह शुक्र गर्भधारण विषयमें उत्तम जानना । “केचित्तु तैलक्षौद्रनिभंतथा” कोई आचार्य कहता है कि तैल तथा छोटी मक्खीके सदृश जो शुक्र है वह गर्भ धारणके योग्य है ।

तथाचवाग्भटे ।

शुक्रंशुक्लंगुरुस्निग्धं मधुरंबहुलंबहु ॥ घृतमाक्षिकतैलाभंसद्गर्भायेति

अर्थ—जो शुक्र सपेद, भारी, चिकना, मीठा, बहुत, तथा घृत, सहत और तेल-कीषी कांतिवाला उत्तम गर्भके अर्थ होता है । वह दूधमें जैसे घृत रहता है, ईखमें जैसे रस रहता है, इसी प्रकार शुक्र, देहमें शुक्रधरा कलाका आश्रय कर्के सर्वागमें व्याप्त होकर स्थित है । वह मज्जा, मुष्कस्तनोंमें हर्षके होनेसे, संघट्टन कर्के हृदयमें आवेश होनेसे, पिंडीभूत होकर अंगसे अंगमें जाता है तब गर्भ होता है, इस जगे घृतके तैल, सहतके सदृश कहनेका औरभी प्रयोजन है अर्थात् जो शुक्र घृतके समान होता है उससे जो गर्भ रहे वह गौरवर्ण होता है । सहतके वर्ण शुक्रसे गर्भका रंग स्याम अर्थात् कुछ ललाँही लिये स्याम हांता है और तेलके समान जो शुक्र होता है उससे जो गर्भ रहे वह काले रंगका होता है । और मिश्रितवर्णसे गर्भकेभी मिश्रित वर्ण होते हैं ।

- आर्तवदोषके सामान्य उपचार ।

विधिमुत्तरवस्त्यन्तं कुर्यादात्तवसिद्धये।

स्त्रीणांस्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्तवार्तिषु ।

कुर्यात्कल्कान्पिचूंश्चापिपथ्यान्याचमनानिच ।

अर्थ—स्त्रियोंके वात, पित्त, कफ और रुधिर इन चार आर्तवपीडाओंके दूर करनेको स्नेह, वमन, विरेचनादि, उत्तरवस्तीपर्यंत उपचार वातादि रोगोंके तारतम्यके सदृश करे । तथा व तादि दोष हरण कर्ता द्रव्योंके कल्क, काढेसे, योनि-का प्रक्षालन करना लेप, तथा पिचू कर्म करे ( पिचु कहिये तेल, कल्क, काढा आदि कर कपडा भिजो उसका फाया धरनेका प्रकार ) यह प्रकार नेत्र, तलुआ, योनि, मुख इत्यादिक ठिकाने करते हैं, सो आगे लिखेंगे तथा वातादि हारक काढा, घृतादि स्नेह करके निरूहवस्ती, अनुवासनवस्ती प्रयोग करने चाहिये । तथा उसी प्रकार सर्व प्रकारोंमें उत्तरवस्ति प्रयोग करने चाहिये । गयी आचार्य (चतसृषु) इस पदमें चतुर्थशोणित प्रकृतिभूत जो बस्तगंधी उसको शोणितार्तवार्ति मानता है । क्योंकि यह बस्तगंधी शोणितार्ति मात्र साध्य है, कुणपगंधि आर्तव साध्य नहीं है, इसीसे वातादि दोषहरण कर्ता द्रव्य संबंधी कल्कादिक योनिदोष प्रकरणोक्त देने चाहिये ।

आर्तवदोषमें सामान्य उपचार ।

ग्रन्थिभूतेपिवेत्पाठां ऽयूषणंवृक्षकानिच । दुर्गन्धेषूयसं  
काशे मज्जतुल्येतथार्तवे ॥ पिवेद्भद्रश्रितंकाथं चन्दन

## क्वाथमेवच । शुक्रदोषहराणाञ्च यथास्वमवचारणम् ॥ यो गानांशुद्धिकरणं शेषास्वमप्यार्त्तवार्त्तिषु ।

अर्थ—जिस स्त्रीका आर्त्तव गांठदार हो गया हो, वह पाठ, सोठ, भिरच, पीपल और कूडाकी छाल, इन औषधोंका काढा करने पीवे । और मूत्रपुरीषगंधि, तथा दुर्गंधियुक्त, राधके समान, कफ पित्त करके दुष्ट तथा मज्जाके सदृश, अर्थात् त्रिदोषसैँ दूषित, ऐसा आर्त्तव होनेसैँ सपेद चंदन तथा लाल चंदनका, काढा करके पीवे । ( गयी आचार्य ) कहता है कि, सपेद चंदन, और लाल चंदनके कहनेसैँ इस जगह गोरोचन लेना चाहिये, क्योंकि लाल चंदनमें दुर्गंध दूर करनेकी शक्ति नहीं है । इसीसैँ गोरोचन लेवे, तथा दुर्गंध कहिये कुणपगंधि, ऐसा व्याख्यान करता है । यद्यपि कुणपगन्ध्यादि पांच आर्त्तव असाध्य हैं, तथापि दुर्गंधनाशनार्थ चिकित्सा कही है । और जो वातादि संबंधी आर्त्तव दोष हैं उन्में पूर्वोक्त शुक्र हरण कर्त्ता उपचार करने चाहिये । जैसेँ वातज पुष्प दोषमें, भारंगी, देवदारु, सिद्धघृतपान । अथवा कंबारी, और इन्द्रायणसैँ सिद्ध घृत पीवे, अथवा मुलहटी, पिठवणका कल्क दूध, घृत, सहत, फूल प्रियंगू और तिल-कल्कको योनिमें धारण करे अथवा शरल और मुद्गपर्णीके कोठेसैँ भगका प्रक्षालन करे ।

पित्तके आर्त्तव दोषमें, कांकोली, क्षीरकांकोली, विदारीकी जडका क्वाथ, अथवा उत्पल (नीलाकमल) और पद्मास्रका क्वाथ अथवा मुलहटीके फूल, कंबारीके फलका क्वाथमें मिश्री डालके पीवे। अथवा सपेद चन्दन का क्वाथ करके उस्में सहत डालके पीवे तो पित्त आर्त्तव दूर होवे । इत्यादि आयुर्वेद संग्रहमें औषध लीखी है ।  
सर्वआर्त्तवदोषोंकी पथ्य कहते हैं ।

## अन्नंशालियवंमद्यं हितंमांसंचपिच्छलम् ।

अर्थ—शाली (चामर) और यव ये अन्न, तथा मद्य, मांस और पिच्छल पदार्थ ये सब आर्त्तवदोषमें पथ्य हैं ।

शुद्धआर्त्तवकेलक्षण ।

शशास्त्रप्रतिमंयच्चयद्रालाक्षारसोपमम् ।

तदार्त्तवंप्रशंसंतियद्वासोनविरज्येत् ॥

अर्थ—स्त्रियोंके महिनेकी महिने जो भगद्वारा तीन दिन पर्यंत रुधिर निकले हैं, उस्को आर्त्तव कहते हैं । तहां शुद्ध आर्त्तवके लक्षण कहते हैं । जो आर्त्तव, शशे-

के रुधिरके समान लाल होवे, अथवा लाखके रंगसदृश लाल होवे, और कपडा-पर गिरनेसें दाग न पड़े, वस्त्र धोनेसें स्वच्छ हों जावे, उस आर्तवको निर्दोष सद्गर्भके योग्य जानना ।

रक्तप्रदरकेलक्षण ।

तदेवातिप्रसंगेन प्रवृत्तमनृतावपि ।

असृग्द्वरंविजानीयादतो न्यद्रक्तदर्शनात् ॥

अर्थ—वही आर्तव अति प्रसंग करके निकलनेसें अर्थात् विना ऋतुकालके बहुत निकलनेसें असृग्दर जानना । परंतु पूर्व कही आये जो शुद्ध आर्तवके लक्षण [ शशास्त्रप्रतिमं ] इत्यादि उनके विना अन्य लक्षण होवे । जैसें ज्ञागदार, शशिगामी, खुजली, इत्यादि लक्षण होनेसें असृग्दर जानना ।

असृग्दरकेदोषसेबंधकृततथाव्याधिस्वभावकृतसामान्यलक्षणकहतेहैं

असृग्दरोभवेत्सर्वः साङ्गमर्दःसवेदनः।

तस्यातिवृद्धौदौर्बल्यं भ्रमोमूर्च्छामदस्तृषा ॥

दाहःप्रलापःपाण्डुत्वतन्द्रारोगाश्चवातजाः ।

अर्थ—सर्व प्रकारके असृग्दरोंमें, अंगोंका टूटना, शूलका होना, ये लक्षण होते हैं । और जब इस रोगकी अत्यंत वृद्धि होती है, अर्थात् आर्तव अत्यन्तस्त्रवनेसें दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, (मद्यपान अथवा धतूरेके बीजखानेके समान अवस्था ) प्यास, तथा देहमें दाह, प्रलाप ( बकाद ) देहका पीलापना, तन्द्रा और वात के रोग आक्षेपक, इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

रक्तप्रदरमेंअवस्थापरत्वउपचार ।

तरुण्याहितसेविन्यास्तदालपोपद्रवंभिषक् ।

रक्तपित्तविधानेन यथावत्समुपाचरेत् ॥

अर्थ—जो स्त्री तरुण ( सोलह वर्षकी ) हो तथा हितपदार्थका सेवन करे, उसके असृग्दर अल्प उपद्रवयुक्त होनेसें रक्त पित्त संबंधी उपचार करके वैद्य जीते ।

आर्तवकीअप्रवृत्तिलक्षणविकृति ।

दोषैरावृत्तमार्गत्वादात्तवंनश्यतिस्त्रियाः ।

अर्थ—मूलमें [ दोषैः ] के लिखनेसें दोषशब्द करके इस जगे कफ और वदी, अथवा वादी, कफ मिले हुएका ग्रहण हैं । पित्तका ग्रहण नहीं है, कारण

यह है कि, पित्तसैं तो आर्तवकी अत्यंत प्रवृत्ति होती है, इसीसैं इन वात कफ दोषोंसैं आर्तवका मार्ग रुकनेसैं स्त्रियोंका आर्तव नष्ट होता है । अर्थात् सर्वपा क्षय नहीं होता है किंतु निकलता हुआ नहीं दीखे ।

चिकित्सा ।

तत्रमत्स्यकुलत्थाम्लतिलमाषासुराहिता ।  
पानेमूत्रमुदश्वित्त्व दधिसूक्तञ्चभोजनम् ॥

अर्थ—जिस स्त्रीका आर्तव अर्थात् जो स्त्री रजोधर्म होनेसैं बंद हो जावे, उ-  
स्को मछली, कुल्थी, अम्ल ( कांजी ) तिल, उडद और मद्य पीना हितकारी हो-  
ता है । तथा गोमूत्रका पीना, उदश्वित्त्व कहिये आधापानी, और आधादहीको  
मथ कर करा हुआ मट्टेका पीना, तथा दही, और सूक्त कहिये चूकाका साग ( जो  
पालकके समान होता है ) ये सर्वपदार्थ भोजन करने चाहिये ।

क्षीणंप्रागीरितंरक्तं सलक्षणचिकित्सितम् ॥  
तथाप्यत्रविधातव्यं विधानंनष्टरक्तवत् ॥

अर्थ—यद्यपि क्षीण रक्तके लक्षण, और चिकित्सा प्रथम दोष धातु मल क्षय  
वृद्धि विज्ञानीयाध्यायमें कही आये हैं । तथापि इस जगे उस्का ग्रहण करा  
है, इसीसैं नष्टरक्तमें जो उपचार ( मत्स्यकुलित्थादिक ) कहे हैं, सो इस जगे क-  
रने चाहिये । अब प्रकरण प्रयोजनका, उपसंहार कहते हैं । “ एवमदुष्टशुक्रः शुद्धा-  
र्त्तवाच ” इस प्रकार अदुष्टवीर्य पुरुष, और शुद्ध आर्तववाली स्त्री होती है ।

ऋतुकालमेंसुपुत्रोत्पादकस्त्रियोंकेआचार ।

ऋतौप्रथमदिवसप्रभृतिब्रह्मचारिणी दिवास्वप्राञ्जनाऽथु  
पातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदन प्रधावनहसनकथना  
निलायासान्परिहरेत् ।

अर्थ—स्त्रीको रजोदर्शन होनेसैं प्रथम दिनसैं लेकर तीन रात्रि पर्यंत ब्रह्मचर्यमें  
रहना, तथा तीन दिन तक निद्रा, कज्जल लगाना, रुदन, स्नान, चंदन आदि अनु-  
लेपन, उवटना, नखोंका काटना अथवा कुतरना, बहुत डोलना फिरना, बहुत हँ-  
सना, बहुतसा बोलना, तथा अति शब्दका सुनना, लेखन, पंखे आदिसैं अत्यंत  
हवा करना, इत्यादिक कर्म वर्जित हैं इन्होंका कारण भावप्रकाशसैं कहते हैं ।

नियम नपालनेके दोष ।

अज्ञानाद्वाप्रमादाद्वा लोभाद्वादैवतश्रवा । साचेत्कुर्यान्निषि

द्धानि गर्भोदोषांस्तदाप्नुयात् ॥ एतस्यारोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः । नखच्छेदेनकुनखी कुष्ठीत्वभ्यङ्गतो भवेत् ॥ अनुलेपात्तथास्नाना दुःखशीलोऽजनाददृक् । स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात्प्रधावनात् । अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरःखलुजायते ॥ तालुदन्तोष्ठजिह्वासु श्यावोहसनतो भवेत् । प्रलापीभूरिकथनादुन्मत्तस्तुपरिश्रमात् ॥ स्वलतेभूमिखननादुन्मतोवातसेवनात् ।

अर्थ-अज्ञानसें, अथवा प्रमादसें, अथवा लोभसें अथवा दैववशसें, जो रजस्वला स्त्री निषिद्ध कर्म करे, तो उससें गर्भ ( बालक ) को दोष प्राप्त होते हैं । इस रजस्वला स्त्रीके रुदन करनेसें, खोटे नेत्रवाला बालक होता है नखोंके कतरनेसें, बालक खोटे नखवाला होता है । तेल फुलेल आदिके लगानेसें बालक कुष्ठरोगी होवे । चंदन आदिके लगानेसें, तथा स्नान करनेसें दुःख युक्त आचरणवाला होवे । काजरआदिके लगानेसें, अंधा बालक होवे । दिनमें सानेसें, अत्यंत निद्रालू होवे । बहुत डोलनेसें, चंचल होवे । बहुत ऊंचे स्वरके सुननेसें, बालक बेहरा होवे । अत्यंत हसनेसें, बालकके तालू, दांत, होंठ और जीभ काली हो बहुत बोलनेसें, बालक बकवादी होवे । अत्यंत परिश्रमके करनेसें बालक उन्मत्त ( बावला ) होवे । पृथ्वी खोदनेसें, जहां तहां गिरपडे ऐसा होय, और रजस्वला स्त्रीके अत्यंत पवन खानेसें बालक उन्मत्त होता है ।

प्रथमरजोदर्शमेंशुभमासादि ।

आद्यंरजःशुभंमाघमार्गारधेषफाल्गुने ।

ज्येष्ठश्रावणयोःशुक्ले सद्गिरसत्तनौदिवा ॥

अर्थ-माघ, मार्गशिर, वैशाख, आश्विन, फाल्गुन, जेठ और सामन इन महिनों तथा शुक्लपक्ष, श्रेष्ठवार, उत्तम लग्न और दिनमें स्त्रीका प्रथम रजोदर्शवती होना शुभ कहा है \* विशेष फल ज्योतिषके ग्रन्थोंसें लिखते हैं ।

रजोदर्शमेंमासफल ।

\* चेत्रेस्यात्प्रथमतोऽतुनारीवैधव्यभागिनी । वैशाखेधनपुत्राढ्या ज्येष्ठेरोगान्वितातथा ॥ १ ॥ शुचौमृतप्रजाप्रोक्ता श्रावणेधनधान्यदा । नभस्येदुर्भगा क्लिष्टा आश्विनेचतपस्विनी ॥ २ ॥ ऊर्जेप्यायुष्मतीनारी मार्गशीर्षेबहुप्रजा । पौषेतुपुंश्वलीनारी माघेपुत्रसुखान्विता । फाल्गुनेश्रीमतीसाध्वी क्रमान्मासफलस्मृतम् ॥ ३ ॥

## श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौसिताम्बरे । मध्यंचमूलादितिभे पितृमिश्रेपरेष्वसत् ॥

अर्थ—श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और स्वातीनक्षत्र इन नक्षत्रोंमें तथा सपेद वस्त्र पहने हुए, जो स्त्री प्रथम रजोदर्शवती होवे, तो शुभ है। और मूल, पुनर्वसु, मघा, विशाखा, तथा कृत्तिका, इन नक्षत्रोंमें आद्यरजोदर्श मध्यम है। और भरणी, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, तीन्हों पूर्वा, इन्में आद्यरजोदर्श होना अशुभ जानना ।

### कृष्णपक्षशुक्लपक्षमेंरजोदर्शनहोनेकाफल ॥

शुक्लपक्षेसुशीलास्यात्कृष्णसाकुलटाभवेत् । कृष्णस्यदर्शनी यावन्मध्यमंफलमादिशेत् ॥४॥

### वारपरत्वेनफलम् ॥

आदित्येविधवानारी सोमेचैवमृतप्रजा । भौमेचम्रियतेनारी कन्याप्रसविनीबुधे ॥ ५ ॥  
शुक्रौपुत्रप्रसविनी शुक्रेकन्यातनुप्रसूः । शनौचपुंश्वलीवंशे प्रथमपुंस्पदर्शनात् ॥ ६ ॥

### लग्नफलम् ॥

मेषेसाव्यभिचारास्याद् वृषभेपरभोगिनी । मिथुनेधनभोगाढ्या कर्कटेव्यभिचारिणी ॥ ७ ॥  
पुत्राढ्यासिंहराशौ कन्यायांश्रीमतीभवेत् । विचक्षणतुलायाश्च वृश्चिकेतुपतिव्रता ॥ ८ ॥  
दुश्चारिणीधनुःपूर्वे अपरेचपतिव्रता । मकरेमानहीनाच कुंभेनिर्धनबंधुता ॥ ९ ॥ मीनेविलक्षणालग्न्ये ग्रहसंस्थाविवाहवत् ॥

### कालपरत्वेनफलम् ॥

प्रातःकालेतुसधना सायाह्नेसर्वभोगिनी । मध्याह्नेचभवेद्देश्या निशीथेविधवाभवेत् ॥ १० ॥

### नक्षत्रफलम् ॥

सुभगाचैवदुःशीला वंध्यापुत्रसमन्विता । धर्मयुक्ताभ्रतघ्नीच परसंतानमोदिनी ॥ ११ ॥  
सुपुत्राचैवदुःपुत्रा पितृवेदमरतासदा । दीनाप्रज्ञावतीचैव पुत्राढ्याचित्रकारिणी ॥ १२ ॥  
साध्वीपतिव्रतानित्यं सुपुत्राकष्टकारिणी । स्वकर्मनिरताहिस्रा पुत्रपौत्रादिसंयुता ॥ १३ ॥  
नित्यंधनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता । मूर्खार्थाढ्यागुणवती दक्षर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥ १४ ॥

### वस्त्रपरत्वेनफलम् ॥

सुभगाश्वेतवस्त्रास्याद् दृढवस्त्रापतिव्रता । क्षौमवस्त्राक्षितीशास्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥  
दुर्भगाजीर्णवस्त्रास्याद्भोगिणीरक्तवाससा । नीलांबरधरानारी विधवापुष्पितायादि ॥ मलिनांबरतोनारी दरिद्रास्याद्रजस्वला ॥

### बिन्दुफलम् ॥

वस्त्रेस्युर्विषमारक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्वेत्कन्यका चेति फलंस्यात्प्रथमार्त्तवे ॥

निन्द्यरजोदर्शकहतेहैं ।

भद्रानिद्रासंक्रमेदर्शरिक्ता संध्याषष्ठीद्वादशवैधृतेषु ।  
रोगेष्टम्यांचन्द्रसूर्योपरागे पातेचाद्यंनोरजोदर्शनंसत् ॥

अर्थ-भद्रामें, निद्रामें, संक्रांतिमें, अमावस में ४-९-१४-६-१२-८ इन तिथियोंमें, संध्यामें, वैधृति योगमें, रोगकी अवस्थामें चंद्र सूर्यके ग्रहणमें, और व्यतीपातमें, प्रथम रजोदर्श अशुभ है । अशुभ रजोदर्शकी शांति धर्मशास्त्रोक्त कर्तव्यहै ।

रजस्वलाकेनियम ।

आर्त्तवस्नानदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी ।  
शयीतदर्भशय्यायां पश्येदपिपतिंनच ॥  
करेशरावेपर्णेवा हविष्यंत्र्यहमाचरेत् ।

अर्थ-रजोदर्श स्नानके दिनसैं लेकर तीनदिनपर्यंत, स्त्रीको इस प्रकार वर्त्तना चाहिये । हिंसा न करे, ब्रह्मचर्यमें रहै, कुशाकी शय्यापर सोवे, और तीन दिनपर्यंत पतिको भी न देखना चाहिये, हाथोंमें, पात्रमें, अथवा पत्तलमें, हविष्य आहार, अर्थात् घृत, शाल्योदनादि, अथवा क्षीर संस्कृतयवान्नादिकका भोजन करना चाहिये ।

तथाचवाग्भटे ।

ततःपुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायनीत्र्यहम् । मृजालङ्काररहिता

अन्यच्च ।

संमार्जनंकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्तेदधानाकुलटातदास्यात् ।  
तल्पोपभोगैरहासिस्थिताचेत् दृष्टंरजोभाग्यवतीतदास्यात् ॥

स्थलभेदेनफलम् ।

ग्रामाद्बहिः पराग्रामे वाचेत्स्याद्ग्रामिचारिणी । पतिव्रतापतिस्थाने सुशीलागृहमध्यमे ॥  
ग्राममध्येचवृद्धिश्च विधवाचादिगम्बरा । उपरागेचदुःशीला आयुर्भ्यंजलसान्निधौ । धनमध्ये तुकन्याया धनधान्यसमृद्धिदा । प्रथमार्त्तवेस्यादितिशेषः ।

अत्राशुभफलापवादमाह ।

अशुभमपिसमस्तंचार्त्तवसंप्रभूतम् सुरगुरुसितयुक्तेवीक्षतेवाथलम्ने । तिमिरमिवकठोरज्योतिरुत्पात्तिकाले क्षयमथसमुपैतिप्रामुष्यादीप्सितानि-कठोरज्योतिःसूर्यः ।

दर्भसंस्तरशायिनी ॥ क्षैरेयंयावकंस्तोकं कोष्ठशोधनक  
र्षणम् । पर्णेशरावेहस्तेवा भुञ्जीतब्रह्मचारिणी ॥

अर्थ—स्त्री रजोदर्शके होतेही तीन दिनपर्यंत शुभंचितवन करनेवाली होवे । तथा स्नानआदि क्रिया, अलंकार ( हार, कुंडल, पायजेव, कोधनी, कडे, आदि ) का धारण करना, अथवा अलंकारशब्दसैं फूलोंके गहने आदिका धारण करना, चंदन, काजर, सुरमा, मिस्सी, आदिका लगाना त्याग देवे । कुशाकी सेजपे सोवे, दूधके और जवके अथवा दूधके अथवा दूधसैं सिद्ध करे जवके पदार्थ कोठंको ( गर्भाशयको ) शुद्ध करनेवाले और तदंगोंके कर्षण करनेवाले पदार्थ, थोडे थोडे पत्तल, शराव, ( मिट्टीका पात्र ) अथवा हाथोंमें रखकर, भोजन करे, और ब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुनादिक करनाभी तीन दिनपर्यंत त्याग देवे ।

तदुक्तंभरद्वाजसंहितायाम् ।

प्रथमेहनिचाण्डाली द्वितीयेब्रह्मघातिनी ।  
तृतीयेरजकीज्ञेया चतुर्थेहनिशुद्धयति ॥  
पंचमेहनियोग्यास्याद्देवोपित्र्येचकर्माणि ।

अर्थ—पुरुषोंको जिस प्रकार रजस्वला स्त्रीसंग वर्जित है । वो इस प्रकार कि, प्रथम दिन चांडाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजोदर्शवती स्त्रीकी धोवन संज्ञा है, और चतुर्थ दिन शुद्धि होती है । परंतु देवकार्य और पित्रीश्वरोंके कार्य योग्य पांचवें दिन होती है । इसीसैं ४ रात्रि स्त्रीगमन निषेध है ।

इच्छेतांयादृशंपुत्रं तद्रूपचरितांश्वतौ ।

चितयेतांजनपदांस्तदाचारपरिच्छदौ ॥

अर्थ—स्त्री पुरुष जैसे पुत्रकी कामना करे, उन्को तद्रूप चरित जनपदोंका करना चाहिये । तथा तदाचारपरिच्छद होना चाहिये । अर्थात् जैसे पुत्र या पुत्रीकी इच्छा होय उस इच्छाके सदृश रूप ( वर्ण, प्रमाण, और आकृति आदि, ) तथा चरित ( श्रद्धा, श्रुत, सत्य, नम्रता, दान, दया, चतुराई, और स्वभावादिक ) तथा कुल, देशके अनुसार आचार, और परिच्छद ( मनुष्य, गौ, घोडा, धन, धान्य, वस्त्र, भूषण, रत्न, गृह, बाग, वीणा, पणव, गान, शय्या, आदि ) का ध्यान कर्त्तव्य है ।

तदुक्तंबृहत्संहितायाम् ।

चित्तेनभावयतिदूरगताऽपियंस्त्रीगर्भविभर्त्तिसदृशंपुरुषस्यतस्य ।

अर्थ—मैथुनके समय दूरस्थितभी स्त्री, चित्तसँ जिस पुरुषका ध्यान करै उसीके सदृश गर्भधारण करती है । उसी प्रकार चरकमें लिखा है “ गर्भोपपत्तौतुमनः स्त्रिया यं जंतुं व्रजेत्तत्सदृशंप्रसूते ” ।

ततःशुद्धस्नातांधौतवाससमलंकृतां  
कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनंभर्तारंदर्शयेत् ।

अर्थ—तीन दिन व्यतीत होनेके पश्चात् शुद्ध कहियेसंचित ( इकट्ठा ) हुआ पुराना रुधिर, उसके निकल जानेसँ प्राप्त हुआ है नवीन आर्त्तव जिस्को, इसीसँ स्त्री शुद्ध कहाती हैं, जैसे लिखा है “ नवेऋतौचसंजाते विगतेजीर्णशोणिते । नारी भवतिसंशुद्धा पुमांसंसृज्यतेतदा ॥ ” अर्थात् नवीन आर्त्तव प्राप्त होने सँ और जीर्ण संचित रुधिरके निकल जानेसँ स्त्री शुद्ध होती है, उस समय पुरुषसँ संयोग करने योग्य होती है । ऐसी शुद्ध स्त्री चतुर्थ दिवस, स्नान करके धुले हुए वस्त्रोंको पहन, हरिद्रा, रोरी, केशर, सिंदूर, आदि तथा सर्व भूषणोंको और पुष्पादिनसँ शृंगार करके तथा मंगल कराया है ( गीतवाद्यादिक ) जिस्से और स्वस्तिवाचन जिस्से ऐसे भर्त्ताको वैद्य उस स्त्रीको प्रथम दिखावे । अर्थात् स्नान करके प्रथम स्त्रीको पतीकाही दर्शन कराना चाहिये ।

प्रमाण ।

पूर्वपश्येदतुस्नाता यादृशंनरमङ्गना ।  
तादृशंजनयेत्पुत्रं भर्तारंदर्शयेत्ततः ॥

अर्थ—ऋतुस्नान करके स्त्री प्रथम जैसे पुरुषको देखे वैसेही पुत्रको प्रगट करती है । इसीसँ प्रथम भर्त्ताकोही देखे, इस जगे भावमिश्र इस श्लोकके अंतका चरण ( ततः पश्येत्प्रियंपतिं ) ऐसा लिखकर अर्थ करते हैं कि, प्रथम भर्त्ताको देखे यदि भर्त्ता समीप न होय तो प्रिय कहिये पुत्रादिक उन्कोभी प्रथम देखे, इस जगे स्नानके कहनेसँ चरकोक्त पुष्पस्नानभी कराना चाहिये ।

यथा ।

एताभिश्चैवौषधीभिःपुष्येपुष्येस्नानंसदाचसमालभेत ।

अर्थ—इन पूर्वोक्त औषधियोंसँ, पुष्यनक्षत्रमें रजोदर्शवतीको सदैव स्नान करना चाहिये ।

तच्चोक्तंवराहमिहिरेण ।

नदिनत्रयंनिषेवेत्स्नानंमाल्यानुलेपनंचस्त्री ॥ स्नायाच्चतुर्थदि  
वसेशास्त्रोक्तेनोपदेशेन ॥ १ ॥ पुष्पस्नानौषधयोःकथिता  
स्ताभिरम्बुमिश्राभिः॥स्नायात्तथात्रमन्त्रःसएवयस्तत्रनिर्दिष्टः२

अर्थ—रजस्वला स्त्री ३ दिनपर्यंत स्नान न करे । फूलमाला पहनना और चं-  
दनआदिका लगाना त्याग देवे । चौथे दिन शास्त्रोक्त विधिसे स्नान करे । पुष्प-  
स्नानके प्रकरणमें जो औषधी कही हैं । उनको जलमें मिलायके स्नान करे । और  
पुष्पस्नानमें जो मंत्र कहा है, वही मंत्र यहांभी पढना चाहिये ।

उक्तऔषधियोंकोकहतेहैं ।

ज्योतिष्मतीत्रायमाणामभयामपराजिताम् । जीवांविश्वे  
श्वरींपाठां समद्गांविजयांतथा ॥ १ ॥ सहांचसहदेवींच  
पूर्णकोशांशतावरीम् । अरिष्टकांशिवांभद्रां तेषुकुम्भेषुविन्य  
सेत् ॥ २ ॥ ब्राह्मीक्षेमामजांचैव सर्वबीजानिकाश्चनीम् ॥  
मंगलानियथालाभं सर्वौषधिरसांस्तथा ॥ ३ ॥ रत्नानि  
सर्वगन्धांश्च विल्वंचसविकंकतम् । प्रशस्तनाम्न्यश्चौषध्यो  
हिरण्यमङ्गलानिच ॥ ४ ॥

अर्थ—मालकांगनी, त्रायमाण, हरड, अपराजिता, ( शमी ) जीवन्ती, विश्वेश्वरी,  
पाठ, मजीठ, विजया, मुद्गरपर्णी, सहदेई, पूर्णकोशा, शतावर, नीम, आमरे और  
श्वेतदूर्वा, इन्को स्थापित कुंभोमें ( घडो ) में डाले, ब्राह्मी, क्षेमा, अजा, सर्वौषधि,  
हलदी और मंगलकर्ता जो जो औषधि मिले वो डाले । रत्न ( हीरा, पन्ना,  
आदि ) डाले, ( चंदन, केशर, कपूर, खस, आदि ) सर्व सुगंधित वस्तु डाले ।  
वेल, विकंकत वृक्षके फल, तथा जिनके सुंदर नाम ( जैसें जया, पुत्रजीवा, अमृत-  
वल्ली, पुनर्नवा आदि ) औषधि और सुवर्ण, ( गोरोचन, सरसों, दूर्वा, आदि )  
मं. ३ वस्तु ये सब उन कलसोंमें डाले । जिनको पुष्पस्नानकी विशेष विधि दे-  
खनी हो वे, बृहत्संहिताकी ४८ वीं अध्यायमें देख लेवे । चरकमुनिने जो औषध  
कही है वो यह है, ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतावरं, सपेददूब, हरी दूब, पाठल, आमरे, नाग-  
बला, वाद्यपुष्पी, ( केशर ३ भाग, उशीर १ भाग चंदन १ भाग ) और विश्वक्से  
नकांता इत्यादि ।

साचेदेवमाशासीत । बृहन्तमवदातं हर्यक्षमोजस्विनंशु  
चिसत्वसंपत्रंपुत्रमिच्छेमिति । शुद्धस्नानात्प्रभृत्यस्यैनि  
न्यमवदातयवानामधुसर्पिभ्यांसंसृज्य श्वेतायागोःसवत्सा  
याःपयसालोद्भ्यराजतेकांस्येवापात्रेकालेकालेसप्ताहंसततंप्र  
यच्छेत् । पानायप्रातश्चशालियवान्नविकारान् दधिमधुस  
र्पिभिःपयोभिर्वासंसृज्यभुंजीत ।

अर्थ—यदि स्त्री ऐसी इच्छा करे कि, मेरे श्रेष्ठ और उज्ज्वल सिंहके समान ते-  
जस्वी, पवित्र और सत्वसंपन्न ऐसा पुत्र होवे । तो शुद्ध स्नानसें लेकर नित्य इस्को  
शुद्ध जवोंको सहत घृतमें मिलाय बछडावाली श्वेत गौके दूधमें भिजोय, चांदी  
अथवा कांसेके पात्रमें समयसमयमें सात दिन प्रातःकाल पीनेको देवे । तथा  
चावल, जो, के पदार्थोंको दही, सहत और घृतके साथ अथवा दूधके साथ  
भोजन करे ।

तथासायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूषणाचस्यात् ।  
शश्वत्श्वेतंमहान्तमृषभमाजानेयंहरिचन्दनाङ्कितंपश्येत् ।  
सौम्याभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीतसौम्याकृतिवचनोपचार  
चेष्टांश्चस्त्रीपुरुषानितरानपिचेन्द्रियार्थानवदातान्पश्येत् ।  
सहचर्य्यश्चैनांप्रियहिताभ्यांसततमुपचरेयुः । तथाभर्तानच  
मिश्रीभावमापद्येयातामित्यनेनविधिनासप्तरात्रंस्थित्वाष्टमे  
ऽहन्याहुत्यसशिरस्काभर्त्रासहाहतानिवस्त्राण्याच्छादयेत्  
अवदातानिअवदातश्चस्त्रजोभूषणानिविभृयात् ॥

अर्थ—उसी प्रकार सायंकालमें स्वच्छ शैय्यापर सोना, शुभ आसन पर बैठना,  
तथा सुंदर सवारी, वस्त्र, भूषण, आदिका आश्रय लेना चाहिये । और सायंकाल  
तथा प्रातःकाल निरंतर श्वेतवर्ण और महान् बैलका तथा कुंकुमागर चंदनसें पू-  
जित उत्तम घोडेका दर्शन करे । सौम्य और मनके अनुकूल ऐसी स्त्री इस्के समीप  
रहा करे । तथा सुंदर है स्वरूप, वचन, उपचार, और चेष्टा, जिन्की ऐसैं स्त्री पुरुष  
तथा अन्य ( पशुपक्षी आदि ) इन्द्रियोंके अर्थ ( शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, )  
आदि उज्ज्वल पदार्थोंको देखे । तथा इसकी सहेली प्यार और हितसें निरंतर इस्का  
उपचार करे । तथा इस्के पतिको इस्सें मिलाप न होने देवे, इस प्रकार सात रात्रि-

पर्यंत रह कर आठवें दिन सशिरस्क स्नान करके पतिके साथ उज्ज्वल वस्त्र, भूषण, फूलोंके हार, आदिको धारण करे ।

## ततोविधानंपुत्रीयं उपाध्यायःसमाचरेत् ॥

अर्थ—ऋतु कालके अनन्तर, मङ्गलपूर्वक आगे जो विधि कहते हैं उसको करे । जैसे कि, अथर्वण वेदका जानने वाला उपाध्याय ( पुरोहित ) पुत्रके निमित्त विधि-पूर्वक इष्टी करे, विधिपूर्वक कहनेका यह प्रयोजन है कि, जिस प्रकार वेदमें लिखा है उसी प्रकार करे न्यूनाधिक न करे । सो आगे लिखते हैं । यह प्रकरण चरककी ८ वीं अध्यायमें लिखा है ।

## अथ पुत्रेष्टिविधिः ॥

तत्राचार्योब्राह्मणप्रयुक्तोऽनुपहतवस्त्रसंवीतश्चार्षभेचर्मण्युपविष्टो राजन्यप्रयुक्तोवैयाघ्रे आनडुहेवावैश्यप्रयुक्तोरौरवेवास्तेयेवाचतुरस्रंस्थंडिलं गोमयोदकाभ्यामुपलिप्योल्लिख्य दर्भैरास्तीर्ष्य । वेणुयूपदक्षिणेन ब्रह्माणं व्यवस्थाप्य शुक्लकुसुमगन्धबलिभिरभ्यर्च्य अग्निं प्रणीय संस्कृत्य पालाशीभिः समिद्धिरग्निमुपसमाधाय मंत्रोदकपूर्णपात्रमग्नेः स्थापयित्वा पुत्रजन्माशंस्याज्यं जुहुयान्महाव्याहृतिभिर्योषिच्च पुत्रार्थिनीसहभर्त्रापाश्रितोऽग्नेः त्विजोदक्षिणतः समुपविशेत् । ततोऽस्या ब्राह्मणः प्रजापतिमुद्दिश्य यथाभिलषितसम्पादनाय मनसा योनौ काम्यामिष्टिं निर्वपेत् “ अनयोर्विष्णुर्योर्निकल्पयतु त्वष्टारूपणिर्पिं शत्विति ” ततश्चाज्येन स्थालीपाकमनिर्वाप्य निजुहुयात् । यथाप्रायश्चोपमन्त्रितमुदकपात्रमस्मै दद्यात् । सर्वानुदकार्थान्कुरुष्वेति । ततः समाप्ते कर्मणि पूर्वदक्षिणपादमभिहितं तीव्रदक्षिणमग्निमुपक्रमेत् । ततः परिक्रम्य ब्राह्मणान् स्वस्तिवाचयित्वा सहभर्त्रा आज्यशेषं प्राश्रीयात् । पूर्णपुमान्जघन्यं स्त्रीनचोच्छिष्टमवशेषयेत् इति पुत्रीयविधानम् ।

अर्थ—तहां आचार्य रजोदर्शन सैं १६ दिन रात्रि ऋतुसंबंधी होते हैं इन्में चार रात्रिको त्याग कर शुभ दिन, घडी, मुहूर्त, नक्षत्र, और शुभ वारमें पुत्रेष्टी करावे । पुत्रेष्टी कर्ता, प्रातःकाल स्नानादि कर्म करके तथा पत्नीभी नवीन उदक-सैं स्नान कर मंगलीक वस्त्र भूषणोंको धारण कर स्वस्तिवाचन अभ्युदयिक कर्म करके, फिर संकल्प करावे “ श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थं पुत्रेष्टिं च करिष्ये ” तहां ब्राह्मणके योग्य नवीन वस्त्रसैं आच्छादित बैलके चर्मका आसन, राजाके योग्य व्याघ्र अथवा बैलके चर्मका आसन, वैश्यको रुरु बकराके चर्मका आसन है, उसपै स्थिति हो चौकोन वेदीको लीप कुशासैं रेखा कर उसपै कुशा बिछावे । पीछे पीले वासका स्तंबको खडा करे, और वेदीके दक्षिणमें ब्रह्माको स्थापित करे । सपेद फूल, चंदन, बलिदान आदिसैं पूजन करे । पीछे वेदीके पंचभूसंस्कार करके, अग्नि स्थापन

करे । ढाककी समिधासैं अग्निको प्रज्वलित करे, मंत्रित जलके पूर्णपात्रको अग्निके आगे स्थापन करे, तदनंतर पुत्रजन्मके लिये प्रशंसनीय आज्य ( घृत ) को (ओं-भूर्भुवःस्वः ) इत्यादि महा व्याहृतियोंसै हवन करे, उसी प्रकार स्त्रीभी पुत्रकी इच्छासैं पतिके साथ अग्निके पश्चिममें बैठे, और ऋत्विज अग्निके दक्षिणमें बैठे, पीछे उस स्त्रीको ब्राह्मण प्रजापतिके उद्देशसैं वांछित कामनाके अर्थ मन करके कुंडमें काम्यइष्टीको इन मंत्रोंसैं हवन करावे “अनयोर्विष्णुर्योनिकल्पयतु त्वष्टारूपानिर्षिशतु, आसिञ्चतुप्रजापतिर्धातागर्भदधातुतेस्वाहा ॥ ओंगर्भधेहिंसिनीवालिंगर्भधे-हिसरस्वति॥ गर्भतेअशिनौदेवावाधत्तांपुष्करस्रजास्वाहा” तदनंतर चरु और घृत मिलायके ब्रह्मा, विष्णु, के नामसैं प्रधानाज्यहोम करे । इस प्रकार सात सात आहुती देवे । पीछे सब ब्राह्मण पूर्वोक्त पूर्णपात्रका जल लेके दोनों स्त्री पुरुषोंका “अपनः शोशुचेति ” इन मंत्रोंसैं मूर्धाभिषेक करे । पीछे अग्निका और सूर्यका उपस्थान करना चाहिये, तदनंतर अपने कुलरीत्यनुसार उदकपात्र इस पुरुषको देवे । “सर्वानुदकार्यान्कुरुष्वेति ” इस प्रकार कर्मकी समाप्तिमें प्रथम दक्षिण पैरको धरती हुई तीव्र ज्वालावाली अग्निकी परिक्रमा करे, पीछे ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढ़ाय ब्राह्मणोंको भोजनदक्षिणासैं प्रसन्न कर, आशीर्वाद लेवे । तदनंतर आज्य और चरुशेषको पतिके साथ प्रथम पुरुष और पीछे स्त्री भोजन करे । उच्छिष्ट बाकी न छोडनी चाहिये । इस प्रकार पुत्रेष्टी त्रिवर्णको करनी चाहिये ।

नमस्कारपरायास्तु शूद्रायामंत्रवर्जितम् ।

अवंध्यएवंसंयोगः स्यादपत्यंचकामतः ॥

अर्थ—शूद्रकी स्त्रीको नमस्कार है प्रधान जिसमें ऐसी पूर्वोक्त पुत्रेष्टी मंत्ररहित करानी चाहिये । अर्थात् शूद्रा स्त्रीको पुराण आदिके मंत्रोंसे अथवा “ब्रह्मणेनमः” “विष्णवेनमः” इत्यादि नाममंत्रोंसैं इष्टी करानी चाहिये, इस प्रकारकी इष्टी करके संयोग करे तो संयोग सफल हो और जैसे पुत्र कन्याकी इच्छा करे उसी प्रकारकी संतान होवे ।

यातुस्त्रीश्यामलोहिताक्षंव्यूढोरस्कंमहाबाहुंपुत्रमाशासीत ।

यावाकृष्णंकृष्णमृदुकेशंशुक्लाक्षंशुक्लदन्तंतेजस्विनमात्मवन्त

मेषएवानयोरपिहोमविधिः । किंतुपरिबर्हवर्णवर्ज्यःस्यात् ।

अर्थ—जो स्त्री श्यामवर्ण लालनेत्र, विस्तीर्ण होती, और लंबी भुजावाले पुत्रकी इच्छा करे, तथा जो स्त्री कृष्णवर्ण रूपमें काले और नम्र केश, श्वेत नेत्र, श्वेत दांत, तेजस्वी, और आत्मवेत्ता ऐसैं पुत्रकी कामना करे इन दोनोंको

पूर्वोक्त होम करना चाहिये, किंतु परिवर्हवर्ण ( ग्रह सामग्री ) वर्जित कर्त्तव्य है और पुत्रवर्णानुरूप आशीर्वाद लेने चाहिये ।

### कर्मान्तेचक्रमंह्येतमारभेच्चविचक्षणः ।

अर्थ—इस प्रकार पुत्रेष्टी कर्मके अनंतर, आगे जो विधि कहते हैं उसको बुद्धि-वान् पुरुष करे ।

गर्भाधानमेंनियम ।

### ततोपराह्नेपुमान्मासंब्रह्मचारीसर्पिः स्निग्धःसर्पिःक्षिराभ्यांशाल्योदनंभुक्त्वा

अर्थ—तदनंतर १ महिने पर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाला पुरुष, सायंकालको शरीरमें घृत मर्दन करके सुगंधित जलसे स्नान कर घृत और दूधसे स्निग्ध साठी चावलका भात भोजन करके स्त्रीके समीप जावे ।

गर्भाधानमेंस्त्रीकेनियम ।

### मासंब्रह्मचारिणीतैलस्निग्धांतैलमाषोत्तराहा रांनारीमुपेयाद्रात्रौसामभिर्निश्वास्य

अर्थ—एक महिने पर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत करनेवाली स्त्री, सुगंधित तैलका मालिस कर स्नान करे पीछे तिलके पदार्थ और उरदके पदार्थ प्रधान ऐसा भोजन करा जिसने ऐसी स्त्रीके समीप रात्रिमें पुरुष प्राप्त होकर, प्रिय, वचनोंसे उसको प्रसन्न कर, गमन करे । [ मासंब्रह्मचारिणी ] इसके कहनेसे यह प्रयोजन है कि-१ महिने-तक मनकरकेभी पुरुषकी इच्छा न करे ।

तथाचवाग्भटे ।

### शुद्धशुक्रार्त्तवंस्वस्थं संरक्तमिथुनांमिथः । स्नेहैःपुंसवनैःस्निग्धं शुद्धंशीलितवस्तिकम् ।

अर्थ—शुद्ध शुक्रार्त्तवके लक्षण कहकर अब गर्भसंभवके पूर्व कर्त्तव्यकर्मको कहते हैं । शुद्ध हैं शुक्र और आर्त्तव जिन्होंने, और किंचिन्मात्रभी रोग जिन्के देहमें होवे नहीं, तथा परस्पर अनुरागयुक्त अर्थात् अन्योन्य दर्शनमात्रसेही काम-बाणों करके विद्ध हृदय जिन्होंनेका ऐसे स्त्री पुरुष पुंसवन कर्त्ता ( फलघृत, कल्याणघृत और प्रसारणी घृत आदि ) स्नेहोंसे देहको स्निग्ध करे, तथा वमन-विरेचनद्वारा देह शुद्ध करे, और अभ्यास करके बस्तीका अनुष्ठान करना चाहिये ।

इस जगे ( संरक्त ) कहनेका यह प्रयोजन है कि, प्रीतवाली स्त्रीका सेवन करे। प्रीतरहित स्त्रीके सेवनसे अनेक दुःख और मरणआदिका भय होता है । जैसे लिखा है ।

शस्त्रेणवेणीविनिगूहितेन विदूरथंस्वामहिर्षीजघान ।  
विषप्रदिग्धेनचनूपुरेण देवीविरक्ताकिलकाशिराजम् ॥  
एवंविरक्ताजनयन्तिदोषान्प्राणच्छिदोऽन्यैरनुकीर्तितैःकिम् ।  
रक्ताविरक्ताःपुरुषैरतोऽर्थात्परीक्षितव्याःप्रमदाःप्रयत्नात् ॥

अर्थ—विदूरथ महाराजकी राणी, विदूरथ महाराजको बालोंमें छिपे हुए शस्त्र ( छुरी ) से मारती हुई । उसी प्रकार काशीनरेशको उन्की राणी विषलित नूपुर ( पायजेम ) से वध करती हुई । इस प्रकार विरक्त स्त्री प्राणनाशक दोषोको प्रगट करती है । और बहुत कहना क्या है ! पुरुषको चाहिये कि अनुरक्त और विरक्त स्त्रीकी परीक्षा करके पश्चात् संभोग करना उचित है ।

पृथक्पृथक्उपचारकहतेहैं ।

नरंविशेषात्क्षीराज्यैर्मधुरौषधसंस्तुतैः ।

अर्थ—इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषोंकी तुल्य कर्तव्यता कह कर, अब इन दोनोंका पृथक्पृथक् उपचार कहते हैं । जैसे कि पुरुषको विशेष करके मधुरप्राय मधुर प्रभाववाली जीवनीयादि औषधोंसे संस्कार करे हुए दूध घृतोंका सेवन करना चाहिये [ विशेषण ] इस पदके कहनेसे यह प्रयोजन है कि संस्कृत दूध घृतका पुरुषकोही सेवन करना चाहिये स्त्रीको इन्का सेवन नहीं करना चाहिये ।

नारींतैलेनमाषैश्च पित्तलैःसमुपाचरेत् ।

अर्थ—स्त्री तैल और माष (उरद) के पदार्थों का तथा पित्तल पदार्थोंका सेवन करे । पित्तल पदार्थ रुधिरकी वृद्धिके हेतु सेवन कर्तव्यहै, अब इस जगे यहभी जानना उचित है कि स्त्री पुरुषका संयोग कितनी अवस्थामें होना उचित है यह सुश्रुतकी दशवीं अध्यायमें लिखा है परंतु हमारी समझ में इसी जगे लिखना अच्छा है सो लिखते हैं ।

अथास्मैपञ्चविंशतिवर्षायाद्द्वादशवर्षापत्नीमावहेत् ।

अर्थ—विद्यासंपन्न पञ्चीस वर्षकी अवस्था होने पर पुरुषको बारह वर्षकी अवस्था वाली पत्नी होनी उचित है । परंतु वाग्भट इससे विपरीत कहते हैं ।

पूर्णषोडशवर्षास्त्री पूर्णविंशेनसंगता । शुद्धेगर्भाशयेमार्गे र  
 त्तेशुद्धेऽविलेहृदि ॥ वीर्यवंतंसुतंसूते ततोऽन्यूनाब्दयोःपुनः ।  
 रोग्यल्पायुरधन्योवा गर्भोभवतिनैववा ॥

अर्थ—पूर्ण १६ वर्षकी स्त्री, २० वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके साथ संग करनेसे, शुद्ध गर्भाशय और गर्भाशयका मार्ग तथा रुधिर, वीर्य, पवन और हृदय-के शुद्ध होनेसे स्त्री सामर्थ्यवान् पुत्रको प्रगट करे, [ परंतु वाग्भटकृत संग्रहमें वाग्भटही लिखते हैं कि, १६ वर्षकी स्त्री २५ वर्ष वाले पुरुषके साथ पुत्र होनेके निमित्त संग करे ] इस्से न्यून अवस्था वाले अर्थात् १५ वर्ष और १८ वर्ष के स्त्री पुरुषके संयोग होनेसे रोगी, अल्पायु, और दुष्ट बालक होता है अथवा ऐसी अवस्था वाले पुरुषों के संग से गर्भ नहीं भी होता है ।

अल्पावस्थामेंसंगकरनेकेअवगुणसुश्रुतमेंभीलिखेहैं ।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तपञ्चविंशतिः । यद्याधत्तेपुमान्गर्भं  
 कुक्षिस्थःसविपद्यते ॥ जातोवानचिरंजीवेज्जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः ।  
 तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानंनकारयेत् ॥

अर्थ—जिस स्त्री की १६ वर्ष की अवस्था न हुई हो, उसमें २५ वर्ष की अवस्थासे न्यूनवाला पुरुष गर्भस्थापन करे तो, वो गर्भ कूखमेंही नष्ट हो जावे; यदि गर्भसें जीके उत्पन्नभी होवे तो बहुत जीवे नहीं, और जीवे तो दुर्बलइन्द्री-वाला होवे । इसी कारण अत्यंत बाल्य अवस्थावाली स्त्रीमें पुरुषको गर्भाधान करना न चाहिये । सुश्रुतमें जो किसीने बारह वर्षकी अवस्थावाली स्त्रीमें गर्भाधान करना लिखा है सो सर्वथा असत्य है क्योंकि वाग्भट और मनु महाराज-सें विरुद्ध है हमको ऐसा निश्चय होता है कि यह पाठ किसी आधुनिक पोप महात्माका कल्पित है ।

तथाप्रमाणान्तर ।

चतस्रोवस्थाशरीरस्यवृद्धिर्यौवनसंपूर्णताकिञ्चित्परिहारिणि  
 श्वेति । आशोडषाद्वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनम् । आचत्वा  
 रिंशतःसम्पूर्णता । ततःकिञ्चित्परिहारिणिश्वेति ॥

अर्थ—इस शरीरकी चार अवस्था हैं, १ वृद्धि २ यौवन ३ संपूर्णता और ४ किञ्चित्परिहारिणि । जन्मसें ले १६ वर्षतक वृद्धि अवस्था कहाती है । अर्थात् सोलह वर्षतक अवस्था बढ़ती है, और २५ सें ले ४० वर्षपर्यंत संपूर्णता अवस्था

कहाती है । तिस्के उपरांत अर्थात् ४० वर्ष सैं उपरांत पारिहारिणि अर्थात् कुछ कुछ अवस्था घटने लगती है, इसीसैं लिखा है ।

**पञ्चविंशततोवर्षे पुमान्नारीतुषोडशे ।**

**समत्वागतवीर्यौतौ जानीयात्कुशलोभिषक् ॥**

अर्थ-पुरुष २५ वर्षका हो, और स्त्री १६ वर्षकी हो, इस प्रकार समान अवस्थावाले स्त्री पुरुषोंके ( प्राप्त हुआ ) वीर्य कुशल वैद्य जाने ।

तथाचमनुः ।

**त्रीणिवर्षाण्युदक्षित कुमार्यृतुमतीसती ।**

**उर्ध्वन्तुकालादेतस्मा द्विन्देतमदृशंपतिम् ॥**

अर्थ-रजोदर्शवती कुमारी जिस दिनसैं रजोदर्श होवे, उस्से तीन वर्ष पथ्यंत नियम सैं स्थित रहे, इस कालके उपरांत अर्थात् ३ वर्षके उपरांत सदृश पतिको प्राप्त होवे यह मनुका वाक्य है ।

गमनयोग्यपुरुष ।

**स्नातश्चन्दनालिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोर्चितः । भुक्तपुष्पः सुवसनः सुवेषसमलंकृतः ॥ ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः।पुत्रार्थीपुरुषो नारी मुपेयाच्छयनेशुभे ॥**

अर्थ-स्नान करके चन्दन लगाय, अतरआदि सुगंधित पदार्थोंसैं देहको सुगंधित कर, भोजन करके, पुष्पोंकी मालाआदि धारण करे हुए, उज्ज्वल वस्त्रोंको धारण करनेवाला तथा दिव्य भूषण धारण कर ताम्बूल ( वीडा ) मुखमें जिस्के, और अपनी प्रिया स्त्रीमें चित्त जिस्का और अत्यंत कामोद्दीपित पुरुष पुत्रकी इच्छा करके दिव्य सेजपर स्त्रीके पास जावे । इस जगे [ भोजनशब्द करके वीर्यपुष्ट कर्ता जो वाजीकरणाधिकारमें रस, पाक, चूर्ण, और गोली, आदि लिखी हैं सो जानना ] क्योंकि पेट भरे पुरुषको मैथुन करना वर्जित है और [ अनुरक्तोधिकस्मरः । पुत्रार्थीपुरुषः ] ये तीन पदोंके धरनेका यह प्रयोजन है कि, जिस स्त्रीमें चित्त न हो, तथा कामोद्दीपन जब तक स्वतः न होवे तावत्कालपथ्यंत स्त्रीगमन नकरे । इस प्रकार गमन करनेसैं आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती, और इसमेंभी पुत्रकी इच्छा करके गमन करना चाहिये व्यर्थ वीर्यको न खर्च करे ।

मैथुनकरनेमेंवर्ज्यपुरुष ।

अत्यशितोऽधृतिःक्षुद्रान् सव्यथाङ्गःपिपासितः । बालो  
वृद्धोऽन्यवेगार्त्तस्त्यजेद्रोगीचमैथुनम् ॥

अर्थ—अत्यंत भोजन करा हुआ, धैर्यरहित, बुभुक्षित ( भूखा ) पीडावाला, प्यासा, बालक, बूढा, अन्य वेग ( मल मूत्रादि ) में पीडित, और रोगी ऐसे मनुष्यको मैथुन करना वर्जित है । १६ वर्षके भीतर अवस्थावाला बालक और ५० वर्षके उपरांत वृद्ध कहाता है ।

योग्यस्त्री कहते हैं ।

पुरुषस्यगुणैर्युक्ता विहितान्यूनभोजना ।  
नारीऋतुमतीपुंसा सङ्गच्छेत्तुसुतार्थिनी ॥

अर्थ—पुरुषके गुणों करके युक्त, ( अर्थात् स्नान कर, चंदन, सुगंध, पुष्प, सुंदर वस्त्र, आभूषण आदिको धारण करनेवाली, बीडीको चावती हुई, थोडा भोजन करनेवाली ) ऋतुवंती पुरुषको चाहनेवाली, कामपीडित स्त्री पुत्रकी इच्छा करके पुरुषके पास जावे ।

अयोग्यस्त्री ।

रजस्वलाव्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी । वयोधिका  
चनिष्कामा मलिनागर्भिणीतथा ॥ एतासांगमनात्पुंसां  
वैगुण्यानिभवन्तिहि ।

अर्थ—रजस्वला, रोगवाली, और विशेष करके योनिरोगवाली, पुरुषकी अवस्थासे अधिक उमरवाली, काम रहित, मलीन, और गर्भवती, ऐसी स्त्रियों से संग करने से पुरुषों को अवश्य दोष प्राप्त होते हैं । रोगवालीके कहनेसे स्त्रियोंके प्रदरादि रोग जानने, और योनिरोगके कहनेसे गरमी आदि रोग जानने । इस कहनेका यह प्रयोजन है कि, प्रदरादिरोगवालीके संग करनेसे जैसा बिगाड नहीं है जैसा गरमीवाली स्त्रीके संग करनेसे तत्काल दुःख होता है इसीसे [ विशेष ] शब्द कहा है ।

द्वादशाद्रत्सरादूर्ध्वमापञ्चाशत्समास्त्रियाः ।  
मासिमासिभगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तवंस्रवेत् ॥

अर्थ—बारह वर्षसे लेकर पचास वर्षकी अवस्थापर्यंत, महिनेकी महिने योनिद्वारा स्वतः स्वभावसे स्त्रियोंके रुधिर निकला करे, उसीको आर्त्तव और रजोदर्श कहते हैं

आर्त्तवस्त्रावदिवसादृतुःषोडशरात्रयः ।

गर्भग्रहणयोग्यस्तु सएवसमयःस्मृतः ॥

अर्थ—रुधिरस्त्राववाले दिनसे लेकर सोलह रात्रिपर्यंत ऋतु रहे है । यही समय गर्भ ग्रहणके योग्य कहा है । यह समय चतुर्वर्णवाली सर्वस्त्रियोंके संमतहै । परन्तु ग्रंथांतरमें विशेष लिखा है ।

तद्यथा ।

स्नानदिवसादूर्ध्वद्वादशरात्रावधिब्राह्मण्याः । दशरा  
त्रावाधिक्षत्रियायाः । अष्टरात्रावधिवैश्यायाः । षड्दशरात्रा  
वधिशूद्रायाः । गर्भधारणेशक्तिः ।

अर्थ—जैसे कि स्नानके दिनसे लेकर १२ रात्रिपर्यंत ब्राह्मणकी स्त्रीको, और १० रात्रिपर्यंत क्षत्रीकी स्त्रीको, और ८ रात्रिपर्यंत वैश्यकी स्त्रीको, तथा ६ रात्रिपर्यंत शूद्रकी स्त्रीको गर्भधारणकी शक्ति रहती है; परन्तु यह वाक्य किसी पोपका कल्पना करा हुआ है इसीसे मंतव्य नहीं है ।

गर्भाधानमेंनिषिद्ध और विहितकाल ।

आयुःक्षयभयाद्गर्ता प्रथमेदिवसेस्त्रियम् । द्वितीयेपिदिनेर  
त्यै त्यजेदृतुमतीतथा ॥ तत्रयश्चाहितोगर्भो जायमानो  
नजीवति । आहितोयस्तृतीयेऽन्दि स्वल्पायुर्विकलाङ्गकः  
अतश्चतुर्थीषष्ठीस्यादष्टमीदशमीतथा । द्वादशीवापियारा  
त्रिस्तस्यांतांविधिनाव्रजेत् ॥

अर्थ—आयुक्षयके भयसे पुरुष प्रथम दिवस रजस्वला स्त्रीका संगन करे । उसी प्रकार दूसरे दिनभी ऋतुमती स्त्रीसे संभोग न करे, इन दोनों दिनोंमें स्थापन करा-हुआ गर्भ प्रथम ठहरेही नहीं और यदि उत्पन्न भी होवे तो जीवे नहीं. और तीसरे दिन स्थापित कराहुआ गर्भ थोड़ी आयुष्य और विकल अंगवाला होय है, अतएव ४-६-८-१०-१२, इन रात्रियोंमें रजोदर्शवती स्त्रीको गर्भाधानकी विधिसे सेवन करे तीन दिन रजस्वला स्त्रीकी चांडाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी संज्ञा लिखी है, सो केवल शास्त्रने भय दिखाया है परन्तु असल प्रयोजन यह है कि इन तीन दिनोंमें स्त्रीसंग करनेसे उसके रुधिरकी गरमी लिंगद्वारा प्रवेश होकर पुरुषके रुधिरके परमाणुओंको दूषित करती है और इसी कारणसे गरमी मस्तक-

में प्रवेश होकर मनुष्यको उन्मत्त करदेती है तथा अत्यंत सेवनसे सूजाक, गरमी आदिके अनेक असाध्य रोग प्रगट होते हैं जिनसे प्राणी किसी प्रकार नहीं बचसके ।

**चतुर्थादिदिवसेऽपिरजोनिवृत्तौस्त्रीपत्यासङ्गच्छे  
न्नतुरजोनिवृत्तौ । यतआह ।**

अर्थ—रजोदर्शनिवृत्ति होनेमें पुरुष स्त्रीगमन करे, किंतु रजोदर्श होनेमें स्त्री-गमन न करे जैसे लिखा है ।

त्रिरात्रिस्त्रीवर्जनेमेंयुक्ति ।

**नचप्रवर्त्तमानेरक्तेबीजंप्रविष्टंगुणकरंभवति । यथानद्यांप्रति  
स्रोतःप्लाविद्रव्यंप्रक्षिप्तंप्रतिनिवर्तते नोर्ध्वगच्छति । तद्वदे  
वद्रष्टव्यं तस्मान्त्रियमवर्तीत्रिरात्रंपरिहरेत् ।**

अर्थ—जब तक योनिसैं रुधिर स्रवे तावत्कालपर्यंत स्त्रीसंग न करे, क्योंकि ऐसैं समयमें जो वीर्य योनिमें गिरे वह गुण कर्त्ता नहीं होय, अर्थात् गर्भधारण कर्त्ता नहीं होवे । जैसे नदीके प्रवाहमें वहनेवाला काष्ठ आदि पदार्थ वहि जाता है । ऊपरको नहीं प्राप्त हो उसी प्रकार वहते हुए रुधिरमें वीर्य सिंचन करनेसैं वीर्य वहकर बाहर गिर जाता है । भीतर गर्भाशयमें नहीं रहे । अतएव नियमपूर्वक स्त्रीगमनमें तीन रात्रि वर्जित है । गयी आचार्य लिखे हैं कि, ( तत्रप्रथमदिवस इत्यादि ) यावत् आगेकी तीसरी अध्याय है उसमें यह सिद्धान्त करा है कि दृष्टा-र्त्त ऋतुकाल स्त्रियोंके बारह दिनपर्यंत रहता है ।

उत्तरोत्तरदिवसोंमेंगमनकाफल ।

**एषूत्तरोत्तरंविद्यादायुरारोग्यमेवच । प्रजा  
सौभाग्यमैश्वर्यं बलंचाभिगमात्फलम् ॥**

अर्थ—पूर्वोक्त चतुर्थ आदि रात्रियोंमें गमन करनेसैं उत्तरोत्तर आयु, आरोग्य, संतान, सुभगता, ऐश्वर्य और बल इन्की प्राप्ति होती है । अर्थात् चतुर्थ रात्रिमें गमन करनेसैं, आयुष्य और आरोग्यकी प्राप्ति होवे । छठवीं रात्रिमें पुत्रकी प्राप्ति, आठवींमें सुभगता, दशवींमें ऐश्वर्यकी प्राप्ति, और बारवीं रात्रिमें गमन करे तो बलकी प्राप्ति होवे, और कन्याकी इच्छा करके विषम रात्रि, अर्थात् ५-७-९-११ इन रात्रियोंमें गमन करना चाहिये [ त्रयोदशप्रभृतयोर्निद्याः ] तेरवीं रात्रि सैं आदि ले १४-१५-१६ इत्यादि रात्रि स्त्री गमनमें वर्जित है ।

तथाचवाग्भटे ।

ऋतुस्तुद्वादशनिशाः पूर्वास्तिस्रश्चनिन्दिताः ।

एकादशीचयुग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासुकन्यका ॥

अर्थ—रजोदर्श होनेसे लेकर, १२ रात्रिपर्यन्त ऋतुवती स्त्री रहती है । अर्थात् तीन दिनही ऋतुवती होती है, ऐसा नहीं किंतु, बारह रात्रिपर्यन्त रजोदर्श होता है । इन बारह रात्रियोंमें पहली तीन रात्रियोंमें गमन करना निषेध करा है । इन्में उत्तम बुद्धिवाला पुरुष गमन न करे । इसीसे पुरुषको ब्रह्मचर्य करना लिखा है । और उसी प्रकार ग्यारवीं रात्रिभी निषेध है । और इस श्लोकमें जो ( च ) है उससे तेरवीं रात्रिभी निषेध है । अर्थात् तेरवीं रात्रिमें गमन करनेसे नपुंसक संतान होती है ऐसे कोई आचार्य कहते हैं । समरात्रि ४, ६, ८, १०, १२, में गमन करनेसे पुत्र होता है, अर्थात् इन रात्रियोंमें स्त्रीके आर्त्तव थोड़ा होता है, और विषम ५, ७, ९, रात्रियोंमें गमन करनेसे कन्या प्रगट होती है, इन रात्रियोंमें पुरुषके वीर्य थोड़ा होता है, सम रात्रियोंमें रज ( रुधिर ) का थोड़ा होना और विषम रात्रियोंमें वीर्यका थोड़ा होना इन दोनोंका कारण अचित्य है, अर्थात् यह नहीं कह सकते कि सम रात्रियोंमें रज थोड़ा कौन कारणसे होता है । और विषम रात्रियोंमें वीर्य थोड़ा होनेका कौन कारण है । यदि आहार विहारादि द्वारा विषम रात्रिमें शुक्र अधिक हो जावे और सम रात्रिमें शुक्र थोड़ा होनेसे जो पुत्र होय वह पुरुष, स्त्रीके सदृश आकारवाला दुर्बल अथवा हीन अंगवाला होवे, सो लिखाभी है, “स्त्रियाःशुक्रेऽधिकेस्त्रीस्यात्पुमान्पुंसोऽधिकेभवेत् । तस्माच्छुक्रविवृद्धचर्यवृष्ट्यस्निग्धं चसेवयेत् ॥ एकादशीत्रयोदशयोस्तुनपुंसकामिति” और पुत्रकी इच्छा करके सम रात्रिमें पुंसवनादिक कर्म करे । और कन्याकी इच्छा करके स्त्री पुरुष दोनों विषम रात्रिमें पुंसवनादि संस्कार करें ।

ततःसायंकालीननित्यकर्मकृत्वोभौशुक्लाम्बरानुलेपन  
माल्याभरणादिभिरलंकृतौस्वलंकृतधूपितंगंधमाल्या  
मलदीपयुक्तगृहंप्रविशेताम् ।

अर्थ—तदनंतर सायंकालको नित्य कर्म करके दोनों स्त्री पुरुष, सपेद वस्त्र, चंदन, माला, भूषण, आदिसैं शृंगार कर, झाड फन्नूस खिलोना चित्राम पडदे आदिसै सजे हुए, और अगर केशर आदि अष्टांग षोडशांग धूप ( धूनी ) सैं धूपित, तथा दीपावलियुक्त ऐसे परम सुंदर अटा अटारी चित्रमारी सुखकारी गृहमें प्रवेश करे ।

ततोभर्त्ताअभग्रंजंतुवर्जितंसुखस्पर्शवितानोपरिमंडितं  
ञ्चकंशोभनेमुहूर्त्तैसप्रियमारुह्यवक्ष्यमाणविधिमाश्रयेत् ।

अर्थ—तदनंतर भर्त्ता अभग्र ( टूटी न हो ) और खटमल आदि जीवोंसँ रहित जिस्के स्पर्शमात्रसँ सुख होवे, तथा चंदोवा आदि जिस्के तन रहा हो, ऐसी परम सुंदर मेजपर उत्तम मुहूर्त्तमें अपनी स्त्रीसहित प्राप्त हो आगे जो विधि कहेंगे उसको करे। शय्याके लक्षण बृहत्संहितामें लिखे है सो देख लेना \* वाग्भट कुछ विशेष कहता है ।

वाग्भटे ।

कर्मान्तेचपुमान्सार्पिःक्षीरशालयोदनाशितः । प्राग्दक्षिणे  
नपादेन शय्यामौहूर्त्तिकाज्ञया ॥ आरोहेत्स्त्रीतुवामेन त  
स्यदक्षिणपार्श्वतः । तैलमाषोत्तराहारांतत्रमंत्रंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त पुत्रेष्टी कर्म करके पुरुष दूध भातका भोजन कर, ज्योतिषीकी आज्ञासँ शय्यापर प्रथम दहना पैर धरके स्थित होय, और तैल, उडद, आदि-के पदार्थोंका भोजन कर स्त्री बांयापैर प्रथम रख कर पतिके दहनी तरफ बैठे फिर पति ये मंत्र पढे । \* प्रसंग वशसँ स्त्रीगमनका मुहूर्त्तभी लिखते हैं ।

ईयाद्रजोदर्शनकालतोनरो वशामहःपञ्चकमर्कसावनम् ।  
विहाययुग्मासुविभावरिष्वतो ह्यूर्ध्वंसुदायादफलाप्तिकामः ॥

अर्थ—रजोदर्शके प्रथम ५ दिन त्याग कर, उपरांत सम रात्रियोंमें सुंदर संतानरूप फलकी इच्छा करनेवाला पुरुष स्त्रीगमन करे ।

भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताश्वसन्ध्या भौमार्ककीर्णाद्यरात्र्यश्वतस्रः ।  
गर्भाधानंत्र्युत्तरेन्दुर्कमैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपेसत् ॥  
केन्द्रात्रिकोणेपशुभैश्वपापैरुयायारिगैः पुंग्रहदृष्टलग्ने।ओजां  
शकेऽब्जेपिनयुग्मरात्रौ चित्रादितीज्याश्विषुमध्यमंस्यात् ॥

अर्थ—भद्रा छट्ट, पर्व ( १४ ८-३०-१५-ये तिथी और संक्रांत ), ४-९-१४-ये तिथी, प्रातःकाल और सायंकाल ए देतों संध्या, तथा मंगल, सूर्य, शनि,

\* असनस्यंदनचंदनहारिद्रासुरदारुतिन्दुकीशालाः । काश्मर्यजनपद्मकशाकावाशिशपा चशुभाः॥प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मितशयनासनसेवनात्कुलविनाशः । व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्यनर्थाश्वनैकविधाः ॥ इत्यादिचिंतनीयम् ।

येवार [ कोई आचार्य बुधवार नपुंसक होनेसें उस्कोभी वर्जित करते हैं ] तथा रजोदर्श होनेकी प्रथम चार रात्रि ये स्त्रीगमनमें निषेध हैं \* तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, मृगशिर, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, और शतभिषा इन नक्षत्रों में गर्भाधान करना उत्तम है ॥ २ ॥ अब लग्नबल कहते हैं, केन्द्र ( १. ४. ७. १०. ) त्रिकोण ( ५. ९. ) स्थानों में शुभ ग्रह बैठे होवे, और ३. ११. ६. इन स्थानों में पाप ग्रह पडे हो, तथा, पुरुष ग्रहों करके वीक्षित लग्न हो, और विषम राशि के नवांशक में चंद्रमा पडा हो, तथा, सम रात्रियों ( ६. ८. १०. १२. ) में पुत्र की इच्छावाला, और विषम रात्रियों में कन्या की इच्छावाला पुरुष स्त्रीगमन करे अर्थात् गर्भाधान करे । और चित्रा, पुनर्वसु, तथा अश्विनी इन नक्षत्रों में गर्भाधान करना मध्यमफल देता है । अब गर्भाधान में वर्जित स्त्री पुरुष कहते हैं ।

यथाचरके ।

तत्रान्याचिताक्षुधितापिपासिताभीताविमनाशोकार्ताक्रुद्धा  
न्यञ्चपुमांसमिच्छन्तीमैथुनेचाभिकामानगर्भधत्तेविगुणांवा  
प्रजांजनयतिअतिबालामतिवृद्धांदीर्घरोगिणीमन्येनविकारे  
गोपसृष्टांवर्जयेत् पुरुषस्याऽप्येतएवदोषाः ।

अर्थ—अन्य पुरुष से रक्षित, क्षुधावाली, प्यासी, भयभीत, संभोगकी इच्छा रहित, शोचसे व्याकुल, क्रोधयुक्त, अन्य पुरुषकी इच्छा करनेवाली, और जो केवल मैथुनसुखके निमित्त संग करा चाहे, ऐसी स्त्री गर्भ नहीं धारण करे। यदि गर्भ रह-भी जाय तो दुष्टसन्तानको प्रगट करती है । अतिबाल्य अवस्थावाली, अतिवृद्ध, बहुत दिनों की रोगिणी, और अन्य विकारों से दूषित, ऐसी स्त्रियों का संग करना वर्जित है । और जो दूषण स्त्रियों के कहे हैं वोही दूषणवान् पुरुषभी स्त्रियों के लिये वर्जित है ।

अतः सर्वदोषवर्जितौस्त्रीपुरुषौसमृज्येयातां । संजातहर्षौ  
मैथुनेचानुकूलाविष्टगंधंस्वास्तीर्णं सुखशयनमुपकल्प्य

\*गंडांतंत्रिविधंत्यजेन्नधिजन्मर्क्षचमूलान्तकं दासंपौष्णमथोपरागादिवसंपातंतथावैधृतिम् ।  
पित्रोः श्राद्धदिनंदिवाचपरिघाद्यर्घ्यस्वपत्नीगमे भान्युत्पातहतानिमृत्युभवनंजन्मर्क्षतः पाप-  
भम् ॥ १ ॥ मुहूर्त्तमार्त्तण्डेतुश्राद्धदिवसस्यार्वाग्दिनमपिगर्भाधानेपरिहृतम् ।

मनोज्ञंहितमज्ञनमशित्वानात्याशितौदक्षिणपादेन पुमा  
नस्त्रीवामेनारोहेत् तत्रमंत्रप्रयुंजीत ।

अर्थ—अतएव इष्ट सुगंधित पदार्थों से व्याप्त, ऐसी सुखशय्या को विछाय, तथा चित्तको प्रिय ऐसे पदार्थों को भोजन करके और अत्यन्त भोजन न करा होय तथा प्राप्त हुआ है हर्ष जिनको मैथुन में अनुकूल ऐसे सर्व दोष वर्जित दोनों स्त्री पुरुष मिलकर शय्याके ऊपर चढ़ें, तहां पुरुष प्रथम दहना पैर रक्खे और स्त्री वाम पैर धरके चढ़े, तदनन्तर आगे जो मंत्र कहे हैं उनको पढ़े ॥

दक्षिणकरेणपतिर्वध्वाउपस्थमभिमृश्यजपति ।

ॐपूषाभगंसवितामेददातु रुद्रःकल्पयतुललामगुंविष्णु  
यौनिकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशतुआसिंचतु प्रजापति  
र्धातागर्भदधातुमे ।

अर्थ—पति दहने हाथ से स्त्रीका भग स्पर्श कर ये मंत्र पढ़े ।  
तदनन्तरपतिपूर्वमुख अथवा उत्तरमुखबैठकर  
इनमंत्रोंसे स्त्रीको अभिमंत्रितकरे ।

ॐअहिरसिआयुरसिसर्वतःप्रतिष्ठासिधातात्वांदधातु विधा  
तात्वांदधातु ब्रह्मवर्चसाभवेति । ब्रह्माबृहस्पतिर्विष्णुःसो  
मः सूर्यस्तथाश्विनौभगोथमित्रावरुणौ वीरंददतुमेसुतं  
सांत्वयित्वाततोऽन्योन्यं संविशेतांमुदान्वितौ ॥  
उत्तानातन्मनायोपि तिष्ठेदद्वैःसुसंस्थितैः ॥

अर्थ—मंत्रपाठके अनन्तर प्रिय वचन कह प्रीत उत्पन्न करके मैथुन भावको प्राप्त होय, तथा हर्षपूर्वक स्त्री पति में मनको लगाय, सर्व अवयवोंको यथावस्थित करके उत्तान ( सीधी ) लेट जावे, चित्त लेटनेका प्रयोजन कहते हैं ।

तथाहिबीजंगृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः ।

अर्थ—वातादि दोषों को अपने २ स्थानमें स्थित रहने से स्त्री को उसी प्रकार वीर्य ग्रहण करना चाहिये ।

तथाचसंग्रहेचोक्तम् ।

नचासावधस्तिष्ठेत् । तथाहिस्त्रीचेष्टः पुमान्जायते पुंचेष्टा

वास्रीच । नचन्युब्जांपार्श्वगतांवासेवेत । न्युब्जायावातो  
बलवान्सयोर्निपीडयति । दक्षिणपार्श्वगायाःश्लेष्मापीडि  
तश्रुतोऽपिदधातिगर्भाशयम् । वामपार्श्वगायास्तत्पित्तंवि  
दहतिरक्तशुक्रे । तस्मादुत्तानावीजंगृह्णीयात् । तस्याहिय  
थास्थानमवतिष्ठन्तेदोषाः पर्याप्तैचैनांशीतोदकेनपरिषिंचेत्

अर्थ—पुरुष को स्त्री के नीचे रहकर मैथुन करना वर्जित है इस प्रकार मैथुन-  
से जो गर्भ रहता है, उस से स्त्री कीसी चेष्टावाला लड़का उत्पन्न होता है ।  
अथवा पुरुषकी चेष्टावाली कन्या होती है, तथा कुबडी होकर जो स्त्री समीप  
प्राप्त हो उसमें मैथुन न करे । क्योंकि कुबडी स्त्रीके वात प्रबल रहती है, वह वात  
योनिको पीडित करती है, इसी से गर्भ नहीं रहता । तथा दहनी करवटवाली  
स्त्रीके कफ पीडित होकर गिरता है उसीसे गर्भाशय भर जाता है । और वाई कर-  
वटवाली स्त्रीके रक्त शुक्रको पित्त दहन ( भस्म ) कर देता है । इसी से स्त्री  
उत्तान अर्थात् चित्त ( सीधी ) लेट कर वीर्य ग्रहण करे । सीधी लेटने वाली स्त्रीके  
सर्व दोष अपने अपने स्थानमें स्थिर रहते हैं । । जब वीर्य ग्रहण कर चुके तब  
इसको शीतल जलसे सेचन करे ।

प्रसंगवशभगकीतीननाडियोंकेवर्णन ।

मनोभवागारमुखेऽबलानां तिस्रोभवन्तिप्रमदाजनानाम् ।  
समीरणाचन्द्रमुखीचगौरी विशेषमासामुपवर्णयामि ॥

अर्थ—कामगृह ( भग ) के मुखमें स्त्रियोंके तीन प्रकारकी नाड़ी होती हैं ।  
तिनमें एक समीरणा, दूसरी चन्द्रमुखी और तीसरी गौरी, इनके भेद अब हम  
वर्णन करते हैं ।

प्रधानभूतामदनातपत्रे समीरणानामविशेषनाडी ।

तस्यामुखेयत्पतितंतुवीर्यं तन्निष्फलंस्यादितिचन्द्रमौलिः ॥ २ ॥

अर्थ—मदनरूपी छत्रमें प्रधान भूत ऐसी जो समीरणानामकी विशेष नाड़ी है,  
उस नाड़ीके मुखमें जो वीर्य गिरता है, वह निष्फल जाता है । ऐसे चन्द्रमौलि  
आचार्य कहता है ।

याचापराचान्द्रमसीचनाडी कन्दर्पगेहेभवतिप्रधाना ।

सासुन्दरीयोषितमेवसूते साध्याभवेदल्परतोत्सवेषु ॥ ३ ॥

अर्थ—दूसरी चान्द्रमस्त्री नामक नाड़ी कामगृहमें प्रधान होती हैं । उस नाड़ीमें वीर्य पड़ने से वह स्त्री कन्या उत्पन्न करती हैं और वह थोड़ेही संभोग उत्सव से प्रसन्न हो सकती हैं ।

गौरीतिनाडीयदुपस्थगर्भे प्रधानभूताभवतिस्वभावात् ।

पुत्रंप्रसूतेबहुधाङ्गनासा कष्टोपभोग्यासुरतोपविष्टा ॥ ४ ॥

अर्थ—स्त्रीकी भगमें स्वभावसे प्रधानभूत ऐसी गौरी नामक नाड़ी है । [ उसमें वीर्य पड़नेसे ] वह स्त्री बहुधा करके पुत्र प्रगट करती है और संभोगके समय पुरुषसे बड़े कष्ट से प्रसन्न होती हैं ।

गर्भाशयकास्वरूप ।

शङ्खनाभ्याकृतियोंनिरूयावर्त्तासाप्रकीर्त्तिता । तस्या  
स्तृतीयेत्वावर्त्ते गर्भशय्याप्रतिष्ठिता ॥ १ ॥ यथारोहि  
तमत्स्यस्य मुखंभवतिरूपतः । तत्संस्थानांतथारूपां  
गर्भशय्यांविदुर्बुधाः ॥ २ ॥

अर्थ—स्त्रीकी भग शंखके समान तीन त्रिवलीदार होती हैं, उसके तीसरे आर्त्तव ( आंटे ) में गर्भ शय्या प्रतिष्ठित है । जैसी रोहित मछलीके मुखकी छवि होतीहै, उसीके प्रमाण और उसीके सदृश रूप गर्भाशयका पण्डित कहते हैं । तात्पर्य यह है कि जैसे रोहित मछली जलमें रहती है उसी प्रकार गर्भाशयकी स्थितिभी पित्ताशय और पक्काशयके बीचमें है । और जैसा रोहित मछलीका मुख छोटा और आशयबड़ा होता है, उसी प्रकार गर्भाशयका मुख छोटा और आशय बड़ा होता है । गर्भाशयका १ नम्बरका चित्र देखो ।

एवंतामभिसङ्गम्य पुनर्मासाद्भजेदसौ।मासादूर्ध्वमितिशे  
षः।अर्वागमनेनगर्भद्वारविघट्टनात् गर्भच्युतिप्रसङ्गः  
स्यात् । केचित्तुपुनःपुष्पदर्शनेनगर्भालाभनिश्चयेमासा  
दूर्ध्वगच्छेत् लब्धगर्भनगच्छेदिति ।

अर्थ—इस प्रकार एकवार स्त्री गमन करके, फिर एक महिना होनेके उपरांत गमन करना चाहिये, कारण यह है कि महिनेके भीतर गमन करनेसे गर्भद्वार खुल कर गर्भ गिर जाता है । कोई आचार्य कहते हैं कि महिना होने से यदि स्त्री रजोदर्शवती होय तो जाने कि गर्भ नहीं रहा इसी कारण पूर्वोक्त विधि से फिर स्त्री गमन करे और यदि स्त्री कपड़ों से न होय तो फिर गमन नहीं करना चाहिये ।

गर्भ रहने में स्त्रीसंग त्याज्य है और गर्भ न रहने में स्त्री गमन करने योग्य है, इसी से सद्योगृहीतगर्भा स्त्रीके लक्षण कहते हैं।

**शुक्रशोणितयोर्योनिस्रवोऽथश्रमोद्भवः ।**

**सक्थिसादः पिपासाच ग्लानिः स्फूर्तिर्भगेभवेत् ॥**

अर्थ—शुक्र और रुधिरका योनि से स्राव न होय, श्रम होय ( जैसा मेहनत करने से परिश्रम होता है ) जंघाओंका जिकड़ना, प्यासका लगना, ग्लानि होय, और योनिमें स्फूर्ति ( फडकना ) होय, इन लक्षणों से गर्भ रहा जानना । विशेष लक्षण तृतीयाध्यायमें कहेंगे ।

गर्भवतीका आचार कहते हैं ।

**लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसुलक्ष्मणावटशुङ्गासहदेवाविश्वे  
देवानामन्यतमाक्षरेणाभिष्टुत्यत्रिंश्वतुरावापिबिन्दून्दद्यात्  
दक्षिणेनासापुटेपुत्रकामानतान्निष्ठीवेत् ।**

अर्थ—स्त्री गर्भवती होनेके उपरांत उसी दिन लक्ष्मणा वनस्पति, तथा वडकी को-पल, तथा पीले पुष्पकी कराही, और गुडशकरी, ( अथवा सपेद फूलकी बला ) इनमें किसी एकको दूध से पीस, तीन वा चार बूंद पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्री की नासिकाके दहनें नथनेमें सिंचन करे । उसे स्त्रीको थूकना न चाहिये ।

लक्ष्मणाका स्वरूप ।

**तत्रकाकरिरक्ताल्पबिन्दुभिर्लक्षितच्छदा ।**

**लक्ष्मणापुत्रजननी वस्तगंधाकृतिर्भवेत् ॥**

अर्थ—लक्ष्मणा वनस्पतिके पत्ते पर घूँघूँके रुधिर समान लाल २ बूंद थोड़ी २ सर्वत्र होती है । और आकृतिमें बनतुलसीके सदृश होती है । उसको पुत्र कर्ता जानना ।

उखाडने और लानेकी विधि ।

**तांशरत्कालेपुष्पफलोपेतांद्दृष्ट्वाशनिदिनेसंध्यायां तस्या  
श्चतुर्भुजागेषुखदिरकीलकान्निखाद्यापरेद्युर्हस्तमूलपुष्यैर्यौ  
गंगतेसवितरिमंत्रवद्गृहीत्वासमानवर्णवत्सगोक्षीरेणयथा  
विधिनस्यंदद्यात् ।**

अर्थ—लक्ष्मणाको शरद् ऋतुमें पुष्प फल संयुक्त देख कर, शनिवारके सायंकालको उसके चारों कोनोंमें खैरकी लकड़ीकी चार कील गाड़ देवे, और, धूप, दीप, रोरी, अक्षत और नैवेद्य सैं पूजन कर निमंत्रण कर आवे, फिर जब हस्त, मूल अथवा पुष्य नक्षत्रपर सूर्य आवे उस दिन जाय कर औषध उखाड़नेके जो मंत्र हैं उन्हीं सैं उसको जड़ सुद्धां उखाड कर घरले आवे पिछाड़ी फिरकर न देखे । पीछे बछडावाली एकरंग गौके दूधमें पीस पुत्रकी इच्छावाली स्त्रीको दहने नथनेमें, और कन्यावालीको वाम नथने सैं विधिपूर्वक नस्य देवे ।

वाग्भटेविशेषमाह ।

अव्यक्तःप्रथमेमासि सप्ताहात्कललोभवेत् ।

गर्भपुंसवनान्यत्र पूर्वव्यक्तेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सात दिनके प्रथम गर्भ गोलक, कफ सैं पिंडीभूत होता है । और सात दिनके उपरांत एक महिने पर्यंत गर्भ कलल अर्थात् कीचके समान अव्यक्तरूप होता है इसी कलल स्वरूप गर्भमें जबतक स्त्री पुरुषादि चिन्हकी उत्पत्ति न होय तिसके पूर्व ( प्रथम महिनेमें ) पुंसवनादि ( स्त्री पुरुष प्रगट कर्ता औषधोंके प्रयोग ) करने चाहिये ।

शिष्य—( शुद्धेशुकार्तवेसत्वः स्वकर्मकेशचोदितः । गर्भःसंपद्यतइत्युक्तं ) अर्थात् आप पहले यह बात कह आए हो कि शुद्धवीर्य और आर्त्तवमें कर्मप्रेरित जीव गर्भरूप को प्राप्त होता है । यदि पूर्वकर्मानुसार स्त्री होना लिखा है तो, अनेक यत्न करने सैं भी उस गर्भ को पुरुष नहीं कर सक्ते, इसी सैं हे गुरो ! मेरी समझ में पुंसवन कर्म करनाही असत्य है ।

गुरु—तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इस का यह उत्तर है कि, “ बली पुरुषकारोहिदैवमप्यतिवर्त्तते ” अर्थात् बलिष्ठ पुरुषार्थ निर्बल दैव को जीत लेता है। और उसी प्रकार बलिष्ठ कर्म पुरुषार्थ को जीत अपना फल करता है, इसी सैं पूर्वजन्मकृत बलिष्ठ कर्म करके प्राप्त जो कन्या गर्भ, उसका पुंसवनादि कर्म रूप पुरुषार्थ हजारो करने सैं भी कदाचित् पुरुष नहीं कर सक्ते । जैसैं लिखा है ।

दैवंपुरुषकारेण दुर्बलं ह्युपहन्यते ।

दैवेनचेतरत्कर्मप्रकृष्टेनोपहन्यते ।

अर्थ—बलिष्ठ पुरुषार्थ ( उद्योग ) सैं दुर्बल दैव नष्ट होता है, और बलिष्ठ दैव ( प्रारब्ध ) सैं बलहीन पुरुषार्थ नष्ट होता है, अतएव पुंसवनादि क्रियाओंके करने सैं सिद्ध असिद्धके अनुमान सैं पूर्वजन्मकृत कर्मका हीनबल और प्रबल-

ताका निश्चय होता है । तात्पर्य यह है कि, पुंसवनादि क्रिया करनेसें यदि गर्भाधान हो कर पुत्रोत्पत्ति होनेसें पूर्वजन्मके कर्मको हीन बली जाने, और पुंसवनादि कर्म करनेसें संतान न होवे तो दैव ( पूर्व जन्मके संस्कारको ) प्रबल जानना, परंतु हमारी समझमें तो पुरुषार्थही मुख्य है यदि पुरुषार्थ करनेसें जो कार्य सिद्ध न होय तो जाने कि हमारे पुरुषार्थमेंही कुछ कसर रही है । यदि ऐसा न मानोंगे तो फिर आयुर्वेद ( वैद्यक शास्त्र ) को सर्वथा असत्यता आवेगी । कदाचित् तुम यह कहो कि अनेक मनुष्य औषध सेवन करते करते मर गए ऐसा हमने प्रत्यक्ष देखा है, तो ऐसे बुद्धिवालों से हमारा यही उत्तर है कि, जो औषध खाते खाते मर गए उन्होंने अपना निदान यथार्थ नहीं करा, यदि निदान ठीक हो जाता तो वह रोग कदाचित् न रहता. यथार्थ निदान करके जो औषध दीनी जाती है वह अपना चमत्कार शीघ्र दिखाय देती परंतु आज कल यथार्थ निदानके जाननेवाले क्या इस भारतवर्षमें और क्या दुसरी विलायतोंमें थोड़ेही जहां तहां निकले और नहीं भी निकले, इस निदानकी विशेष व्याख्या निदान प्रकरणमें करी जावेगी ।

कदाचित् तुम कहो कि ऐसाही तुम मानते हो तो फिर मनुष्य औषधों से अपने मरणरूप रोगका उपाय क्यों नहीं कर लेवे, इसमें हम इतना कहते हैं कि “अतोमृत्युरवार्यःस्यात्किंतुरोगान्निवारयेत्” अर्थात् रोग दूर हो सक्ते हैं परंतु मृत्यु दूर नहीं हो सके, यह शार्ङ्गधर कहते हैं ।

### अथपुंसवनप्रयोग ।

पुष्येपुरुषकंहैमं राजतंवाथवायसम् । कृत्वाऽग्निवर्णं  
निर्वाप्य क्षीरितस्यांजलिपिवेत् ॥

अर्थ—पुष्यनक्षत्रमें सोने वा चांदीका अथवा लोहका पुतला बनावे, उस पुतलेको अग्निमें डाल कर खूब धमावे, जब अग्निके समान लालवर्ण हो जावे, तब निकाल कर दूधमें बुझावे, उस दूधको ३ पल स्त्रीको पिलाना चाहिये तो उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होय ।

गौरदण्डमपामार्गजीवकर्षभशैर्यकान् ।

पिवेत्पुष्येजलेपिष्ट्वानेकद्वित्रिसमस्तशः ॥ ❀

\* क्षीरेणश्वेतबृहतीमूलनासापुटेस्वयम् ।

पुत्रार्थदक्षिणेसेचेद्दामेदुहित्वांलया ॥

अर्थ—सपेद दंडका अंगा, तथा जीवक, ऋषभ और कटसरैया, इन्को पृथक् २ अथवा दो दो, अथवा सबको एकत्र कर जलमें पीस पुष्य नक्षत्रमें पीवे तो सुन्दर संतानकी प्राप्ति होय ।

पयसालक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदं । नासयास्ये  
नवापीतं वटशुङ्गाष्टकंतथा ॥ औषधीर्जीवनीयाश्चवा  
ह्यान्तरूपयोजयेत् ॥

अर्थ—दूधमें लक्ष्मणा औषधकी जडका कलक करके पीने सैं, अथवा नास लेने सैं जिस स्त्रीके पुत्र न होता हो उसके पुत्र होवे और जिसके होता हो परंतु मर जाता हो उसके चिरंजीव पुत्र हो । उसी प्रकार आठ बडके नवीन अंकुर, दूधमें पीनेसै दीर्घायुवाला पुत्र होय । ( प्रभावको अचिंत्य होनेसैं यहां बडके आठ अंकुरोंका ग्रहण है ) उसी प्रकार जीवनीय ( काकोली क्षीरकाकोली आदि ) औषधोंको बाह्य और अभ्यंतर योजना करे । तहां बाहर स्नान, उवटने आदि द्वारा कार्योंमें लेवे, और खाने, पीने आदि भीतरके प्रयोगमें लेनी चाहिये ।

यच्चान्यदपिब्राह्मणब्रूयुराप्तावापुंसवनमिष्टंतच्चानुष्ठेयम् ।

अर्थ—और जो अन्य औषध ब्राह्मण अथवा सत्पुरुष, इष्ट पुंसवन बतावे जैसे ( शिवलिङ्गी का बीज, मोरशिखा आदि हैं ) उसको भी करना उचित है, विशेष पुंसवन की औषध वंध्याकी चिकित्सा में लिखेंगे ।

केवल शुक्र शोणित सेही गर्भ धारण होता है ऐसा नहीं है, किंतु अन्य सामग्री-भी गर्भधारण में अपेक्षित हैं उनको कहते हैं ।

ध्रुवंचतुर्णासान्निध्याद्गर्भःस्याद्विधिपूर्वकः ।

ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरोयथा ॥

अर्थ—ऋतु ( वर्षा काल आदि ) पृथ्वी, जल, और बीज, ( चावल गेहूंआदि ) इन चारों के संयोग से अंकुर ( कुरा ) उत्पन्न होता है । उसी प्रकार ऋतु कहिये ( पुष्प ) क्षेत्र कहिये ( गर्भाशय ) जल कहिये ( जठराग्नि से अन्नका पाक होकर शरीर पालनीय रस उत्पन्न होता है सो ) और बीज कहिये ( आर्त्तव, शुक्र ) इन चारों के विधिपूर्वक संयोग होने से गर्भ उत्पन्न होता है ।

शुद्धेशुक्रार्त्तवेसत्वः स्वकर्मकेशचोदितः ।

गर्भःसंपद्यतेयुक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥

अर्थ—शुद्ध शुक्र आर्तव में अपने कर्म और क्लेशों को प्रेरित जीव युक्तिवश-से गर्भ को प्राप्त होता है । जैसे अरणी से अग्नि । अर्थात् जैसे मध्य, मंथन और मंथान सामग्री के बिना अग्नि नहीं होती उसी प्रकार गर्भ भी यथोक्त सामग्री के बिना नहीं होता । इस जगे स्त्री मध्यस्थानीय है, पुरुष मंथनस्थानीय है, और गर्भाशय मंथानस्थानीय जानना चाहिये । अरनी भी युक्तिपूर्वक मथने से अग्नि प्रगट करे हैं । बिना युक्तिके नहींकरे, उसी प्रकार स्त्री पुरुष भी विधिपूर्वक संग करने से संतान प्रगट करसक्ते हैं । इस श्लोक में [ स्वकर्मक्लेशचोदितः ] इस कहने-से यह प्रयोजन है कि जिन्हों का चित्त राग द्वेष अविद्या से बंधाहुआहै, उन्हीं को गर्भवास है । वीतरागवाले महात्माओं का तो जन्म होना असंभव है । क्योंकि वे कर्म-क्लेशों से रहित हैं. जैसे लिखाहै, “ चित्तमेवहिसंसारि रागक्लेशादिदूषितम् । तदेव तै-र्विनिर्मुक्तं भवांतइतिकथ्यते” ।

विधिपूर्वकहोनेवालेगर्भकाफल ।

एवंजातारूपवन्तः सत्ववन्तश्चिरायुषः ।

भवन्त्यृणस्यभोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणोहिताः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त विधिपूर्वक जे पुरुष उत्पन्न होते हैं वे रूपवान्, सत्त्वगुणसम्पन्न, चिरायुषी, ऋणलेकर न खानेवाले, अर्थात् संपत्तिवान्, माता पिताको सुख देने-वाले ऐसे सत्पुत्र होते हैं ।

शरीरकेकालेगोरेहोनेकाकारण ।

तत्रतेजोधातुवर्णानांप्रभवःसयदागर्भोत्पत्तौअब्धातुप्रायोभ

वति तदागर्भगौरं करोति । पृथ्वीधातुप्रायःकृष्णश्यामः ।

तोयाकाशधातुप्रायः गौरश्यामः । ( समसर्वधातुप्रायः

श्यामवर्णकरः )

अर्थ—सर्व देहके वर्ण होने का कारण तेज धातु है । यदि गर्भाधानके समय जल धातु अधिक होय तो उस गर्भ से गौर वर्ण बालक प्रगट होय । पृथ्वीधातु अधिक होने से कृष्ण और श्याम वर्णका बालक होय । जल आकाश धातुके अधिक होने से बालक का वर्ण गौर श्याम होता है और गर्भाधानके समय सर्वधातु समान होय तो बालक का श्यामवर्ण होता है किसी चरककी पुस्तक में ऐसामी लिखा है कि पृथ्वी धातु केवल कृष्ण वर्ण करती है । कृष्ण वर्ण कौआके सदृश, और श्याम वर्ण दूबके समान जानना ।

इसविषयमेंमतमतांतर ।

यादृग्वर्णमाहारमुपसेवेतर्गभिणीतादृग्वर्णप्रसवा  
भवतीत्येकेभाषन्ते ।

अर्थ—कोई आचार्य कहते हैं कि, गर्भवती जैसे २ स्वेत, पीत, कृष्णादि वर्णके पदार्थोंका सेवन करती है, उसके उसी वर्णका बालक होता है ।

विवृत्तशायनीनक्तंचारिणीचोन्मत्तंजनयत्यपस्मारिणम्पु  
नः कलिकलहशीलाव्यवायशीलादुर्वपुषमह्वीकंस्त्रैणंवा  
शोकनित्याभीतमपचितमल्पायुषंवाअभिध्यात्रीपरोप  
तापिनमीर्ष्युस्त्रैणंवास्तेनान्वायासबहुलमतिद्रोहिणमक  
र्मशीलंवा अमर्षणाचण्डमौपधिकमसूयकंवा स्वप्रनि  
त्यातन्द्रालुमबुधमल्पाग्निंवा ।

अर्थ—गर्भवतीके उलटे सोनेसें तथा रात्रिमें डोलने सें उन्मत्त, और मृगी रोग-  
वाला बालक प्रगट करती है । कठिन कलह करने सें तथा मैथुन करने सें दुष्ट देह  
और निर्लज्ज तथा स्त्रैण बालक होता है, शोक करने सें डरपनेवाला, क्रुश, तथा  
अल्पायु संतान होती हैं । और बुरा ध्यान करने वालीके ओंरोको दुःख देनेवाला  
ईर्षी, तथा स्त्रैण संतान है । चोरीकी इच्छा करनेवाली स्त्री अति परिश्रमी, अति-  
द्रोही, और खोटे कर्मका करनेवाला पुत्र प्रगट करती है । क्रोध करनेसें चंड,  
उपाधि कर्त्ता और निंदक संतान हो । निद्रा सें तन्द्रालु मूर्ख और मंदाग्निवान्  
संतति होती है ।

मद्यनित्यापिपासालुमनवस्थितंवा गोधामांसप्रायाशार्करि  
णमश्मरिणंशनैर्मैहिनंवा वाराहमांसप्रायारक्ताक्षङ्गक्रथनम  
नतिपरुषरोमाणंवा मत्स्यमांसनित्याचिरनिमिषंस्तब्धाक्षं  
वा मधुरनित्याप्रमेहिनंमूकमतिस्थूलं वा अम्लनित्यार  
क्तपित्तिनंत्वगक्षिरोगिणंवा लवणनित्याशीघ्रवलीपलितंखा  
लित्यरोगिणंवा कटुकनित्यादुर्बलमल्पशुक्रमनपत्यंवाति  
क्तनित्याशोषिणमबलमपचितंवा कषायनित्याश्यावमना  
हितमुदावर्त्तिनंवा यद्यच्चयस्ययस्यव्याधेर्निदानमुक्तंतत्तदा  
सेवमानान्तर्वत्नीतद्विकारबहुलमपत्यंजनयाति ।

अर्थ—गर्भवतीके मद्य सेवन करने से तृषावान्, तथा व्यग्रचित्तवाला बालक हो । गोधामांसके खानेसे शर्करा, और पथरी तथा शनैः प्रमेहरोगवाला होवे । सूकरके मांस खानेसे बालक लाल नेत्र, कसाई और अत्यंत कठोर रोमांचवाला होवे । मछलीके मांस खाने से चिर निमिष ( देरमें पलक लगे ) तथा विकट नेत्र-वाला हो । गर्भवतीके नित्य मिष्ट रस खाने से बालक प्रमेही, गूंगा और अति-स्थूल होता है, खट्टे रस खाने से रक्तपिप्ती कुष्ठरोगी, नेत्र रोगवान् हो, अत्यंत नोन-के पदार्थ खानेसे थोड़ी अवस्थामें वली ( गुजलट ) और पलित ( सपेद वाल ) तथा खालित्य ( शिरोरोगविशेष ) वाला होवे । चरपरे पदार्थ सेवनसे दुर्बल, अल्प वीर्यवान्, और जिसके संतान न होय ऐसा बालक होवे । कडुए पदार्थ सेवन से अतिशुष्क, निर्बल, पुष्टतारहित बालक हो । और गर्भवती स्त्रीके अत्यंत कसेले पदार्थोंके सेवन करनेसे काला, और उदावर्त्त रोगी बालकको प्रगट करती है । जिस जिस रोगके निदानमें जो जो वस्तु सेवन से जैसा जैसा रोग होना लिखा है, उसी पदार्थके सेवन से गर्भवती स्त्रीके ताद्विकारबहुल संतान प्रगट होती है ।

यदास्त्रियादोषप्रकोपेनोक्तान्यासेवमानायादोषाः प्रकुपिताः  
शरीरमुपसर्पन्तः शोणितगर्भाशयोपघातायोपपद्यन्ते नच  
कात्स्न्येनशोणितगर्भाशयोदूषयति तदायंगर्भलभतेस्त्री  
तदातस्यगर्भस्यमातृजादीनामवयवानामन्यतमवयवो वि  
कृतिमापद्यते ।

अर्थ—दोषप्रकोपोक्त पदार्थों के सेवन करने से दोष कुपित होकर जब स्त्रीके शरीरमें विचरते हुए रुधिर गर्भाशय में प्राप्त होते हैं तब स्त्रीके रज और गर्भाशय को नष्ट करते हैं । यदि रज और गर्भाशय संपूर्ण को दूषित न करे उस समय यदि गर्भको धारण करे, तो उस गर्भ के मातृज अवयवोंमेंसे कोईसा अवयव विकृति को प्राप्त हो । अर्थात् जो माता के अङ्ग हैं उसी अङ्ग का विकृतिवान् बालक होता है ।

एकोऽथवानेकोह्यस्ययस्यह्यवयवस्यबीजेबीजभागेवा  
दोषाःप्रकोपमापद्यन्ते तंतमवयवविकृतिराविशति ।

अर्थ—एक अथवा अनेक दोष इस पुरुष के जिस जिस अवयव ( अंग ) के बीज में अथवा बीजके किसी भागमें कोपको प्राप्त होते हैं, तो गर्भके उसी उसी अंगकी विकृति होती है ।

यदाह्यस्याःशोणितगर्भाशयबीजभागः प्रदोषमापद्यते तदावंध्यांजनयति । यदापुनरस्याः शोणितेगर्भाशयबीजभागावयवःस्त्रीकरणाञ्चशरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यते । तदारुयाकृतिभूयिष्ठामस्त्रियांवात्तानाम्नींजनयतितांस्त्रीव्यापदमाचक्षते ।

अर्थ—जिस समय स्त्रीके रज, गर्भाशय और बीजभागदोषों से दूषित होय, तब स्त्री वन्ध्या कन्धा प्रगट करे । अर्थात् उस स्त्रीके जो पुत्री होय सो वन्ध्या होवे । और यदि स्त्री के रज गर्भाशय और बीजभागका कोईसा अवयव अथवा स्त्रीके करनेवाले शरीर बीजभागों का कोईसा एकदेश दूषित होय तो उसके स्त्री की आकृति जिसमें अधिक ऐसी ( अस्त्री वात्ता नामक ) प्रगट करे उसको स्त्रीव्यापद अर्थात् स्त्रीव्याधि कहते हैं ।

एवमेवपुरुषस्ययदाबीजेबीजभागः प्रदोषमापद्यतेतदावंध्यंजनयति । यदापुनरस्यबीजेबीजभागावयवः प्रदोषप्रतिप्रजंजनयति । यदात्वस्यबीजेबीजभागावयवः पुरुषकराणांचशरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यतेतदापुरुषाकृतिभूयिष्ठपुरुषंतृणपूलिंनामजनयति तांपुरुषव्यापदमाचक्षते ।

अर्थ—उसी प्रकार पुरुष के वीर्यमें अथवा वीर्यके किसी भागमें दोष प्राप्त होते हैं तब उस पुरुषके वीर्यसे वंध्य पुत्र होता है। अर्थात् जो संतान प्रगट न करसके ऐसा पुत्र होया और जिस समय इस पुरुष के वीर्य तथा वीर्य भागके किसी एक अवयव में दोष कुपित हो तो प्रतिप्रज पुत्र प्रगट करे, यदि इस पुरुष के बीजमें अथवा बीजभाग के अवयवों में तथा पुरुषकर्ता शरीर बीजभागों का एक देश दोषों से दूषित होवे, तो उस पुरुष से पुरुषाकृति जिस में अधिक ऐसा अपुरुष ( तृणपूलि नामक ) प्रगट करे, उसको पुरुषव्यापद अर्थात् पुरुषव्याधि कहते हैं ॥

जन्मांध तथा लाल पीले सफेद और विकृत ऐसे नेत्र होनेके कारण कहते हैं ।

तत्रदृष्टिभागामप्रतिपन्नंतेजोजात्यन्धं करोति  
तदेवरक्तानुगतंरक्ताक्षं पित्तानुगतं पिङ्गाक्षं श्लेष्मा  
नुगतंशुक्लाक्षं वातानुगतं विकृताक्षमिति ।

अर्थ—तहां पूर्वीक्त तेज चतुर्थ माहिने इन्द्रियों के विभाग काल में पूर्व जन्म के-दुष्कर्म करके दृष्टि भागमें न प्राप्त होनेसे गर्भको जन्मान्ध करे है। उसीप्रकार वही तेज रुधिरसे मिलकर दृष्टिभाग में जानेसे गर्भवाले बालकके लाल नेत्र होतेहैं उसी प्रकार पित्त से मिलकर दृष्टिभागमें जानेसे पीले नेत्र करे है। और कफ-संयुक्त होनेसे गर्भ के श्वेत नेत्र करे है, वादीसे मिलकर दृष्टि भागमें तेज पहुंचने से विकृताक्ष अर्थात् कांणा, भैंड़ा, ऐंचाताने नेत्र करे हैं ( और दो तीनदोषोंके मिलाप होनेसे, कंजा, गुलाबी, तथा धूंघरे आदि नेत्रवाला गर्भ होता है। )

शिष्य—पुराना आर्तव जो इकट्ठा हुआ है, सो तो तीन दिन में छवकर निवृत्त होजाता है, और जो नवीन आर्तव है, सो थोड़ा होता है वह प्रवृत्त नहीं होसके, फिर आर्तव का संचार होकर शुक्रसे मिलकर कैसे गर्भाशय में प्राप्त हो गर्भरूप होता है।

गुरु—इसका यह कारण है।

घृतकुम्भोयथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते ।

विसर्पत्यार्त्तवंनार्यास्तथापुंसांसमागमे ॥

अर्थ—जैसे जमे हुए घृतका घड़ा अग्निके संयोगमें पिगलता है उसी प्रकार दोनों इन्द्रियोंके संघर्षणसें प्रगट जो ऊष्मा ( गरमी ) उस करके स्त्रियोंका आर्तव पतला हो, शुक्रसें मिल कर गर्भाशयमें प्राप्त होवे तदनंतर जीवांशसें मिल गर्भ होनेका कारण होता है। जैसे पुरुषके शुक्र होता है उसी प्रकार स्त्रीके भी शुक्र होता है यह प्रमाण आगे ३ अध्यायमें लिखेंगे।

ऋतौस्त्रीपुंसयोर्योगे मकरध्वजवेगतः ।

मेढ्रयोन्यभिसंघर्षाच्छरीरोष्मानिलाहतः ॥

पुंसःसर्वशरीरस्थं रेतोद्रावयतेऽथतत् । वायुर्मेहनमार्गेण

पातयत्यङ्गनाभगे ॥ तत्संश्रुतव्यात्तमुखं यातिगर्भाशयं

प्रति । तत्रशुक्रवदायाते आर्त्तवेनयुतंभवेत् ॥

अर्थ—ऋतुमें जिस समय स्त्रीपुरुषका संयोग होता है, तब कामदेवके वेग सें और लिंग योनिके परस्पर घिसनेसें, शरीरकी गरमी वायुसें ताडित हो, पुरुषके सर्व देहमें रहनेवाला जो वीर्य है उसको पतला कर बहाता है। वह बेह कर एकत्र होता है, उसको वायु लिंगेन्द्री द्वारा स्त्रीकी भगमें गेरता है। वह वीर्य खुले मुखवाले गर्भाशयके प्रति जाता है उसमें वीर्यके सदृश आनेवाले रुधिरसें मिल जाता है।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ।  
गर्भःसंपद्यतेनार्यः सजातोबालउच्यते ॥

अर्थ—कामसँ स्त्री पुरुषोंका संयोग होनेके अनंतर शुद्ध शोणित और वीर्यसँ स्त्रीको जो गर्भ होता है, वो जन्म लेने सँ बालक कहाता है । पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रुधिर यदि शुद्ध होय तो गर्भ शुद्ध होता है । और अशुद्ध होने सँ गर्भ भी अशुद्ध होता है । इस्में प्रमाण लिखते हैं ।

दम्पत्योःकुष्ठबाहुल्यादुष्टशोणितशुक्रयोः ।  
यदपत्यंतयोजातं ज्ञेयंतदपिकुष्ठितमिति ॥

अर्थ—जिन स्त्री पुरुषोंके कुष्ठ नामक भारी रोग होने सँ, रुधिर तथा वीर्य बिगड गये हों, उन कुष्ठवाले स्त्री पुरुषों सँ जो संतान होय वह भी कुष्ठरोगी होय है ।

शिष्य—हे गुरो ! यमल ( जोडा ) होनेका क्या कारण है ।

गुरु—यमल होनेका कारण पवन है । यथा ।

बीजेन्तर्वायुनाभिन्ने द्वेबीजे \* कुक्षिमाश्रिते ।  
यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥

अर्थ—बीज कहिये मिश्रित शुक्र शोणित, वे दोनों भीतरकी पवन सँ दो भाग होकर गर्भाशयमें गर्भरूप हो कर रहते हैं, उन्को यमल ( जोहडले ) कहते हैं । वे दोनों धर्मके पुरोगामी हैं परंतु [ गयी आचार्य ] ऐसा अर्थ करे हैं कि, धर्म सँ इतर अधर्मके पुरोगामी हैं । क्योंकि श्रुतिस्मृतियोंमें सर्वत्र यमलकी उत्पत्ति अधर्म सँही कही है । इसी सँ यमल ( जोडा ) होनेमें प्रायश्चित्त कहा है । किसी किसीके तीन चार आदि भी बालक होते हैं । २ नम्बरका चित्र देखो ।

शुक्राधिकं द्वैधमुपैति बीजं यस्याः सुतौ सासहितौ प्रसूते ।  
रक्ताधिकं वायुदिभेदमेति द्विधा सुते सासहिते प्रसूते ॥ भि  
नत्ति यावद्बहुधा प्रपन्नशुक्रार्त्तवं वायुरतिप्रवृद्धः । तावन्त्य  
पत्यानियथाविभागं कर्मात्मकान्यः स्ववशात् प्रसूते ॥

अर्थ—शुक्रकी अधिकता सँ जिस स्त्री की कूखमें बीजके दो विभाग हो जावे वह एक साथ दो पुत्र प्रगट करे । उसी प्रकार रुधिरके दो विभाग होने सँ एक साथ दो कन्या उत्पन्न करती है । अतिबली दुष्ट पवन शुक्र आर्त्तवके जितने विशेष-

ष विभाग करे, उतनीही संतान यथा विभाग पूर्वक स्त्री प्रगट करती है । यदि शुक्र अधिकके पवन अनेक विभाग करे तो अनेक पुत्र होवें, और स्त्री का रुधिर अधिक होय उसके जितने विभाग करे उतनीही कन्या प्रगट होती है । यदि शुक्र और रुधिरके न्यूनाधिक मिल कर दो टुकडे होय तो एक कन्या एक पुत्र होवे शूकर और कुत्तोंकी जातिमें सदैव विशेष संतान होनेका यही कारण है, ३ नम्बरका चित्र देखो ।

कर्मांशकत्वाद्दिषमांशभेदाच्छुक्रासृजौवृद्धिमुपैतिरूक्षौ ।  
एकोऽधिकान्यूनतरोद्धितीया एवंयमेप्यभ्यधिकोविशेषः ॥

अर्थ—पूर्वजन्मोपाजित कर्मांशकी विषमतासें शुक्र और रुधिर रूक्ष वृद्धिको प्राप्त होते हैं, तब एककी अधिक वृद्धि होती है दूसरेकी न्यून होती है, इसीसें एक बालक मोठा होता है और एक पतला होता है ।

शिष्य—कभी कभी संतानवाली स्त्री भी देरीमें संतती क्यों प्रगट करती है तथा किसी किसी स्त्रीके गर्भ हो कर नष्ट हो जाता है, परंतु नष्ट होता हुआ नहीं मालूम हो इसका क्या कारण है सो कहो?

गुरु—इसका यह कारण है सो सुनों ।

योनिप्रदोषान्मनसोऽभितापाच्छुक्रासृगाहारविहारदोषात् ।  
अकालयोगाद्बलसंक्षयाद्वागर्भचिराद्धिन्दतिसप्रजाऽपि ॥  
असृङ्गनिरुद्धं पवनेननार्यागर्भव्यवस्यन्त्यबुधाः कदाचित् ।  
गर्भस्यरूपंहिकरोतितस्यास्तदस्त्रमस्त्राविविवर्द्धमानम् ॥

अर्थ—योनिके दोषसें, मनके तापसें, वीर्य रुधिर और आहार विहारके दोष सें दुष्ट समयके योग सें, बल क्षीण होने सें, इन कारणों सें संतानवालीभी स्त्री देरीमें गर्भ धारण करती है । किसी किसी स्त्रीके पवन करके रुधिर रुकजाने सें पेटमें गोलासा हो जाता है । उसको मूर्ख मनुष्य गर्भ बताते हैं । वह रुधिरके एकत्र होने सें गर्भके से लक्षणवाला दिन २ प्रति बढ़ता है ।

तदग्निस्सूर्यश्रमशोकरोगैरुष्णान्नपानैरथवाप्रवृत्तम् ।  
दृष्ट्वासृगेकेनचगर्भसंज्ञाः केचिन्नराभूतहृतंवदन्ति ॥

अर्थ—पूर्वोक्त रुधिर, अग्नि, सूर्य, परिश्रम, शोक, और रोगों सें तथा गरम अन्न पान करके तपायमान हो निकलने लगे उसको देख कर कोई मनुष्य कहते हैं

कि इस्को गर्भ नहीं है, और उसीको कोई मूर्ख मनुष्य भूत इत अर्थात् भूतबाधा सैं गर्भ नष्ट हो गया ऐसा कहते हैं ।

पंचषंडोंकीउत्पत्तिकाकारणकहतेतिनमें

आसेक्यषंड ( नपुंसक )के लक्षण ।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यःपुरुषोभवेत् ।

सशुकंप्राश्यलभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥

अर्थ-गर्भाधानके समय माता पिताके अत्यंत अल्प वीर्य होने सैं जो गर्भ रहता है, उससैं आसेक्य नामा षंड उत्पन्न होता है । वह अपने मुखमें दूसरेके मैथुन करने सैं जो प्रगट वीर्य, उसको भक्षण करे तब उसकी लिंगेन्द्री उठे उसका दूसरे नाम मुखयोनी है ।

सौगंधिकषंड ।

यःपूतियोनौजायेत ससौगंधिकसंज्ञितः ।

सयोनिशेषसोर्गन्धमात्रायलभतेबलम् ॥

अर्थ-दुर्गन्ध योनिवाली स्त्री सैं जो पुरुष उत्पन्न होता है, वह सौगंधिक महाषंड कहाता है वह लिंग और योनिको संघे तब लिंग चैतन्य होय, उसका दूसरा नाम नासायोनि जानना ।

कुम्भिकषंडके लक्षण ।

स्वेगुदेऽब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषुपुंवत्प्रवर्तते । कुम्भिकः

सतुविज्ञेयः ॥

अर्थ-जो पुरुष प्रथम अपनी गुदा भंजन करावे, तब उसके लिंग में चैतन्यता प्राप्त होने से स्त्रियों में पुरुष के समान प्रवृत्त हो । उसको कुम्भिक नपुंसक कहते हैं । [ कोई आचार्य ] ऐसा अर्थ करते हैं, कि प्रथम स्त्रियों की गुदामें पशुके समान पिछाड़ी बैठकर शिथिल लिंग से उन्हींकी गुदा भंजन करे, किस निमित्त की [ ब्रह्मचर्यात् ] ब्रह्मचर्य करने से जो नपुंसकता प्राप्त हुई उसके दूर करने को यह कर्म करता है, अतएव इस विकृति के करने से जब लिंग चैतन्य हो तब स्त्रियों में पुरुष के सदृश प्रवृत्त हो, उसको कुम्भिक नपुंसक कहते हैं । इसी का दूसरा नाम गुदयोनि है । इस की उत्पत्ति का कारण ग्रन्थान्तरों में इस प्रकार लिखाहै ।

मातुर्व्यवायप्रतिमेनवक्रीस्याद्वीजदौर्बल्यतयापितुश्च ।

अर्थ—गर्भाधान के समय माताके विपरीत मैथुन करने से और पिताके वीर्य निर्बल होने से कुंभिक संतान होती है । [ गयी आचार्य ] कुंभिककी उत्पत्तिके हेतु में काश्यपोक्त श्लोक कहता है । यथा

अरजस्कायदानारी श्लेष्मरेताव्रजेदृत्तौ ।

अन्यसक्ताभवेत्प्रातिर्जायतेकुम्भिलस्तदा ॥

अर्थ—गर्भाधान के समय अल्प रजवाली स्त्री में, कफरेता अर्थात् शिथिल रेतवाला पुरुष गमन करे, उस पुरुष से उस स्त्री की काम शांति न होने से अन्य पुरुष के साथ मैथुन करने की इच्छारहे, उस कालमें जो गर्भ रहे उसमें कुंभिल षंड उत्पन्न होता है ।

ईर्ष्यककेलक्षण ।

ईर्ष्यकंशुणुचापरम् ॥ दृष्ट्वाव्यवायमन्येषांव्यवाये  
यःप्रवर्तते ॥ ईर्ष्यकःसतुविज्ञेयोदृग्योनिरयमीर्ष्यकः ॥

अर्थ—अब ईर्ष्यक के लक्षण सुनो । जो पुरुष औरों को मैथुन करता देखकर आप मैथुन करने को प्रवृत्त हो, ( अर्थात् जब तक दूसरे को मैथुन करता हुआ न देखे तबतक लिंग खडा न हो ) उसको ईर्ष्यक षंड कहते हैं, तथा दृग्योनि यह इसका दूसरा नाम है ।

अत्रापितंत्रांतरपठितोहेतुर्यथा ।

ईर्ष्याभितापावपिमन्दहर्षादीर्ष्याह्वयस्यापिवदन्तिहेतुम् ।

अर्थ—गर्भाधान के समय दोनों स्त्री पुरुष, परोत्कर्ष के असहन करके पराभव को प्राप्त हो चिंतातुर होकर मैथुन करने को प्रवृत्तहोवे, उस समय जो गर्भ रहे उससे ईर्ष्यक षंडक होता है ।

छयाकृतिषंडकेकारणऔरलक्षण ।

षंडकंशृणुपञ्चमं॥योभार्यायामृतौमोहादङ्गनेव  
प्रवर्तते । तत्रस्त्रीचेष्टिताकारो जायतेषंडसंज्ञितः ॥

अर्थ—पंचम षंड ( नपुंसक ) के लक्षण सुन । जो पुरुष मूर्खता से ऋतुकाल-में भार्या के विषे आप नीचे स्त्री के सदृश चित्त लेकर मैथुन करावे, उस

काल में पुरुष के वीर्य से स्त्री कीसी चेष्टावाला षंड उत्पन्न होता है । यह स्त्री के सदृश आप नीचे सोयकर अपने शिश्र ( लिंग ) पर अन्य पुरुष से वीर्य गिराता है तब इसकी शांति होती है । इसप्रकार नरषंड कहकर अब नारीषंड कहते हैं ।

स्त्रीषंडकेलक्षण ।

ऋतौपुरुषवद्रापि प्रवर्तेताङ्गनायादि ।  
तत्रकन्यायदिभवेत्साभवेन्नरचेष्टिता ॥

अर्थ—जो स्त्री, पुरुष को नीचे सुलाय आप पुरुष के सदृश ऊपर चढ़कै मैथुन करे, उस समय जो गर्भ रहे उस गर्भ से जो कन्या होय वो पुरुष कीसी चेष्टावाली होवे । अर्थात् वह स्वयं स्त्रीरूपभी है, परन्तु पुरुषके सदृश दूसरी स्त्री के ऊपर चढ़ उसकी योनिसे अपनी योनिको घर्षण करे ।

शिष्य—स्त्री षंड और पुरुष षंडमें अंतर कुछ भी नहीं मालूम हो, अर्थात् दोनोंमें स्त्री ऊपर चढ़ कर मैथुन करती है । फिर दो प्रकारके षंड कैसे होते हैं । और मेरी समझमें तो दो पाठ भी न लिखने चाहिये ।

गुरु—तुमने कहा सो ठीक है, परन्तु इन दोनों षंडोंमें स्त्री पुरुषोंका मन कारण है । अर्थात् पुरुष षंडमें पुरुष अपनी इच्छा से स्त्रीको ऊपर चढ़ा कर मैथुन करता है, और स्त्री षंडमें स्वयं स्त्री पुरुषके ऊपर चढ़कर मैथुन करती है । अतएव दो भेद होते हैं और इसी से ग्रन्थकर्त्ताने पाठभी पृथक् पृथक् लिखे हैं । अब कहे हुए षंडोंके स्मरण रहनेके लिये संग्रह एक श्लोक से कहते हैं ।

षण्डसंग्रहश्लोक ।

आसेक्यश्चसुगंधीच कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ।  
सरतसस्त्वमीज्ञेया अशुक्रःषंडसंज्ञितः ॥

अर्थ—आसेक्य, सुगंधी, कुम्भिक, और ईर्ष्यक, इन चार षंडोंमें तो वीर्य है । और स्त्री कीसी चेष्टावाला जो पांचवा षंड है, उसमें सर्वथा वीर्य नहीं होता ।

शिष्य—यदि आप इन्होंने शुक्र कहते हो तो फिर षंड कहना नहीं हो सके क्योंकि जो शुक्रवान् है वह षंड कदाचित् नहीं होता ।

गुरु—इसका कारण यह है ।

अनयाविप्रकृत्यातु तेषांशुक्रवहाः शिराः ।  
हर्षात्स्फुटत्वमायान्ति ध्वजोच्छ्रायस्ततोभवेत् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त चार षंडोंके भी शुक्र नहीं है, परन्तु इनकी विरुद्ध चेष्टा ( वीर्य

भक्षण, योनि लिंगका सूषणा, गुदा भंजन, और परमैथुन देखना ) इन कर्मोंके करने से उन पुरुषोंकी शुक्र वहनेवाली शिरा हर्षयुक्त होकर फूलती है, इसी से लिंग चैतन होता है । किंतु वीर्यके बल से लिंग नहीं उठे अतएव इनको भी षंड कहते हैं । यह नपुंसक दोष स्त्रियोंमें भी होते हैं । इस विषयमें चरकका प्रमाण ( नरनारी षण्ढौइत्युक्तम् ) ।

अनुक्तदेहवाणी और मन इनके भेदका हेतु कहते हैं ।

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ।

स्त्रीपुंसौसमुपेयातां तयोः पुत्रोपितादृशः ॥

अर्थ-माता पिता जैसे आहार, आचार और चेष्टा इन से युक्त हो मैथुनमें प्रवृत्त होते हैं, उसी उसी प्रकारके गुण उनकी संतानमें होते हैं ( निर्लज्ज, लज्जान्, हास्यप्रिय, और आलस्ययुक्त इत्यादिकोंका यही पूर्वोक्त कारण है )

अति पाप करके षंड से भी निकृष्ट गर्भ उत्पन्न होता है  
उनके कारण कहते हैं ।

यदानार्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन ।

मुञ्चन्तः शुक्रमन्योऽन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥

अर्थ-जिस कालमें दो स्त्री अति दुर्जय काम से पीडित हो, मैथुन करनेकी इच्छा करती हुई आपसमें मिल कर योनि से योनिको मिलाय, परस्पर अपने अपने वीर्यको किसी प्रकार से त्याग करे । उस कालमें उन से अनस्थि ( हड्डीरहित ) गर्भ उत्पन्न होता है । अनस्थिके कहने से थोड़ी और कोमल हड्डी होती है ऐसा जानना क्योंकि इस जगे ईषदर्थमें नञ् शब्द है ।

स्पर्ममैथुनसे गर्भसंभव कहते हैं ।

ऋतुस्नातातुयारी स्वप्नेमैथुनमावहेत् । आर्त्तवंवायुरा

दाय सप्रगेर्भकरोति च । मासिमासिविबद्धे त गर्भिण्याग

र्भलक्षणम् । कललं जायते तस्या वर्जितं पितृकैर्गुणैः ॥

अर्थ-ऋतुस्नाता स्त्री चतुर्थ दिवस से लेकर बारह रात्रिपर्यंत कदाचित् स्वप्न में मैथुन करे, उस समय उस स्त्रीके शुद्ध आर्त्तव कोही पवन लेकर गर्भाशयमें गर्भ स्थापन करे है । उस गर्भ करके गर्भिणीके लक्षण प्रति महिनेके महिने बढ़ते हैं । और उस गर्भ से कलल उत्पन्न होता है तथा पिताके लक्षण ( केश, श्मश्रु, लोम, नख, दन्त, शिरा, स्नायु और धमनी ) इन लक्षण करके रहित मनुष्याकृति ( मां-

सका लोथडा सा होय है उसको कलल कहते हैं ) ये दोनों श्लोक जेज्जट सुश्रुतकी टीकाकारने नहीं लिखे ।

सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयस्तुये ।  
गर्भास्त्वेवंविधास्त्वेते ज्ञेयाःपापकृतोभृशम् ॥

अर्थ—सर्प, विच्छ्र, कूष्माण्ड ( गोलासा ) इनके सदृश तथा विकृतस्वरूपवाले ( जैसे विकराल अति लम्बे, अत्यंत छोटे, अधिक अंगवाले, छंगा आदि न्यून अंगवाले चार चार तीन तील उंगली आदि के, तथा बंदर, बिलाव, आदि की सूरतवाले, इत्यादि ) ये सब गर्भ प्रसूताके पाप, करने से होते हैं ३ नम्बर का चित्र देखो ।

कुब्जादिगर्भोक्तेकारणकहतेहैं ।

गर्भोवातप्रकोपेन दोहदेवाविमानिते ।  
भवेत्कुब्जःकुणिःपङ्गुर्मूकोमिम्भिमणएवच ॥

अर्थ—वात के कोपसे, तथा माता के दौहद के अपचारकरके गर्भ कुबड़ 1, टोटा पांगुरा, गूंगा, और गिनगिना बोलने वाला, अथवा तोतला होता है ।

शिष्य—आपने जो कुबड़े, गूंगे आदि होने कहे सो माता पिताके अपराधसे होते हैं कि स्वकृत दुष्कर्म से अथवा वातादि दोषोंसे होते हैं ।

गुरु—इसका कारण इस प्रकार है ।

मातापित्रोस्तुनास्तिकयादशुभैश्चपुराकृतैः ॥  
वातादीनांचकोपेन गर्भोवैकृतिमाप्नुयात् ॥

अर्थ—माता पिताके नास्तिकपने से ( अर्थात् पाप पुण्य वेद ईश्वरको न मानना ) तथा पूर्व जन्म के दुष्कृत करके वातादि दुष्ट होते हैं उन वातादि की दुष्टता से गर्भ विकृत होता है, विकृत शब्द करके आड़े तिरछे शलरूप मूठ गर्भ भी जानने चाहिये, अर्थात् मूठ गर्भ भी माता पिता और स्वकृत अपराधसे होता है ।

शिष्य—गर्भाशय में बालक मल मूत्रादि क्यों नहीं करे ।

गुरु—मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोःपक्वाशयस्यच ।  
वातमूत्रपुरीषाणि नगर्भस्थःकरोतिच ॥

अर्थ—गर्भ के शरीर में मल अल्प है, तथा पक्वाशयसम्बन्धी पवन न

होने से ( अर्थात् थोड़े होने से ) गर्भाशयस्थ प्राणी वात, मूत्र, मल इन का परित्याग नहीं करे ।

शिष्य-गर्भ में बालक क्यों नहीं रोता है ।

गुरु-जरायुणामुखेच्छन्ने कण्ठेचकफवेष्टिते ।  
वायोमार्गनिरोधाच्च नगर्भस्थःप्ररोदिति ॥

अर्थ-जरायु करके मुख आच्छादित होने से, और कंठ कफ करके वेष्टित होने से तथा वायु के मार्ग रुकने से गर्भस्थित बालक नहीं रोता है । इस जगे वायुका मार्ग रुकजाना इस कहने से शब्दजनक पवन का ग्रहण है । निःश्वासादिरूप वायु का निकलना तो आगे कहेंगे, क्योंकि विना श्वास के तो गर्भ का जीवनही दुर्लभ है ।

शिष्य-यदि आप गर्भ को श्वास लेना मानों गे तो प्रमाण दीजिये कि वह कैसे श्वास लेता है, क्योंकि गर्भाशय में श्वास लेने को इतनी पवन नहीं है ।

निश्वासाच्छ्वाससंक्षोभात्स्वप्नान्गर्भोधिगच्छति ।  
मातुर्निःश्वाससंश्वास संक्षोभात्स्वप्नसंभवात् ॥

अर्थ-गर्भ के श्वास, उच्छ्वास, तथा चलन, वलन, निद्रा इत्यादिक क्रिया माता के श्वासादिक करके होती है, अर्थात् माता जो जो श्वासादिक चेष्टा करती है वही गर्भ भी करे है ।

शरीरजन्यअवयवोंकेसन्निवेशादिकाहेतुकहते हैं ।

सन्निवेशःशरीराणां दन्तानांपतनोद्गमौ ।  
तलेष्वसम्भवोयच्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥

अर्थ-गर्भके अवयवोंकी रचना विशेष, तथा दांतोंका उत्पन्न होना और गिरन तथा हथेली में रोमका न होना ये सर्व स्वभाव करके होते हैं ।

पूर्वजन्माभ्यासकेसदृशबुद्ध्यादिकहोती हैं ।

भावितापूर्वदेहेषु सततंशास्त्रबुद्ध्यः । भवन्तिस  
त्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरानराः ॥

अर्थ-पूर्व देहमें जिस गुणका अत्यंत अभ्यास था, वेही गुण वर्तमान देहमें होते हैं, तथा जिस पुरुषका अंतःकरण पहली देहमें जिस शास्त्रमें संस्कारविशेष करके तन्मय हुआ होगा, वो पुरुष वर्तमान देहमें उसी शास्त्रका ज्ञाता होगा तथा जे पूर्व देहमें

सतो गुण प्रधान थे वो इस वर्तमान देहमें सतो गुण बहुल होते हैं । तथा व्यतीत जन्मकी जातिके स्मरण रखने वाले होते हैं । शरीर, वाणी, और मन इनके पूर्वोक्त जाति स्मरणादिक गुण वे स्वभावादि करके सिद्ध होते हैं ।

यद्यपिसर्वस्वभावादिसिद्धभी है तथापि कर्म ही मुख्य है ।

कर्मणानोदितो येन तदाप्रोतिपुनर्भवे । अभ्य  
स्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान् ॥

इति सौश्रुतशरीरे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ—पूर्व जन्मोपार्जित कर्मका प्ररो हुआ, ऐसा पूर्व देहमें जिस गुणमें अभ्यास पड़ा होगा उन्ही गुणोंको इस वर्तमान देहमें पाता है । ( तथापि असत्कर्मों से बचना चाहिये । )

इति श्री आयुर्वेदोद्दारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे षष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

शुद्ध शुक्रार्तव सैं गर्भका होना संभव है, इसीसे शुक्रार्तवकी शुद्धि कहनेके अनंतर गर्भकी अवतरणक्रिया करना उचित है, अतएव उसी अवतरणक्रियाको कहते हैं ।

अथातोगर्भावक्रान्तिशरीरं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—अथ कहिये शुद्ध शुक्रार्तवकी शुद्धि कहनेके अनंतर गर्भकी अर्थात् गर्भाशयमें रहने वाला हो कर आत्मा और प्रकृति इन करके संमूर्च्छित हुआ ऐसा जो शुक्रार्तवोंका संयोग उसको गर्भ ऐसा कहते हैं । उसकी अब क्रान्तिकहिये अवतरण अर्थात् गर्भाशयमें प्राप्त हो । उसमें अवयववान् होना वह अवक्रान्ति जिसमें हैं ऐसी शरीराध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

गर्भके मूलकारण शुक्रार्तव है, इसीसे शुक्रार्तवका स्वरूप कहते हैं ।

सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयम् ॥

अर्थ—वीर्य सौम्य ( उदक ) गुणविशेष है, और स्त्रियोंका पुष्प तेज गुण विशेष है ।

शिष्य—शुक्रार्तव तो आप पंचभूतात्मक कह आए हो फिर इस जगे जल और तेजरूपही कैसे कहते हो ।

**गुरु—इतरेषामपिभूतानांसान्निध्यमस्त्यणुनाविशेषेण।**

अर्थ—दोनों शुक्र आर्तव वे [ इतर कहिये ] पृथ्वी, पवन, और आकाशआदि तत्वोंकाभी सूक्ष्म रूप करके आश्रयत्व हैं ।

इसकाकारणकहतेहैं ।

**परस्परोपकरणात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्च ॥**

अर्थ—पृथिव्यादिक पंचमहाभूत अपने अपने गुण, परस्पर एक दूसरेको दे कर आपसमें उपकार करते हैं । [ स्पष्टार्थ यह है कि पृथ्वीका गुण धारण उस करके इतर आकाशादिकों पर उपकार करे है । जलका गुण संहरण उस करके वो औरों पर उपकार करे हैं । तेजका गुण परिपाक करना, पवन का गुण अव्यूह, आकाश का गुण अवकाश देना, ऐसैं उपकार करते हैं । तात्पर्यार्थ यह है कि घटादि पार्थिव द्रव्यमें पृथिव्याख्य भूत एक बली है, और जल पवन आदि चार भूत दुर्बल हैं, तथापि वे अपना आश्रय दे कर उसपर अनुग्रह करते हैं [ उसी प्रकार जल आकाशादि अन्न द्रव्यमें उदकादिक इतर चार द्रव्य अपने अपने में बलिष्ठ होकर बाकी जो पृथिव्याख्य भूत हैं उन पर अनुग्रह करते हैं ] तथा परस्पर अन्योन्य प्रविष्ट हैं [ अन्योऽन्याऽनुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत् ] इस वाक्य करके प्रथम कह आए हैं, इसी सैं गर्भजननविषयमें अन्य भूतोंका सान्निध्य है ऐसैं जानना चाहिये ।

गर्भकीअवतरणक्रियाकहतेहैं ।

**तत्रस्त्रीपुंसयोः संयोगेतेजःशरीराद्रायुरुदीरयति ।**

**ततस्तेजोनिःसन्निपाताच्छुक्रंच्युतंयोनिमभिप्र**

**तिपद्यतेसंसृज्यतेचार्त्तवेन ।**

अर्थ—तहां ( स्त्री पुरुष संयोग ) कहिये, स्त्री पुरुषोंकी स्पर्श विशेषकी इच्छा करके आरंभ करा प्रयोग अर्थात् मैथुन उसमें ( तेज ) कहिये स्त्री पुरुष दोनोंकी इन्द्रीके संघर्षण करके उत्पन्न हुआ जो ऊष्मा उस सैं वायु शरीर सैं उठता है, तदनंतर उस तेज करके पुरुषका रेत पतला हो कर वायुके योग करके स्वस्थान सैं छूट योनिमें गिर फिर सर्वयोनिमें व्याप्त हो आर्त्तव सैं मिलता है ।

**तंतोग्रीषोमसंयोगात्संसृज्यमानोगर्भाशयमनुप्रातिपद्यते ।**

**क्षेत्रज्ञोवेदायितास्पृष्टाघ्राताद्रष्टाश्रोतारसयितापुरुषः स**

घ्रागन्तासाक्षीधातावक्तायःकोसावित्येवमादिभिः पर्याय  
वाचकैरभिधीयते दैवसंयोगात् । अक्षयोव्ययोचिन्त्योभू  
तात्मनासहाचक्षसत्त्वरजस्तमोभिर्देवासुरैश्च भावैर्वायुनाच  
पर्यमाणोगर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ।

अर्थ—शुक्रार्त्तव करके योनिके तीसरे आवर्तमें पंचभूतात्मक और छट्वां चेतना, धातुके संयोग करके इसकी गर्भत्व संज्ञा है । उस संयोगको दिखाते हैं ततइत्यादि-तहां ( अग्नीषोम ) कहिये शुक्र आर्त्तवोंका संयोग होनेके अनंतर उसी क्षणमें ( क्षे, त्रज्ञ ) कहिये पंचमहाभूतोंका रचित शरीर रूप क्षेत्रका जानने वाला कर्म पुरुष-वह शुक्रार्त्तव संयोगके विषे प्रतिबिम्बित होकर गर्भाशयके प्रति जाता है । वह कौनके साथ जाता है सो कहते हैं, सूक्ष्म लिंग शरीरके सह वर्त्तमान जाता है । और सत्व, रज, तम, स्वरूप प्राकृत गुणों करके युक्त तथा ब्रह्मा, महेन्द्र, वरुण, कुबेर, गंधर्व, यम, और ऋषि इन सात देवोंके सात्विक भाव तिन करके किंवा असुर, सर्प, शकुनी, राक्षस, पिशाच, और प्रेत, ये छः असुरादिक राजसी भाव करके अथवा पशु, मत्स्य, और वनस्पति ये तीन तामस भाव करके युक्त मनहु-आ गर्भाशयके प्रति जायकर रहता है ।

कौनरहताहै, यहकहते हैं ।

यःकोसावित्यादि ।

अर्थ—मुनीश्वर जिसको यः, कः, असौ, इत्यादिक पर्यायवाचक करके बोलते हैं । इस जगे आचार्यने ( यः कः ) ये सर्वनाम बोधक दो पद कहे हैं; इन सें ऐसी सूचना करी है कि, क्षेत्रज्ञ परम दुर्बोध है, और सर्वगामी है उस क्षेत्रज्ञका ज्ञान सद्गुरुके उपदेश बिना नहीं होता है । ऐसा दिखाया है । अब उसके नामोंको कहते हैं । ( वेदयिता ) कहिये मनका प्रवर्त्तक, ( स्पष्टा ) कहिये त्वगिन्द्रियको स्पर्शज्ञान देने वाला, ( घ्राता ) घ्राण ( सुंघने ) वाला ( द्रष्टा ) रूपेन्द्रियद्वारा रूपका बोधक, ( श्रोता ) करणेन्द्रिय द्वारा शब्द जाननेका कारण वह क्षेत्रज्ञ ऐसा है, तथा क्षेत्रज्ञ पुरुष ( पुरिभौतिकेशरीरेवसतीतिपुरुषः ) अर्थात् पुर कहिये देह उसमें जो वास करे उसको पुरुष कहते हैं इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाता है, तथा चेतना योग करके उसी को कर्तृत्व है ।

तदुक्तंचरके ।

चेतनावान्यतश्चात्मा ततः कर्त्तानिरुच्यते ।

अर्थ—आत्मा कहिये क्षेत्रज्ञ, वह चेतनायुक्त है । इसी से उसको कर्त्ता कहते हैं, तथा [ गंता ] गमन करने वाला [ साक्षी ] जानने वाला [ धाता ] शरीरादि संयोग के धारण का हेतु ( वक्ता ) कहिये बोलता है, क्षेत्रज्ञ इस कहने से यह सूचना करी कि कर्मेन्द्रियों का भी वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग, और आनंद का प्रवर्त्तक यही हेतु है ।

शिष्य—यदि वह क्षेत्रज्ञ वेदयिता ज्ञाता इत्यादि स्वरूपोपेत परमर्षियों करके कहाजाता है तो फिर क्लेशकारी गर्भाशय में क्यों वास करता है ।

### गुरु—दैवसंयोगादिति

अर्थ—[ दैवसंयोगात् ] कहिये प्राकृत कर्मों के सम्बन्ध करके आत्मा [ अक्षय ] कहिये क्षीण नहीं होवे तथा नष्ट नहीं होवे, जो चिंतवन करने में भी नहीं आवे, यद्यपि ऐसा है, तथापि गर्भाशय में प्राप्त हो गर्भरूप करके रहता है ऐसे जानना ।

शिष्य—सत्व कूख में प्रवेश होने से गर्भ को प्राप्त होता है, ऐसा आपने कहा है परन्तु इसका प्रवेश होना प्रगट नहीं दीखे ।

गुरु—इसका समाधान वाग्भटने इस प्रकार लिखा है ।

तेजोयथार्करश्मीनां स्फटिकेनतिरस्कृतम् ।

नेन्धनं दृश्यते गच्छत्सत्वो गर्भाशयंतथा ॥

अर्थ—जैसे स्फटिक मणिकरके व्यवहित सूर्य की किरणों का तेज उस मणी के नीचे स्थित ईंधन में जाता हुआ नहीं दीखे जब ईंधन में अग्नि प्रगट हो जाती है तब प्रतीत होती है उसी प्रकार सत्व ( जीव ) गर्भाशय में जाता हुआ नहीं दीखे । इस जगे सत्वका तो लक्षण मात्र है किंतु गर्भ में प्रवेश करते पंच महाभूत भी नहीं दीखे । परन्तु कार्य करके जाने जाते हैं । उसी प्रकार सत्वके अनुयायी पंचमहाभूतों करके गर्भ कूख में बढ़ता है, केवल पंचमहाभूतों करके ही नहीं बढसके इस में दृष्टांत जैसे मरा देह ।

जीवप्रमाणमाह वैष्णवागमे ।

वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च ।

भागोजीवः सविज्ञेयः सचानन्त्यायकल्पते ॥

अर्थ—जीव का प्रमाण वैष्णवागम ग्रंथ में इस प्रकार लिखा है कि एक वालके अग्रभागके सौ टुक कर, उस में से एक टुकड़े के फिर सौ टुक करने से जैसा एक टुक होता है, उतनाही जीव का प्रमाण है, वही जीव अनंत कल्पना करा जाता है-भावप्रकाश में भी लिखा है । यथा

शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैवखलुजायते । जीवस्तदैवविशति  
युक्तःशुक्रार्त्तवांतरः ॥ सूर्यांशोःसूर्यमणितोऽनुभयस्मा  
द्युताद्यथा । वह्निः संजायतेजीवस्तथाशुक्रार्त्तवाद्युतात् ॥

अर्थ—जब शुक्र और आर्त्तव का संयोग होता है, तभी वीर्य और आर्त्तव में युक्त रहने वाला जीवभी प्रवेश करे है । इस में दृष्टान्त है कि, जैसे सूर्य की किरण में रहने वाला अग्नि, तथा सूर्यकांत ( स्फटिक मणि आदि ) में रहने वाला अग्नि है, परन्तु पृथक् पृथक् रहने से अग्नि प्रगट नहीं होसके, किंतु सूर्य की किरण और सूर्यकांत मणिके एकत्र होने से उसी समय जैसे अग्नि प्रगट होती है । उसीप्रकार वीर्य और रज पृथक् पृथक् रहने से जीव नहीं प्रगट होसके किंतु दोनों के संयोग से जीव प्रगटे है । इस में भी यदि सूर्यकिरण तीखी हो, और स्फटिक मणि स्वच्छ हो, तो अग्निहोना संभवहै । अन्यथा नहीं, उसी प्रकार शुक्र आर्त्तव में भी बुद्धिमानोंको विचार करना चाहिये ।

शिष्य—जीव पंचभूतानुग एक रूप है, फिर मनुष्य, घोड़ा, सर्प, हाथी, वानर आदि अनेक जातियों की आकृति कैसे धारण करे हैं ।

गुरु—इसकाभी समाधान वाग्भट ने लिखा है । यथा,

कारणानुविधायित्वात्कार्याणांतत्स्वभावता ।  
नानायोन्याकृतीःसत्वो धत्तेऽतोद्भुतलोहवत् ॥

अर्थ—कारणके तुल्य स्वभाव वाले सर्व कार्य होते हैं । इसी हेतु सैं कार्योंको तत्सादृश्य है । अतएव कार्य कारणके सादृश्य हेतु सैं जीव पंचमहाभूतानुग एक, रूपभी अनेक रूप नाना योनिकी आकृति ( प्रतिबिंब विशेषोंको ) धारण करे है—कैसे धारण करता है, इसमें दृष्टान्त है जैसे, तपा हुआ लोहा अर्थात् जैसे सोना गलने पर एक रूप हो जाता है फिर उसी सोनेको मृत्तिका आदिके बने हुए सं, चेमें पहुंचने सैं, जैसा हाथी, घोड़ा, मनुष्य का संचा होता है उसीके सदृश सोनेका रूप हो जाता है । इसी प्रकार जीव एक रूप है परंतु जैसी जैसी देहोंकी भावना करता है वैसे वैसे रूपोंको धारण करता है । वास्तव सैं विचारो तो जैसे, सोनेको मनुष्य दि रूप नहीं है उसी प्रकार इस जीवकाभी कोई रूप नहीं है केवल अविद्या कल्पित भानमात्र है ।

स्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेकाकारण ।

अतएवचशुक्रस्य बाहुल्याजायतेपुमान् ।  
रक्तस्यस्त्रीतयोःसाम्ये क्लीबःस्यात् ।

अर्थ—[ अतएव ] कहिये पूर्वोक्त कार्य कारण के सदृश हेतु से पुरुष के वीर्य-बाहुल्यता सैं पुरुष होता है । और स्त्री के रज ( रुधिर ) की अधिकता सैं स्त्री होती है । और स्त्री पुरुष दोनोंके शुक्र आर्तव समान होने सैं नपुंसक संतान होती है । इस प्रकार पिताका शुक्र स्त्री के रुधिर सैं मिल कर गर्भका कारण होता है, केवल पिताका वीर्य अथवा माता का रज मात्रही गर्भका कारण नहीं होवे इस पर दारुवाही आचार्यका प्रमाण है ।

स्त्रीपुंसयोस्तुसंयोगेयद्यादौविसृजेत्पुमान्।शुक्रंततःपुमान्वा  
रोजायतेबलवान्दृढः॥अथचेद्वनितापूर्वविसृजेद्रक्तसंयुतम् ।  
ततोरूपान्विताकन्याजायतेदृढसंहता ॥

अर्थ—स्त्री पुरुषके संयोगमें यदि प्रथम पुरुष शुक्रका परित्याग करे तो बलिष्ठ और दृढ पुरुष उत्पन्न होवे, और यदि स्त्री रक्त मिश्रित शुक्रका पइले परित्याग करे तो परम सुंदर रूपवती दृढ कन्या होवे ।

स्त्रीपुरुषयोरेकदैवयदाविसृष्टिर्भवेत् तदाषण्डोजायते ।

उक्तंचवसिष्ठेन ।

स्त्रीपुंसयोर्विसृष्टिश्चेकदैवभवेद्यदा ।

षण्डस्तदाप्रजायेत इतिमेनिश्चितामतिः ॥

अर्थ—यदि स्त्री पुरुष दोनों एकही समय स्वलित होवे तो षण्ड ( नपुंसक ) होवे यह मेरी निश्चित मति है ।

अतएव पुत्र गर्भ किंचित् माता के अनुहार होते हैं और कन्या के गर्भ किंचित् पिताके अनुहार होते हैं ।

अत्रयुग्मायुग्मतिथिशुक्ररजोवृद्धौदैवहेतुस्तत्रवैखानसमतम् ।

यथाबहुलपक्षेषुमस्तुलुङ्गोऽधिकायते ।

नतथाजायतेशुक्लेस्वभावश्चात्रकारणम् ॥

अर्थ—इस जगे समविषम तिथियोंमें शुक्र रजकी वृद्धि होनेमें दैव कारण है, तहां वैखानस ऋषिका मत कहते हैं कि जैसे कृष्णपक्षमें मस्तुलुङ्ग ( विजोरे ) की अधिक वृद्धि होती है परंतु शुक्ल पक्षमें उस प्रकारकी नहीं होती(इसी प्रकार वीर्य रज की वृद्धि में समविषम दिन जानने ) इन दोनों में स्वभावही कारण है ।

शिष्य—आप शुक्र बाहुल्य सैं पुत्रोत्पत्ति कहते हो यह बात मेरी समझ में नहीं आती क्यों कि सदैव आर्तवको अधिकता है । यथा,

मज्जामेदोवसामूत्रपित्तश्लेष्मशकृन्त्यसृक् । रसोजलञ्चदेहे  
ऽस्मिन्स्त्वैकैकाञ्जलिवाद्धितम् ॥ पृथक्स्वप्रसृतं प्रोक्तमो  
जोमस्तिष्करेतसाम् । द्वावञ्जलीतुस्तन्यस्य चत्वारोरज  
सःस्त्रियाः ॥ समधातोरिदं मानं विद्याद्बृद्धिक्षयावतः ।

अर्थ—इस मनुष्य की देह में मज्जा से आदि ले जलपर्यंत द्रव्य एक एक अंजली की अधिकता से हैं ( जैसे मज्जा १ अंजली मेदा २ वसा ३ मूत्र ४ पित्त ५ कफ ६ विष्टा ७ रुधिर ८ रस ९ और जल १० अंजली हैं ) तथा ओज, मस्तिष्क ( घृत के तुल्य पदार्थ जो मस्तक में होता है ) और रेत ( वीर्य ) ये तीनों इस देह में प्रत्येक अपने अपने पस्से भर हैं ( दोनों हाथों के मिलाने से जो होता है उस को पस्सा कहते हैं ) स्त्री का दूध २ अंजली है, रज संबंधी स्त्री का रुधिर ४ अंजली है, सम धातु वाले देह में यह प्रमाण जानना, विषम प्रकृति में यह मान नहीं है । यह मज्जादिकों के क्षय वृद्धि का प्रमाण समान प्रकृति में जानना चाहिये, विषम प्रकृति अर्थात् ( विषम धातु में ) यह प्रमाण यथार्थ नहीं रहता है । इस प्रमाण द्वारा शुक्र से आर्तव सदैव अधिक रहता है। फिर आप शुक्राधिक्य से पुत्रोत्पत्ति कैसे कहते हो ।

गुरु—इस का कारण यह है कि जितना आर्तव मल रहित गर्भाशय में गर्भजनन के लिये चाहिये उस से शुक्र की अधिक और न्यूनता लेनी चाहिये । अथवा अपने अपने प्रमाण की अपेक्षा शुक्र आर्तवों की अधिकता और न्यूनता इस जगे विवक्षित हैं । इस का यह कारण है कि चित्त में अत्यंत हर्ष होने से, तथा दूध, घृत आदि शुक्र कर्ता पदार्थों के सेवन करने से, शुक्र ( वीर्य ) की अधिकता के कारण कभी गर्भाशय में अधिक गिरता है । और कभी शोकाक्रांत वैमनस्य ( दुःख ) आदि संयुक्त चित्त होने से शुक्र थोड़ा गिरता है, इसी प्रकार आर्तव को भी जानना चाहिये ऐसे सब में प्रसिद्ध है । अन्य आचार्य कहते हैं कि शुक्रार्तवों का न्यूनाधिक्यपना तथा समानता पराक्रम करके होता है । तात्पर्य यह है कि स्त्री पुरुषों की शरीरशक्ति न्यून अधिक जैसी होय तैसही शुक्र आर्तव होते हैं ।

शिष्य—हे गुरु! “ रसाद्रक्तंततोमांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थिच। अस्थनो मज्जाततः शुक्रं शुक्राद्र्भ्रं प्रजायते ,, अर्थात् रस से रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से मेदा, मेदा से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र और शुक्र से गर्भ की उत्पत्ति होती है । ऐसा लिखा है। कदाचित् आप यह कहे कि स्त्री के शुक्र नहीं होता है पुरुष के ही शुक्र होता है । तो यह कहना भी असत्य है क्योंकि इस श्लोक में तथा अन्यत्र यह कहीं नहीं लिखा कि पुरुष के शुक्र होता है स्त्री के नहीं हों, कदाचित् आप ऐसा-

नहीं मानें तो स्त्री के सातवीं धातु कौन सी है? यदि आप रज ( रजो धर्म के रुधिर-को शुक्रस्थानीय मानोंगे तो रुधिर तो प्रथमही लिख आए हैं रसाद्रक्तं फिर दूसरे कहन से पुनरुक्ति दूषण आता है । अतएव मेरी समझ में तो शास्त्रद्वारा यह निश्चय होता है कि दोनों स्त्री पुरुष सप्त धातु वाले हैं, जब सप्त धातुवाले स्त्री पुरुष दोनों हैं तो फिर गर्भाधान में स्त्री को पुरुष की कुछ आवश्यकता नहीं है । स्वयं स्त्रीही कामदेव से पीडित हो केवल पुरुष के स्मरण स्पर्श और दर्शन मात्र से ही चलायमान वीर्य जिस का उसवीर्य को गर्भाशयमें प्राप्त होने से, और रज संबंधी रुधिर के मिलने से गर्भवती क्यों नहीं होती । क्योंकि गर्भ होने में शुक्र और आर्त्तवही कारण है । वो दोनों स्त्री के समीपही है, अतएव गर्भ होना संभव है फिर क्यों नहीं होवे ।

गुरु—तुम्हारा कहना बहुत ठीक है परन्तु सुनो भाई इस में पुरुषवीर्यही मुख्य है । जब पुरुष का वीर्य स्त्री के रुधिर से मिलता है उसी समय गर्भ होता है, विना पुरुष वीर्य के स्त्री का वीर्य गर्भ नहीं करसक्ता । सो रजो दर्शवती स्त्रीके समीप न होने से वे स्वयं अपने वीर्यसे गर्भ धारण नहीं करसक्ती इसका प्रमाण संग्रह में इसप्रकार लिखा है ।

**योषितोऽपिस्रवन्त्येवशुक्रंपुंसांसमागमे । गर्भस्य  
तुनतत्किंचित्करोतीतिनचित्यते ॥**

अर्थ—स्त्री भी पुरुष के संयोग में शुक्र को स्रवती है, अर्थात् परित्याग करती है । परन्तु उन्हांका वीर्य गर्भाधान के कुछ प्रयोजन का नहीं है । अतएव उसका वर्णन भी नहीं करते ।

शिष्य—यदि आप शुक्रकी आधिक्यता से पुत्र होता है ऐसा कहोगे तो फिर पुत्रेष्टी आदि पुत्रीकरण जो कहा है उसको व्यर्थता आवेगी ।

गुरु—पुत्रेष्टी कर्मके कहने से हमने यह नहीं कहा कि इस कर्म से पुत्र होवे, किंतु पुत्रेष्टी आदि पुण्य कर्मोंके करने से बालक रूपवंत चिरायु और सत्त्वादि गुणसंपन्न होता है । इसमें प्रमाण पूर्वोक्त कहते हैं ।

**एवंजातारूपवंतः सत्ववन्तश्चिरायुषः ।**

**भवन्त्यनृणभोक्तारःसत्पुत्राःपुत्रिणोहिताः ॥**

अर्थ—इस वचन से पुत्रीकरण संस्कारादिकों से संस्कृत गर्भ रूपवान्, बलवान्, चिरायु, स्वभुजोपाजितका खाने वाला, सत्पुत्र माता पिताको आनन्ददायक होता है ।

हे वत्स पूर्वोक्त शुक्रार्तवका जो प्रमाण कहा है ( ४ अंजली आर्तव और १ पस्ते भर शुक्र ) ये ठीक नहीं है क्योंकि इसी सुश्रुतग्रंथमें लिखा है यथा ।

## वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैवच । दोषधातुमलादीनां परिमाणंनविद्यते ॥

अर्थ—देहधारियोंकी विलक्षणता ( लंबे, ठिगने, कृश, स्थूल, आदि भेदोंसे ) तथा देहके अस्थायित्व ( अर्थात् अवस्थादिन रात्रि और ऋतुके भोग होने से समान नहीं रहती ) इन कारणों से, दोष ( वातादि ) धातु ( रस रुधिर वीर्यादि ) और मल इत्यादिकोंका परिणाम नहीं है ।

अपत्यजनककालकहतेहैं ।

## ऋतुस्तुद्वादशरात्रंभवतिदृष्टार्तवः ।

अर्थ—जिस कालमें स्त्री रजोदर्शवती हो, उस कालको ऋतु कहते हैं । वह ऋतुकाल बारह दिवस रहता है । इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि ऋतुके १६ दिन हैं परंतु उनमें तीन दिन प्रथमके और तीन दिन पिछले योनिसंकोचके त्यागकर १२ दिनही ग्रहणयोग्य है ।

अदृष्टार्तवऋतुकहते हैं ।

## अदृष्टार्तवोप्यस्तीत्येकेभाषन्ते ।

अर्थ—कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि, जैसे दृष्टार्तव होता है उसी प्रकार अदृष्टार्तव भी होता है । अर्थात् रुधिर न निकलने से भी ऋतुवती स्त्री होती है ।

अदृष्टार्तवऋतुमतीकेलक्षण ।

पीतप्रसन्नवदनां प्रकृन्नात्ममुखाद्विज । नरकामप्रियकथां  
स्रस्तकुक्ष्यक्षिमुर्द्धजां ॥ स्फुरद्भुजस्तनश्रोणिनाभ्यूरुज  
घनस्फिजं । हर्षोत्सुक्यपरांचापिविद्यादृतुमतींस्त्रियम् ॥

अर्थ—जिस स्त्रीका मुख पीत वर्ण, तथा प्रसन्न दीखे, और देहके तथा मुख, और दांतोंके मसूदे ये अत्यंत पसीजते हों, और पुरुष संबंधी तथा काम संबंधी वार्त्ता प्यारी लगे, और कूख नेत्र तथा केश ये सिथिल होंवे, तथा भुजा, स्तन, कमर, नाभि, ऊरु, जंघा, और कूले ये जिसके कंपित हों, तथा मैथुन करनेकी अत्यंत इच्छा हो, ये पूर्वोक्त लक्षणों से स्त्रीऋतुमती जाननी । अर्थात् इसके अं-

तरगत रजोदर्श हुआ है ऐसा जानना, वाग्भटमें ( क्षाम ) शब्द अधिक है, अर्थात् विना कारणके देह कृश होवे । यद्यपि श्लोकमें द्विजशब्दके कहने से दांत कहे हैं, परन्तु दांतोंको पक्षीजना असंभव है इसी से दांतवेष्टक ( मसूढे ) जानने ।

संकुचितयोनिमेंबीजप्रवेशनहींहोयइसमेंदृष्टांत ।

नियतेदिवसेतीते संकुचत्यम्बुजंयथा ।

ऋतौव्यतीतेनार्यास्तु योनिःसंत्रियतेतथा ॥

अर्थ—जैसे फूलनेके पांच सात दिन पीछे कमल स्वयं मुरझाय जाता है । यद्वा जैसे दिनमें फुला हुआ कमल सायंकालको स्वयं मुद जाता है । उसी प्रकार ऋतुके व्यतीत होने से अर्थात् १२ रात्रि व्यतीत होने से स्त्री की योनि ( गर्भाशय ) संकुचित होती है । इसी से वीर्य ग्रहण नहीं करे ।

आर्तवप्राप्तिकाकाल और स्वरूप ।

मासेनोपचितंकाले धमनीभ्यांतदार्तवम् ।

ईषद्रक्तंविवर्णंच वायुर्योनिमुखंनयेत् ॥

अर्थ—आर्तव का काल द्वादश वर्ष से ले साठ वर्ष पर्यंत रहता है, वह महिने के महिने संचित हो वायु के योग से दोनों धमनीमार्ग करके किंचित् लाल अथवा [ ईषद्रक्तं ] अर्थात् कुछ लाल, और दुष्ट वर्ण, अथवा ( विगन्ध ) कहिये गंध रहित योनिके मुख प्रति प्राप्त होता है अर्थात् निकलता है । गर्भ रूप फल प्रगट करने से इस आर्तव की पुष्प संज्ञा है । इसी कारण ऋतुवती स्त्री को पुष्पवती कहते हैं ।

आर्तवकेप्रवृत्तिनिवृत्तिहोनेकाकाल ।

तद्रर्षाद्द्वादशात्काले वर्तमानमसृक्पुनः ।

जरापक्वाशरीराणां यातिपंचाशतःक्षयम् ॥

अर्थ—[ आहार रस से उत्पन्न होने वाला रज ] रुधिर बारह वर्ष से प्रगट होकर तदनन्तर जैसे जैसे शरीर में सप्तधातु बढकर शरीर बढे है, तैसे तैसे वोरज बढकर महिने की महिने प्रवृत्त होता है । और पंचास वर्ष की अवस्था होनेके उपरांत बुढापासे शरीर तथा धातु पक्व होकर उत्तरोत्तर जैसे जैसे बढाया उसीप्रकार क्रम से क्षीणहोकर साठ वर्षके करीब नष्ट होता है ।

समविषमदिवसभेदकरकेगर्भभेद ।

युग्मेषुतुपुमान्प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाबला ।

पुष्पकालेशुचिस्तस्मादपत्यार्थस्त्रियं व्रजेत् ॥

अर्थ—ऋतु सम्बन्धी सम दिवस ४.६. ८.१०. १२.१४. इन में स्त्री संग करने से पुत्र होता है । और विषम दिवस ५. ७. ९. ११. १३. १५. इन में गमन करने से कन्या होती है । इस प्रकार विचार कर जिस पुरुष को सन्तानकी इच्छा, होवे और जिसका काम शुद्ध हो उस पुरुष को उसकी इच्छानुसार उसी उसी दिवस में स्त्रीसंयोग करना उचित है । अर्थात् पुत्रेच्छु सम दिनों में और कन्या की इच्छावाला विषम दिनों में गमन करे । किसी आचार्य का यह मत है कि, पांचवें दिन गमन से भी पुत्र होता है ।

शिष्य—शुक्र की आधिक्यता से पुत्र और रजकी आधिक्यता से कन्या होती है । ऐसा आप पूर्व कह आए हो फिर, सम विषम दिनों में पुत्र कन्या होना असंभव है क्यों कि पुत्र कन्या होने में रज और शुक्र की आधिक्यताही कारण है । यदि विषम दिनों में शुक्र अधिकहोवे तो पुत्र होवेगा कि कन्या ।

गुरु—इसका यह कारण है कि सम दिवसों में ही पुरुष के शुक्र अधिकहोता है और स्त्रियों के रज अल्प रहता है, इसी से पुत्र होता है और विषम दिवसों में स्त्री के रज अधिक होता है और पुरुषों के वीर्य अल्प रहता है, इसी से विषम दिनों स्त्री संग करने से कन्या होती है, इस में विदेह का वचन है । यथा,

युग्मेषुदिवसेष्वासां भवत्यल्पतरंरजः।संयोगंतत्रयाग

च्छेत्सापुमांसंप्रसूयते ॥ अयुग्मेषुदिनेष्वासां भवेद्बहु

तरंरजः । संयोगंतत्रयागच्छेत्सातुकन्यांप्रसूयते ॥

अर्थ—पूर्वोक्त सम दिवसों में स्त्री के आर्त्तव अत्यंत अल्प होता है, इसी से इन दिनों में जो स्त्री पुरुष संग करे तो पुत्र प्रगट करे, और विषम दिनों में आर्त्तव अधिक होता है । इसी से जो स्त्री पुरुष संगकरे तो कन्या उत्पन्न होवे ।

शिष्य—सम दिनों में पुत्र और विषम दिवसों में कन्या होती है, परन्तु नपुंसक कौनसे दिवसों में होता है । नपुंसक होनेका कोई दिन नहीं कहा ।

गुरु—नपुंसक होने का प्रमाण भोज आचार्यने इस प्रकार लिखा है ।

अयुग्मेष्वीपुमान्युग्मे संध्ययोस्तुनपुंसकम् । शुक्रा

**धिक्यात्तुपुरुषः प्रमदारजसोधिकात् ॥ शुक्रशो  
णितयोःसाम्यात्तृतीयाप्रकृतिर्भवेत् ।**

अर्थ—पूर्वोक्त विषम दिनोंमें कन्या, और सम दिवसोंमें पुत्र, तथा सम विषम दिवसों की संध्यामें स्त्री गमन करनेसे नपुंसक संतान होती है । उसी प्रकार शुक्राधिक्यसे पुरुष, और रजकी अधिकतासे कन्या, तथा शुक्र रज दोनों के समान होने से [ तृतीयाप्रकृति ] कहिये नपुंसक होवे, ( आगे ईश्वर की इच्छा है )

सद्योगृहीतगर्भाकेलक्षण ।

**श्रमोग्लानिःपिपासा सक्थिसदनंशुक्रशोणितयो  
रनुबंधःस्फुरणञ्चयोनेः ।**

अर्थ—तत्क्षण गर्भधारण करनेवाली स्त्री के ये लक्षण हैं । विना कारण श्रम, ग्लानि, प्यास का लाना, जीवों का जिकडना, तथा शुक्र शोणित का रुकना, अर्थात् विषय करके जब स्त्री उठे उस समय वीर्य और रज बाहर न निकले, तथा योनिका स्फुरण ( फडकना ) ।

तथाचवाग्भटे ।

**लिंगंतुसद्योगर्भायायोन्यांबीजस्यसंग्रहः । तृतिर्गुरुत्वंस्फुरणंशु  
क्रास्त्राननुबन्धजम् ॥ हृदयस्पन्दनंतन्द्रात्तृङ्गलानिलोमहर्षणम् ।**

अर्थ—तत्क्षण गर्भधारण करा हो उस स्त्री के ये लक्षण हैं । योनिमें बीज ( शुक्रार्त्तव ) का संग्रह, तृप्त के सदृश तृप्ति होना, कूख का भारीपना, और स्फुरण होना । शुक्र और आर्त्तव का योनि से बाहर न निकलना, हृदयकंप, तन्द्रा, प्यास, ग्लानि, और हर्षके होने से रोमांचोंका खडा होना ।

गर्भरहनेकेपश्चात्लक्षण ।

**स्तनयोःकृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा । अक्षिपक्ष्माणि  
चाप्यस्याः संमील्यन्तेविशेषतः ॥ अकामतश्छर्दयातिगं  
धादुद्विजतेशुभात् । प्रसेकसदनंचापि गर्भिण्यालिङ्गमुच्यते ॥**

अर्थ—स्त्री गर्भवती होनेके पश्चात् उसके ये लक्षण होते हैं । स्तनके अग्रभाग काले होते जावें, अंगमें रोमांच खडे हों, नेत्रों के पलक वारंवार खुलें मिचें, विना कारण वमन होना, उत्तम सुगंधसे डरपना, मुख से पानी छूटे, शरीर जिकडासा हो, अथवा कृश हो, ये गर्भवती के लक्षण हैं ( स्तनोंमें दूध का होना, अरुचीहो खटाई खानेकी

इच्छा, विशेष करके अनेक प्रकारके भावोंमें श्रद्धा का होना, होठों पर कालोंच का आना, पैरों पर किंचित् सूजन का होना, योनिमें जाले से प्रतीत हो, इतने लक्षण चरकमें अधिक हैं ) ।

गर्भवतीकेउपचार ।

उपचारः प्रियहितैर्भर्त्राभृत्यैश्चगर्भधृक् ।

नवनीतघृतक्षीरैः सदाचैनामुपाचरेत् ॥

अर्थ—पति और नोकरों करके, प्रिय तथा हित ( पथ्य ) ऐसैं आहार विहार करके गर्भवती का उपचार करने सैं, स्त्रीगर्भ को सुखपूर्वक धारण करती है । तथा मक्खन, घृत, और दूध इन करके इस स्त्री के आत्मा के अनुकूल सदा उपचार करने चाहिये ।

गर्भवतीकेवर्जितआचार ।

अतिव्यवायमायासं भारंप्रावरणंगुरुम् । अकालजागरस्व  
प्रकठिनोत्कटकासनम् ॥ शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धा  
विधारणं । उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टंभिभोजनम् ॥  
रक्तंनिवसनंश्वभ्रकूपेक्षामद्यमामिषम् । उत्तानशयनंयञ्च  
स्त्रियोनेच्छन्तितत्यजेत् ॥ तथारक्तघृतिशुद्धिं वस्तिमामा  
सतोऽष्टमात् । एभिर्गर्भःस्रवेदामां कुक्षौशुष्येन्म्रियेतवा ॥

अर्थ—अत्यंत मैथुन करना, परिश्रम, भारी बोझ का उठाना, कुसमय सोना और जागना, कठिन बिछया पर बैठना । घोटुओंके बल बैठना, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, इनका धारण करना । तथा मल, मूत्र, अधोवायुआदि वेगोंका रोकना । व्रतोंका करना, मार्ग चलना, तथा तीक्ष्ण, भारी और विष्टंभी पदार्थोंका भोजन, लाल बल्लोंका धारण करना, खाई, बावडी और कूएका देखना, मद्य पीना, मांस खाना, और उत्तान शयन ( सीधा सोना ) इनसबका अत्यन्त सेवन गर्भवती स्त्री त्याग देवे । केवल इनहीं आहार विहार आदि को न त्यागे किंतु जो अनेकवार बालक जन चुकी हो, और संपूर्ण गर्भवतियों के व्यवहार में कुशल हो, वे स्त्री जिसकर्मको वर्जित करे वो भी गर्भवती स्त्री को त्याज्य हैं । तथा फस्त खोलना, और रुधिरकी वमन विरेचन द्वारा शुद्धिकरना, तथा अष्टम महीनेके पूर्व अनुवासन वस्ति कर्म करना वर्जित है, अष्टम महीने के पूर्व वस्ति कर्म न करे किंतु अष्टम महीनेमें तो करनाही चाहिये, ये पूर्वोक्त वर्जित वस्तुओंके सेवन करनेसे कच्चा

गर्भ गिरपड़े । अथवा कूखमें ही सूखजावे, अथवा गर्भमें बालक मरजावे । ( देवता राक्षस और इनके अनुचरोसे रक्षाके अर्थ लालवस्त्रको न धारण करे यह चरक मुनि लिखतेहैं ) तथा सर्व इन्द्रियोंके विरुद्धभावों को त्यागदेवे । और जिस कर्मको वृद्ध वर्जित करे उसको भी न करे ।

गर्भवतीकेदुःखसेगर्भकोदुःखहोताहै ।

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या योयोभागःप्रपीड्यते ।

ससभागःशिशोस्तस्या गर्भस्थस्यप्रपीड्यते ॥

अर्थ—वातादि दोष तथा लकड़ी आदिके प्रहार इन करके गर्भिणी का जो जो देह का अवयव पीड़ित होता है, वही वही अवयव गर्भमें रहनेवाले बालक का दूखता है ।

गर्भवतीकासामान्यचिकित्सा ।

व्याधींश्चास्यामृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत् ।

अर्थ—इस गर्भवती के जो व्याधि प्रगट होवे, उन को मृदु ( सुकुमारों के योग्य ) और सुखकारक अर्थात् प्यारी तथा अतीक्ष्ण ( जो तीखी न हो ) ऐसा औषधों करके जीते ।

शिष्य—मृदु कर कह फिर अतीक्ष्ण कहने का क्या प्रयोजन है, क्योंकि मृदु कहनेसे भी अकर्कश का बोध होताहै, और अतीक्ष्णकहने से भी अकर्कश का बोध होता है, दोनों के नामभेद हैं वास्तव में अर्थ एकही है ।

गुरु—मृदु और अतीक्ष्ण के कहने का यह प्रयोजन है कि, जैसे शर्करादिक औषध हैं वे मृदु और तीक्ष्ण हैं । इनकी शक्ती भी उत्कृष्ट है । और कालीमिरच आदि केवल अतीक्ष्ण है, तथा तीक्ष्ण और अतीक्ष्ण गुणवाली राई आदि औषध दोष और उत्केश कर्त्ता जाननी चाहिये, इसी से मृदु और अतीक्ष्ण दोनों का कहना ठीक है, जैसे तंत्रांतरों में लिखा है ।

इत्यनात्ययिकेव्याधौ विधिरात्ययिकेपुनः ।

तीक्ष्णैरपिक्रियायोगैः स्त्रियंयत्नेनपालयेत् ॥

अर्थ—यह जो कहाहै कि, मृदु और अतीक्ष्ण औषधों करके गर्भवती की व्याधि हरण करे, सो यह विधि अनात्ययिक अर्थात् जहां अतिआवश्यकता न हो तहां जाननी, और जहां अति आवश्यकता होवे तहां तीक्ष्ण औषधभी देकर गर्भवती स्त्रीका यत्नसे पालन करे । अतएव सामान्य व्याधिमें तीक्ष्ण औषधोंसे गर्भवती स्त्री-

की सदैव रक्षा कर्त्तव्य है, जैसा अति व्यवायादिक करनेसे भय नहीं होता कि जैसा तीक्ष्ण औषधसे गर्भवतीको हानि होती है।

अबगर्भकीमासपरत्वअवस्थाकहते हैं ।

तत्रप्रथमेमासिसंमूर्च्छितःसर्वधातुकलुषीकृतः खे  
टभूतोभवतिअव्यक्तविग्रहः ॥

अर्थ—तहां प्रथम महिनेमें शुक्र शोणित संमूर्च्छित हो, तथा सर्व धातुओं करके कलुषीकृत खेट भूत अर्थात् कफरूप कलल अवस्थाको प्राप्त होता है, और अव्यक्त विग्रह होता है ।

द्वितीयेशीतोष्मानिलैरभिपच्यमानानामहाभू  
तानांसंप्राप्तोघनःसंजायते ।

अर्थ—दूसरे महिनेमें कफ, पित्त और वायु इन करके परिणाम दशा को प्राप्त हुए जे पंचमहाभूत उन्हींका शुक्र शोणितात्मक जो समूह सो कुछ कठिण अवस्था को प्राप्त होता है ।

पुरुषस्त्रीनपुंसककीपरीक्षा ।

यदिपिण्डःपुमान्स्त्रीचेत्पेशीनपुंसकंचेदुर्बुदमिति ।

गर्भ में पुरुष स्त्री नपुंसक की परीक्षा इसप्रकार करे । यदि गर्भ गोल पिंड के अथवा गोलाके समान स्पर्श करने से मालूम होवे, तो पुरुषगर्भ जानना; और यदि गर्भ पेशी के सदृश लंबा प्रतीत होवे तो गर्भ में कन्या जाननी । और गोल फल के अर्द्धभाग के समान प्रतीत होने से नपुंसक गर्भ जानना चाहिये ।

गयीभोजवचनसेपिंडादिकोंकास्वरूप

विपरीत कहते हैं ।

चतुरस्राभवेत्पेशी वृतःपिण्डोघनःस्मृतः ।

शाल्मलीमुकुलाकारमर्बुदंसंप्रचक्षते ॥

अर्थ—चौकोन पेशी होती है, और गोलपिंडके आकार घन कहाताहै, तथा से-मरकी कलीके आकार हो उसको अर्बुद कहते हैं, इन्हीं के क्रमसे स्त्री पुरुष और नपुंसक गर्भ जानने ।

तृतीयमासमें गर्भकास्वरूप ।

तृतीयेहस्तपादशिरसांपञ्चपिण्डानिवर्त्त  
न्ते । अङ्गप्रत्यङ्गविभागश्चसूक्ष्मोभवति ।

अर्थ—तीसरे महिने में दो हाथ, दो पैर, और १ मस्तक, ये पांच पिंड एकही समयमें उत्पन्न होते हैं । और, अङ्ग तथा प्रत्यंग विभागभी अत्यंत सूक्ष्म उत्पन्न होते हैं । तहां हाथ, पैर, मस्तक, छाती, पीठ, और पेट ये अंग कहाते हैं । और ठोड़ी, नाक, होठ, कान, उंगलीटकना इत्यादि प्रत्यंग कहाते हैं । इन अंगोंमें कोई माता के अंग सैं और कोई पिताके अंगों सैं प्रगट होते हैं सो आगे कहेंगे । और महाभूतों के विकारों सैं जो शब्दादिक प्रगट होते हैं वो शारीरकी प्रथमाध्यायमें कह आए हैं । इस तिसरे महिनेमें जो दोष धातु मलादिक देहमें प्रगट होते हैं वो प्रकृति कहाते हैं । और पश्चात् दोष धातु आदिका न्यूनाधिक होना वह विकृति कहलाती हैं ।

औरभीस्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेकीपरीक्षाकहते हैं ।

कृब्यंभीरुत्वमवैशारद्यंमोहोवस्थानम अधोगुरुत्व  
मसहनंशैथिल्यंमार्दवंगर्भाशयबीजभागस्तथायु  
क्तानिचापराणि स्त्रीकराणि । अतोविपरीतानिपुरु  
षकराण्युभयभागभावानिनपुंसककराणि ॥

अर्थ—कायरता, भययुक्त, मूर्खता, मोह, वश होना, नीचेका भाग भारी होना गरमी सरदी आदिका सहन सकना, शिथिलता, और जिस स्त्रीका गर्भाशय बीज भाग नम्र होवे, इत्यादि और भी चिन्ह स्त्री प्रगट कर्ता जानने । इन चिन्हों सैं विपरीत अर्थात् पुरुषार्थीपना, निर्भयता, चतुरता इत्यादि लक्षण पुरुष कर्ता जानने और कुछ पुरुषके और कुछ स्त्रीके चिन्ह मिले होनेसैं नपुंसक बालक होता है ।

चतुर्थमास ।

चतुर्थेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागःप्रव्यक्तोभवति ।

अर्थ—चौथे महिने में पूर्वोक्त सूक्ष्म अंग, और प्रत्यंग स्पष्ट होते हैं । और इस महिनेमें गर्भके हृदय प्रगट होने के पश्चात् उनमें प्रतिबिंबित आत्मके योग करके हृदय फुरने लगे है । इसका कारण यह है कि हृदय आत्माका स्थान है ।

प्रसंगवशभावप्रकाशसैंअंगऔरउपांगोंकोकहते हैं ।

आद्यमङ्गलशिरःप्रोक्तं तदुपाङ्गानिकुन्तलाः । तस्यान्तर्म

स्तुलुङ्गश्च ललाटंभ्रुयुगंतथा ॥ नेत्रद्वयंतयोरन्तर्वर्त्तते  
द्वेकनीनिके । दृष्टिद्वयंकृष्णगोलौ श्वेतभागौचवर्त्मनी ।  
पक्ष्माण्यपाङ्गौशंखौच कर्णौतच्छष्कुलद्वयं ॥ पालिद्वयं  
कपोलौच नासिकाचप्रकीर्त्तिता । ओष्ठाधरौचसृक्किण्यौ  
मुखंतालुहनुद्वयं ॥ दन्ताश्चदन्तवेषृश्चरसनाचिबुकड्डुलः ।

अर्थ—प्रथम अंग मस्तक है । उस के उपांग केश ( बाल ) हैं, उस माथेके भीतर मस्तुलुंग है ( अर्थात् जो मस्तकमें घृतके सदृश चिकनाई होती है ) ललाट, दोनों भौंह, दो नेत्र, उनके भीतर दो तारे हैं, दो दृष्टि दो कृष्ण गोलकोंके ओरपास दो सपेद भाग हैं, दो नेत्रोंके पलक, दो वन्नी दो नेत्रोंके प्रांत, दो कनपटी, दो कानों के बाहर पोल के ओरपास के भाग, दो पाली, दो कपोल ( गाल ) एक नासिका, दो ओष्ठ, दो अधर, दो होठों के दक्षिण वाम प्रांत मुख, तालुआ, दो जाबड़ा, दांत, दांतों के वेष्टक, अर्थात् जिस मांससे दांत ओरपाससे ढककरहैं हैं ( मसूढे ) जीभ, ठोड़ी और गला, इतने उपांग मस्तकसे संबंध रखते हैं अर्थात् ये मस्तकसंबंधी हैं ।

द्वितीयअंगकावर्णन ।

द्वितीयमङ्गं ग्रीवातुययामूर्द्धाभिधार्यते ॥

अर्थ—दूसरा अङ्ग ग्रीवा, अर्थात् नाड है । जिसकरके मस्तक धारण करसक्ताहै ।

तीसरेअंगकावर्णन ।

तृतीयं बाहुयुगलं तदुपाङ्गान्यथब्रुवे । तत्रोपरिमतौस्कं  
धौ प्रगण्डौभवतस्त्वधः ॥ कफोणियुगमंतदधः प्रकोष्ठयु  
गलंतथा । मणिबंधौतलेहस्तौ तयोश्चाङ्गुलयोदश ॥  
नखाश्चदशतेख्याता दशच्छेद्याः प्रकीर्त्तिताः ।

अर्थ—तीसरा अंग दोनों भुजा हैं । उनके उपांगोंको अब कहते हैं, उन दोनों भुजाओंके ऊपर दो स्कंध ( कंधा ) हैं, तिसके नीचे दो प्रगंड ( कंधेका नीचेका भाग और कोहनीके ऊपरका भाग ) है, उसके नीचे दो कफोणि ( कोहनी ) है, उसके नीचे प्रकोष्ठ ( पहुँचे से ऊपर और कोहनीसे नीचे का भाग ) है, उसके नीचे मणिबंध अर्थात् दो पहुँचे हैं, उसके नीचे दो हथेली और उनका पिछला भाग, उन हाथोंमें पांच पांच उंगली मिलके दश उंगली हैं. उन उंगलियोंमें दश लाल नख

हैं, और उनमें दश छेद्य अर्थात् कटने वाले नख ( नाखून ) हैं इतनेउपांग भुजा से सम्बन्ध रखते हैं ।

चतुर्थअंगकावर्णन ।

चतुर्थमङ्गवक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथब्रुवे॥स्तनौपरस्तथा  
नार्याविशेषउभयोरयं॥यौवनागमनेनार्याःपीवरौभवतः  
स्तनौ । गर्भवत्याःप्रसूतायास्तावेवक्षीरपूरितौ ॥ हृद्  
यंपुण्डरीकेण सदृशस्यादधोमुखं।जाग्रतस्तद्रिकसति  
स्वपतस्तुनिमीलति॥आशयस्तत्तुजीवस्य चेतनास्था  
नमुत्तमम्।अतस्तस्मिंस्तमोव्याप्ते प्राणिनःप्रस्वपन्तिहि ॥  
कक्षयोर्वक्षसःसन्धी जञ्जुणोःसमुदाहृते।कक्षेउभेसमाख्या  
ते तयोःस्यातांचवक्षणौ ॥

अर्थ—चतुर्थ अंग वक्षस्थल ( छाती ) है, उसके उपांगोंको कहते हैं । पुरुषके तथा स्त्रीके दो दो स्तन हैं. इन दोनोंमें विशेषता यह है कि, स्त्री की यौवन अवस्था आने पर वेही स्तन पुष्ट हो जाते हैं और जब स्त्री गर्भवती तथाप्रसूता ( बालक होने से ) दोनों स्तन दूधसे परिपूर्ण होजाते हैं, छाती के समीप भीतर हृदय है, वह कमल के सदृश तथा नीचे को मुखवाला है, जब मनुष्य जागता है तब वो खिल जाताहै और जब प्राणी सोते हैं तब वह कमल मुद जाता है, यह जीवके रहनेका स्थान है । और चेतनाशक्तिका उत्तम स्थान है । जिस समय इस हृदयमें तम ( अन्धकार अज्ञान ) व्याप्त होता है तब प्राणी सोते हैं. दोनों कांख, और छाती की सन्धियों को जञ्जु ( हसली ) कहते हैं । वह जञ्जु, और दोनों कंधे, उन दोनों कंधेनके वक्षण अर्थात् जोड़, ये सब वक्षस्थलके उपांग हैं । इस अङ्गके वर्णनमें जो कहा है कि [ चेतनास्थानमुत्तमम् ] इस कहने का यह प्रयोजन है कि, शकल \* शरीर चेतना का स्थान है परंतु सर्व देहके अपेक्षा हृदय विशेष चेतना का स्थान है ।

पंचमषष्ठऔरसप्तमअङ्गकावर्णन ।

उदरंम्पञ्चमञ्चाङ्गं षष्ठंपार्श्वद्वयंमत्तम् । सपृष्ठवंशंपृष्ठन्तु  
समस्तंसप्तमंस्मृतं॥उपाङ्गानिचकथ्यन्ते तानिजानीहि

यत्नतः । शोणिताज्जायतेप्लीहा वामतोहृदयादधः ॥  
 रक्तवाहिशिराणां स मूलंख्यातोमहर्षिभिः । हृदया  
 द्दामतोऽधश्च फुफ्फुसोरक्तफेनजः ॥ अधोदक्षिणत  
 श्चापि हृदयाद्यकृतःस्थितिः । तत्तुरञ्जकपित्तस्य स्था  
 नंशोणितजंमतम् ॥ अधस्तुदक्षिणेभागे हृदयात्क्लोम  
 तिष्ठति । जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतम् ॥

अर्थ—पांचवां अङ्ग उदर ( पेट ) है । छटा अङ्ग दोनों पसवाडे हैं।सांतवां अङ्ग पीठका वांस और समस्त पीठ है । अब इन पंचम, षष्ठ और सप्तम अङ्गों के उपांग कहता हूं उन को तू यत्नपूर्वक जान, हृदयके नीचे वाम भागमें रुधिरसैं प्लीहा ( फिहा ) उत्पन्न होती है । वह रुधिर के वहने वाली नाडियोंका मूल है । ऐसैं महर्षियोंनें कहा है । हृदय के नीचे वामभागमें फुफ्फुस ( फैंफडा ) है । यह रुधिर के ज्ञाग सैं प्रगट हुआ है । हृदय के नीचे दहनी तरफ यकृत ( कलेजे ) का स्थान है । वह रुधिर सैं उत्पन्न रंजक ( रंगने वाले ) पित्तका स्थान है । हृदयसैं नीचे दहनी तरफ क्लोम ( प्यास का स्थान ) है । यह जल वहनेवाली नाडियोंका मूलाधार है । और तृषा का आच्छादन कर्ता कहते हैं । तथा इसकी वातरक्त सैं उत्पत्ति कहते हैं । यह वाग्भट में लिखा हैं “ रक्तादनिलसंयुक्तात् कालीयकसमुद्भवः” परंतु कोई लिखता है कि, वात और रक्त मिलकर कलेजा उत्पन्न हुआ है ।

मेदःशोणितयोःसाराद् वृक्कयोर्युगलंभवेत् । तौतुपु  
 ष्टिकरौप्रोक्तौ जठरस्थस्यमेदसः ॥ उक्ताःसार्द्धास्त्रयो  
 व्यामाः पुंसामंत्राणिसूरिभिः । अर्द्धव्यामेनहीना  
 नि योषितोऽन्त्राणिनिर्दिशेत् ॥ उन्दुकश्चकटीचापि  
 त्रिकंबस्तिश्चवंक्षणौ । कण्डराणांप्ररोहःस्यात्स्था  
 नंतद्वीर्यमूत्रयोः ॥ सएवगर्भस्यधानं कुर्याद्गर्भाशये  
 स्त्रियाः । शंखनाभ्याकृतिर्योनिरुयावर्त्तासाप्रकी  
 र्त्तिता ॥ तस्यास्तृतीयेत्वावर्त्ते गर्भशय्याप्रतिष्ठिता ॥  
 वृषणौभवतःसारौ कफासृङ्मांसमेदसाम् ॥ वीर्यवा  
 हिशिराधारौ तौमतौपुरुषावहौ ।

अर्थ—मेदा और रुधिर सैं दोनों अंडकोश बने हैं, ये दोनों उदरमें रहनेवाली मेदाको पुष्ट करनेवाले हैं । विद्वान् पुरुषोंने इस पुरुष के आंतडे साढ़ेतीन व्याम लम्बे कहेहैं । और स्त्रियों के आंतडे पुरुषकी अपेक्षा अर्द्ध व्याम न्यून है । ( उँगली सहित दोनों हाथों को तिरछे फेलाने के विस्तार को व्याम कहते हैं ) नाभि, कमर, और त्रिक ( पीठ के वांस को धारण कर्ता तीन हड्डी सैं बने हुये स्थान को त्रिक कहते हैं ) बस्ति ( मूत्राशय और वंक्षण कहिये जांघोंकी दोनों सन्धि अर्थात् पेडू और मोटे नसोंके अंकुर ये वीर्य और मूत्रके स्थान हैं । वही स्त्रीके गर्भाशयमें गर्भको स्थापन करे हैं । शंखकी नाभिके सदृश तीन आंटेवाली स्त्रीकी योनि होती है । उसके तीसरे आंटेमें गर्भाशय है । कफ, रुधिर, मांस और मेदाके सार सैं वृषण ( अंडकोश ) बने हैं । ये दोनों वीर्यके वहनेवाली नाडियोंके आधार भूत हैं । और पुरुषार्थके देने वाले भी येही हैं ।

गुदस्यमानंसर्वस्य सर्वस्याच्चतुरंगुलम् । तत्रस्युर्वलयस्ति  
स्रःशंखावर्तनिभास्तुताः ॥ प्रवाहिणीभवेत्पूर्वा सार्धा  
गुलमितामता । उत्सर्जनीतुतदधः सासार्धागुलसंमिता ॥  
तस्याअधःसंवरणी स्यादेकांगुलसंमिता । अर्धागुलप्रमा  
णन्तु बुधैर्गुदमुखंमतम् ॥ मलोत्सर्गस्यमार्गोऽयं पायुर्दे  
हेविनिर्मितः । पुंसःप्रोथौस्मृतौयौतुतौनितम्बौचयो  
षितः ॥ तयोःककुन्दरेस्यातां—

अर्थ—सर्व गुदाका विस्तार चार अंगुल है । उस गुदामें तीन वलय ( आंटे ) शंखकी नाभिके आकार हैं । प्रथम आवर्तका नाम प्रवाहिणी है यह मलको नीचेकी तरफ ढकेलता है, विस्तार इसका डेढ़ अंगुलका है । उसके नीचे दूसरा उत्सर्जनी नामका आंटा है, यह मलको गुदासे बाहर गेरता है, इसका विस्तार भी डेढ़ अंगुल है । उसके नीचे तीसरा संवरणी नामा आंटा है, यह मल गिरनेके पश्चात् ज्योंका त्यों गुदाको कर देता है, इसका विस्तार १ अंगुलका है, और पण्डितोंने गुदाका मुख आधे अंगुलका कहा है । मलके उत्सर्ग करनेका मार्गरूप यह गुदास्थान शरीरमें निर्माण करा है । पुरुषोंके [ प्रोथ ] अर्थात् जिनको कूले कहते हैं, उन्हींको स्त्रीके नितंब कहते हैं । नितंबके समीप दो ककुंदर हैं । ( अर्थात् उन दोनों कूले अथवा नितंबके बीचको ककुंदर ऐसे कहते हैं । )

अष्टमअङ्गकावर्णन ।

सक्थिनीत्वङ्गमष्टमम् । तदुपाङ्गानिचब्रूमो जानुनीपिण्ड-

काद्रयम् ॥ जंघेद्रेष्टुकेपाष्णीं तलेचप्रपदेतथा ॥ पादावं  
गुलयस्तत्र दशतासांनखादश ।

अर्थ—दोनों सक्थि ( निरोह वा ऊरू ) ये आठवां अङ्ग है । उसके उपांग हम तुम सै कहते हैं । दो घोटू दो पिंडिका, ( पिडरी ) दो जंघा ( पीडिरी सै नीचेका भाग ) दो टकना, दो एडी, दो ( तल ) तरवा और दो पैर, दोनों पैरोंकी दश उंगली, उन दशों उंगलियोंके दश नख, ये सब सक्थिके उपांग हैं । अर्थात् सक्थि सै संबंध रखते हैं । इस प्रकार आठ अङ्ग कहे हैं इनका विस्तार आगे कहेंगे । आठ अङ्गों और उनके उपाङ्गोंको कहकर फिर गर्भवतीकी मासपरत्व दशा वर्णन करते हैं ।

तस्माद्गर्भश्चतुर्थेमासिअभिप्रायमिन्द्रियेषुकरोति

अर्थ—इस प्रकार चतुर्थ महिनेमें जीव प्रगट होता है, इसीसै शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन विषयोंमें मन चलता है ।

गर्भवतीकानामान्तर ।

द्विहृदयांनारींदौहृदिनीमित्याचक्षते ।

अर्थ—चतुर्थ महिनेमें स्त्रीके दूसरा हृदय प्राप्त होता है । इसीसैं उसको द्विहृदया अथवा दौहृदिनी कहते हैं ।

मातृजंघस्यहृदयं मातुश्चहृदयेनतत् । सम्बद्धंतेन  
गर्भिण्या नेष्टंश्रद्धाविधारणम् ॥ देयमप्यहितंतस्यै  
हितोपहितमल्पकम् । श्रद्धाविधाताद्गर्भस्य विकृ-  
तिश्रुतिरेववा ॥

अर्थ—गर्भके बालकका जो हृदय है वह मातृज है, इसीसै गर्भका हृदय माताके हृदय करके संयुक्त होता है । अतएव गर्भिणीका हृदय संतप्त होने सैं गर्भ में जो बालक होता है उसका भी हृदय संतप्त होता है, इसीकारण गर्भिणी द्विहृदया होने सैं दौहृदिनी कहाती है । इसी से गर्भवती का हृदय परार्थीन होनेसैं उसकाल में अपनी स्वभावोचित इच्छा को त्याग अनेक प्रकार की अभिलाष करे हैं इसी सैं गर्भवती की अभिलाषा परिपूर्ण न करना बुरा है । अतएव उस द्विहृदया गर्भवती को पथ्यके साथ मिलाय कर अपथ्य ( दाह कर्ता विष्टंभी आदि ) पदार्थ भी देने चाहिये ( अपि शब्द ) से पथ्य पदार्थ यथेच्छ देवे और अपथ्य पदार्थ

बहुत थोड़े देने चाहिये । यदि आप अपथ्य कहते हो तो फिर कैसे देना कहते हो इस लिये कहते हैं, कि द्रिहृदा स्त्रीकी श्रद्धा भङ्ग करनेसे गर्भ विकृतहो, अथवा वह गर्भ नष्ट होजावे । तात्पर्य यह है कि, गर्भिणीकी इच्छा पूर्ण न करनेसे यदि गर्भ बहुत दिनका होवे तो बालक वैरूप्य होवे और थोड़े दिनका होवे तो वह गर्भ गिर जावे । इसी प्रमाण को पुष्ट करते हैं ।

विकृतिगर्भहोनेकेऔरभीप्रमाण ।

दौहृदविषमात्कुब्जकुण्ठिषण्ठवामनंविकृताक्ष्वानारीसुतं  
जनयति । तस्मात्सायदिच्छेत्तत्स्यैदेयम् ॥ लब्धदौहृदा  
वीर्यवन्तंचिरायुपम्पुत्रंजनयति ॥

अर्थ—स्त्री की दौहृदेच्छा परिपूर्ण न होने से, वह स्त्री कुबडा, टोंटा, षंठ, वोना और विकृत नेत्रवाला, ( तथा खंजा, खल्वाट, तिरछी भुजावाला ) ऐसा पुत्र प्रगट करती है । इसीसे गर्भवती स्त्री जिस जिस पदार्थकी इच्छा करे वह उसको देना चाहिये । क्योंकि लब्धदौहृदा स्त्री वीर्यवान्, बडी उमरवाला पुत्रको प्रगट करती है । अब गद्योक्त अर्थको पद्यसे कहते हैं ।

स्त्रीकादौहृदकैसेपरिपूर्णकरनाचाहिये, इसमेंप्रमाण ।

इन्द्रियार्थान्प्रियान्यांस्तु भोक्तुमिच्छतिगर्भिणी । गर्भ  
बाधाभयात्तान्वै भिषगाहृत्यदापयेत् ॥ साप्राप्तदौहृदा  
पुत्रं जनयेत्गुणान्वितम् । अलब्धदौहृदागर्भैलभेदा  
त्मनिवाभयम् ॥

अर्थ—गर्भवती स्त्री, गान आदि का सुनना और अलङ्कार ( भूषणों ) का उप-भोग, देवतादिकों का दर्शन, षड्स भोजनादिक, भक्षणीय पदार्थ का सेवन, अ-तरआदि सुगन्ध वस्तुओंका सूघना, इनमेंसे जिस वस्तुकी इच्छा करे, वह वस्तु वैद्य लायकर दौहृद न मिलने से कदाचित् गर्भकी विकृति न होजावे इस भयसे उस स्त्रीको देवे । गर्भवतीकी इच्छा परिपूर्ण करनेसे उत्तम प्रकारके पुत्रको प्रसव करती है और जिसको दौहृद न मिले उसके गर्भको अथवा उसके शरीरको भय होता है ऐसे जानना चाहिये ।

इन्द्रियोंकेअपमानसेगर्भकीविकृति ।

येषुयेष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदेयाविमानता ।

प्रजायतेसुतस्यार्त्तिस्तार्त्तिमस्तार्त्तिमस्तदिन्द्रिये ॥

अर्थ—कान, नाक, जीभ, नेत्र और त्वचा, इन पांच इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पांचविषय हैं। जिनमें जिस विषयसे जो इन्द्री तृप्त न हुई हो उसी इन्द्री में गर्भवती बालकके पीड़ा होती है। उसका उदाहरण दिखाते हैं। जैसे गर्भवतीकी इच्छा गान सुनने की हो और कदाचित् वो गान न सुने तो उसकी श्रोत्र इन्द्री ( कान ) तृप्त नहीं हुआ अतएव गर्भवती बालक की कर्ण इन्द्री पीड़ित होती है। इसीप्रकार इच्छित वस्तुको न देखने से बालक की नेत्र इन्द्री पीड़ित होती है। इसीप्रकार और इन्द्रियोंके विषयमें जानना।

दौहदद्वारागर्भकेलक्षण ।

राजसंदर्शनेयस्या दौहदंजायतेस्त्रियाः । अर्थवन्तमहा  
भागंकुमारंसाप्रसूयते ॥ दुकूलपट्टकौशेय भूषणादि  
षुदौहदात् । अलङ्कारैषिणंपुत्रं ललितंसाप्रसूयते ॥

अर्थ—जिस स्त्री को राजा के दर्शन करने का दौहद ( इच्छा ) होवे वह स्त्री द्रव्यवान् महाभाग ( पुण्यवान् ) ऐसे कुमार को प्रगट करे। तथा महीन, उत्तम, वस्त्र अथवा पट्ट वस्त्र, तथा पीतांबर इत्यादिकों के धारण करने की इच्छा जिस स्त्री की हो, वह अलङ्कारों का भोगने वाला और रूपवान् पुत्र को प्रगट करे।

आश्रमेसंयतात्मानं धर्मशीलंप्रजायते ।  
देवताप्रतिमायान्तु प्रसूतेपार्षदोपमम् ॥

अर्थ—जिस स्त्री को मुनि ऋषियों के आश्रम देखनेकी तथा उस जगह रहनेकी अभिलाषा होवे, वह स्त्री धर्मशील जितेन्द्रिय पुत्र को प्रगट करे। और जिस स्त्रीकी इच्छा देवमूर्तिके पूजनेकी अथवा दर्शन करने की हो, वह [ पार्षद ] अर्थात् सभा के अधिकारीके समान पुत्रको उत्पन्न करे।

दर्शनेव्यालजातीनां हिंस्रालुंसाप्रसूयते । गोधामांसा  
शनेपुत्रं सुषुप्तंधारणात्मकम् ॥ गवांमांसेतुमलिनं सर्व  
क्लेशसहंतथा।माहिषेदौहदात्च्छूरं रक्ताक्षंलोमसंयुतम्॥  
वाराहमांसात्स्वप्रालुं शूरंसंजनयेत्सुतम्।मार्गाद्विक्रान्त  
जंघालं सदावनचरंसुतम् ॥

अर्थ—जिस स्त्रीको सर्प, सिंह, व्याघ्रादि हिंसक पशुओंके देखनेकी सर्वदा इच्छा रहे वह स्त्री दुष्ट घातक ऐसे पुत्र को उत्पन्न करे। जिसको गोहके मांस

खाने की इच्छा होवे, वह स्त्री निद्रा का दुराग्रही अथवा बहुत सोने वाला और जिद्दी ऐसे पुत्र को प्रगट करे । जिस स्त्रीको गोमांस खानेकी इच्छा होय, वह मलिन और सर्व क्लेशों का सहने वाला हो, और जिस को भैंसे के मांस खाने की इच्छा होय, वह स्त्री शूर वीर, लाल नेत्र और जिस के अङ्ग में बहुत रोम ( बाल ) हो, ऐसे पुत्र को प्रगट करे । जो सूअर के मांस खाने की इच्छा करे, वह निद्रावान्, शूर वीर पुत्र को प्रगट करती है । और जिस स्त्रीकी इच्छा मार्ग चलने की हो, वह जल्दी चलने वाला और सदैव वन में विचरने वाले पुत्र को प्रगट करे ।

### सृमरोद्विग्रमनसं नित्यंभीतंचतैत्तिरात् ।

अर्थ—जिस स्त्रीको [ सृमर ] कहिये महासूकर ( जंगली वा वरेली सूकर ) खाने की इच्छा हो, अथवा इस जगे [ सावरोद्विग्रमनसं ] ऐसा भी पाठ मानते हैं, अर्थात् जो बारह सींगा के मांस खाने की इच्छा करे, वह उद्विग्र मन ( चंचल चित्त ) वाले बालक को प्रगट करे । जो स्त्री तीतरके मांस खाने की इच्छा करे, वह डरपोका बालक प्रगट करती है । कोई [ नित्यंशीलंचतैत्तिरात् ] ऐसा पाठ मानते हैं, इसका यह अर्थ है जिस स्त्री के तित्तर पक्षी के मांस खानेका दौहृद होवे वह शीलवान् बालक को प्रगट करे । शूद्रादि नीच वर्ण पूर्वकालमेंभी मांस खातेथे।

अनुक्तगर्भदौहृदसंग्रहश्लोक ।

अतोनुक्तेषुयानारी समभिध्यातिदौहृदम् ।  
शरीराचारशीलैः सा समानंजनयिष्यति ॥

अर्थ—जो पदार्थ नहीं कहे उनकी इच्छा करे, वह स्त्री उसी पदार्थ के शरीर, आचार और स्वभाव करके तत्समान पुत्र को प्रगट करे । जैसे बहुतसी गर्भवती स्त्रियों का मन राख, मिट्टी, खिपडे, आदि खाने को चलता है । तो उन के पुत्र भी निर्धन, रोगी और कुरूप होता है । इसी प्रकार जो दिव्य पदार्थ भोजन करने की तथा दिव्य फूल, माला, चंदन, वस्त्रादि कों के धारण करने की इच्छा करने सैं, दिव्य भोगों का भोगने वाला सत्पात्र बालक प्रगट करती है ।

दौहृदोंमेंप्रारब्धकारणकहते हैं ।

कर्मणानोदितंजन्तोर्भवितव्यंपुनर्भवत्ते ।  
यथातथादैवयोगाद्दौहृदंजनयेद्दृदि ॥

अर्थ—प्राणियों के प्रारब्ध कर्म करके प्रेरित भवितव्य, जैसे आगे हीनहार होती

है उसी प्रकार के दौहद देव वश करके होते हैं । अर्थात् दुष्ट बालक के दौहद भी दुष्ट होते हैं और उत्तम के भी दौहद उत्तम होते हैं। चरक मुनि ने तीसरे महिने में ही स्त्री को द्विहदा कही है । परंतु सुश्रुत के मत से चतुर्थ महिने में दौहदवती स्त्री होती है । अब चरकमतानुसार चतुर्थ मास का वर्णन करते हैं ।

### चतुर्थमासे स्थिरत्वमापद्यते गर्भस्तस्मात्तदा गर्भिणीगु- रुगात्रत्वमापद्यते ।

अर्थ—चतुर्थ महिनेमें गर्भ स्थिर होता है, इसी कारण गर्भिणीका देह इस महिनेमें भारी हो जाता है ।

पंचममास ।

### पञ्चमे मनःप्रतिबुद्धतरं भवति [ विशेषेण पञ्चमे मा- सि गर्भस्थमांसशोणितोपचयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्यस्तदा गर्भिणीकाश्चर्यमापद्यते ]

अर्थ—पांचवे महिनेमें गर्भ के मन, अर्थात् चेतना प्रगट होती है । और चरक मुनि कहते हैं कि विशेष करके पांचम महिनेमें गर्भके मांस, रुधिरका संग्रह और महिने से इस महिनेमें अधिक होता है । इसी से गर्भिणी इस महिनेमें कृश हो जाती है ।

षष्ठमास ।

### षष्ठे बुद्धिः [ विशेषेण षष्ठे मासि गर्भस्य बलवर्णोपच- यो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्यस्तस्मात्तदा गर्भि- णीबलवर्णहानिमापद्यते ]

अर्थ—छठवे महिनेमें गर्भके बालकके बुद्धि उत्पन्न होती है । चरक मुनि कहते हैं कि, विशेष करके छठे महिनेमें गर्भके बल और वर्णका संग्रह अन्य महिनोंकी अपेक्षा अधिक होती है । इसी से गर्भिणीके बल वर्णकी हानि होती है, परंतु वाग्भट इन दोनों से विपरीत कहता है ।

यथा ।

### षष्ठे स्याद्युशिरारोमबलवर्णनखत्वचाम् ।

अर्थ—छठवे महिने गर्भके बालकके अव्यक्त रूप जो स्यायु, नाडी, रोम, बल, वर्ण, नख और त्वचा, ये प्रगट होते हैं । अर्थात् छठवे महिने सूक्ष्म रूप से स्थूल रूप होते हैं ।

सप्तममास ।

सप्तमेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरोभवति ।

अर्थ—सातवें महिनेमें गर्भके सर्व अङ्ग ( हाथ, पैर, मस्तक, आदि ) और प्रत्यंग ( नाक, कान, नेत्रादि ) विभाग अच्छी रीति से प्रगट होते हैं [ इसी से गर्भवती अत्यंत खेदित होती है ) वाग्भटने छठवें महिनेमें जो स्नायु शिर आदिका प्रगट होना लिखा है सो सुश्रुत, चरक से विरुद्ध है तथापि सर्वाङ्गसंपूर्णता गर्भकी सातवें महिने में ही होती है । क्यों कि, वाग्भटही लिखते हैं कि, सर्वाङ्गसंपूर्णभाव सप्तम महिने में ही होता है ।

अष्टममास ।

अष्टमेस्थिरीभवत्योजस्तत्रजातश्चेन्नजीवेतनिरोजस्त्वान्नैऋतं  
तभागेत्वाच्चततोबलिमाषोदनमस्मैदापयेत् ।

अर्थ—आठवें महिनेमें हृदय में रहने वाला सर्व धातु संबंधी तेज स्थिर होता है। अतएव इस आठवें महिने में उत्पन्न हुआ बालक नहीं बचे, उसका यह कारण है कि वह तेज पूर्ण नहीं जमता, और वह राक्षसों का भाग ( राक्षसों के लिये श्री-शिवजी ने बालकों में भाग दिया है यह कुमारतंत्र में लिखा है ) है इसी से इस महिने में राक्षसों को उड़द, तथा भात इन का बलिदान देवै यह श्रीशिवजीकी आज्ञा है।

ओजेष्टमेसंचरति मातापुत्रौमुहुःक्रमात् ।

तेनतौम्लानमुदितौ तत्रजातोनजीवति ॥

शिशुरोजोऽनवस्थानान्नारीसंशयिताभवेत् ।

अर्थ—सर्व धातुओं का तेज, माता और पुत्र में संचार ( गमन ) करता है । क्रम से कभी गर्भिणी का तेज संचार करे, कभी गर्भ गत बालक का तेज संचार करे, इसी से दोनों म्लान ( कुमलाए हुए से ) और मुदित ( प्रसन्न ) होते हैं । अर्थात् गर्भ और गर्भिणी के रस बहनेवाली नाड़ियों में पूर्वाक्त ओज संचार करता है, यदि गर्भ और गर्भिणी दोनोंका तेज गर्भगत बालक में संचारकरे उस समय गर्भ प्रसन्न होता है और गर्भिणी मुरझाई सी होती है और यदि पूर्वाक्त दोनों का तेज गर्भिणी में संचार करे तो उस ओज संपत्तिसे गर्भिणी प्रसन्न रहती है और बालक म्लान ( मुरझाया सा ) होता है। अतएव ओजके एकत्र स्थित न होनेसे इस महिने में जन्माहुआ बालक नहीं जीवे, इसी से स्त्री संशय वाली होती है, अर्थात् यह बालक जीवेगा या न जीवेगा यह संदेहयुक्त रहती है ।

## तस्मिंस्त्वेकाहयातेपि कालःसूतेरतःपरम् ।

अर्थ—अष्टम महिने के एक दिनभी व्यतीत होनेहीसे उपरान्त प्रसूत होनेका काल है, ऐसा जानना, अपिशब्द से अष्टम महिने के व्यतीत होने से उपरान्त प्रसूतकाही काल जानना चाहिये । एक वर्ष के उपरान्त गर्भ में बालक पवनके विकार से रहता है ।

## नवमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन् जायते अतोऽन्यथाविकारीभवति ।

अर्थ—नवम, एकादश और द्वादश कहिये बारवां महिना, इन में से किसीएक महिने में बालक उत्पन्न होता है । इन महिनों में बालक न प्रगट होनेसे विकृत हुआ ऐसा जानना । चरक मुनि दश महिने पर्यंत प्रसूतका समय कहतेहैं, उपरांत बालक को गर्भ में रहना विकार से लिखा है ।

गर्भकासन्निवेशभिसंग्रहमेंलिखाहै ।

## गर्भस्तुमातृपृष्ठाभिमुखोललाटे कृतांजलिःसंकुचिताङ्गो गर्भकोष्ठेदक्षिणंपार्श्वमाश्रित्यावतिष्ठतेपुमान् वामंस्त्री मध्यनपुंसकम् ।

अर्थ—गर्भ माता के पीठकी तरफ मुख करके जुड़े हुए हाथों की अंजली मस्तकपर धर सब शरीर को समेट, गर्भ कोष्ठमें दहनी बगल आश्रय करके पुरुष रहता है । और कन्या बाई बगल का आश्रय कर रहती है । और नपुंसक बीच में रहता है ।

शिष्य—भोजन के विना गर्भ कैसे गर्भ में जीता रहे हैं, अर्थात् मुखतो जरायु और कफ से बन्द रहता है, फिर यह कैसे आहार को भोजन करता है और आहार के विना जीवन नहीं होसके ।

गुरु—इसका यह कारण है । यथा—

## मातुस्तुरसवाहायांनाढ्यांगर्भनाडीप्रतिबद्धा । सास्यमा तुराहारंसवीर्यमभिवहति।तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति

अर्थ—माता के रस वहने वाली नाड़ी, उससे गर्भ की नाभिनाडी बंधी हुई है, वह नाडी माताके आहार वीर्य से कुछ स्नेहका अंश लेकर गर्भको बढ़ाती है ।

पूर्वोक्त अङ्ग प्रत्यंग विभाग प्रगट होने के अनंतर गर्भ का उक्त प्रकार पोषण

होता है, परंतु अङ्ग प्रत्यङ्ग विभाग होने से पूर्व गर्भ का कैसे पोषण होता है । इस शङ्का को दूर करते हैं ।

अंगविभागपूर्वपोषणकाज्ञान ।

असंजाताङ्गप्रत्यङ्गविभागमानिमेघात्प्रभृतिसर्वशरीरावयव  
वानुसारिणीनारसवहानांतिर्यग्धमनीनामुपस्नेहोजीवति ॥

अर्थ—जिस गर्भ के अङ्ग प्रत्यङ्ग विभाग, न प्रगट हुये हों उस गर्भ के सर्व शरीर में आपाद मस्तक पर्यंत जाने वाली, तथा उसी उसी अवयवों में रसके पहुँचाने वाली बारीक, मोटी, बांकी, तिरछीं, धमनियों का उपस्नेह गर्भ को पोषण करे हैं । जैसे नदीतट के वृक्षों को नदी का पानी भीतरी मार्ग से पहुँच कर पोषण करता है ।

पूर्वोक्तविषयमेंभोजकावाक्य ।

गर्भोरुणद्धिस्रोतांसि रसरक्तवहानिवै । रक्ताज्जरायुर्भ  
वति नाडीचैवरसात्मिका ॥ सानाडीगर्भमाप्नोति तथा  
गर्भस्यवर्त्तनं।यद्यदश्रातिमातास्य भोजनंहिचतुर्विधं॥  
तस्मादत्ताद्रसीभूतं वीर्यत्रेधाप्रवर्त्तते।भागःशरीरंपुष्णा  
ति स्तन्यंभागेनवर्द्धते॥गर्भःपुष्यतिभागेन वर्द्धतेचय  
थाक्रमम् । गर्भकुल्येवकेदारं नाडीप्रीणातितार्पितेति ॥

अर्थ—गर्भ माता के उदर में रहता हुआ, उस के रस रक्त वहने वाली नाडियों को निरोध करता है । उस रक्त से गर्भ वेष्टित होता है । और उस रस से नाभि नाल उत्पन्न होती है । वह नाडी गर्भ के बालक के नाभि नाल होकर रहती है । उस से गर्भ का इधर उधर को हलना, चलना नहीं होता. तथा माता जो जो भक्ष, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदि चतुर्विध पदार्थों को भोजन करती है । उस भोजन करे हुए अन्न से रस उत्पन्न होता है । उस रस के तीन विभाग होते हैं, तिन में से एक विभाग से तो माता का शरीर पोषण होता है, दूसरे विभाग से उस स्त्री के स्तनों में दूध बढता है, और तीसरे रस के भागसे गर्भ के बालक का पोषण होकर क्रम करके धीरे धीरे गर्भ बढता है । जैसे पानी वरहा के मार्ग हो कर खेत में जाय उस खेतको तृप्त करता है । और धीरे धीरे वृद्धि करता है उसी प्रकार यह नाडी ( नाल ) माता के शरीर रस को लेकर आप तृप्त हो गर्भ को तृप्त करे हैं ।

गर्भवृद्धेरुपायमाह ।

गर्भस्यनाभिमध्येतु ज्योतिःस्थानंध्रुवंस्मृतम् । तदाधमति  
वातश्च देहस्तेनास्यवर्द्धते ॥ ऊष्मणासहितश्चापि दार  
यत्यस्यमारुतः। ऊर्ध्वतिर्यग्धस्ताच्च स्रोतांसितुयथातथा ।

अर्थ—गर्भगत बालक की नाभि में ज्योति स्थान है । उस में पवन जब चलती है, उस से इस बालक का देह बढ़ता है । जैसे जैसे उष्मा करके सहित पवन ऊपर नीचे तिरछे इस बालक के छिद्रों को विस्तारित करता है, उसी उसी रीति से इस बालक का देह बढ़ता है ।

गर्भकेजोप्रथमअङ्गर्हाताहै उसकोकहते हैं ।

शिरोभवतिचाङ्गस्य पूर्वमित्याहशौनकः । शिरस्यैवो  
पजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणियत् ॥ हृदयंजायतेपूर्वं कृत  
वीर्योवदन्मुनिः । बुद्धेश्चमनसश्चापियतस्तत्स्थानमीरि  
तं ॥ पाराशर्यइतिप्राह पूर्वनाभिसमुद्भवः । प्राणोयत्रस्थि  
तोदेहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ पाणिपादंभवेत्पूर्वं मार्कण्डे  
यमुनेर्मते । देहिनःसकलाश्चेष्टाः पाणिपादाश्रयायतः ॥  
प्रथमंजायतेकोष्ठं ततःसर्वाङ्गसंभवः । एतत्तुकथयामा  
सगौतमोमुनिपुद्भवः ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत्सं  
भवन्तिहि । सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्तेमतंधन्वन्तरेरिदम् ॥

आम्रस्यानुफलेभवन्तियुगपन्मांसास्थिमज्जादयो ।

लक्ष्यन्तेनपृथक्पृथक्त्वणुतया पुष्टास्तएवस्फुटाः ॥

एवंगर्भसमुद्भवेत्ववयवाः सर्वेभवन्त्येकदा ।

लक्ष्याः सूक्ष्मतयानतेप्रकटतामायान्तिवृद्धिगताः ॥

अर्थ—अन्य अवयवों के प्रथम, गर्भ के मस्तक उत्पन्न होता है । ऐसे शौनक ऋषि कहता है । कारण यह है कि, सर्वेन्द्री मस्तक से ही होती हैं ( अर्थात् सर्व ज्ञानेन्द्रियों का मूल मस्तक है ) कृतवीर्यमुनि कहता है कि, प्रथम गर्भ के हृदय उत्पन्न होता है, क्योंकि मन और बुद्धि इन दोनों का स्थान हृदय ही है । पाराशर ऋषि कहते हैं कि, प्रथम बालक के नाभि उत्पन्न होती है, क्यों कि

नाभि में ही प्राण पवन रहती है। वह ऊष्मा संयुक्त देह को बढाती है। मार्कण्डेय ऋषि कहता है कि, प्रथम हाथ पैर उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सकल देहधारी पुरुष की चेष्टा हाथ पैरों के ही आश्रित है। प्रथम कोष्ठ ( पेट ) उत्पन्न होता है, तदनंतर सर्व अङ्ग प्रगट होते हैं, ऐसे गौतम मुनिपुंगव कहते हैं। परंतु वृद्ध सुश्रुत में लिखा है कि, प्रथम शरीर उत्पन्न होता है, ऐसैं सुभूति और गौतम ऋषि कहते हैं। क्यों कि सर्व अवयव देह में बँधे हुये बढते हैं। सर्व अङ्ग और उपाङ्ग एकही काल में उत्पन्न होते हैं। परंतु अत्यंत सूक्ष्म होने सैं दृष्टिगोचर नहीं होते यह धन्वन्तरि का मत है।

जैसैं आम्रफल की उत्पत्ति में एक काल में ही मांस मज्जा और अस्थि आदि होते हैं। परंतु परमाणुरूप होने सैं पृथक्पृथक् नहीं दीखने में आते, जब आम्र पुष्ट हो जाता है तब वे ही पूर्वोक्त मांस, मज्जा और अस्थि पृथक्पृथक् स्पष्ट दीखने लगती हैं। इसी प्रकार गर्भ की उत्पत्ति में सर्व अवयव एकही काल में होते हैं। परंतु अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण नहीं दीखते। जब बढकर बडे हो जाते हैं तब अलग अलग प्रतीत होने लगते हैं। इस आम्र में मांस स्थानी गूदा, मेदा स्थानी रस, और अस्थि स्थानी गुठली जाननी चाहिये। [ मज्जादयः ] इस पद में आदि शब्द के कहने सैं त्वचा, केशर, मज्जा, छाल, अंकुर और वृंत ( जिस में कली बँधी हुई होती है) इन सब का ग्रहण है। अर्थात् ये सब भी उत्पत्ति के समय नहीं मालूम होते हैं।

शरीरकेपितृजभाग ।

गर्भस्यकेशश्मश्रुलोमनखदन्तशिरास्त्रायुधमनिरेतः-  
प्रभृतीनिस्थिराणिपितृजानि।

अर्थ-गर्भ के केश, डाढी, मूळ, लोम, नख, दांत, नस, नाडी, धमनीनाडी, और शुक्र इत्यादिक कठोर पदार्थ पिता सैं उत्पन्न होते हैं।

मातृजन्य ।

मांसशोणितमेदोमज्जाहृत्त्राभियकृत्प्लीहान्त्रमुदर-  
प्रभृतीनिमृदूनिमातृजानि ।

अर्थ-गर्भ के बालक के मांस, रुधिर, चरबी, मज्जा, हृदय, नाभि, कलेजा, प्लीहा, आंतडी, और उदर इत्यादिक मृदु ( नरम ) पदार्थ माता सैं उत्पन्न होते हैं।

रसजन्य ।

शरीरोपचयोबलवर्णःस्थितिहानिश्चरसजानि।

अर्थ—गर्भ के शरीर की वृद्धि, बल, वर्ण, स्थिति और हानि इत्यादिक रस से प्रगट होते हैं ।

आत्मजन्यपदार्थ ।

इन्द्रियाणिज्ञानविज्ञानमायुःसुखदुःखादिकंचात्मजानि ।

अर्थ—नेत्र आदि इन्द्री, ज्ञान, विज्ञान ( अपरोक्ष ज्ञान ) आयुष्य, सुख, दुःख, इत्यादिक आत्मा के सन्निकर्ष करके होते हैं । साक्षात् आत्मा से ही नहीं होते क्यों कि, आत्मा निर्विकार और प्रकृति करके अनुपपत्ति है ।

सात्विक, राजस, तामस, जन्यपदार्थ ।

सात्विकंशौचमास्तिक्यं शुक्लधर्मरुचिर्मतिः ।

राजसंबहुभाषित्वं मानक्रुद्दम्भमत्सराः ॥

तामसंभयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यंविषादिता ।

अर्थ—पवित्रता ( दैहिक, मानसिक, और वाणी के भेद से तीन प्रकार की है । मिट्टी जल आदि से शास्त्रोक्त शुद्धि को कायिक कहते हैं । और सर्व जगत् से प्रीत करना मानसिक । तथा सब से प्रिय बोलना वाणी की पवित्रता कहाती है ) आस्तिकता, कपटरहित धर्म में रुचि कहि ये भक्ति और बुद्धि का रखना, ये सब सतीगुण से होते हैं । बहुत बोलना, अभिमान, क्रोध, दंभ, और मत्सरता ये रजो गुण से होते हैं । भय, अज्ञान, निद्रा, आलस्य, और विषाद, ये गर्भ के तामसजन्य होते हैं ।

सात्म्यजपदार्थ ।

सात्म्यजंत्वायुरारोग्य मनालस्यंप्रभावलम् ॥

अर्थ—सात्म्य तीन प्रकार का है। जैसे—व्याधिसात्म्य, देशसात्म्य और देहसात्म्य इन्होंने व्याधिसात्म्य का यहां पर ग्रहण नहीं है । आत्मा के अनुकूल को सात्म्यज कहते हैं वो ये हैं, जीवन, आरोग्य, ( धातुओं की समानता ) अनालस्य ( सर्व-चेष्टाओं में उत्साह ) कांति, और बल ( तथा अलोलुपत्व, इन्द्रियों की प्रसन्नता, स्वर, वर्ण, वीर्य, तेज और इर्षादिक ये सब सात्म्यज ही हैं ) ।

अबगर्भिणीके जिनलक्षणोंकरके पुत्र, कन्या, नपुंसक और यमल उत्पन्न होनेका अनुमानकराजायउनकोकहते हैं ।

यस्यादक्षिणस्तने प्राक्पयोदर्शनं भवति दक्षिणमाहत्वञ्च  
पूर्वचदक्षिणसक्थित्कर्षयति । बाहुल्याच्चपुत्रामधेयेषु

द्रव्येषुदौहृदमभिध्यायतिस्वप्नेषुचोपलभतेपद्मोत्पलकुमु  
दाभ्रातकादीनिपुत्रामान्येवप्रसन्नमुखवर्णाचभवति तांवि  
द्यात्पुत्रमियंजनयिष्यति ॥

अर्थ—जिस के दहने स्तनमें प्रथम दूध दीखे, तथा दहना नेत्र कुछ बड़ा मा-  
लूम हो, तथा दहनी सक्थि ( ऊरु ) गर्भ के भार करके उच्च सी प्रतीत हो, तथा  
जो पुरुषसंज्ञक द्रव्य ( आंब, केला, घोडा, हाथी आदि ) में प्रीत करे, तथा स्व-  
प्नेमें सपेद कमल, सूर्य कमल, कमोदनी, और अंबाडे इत्यादिक पुरुषनाम के  
पुष्प फल देखे, तथा जिस का मुख सर्व काल में डहडहा दीखे, उस को जाने कि  
यह स्त्री पुत्र प्रगट करेगी । इस सैं विपरीत लक्षण कन्या के जानने चाहिये ।

वाग्भटेऽपि ।

प्रादक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वतत्पार्श्वचेष्टनी । पुत्रामादौहृद  
प्रश्ररतापुंस्त्वप्रदर्शिनी ॥ उन्नतेदक्षिणेकुक्षौ गर्भेचपरि  
मण्डले । पुत्रं सूतेऽन्यथाकन्यां याचेच्छतिनृसङ्गतिम् ॥  
नृत्यवादित्रगांधर्वगन्धमाल्यप्रियाचया ।

अर्थ—जिस गर्भवतीके प्रथम दहने स्तनमें दूध प्रगट हो, तथा दहनी तरफ  
करके सर्व चेष्टा करे ( अर्थात् चले तो प्रथम दहने पैर को उठावे, सोवे तो दहनी  
करवट सोवे ) तथा दौहृद ( गर्भवती की इच्छा ) भी पुरुषसंज्ञक वस्तुओं में  
चले ( जैसे लड्डू, पेडा, आम, आमरूद, केला, आदि ) तथा प्रश्र करे तो भी  
पुरुषसंज्ञक प्रश्नों को करे ( अर्थात् बारम्बार पुरुष संज्ञा वाले नामों को लेवे )  
और स्वप्नेमें भी पुरुष संज्ञक ( घोडा, हाथी, शूकर, आम, अनार, अशोक, आदि  
वृक्ष, फूल, फल, देवता, पक्षी, मनुष्य आदि ) देखे तथा जिसकी दहनी कूख  
ऊँची होवे, तथा गर्भस्थान गोल होवे, इन लक्षणों सैं गर्भवती पुत्र प्रगट करती है ।

और पुत्र उत्पन्न करने वाले लक्षणों सैं विपरीत लक्षण होवें, ( जैसे वाम स्तन-  
में प्रथम दूध हो, सर्व चेष्टा वाम अङ्ग सैं करे, स्त्री नाम वाले पदार्थोंकी इच्छा  
करे, स्वप्नेमें भी स्त्रीवाचक पदार्थों को देखे, और वाई कूख जिस की ऊँची होवे,  
तथा जो स्त्री पुरुषसंग करने की इच्छा करे और जिसके चित्त को नाचना, गाना,  
बाजे बजाना, और चन्दन लगाना, फूल माला का धारण करना, आदि प्रिय लगे  
वो कन्या प्रगट करती है ।

नपुंसकगर्भके लक्षण ।

यस्याःपार्श्वद्वयमुन्नतंपुरस्तान्निर्गतमुदरंप्रागाभिहि  
तंलक्षणंचतस्यानपुंसकंविद्यात् ।

अर्थ—जिस की दोनों कूख ऊँची सी प्रतीत हों, और आगे की तरफ पेट बराबर सपाट दीखे, और पूर्वोक्त दोनों पुत्र तथा पुत्री होनेके जो लक्षण कहे वो मिलते हों, वो स्त्री नपुंसक बालक को प्रगट करे हैं । ( भावमिश्र कहते हैं कि नपुंसक बालक पेटमें होने से पेट अर्बुद के सदृश होता है और आगे को भारी प्रतीत होता है ) ।

जौडाहोनेवालेगर्भलक्षण ।

यस्यामध्येनिम्नद्रोणीभूतमुदरंसायुग्मंप्रसूयते ॥

अर्थ—जिस का पेट बीचमें नीचा होकर द्रोणी ( जल के पात्र ) समान दीखे वो स्त्री जौडा अर्थात् दो बालक प्रगट करे ।

प्रथान्तरेच ।

रोमराजिर्भवेन्निम्ना यस्याःसासूयतेयमौ ।

अर्थ—जिस की रोमपंक्ती गर्भ के कारण नीची हो, अर्थात् जिस गर्भवती के रोमांच नीचे को झुके हों वो दो बालक प्रगट करती है ।

गर्भवती के कायिक, वाचिक, मानसिक, लक्षणों से

पुत्रके गुण कहते हैं ।

देवताब्राह्मणपरा शौचाचारविवर्जिता ।

महागुणंप्रसूयेत विपरीतांस्तुनिर्गुणान् ॥

अर्थ—जो स्त्री देवता, ब्राह्मण पूजनादि सदाचार, तथा दंत धावन ( दांतौन ) और स्नानादि शौचाचार युक्त होय, वह महागुणवान् पुत्रको प्रसव करती है । और पूर्वोक्त से विपरीत आचरण करे तो निर्गुण पुत्रों को प्रगट करे हैं ।

विकृतअवयवहोनेकाकारण ।

अङ्गप्रत्यङ्गनिवृत्तौ येभवन्तिगुणाऽगुणाः ।

तेवैगर्भस्यविज्ञेया धर्माधर्मानिमित्तजाः ।

इति श्रीसौश्रुतशारीरे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अर्थ—पूर्व कहे जो हस्त पादादि अङ्ग और अंगुल्यादि प्रत्यङ्ग इन के उत्पात्ति के समय जो उत्तम और दुष्टता का होना वह शुभाशुभ कर्म करके होता है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्दारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

गर्भ की अवतरणक्रिया कहने के अनंतर उत्पन्न हुए गर्भका वर्णन करते हैं ।

॥ अथातोगर्भव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—गर्भ की अवतरणक्रिया कहने के अनन्तर, गर्भ का वर्णन जिसमें है ऐसी शारीराध्याय की व्याख्या करते हैं ।

गर्भ के वर्णन में प्राण और त्वचा आदि करके वर्णनीय पदार्थों में प्राण सब शरीरका उत्तम रीतिसे पोषण करते हैं, अतएव प्रथम प्राणों का वर्णन करते हैं ।

प्राणवर्णन ।

अग्निःसोमोवायुःसत्त्वरजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणिभूतात्मेतिप्राणाः ॥

अर्थ—अग्नि, सोम, पवन, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, पंचेन्द्री और भूतात्मा ये प्राण है । प्राण शब्द करके इस जगे शरीर के पोषण करने वाले तथा कांत्यादिक देने वाले जानने, अग्नि शब्द करके पाचक, भ्राजक, आलोचक, रंजक, साधक, ऐसे भौतिक पांच ऊष्मा और सर्वधातुगत ऊष्माओं को शक्ति देनेवाला होकर वाणी का अधिदैवत जानना; तथा सोमपद करके श्लेष्मा ( कफ) रस, शुक्र, आदि-शब्द करके रसात्मक पदार्थ । रसेन्द्रियों को शक्ति देने वाला मनका अधिदैवत जानना; वायु शब्दकरके प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान ऐसे पांच प्रकार के पवन जानना । सत्व, रज, और तम ये पूर्वोक्त अष्टविध प्रकृतिके गुण हैं । पंचेन्द्री करके श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण आदि पंचभूतात्मा शुभाशुभ कर्म करके परिगृहीत कर्म पुरुष जानना चाहिये । ये अश्यादिक प्राणों को प्रीणन अर्थात् जि-याते हैं इसी सैं इन को प्राण कहते हैं ।

अश्यादिक प्राण कौनसे कर्म से शरीर का प्रीणन

अर्थात् पालन करते हैं सो कहते हैं ।

तत्राग्निस्तावदाहारपाकादिकर्मणाप्रीणयति ॥

अर्थ—तिनमें अग्नि आहार पाकादिकों से शरीर का प्रीणन करे हैं ।

## सोमश्चसौम्यधातुरोजःप्रभृतेःपोषणेन ॥

अर्थ—चन्द्र सौम्य धातु का प्रीणन सारभूत तेजादिकों का पोषण करके शरीर पालन करे है ।

## वायुश्चदोषधातुमलादीनांसंचारणेनोच्छ्वासनिःश्वासाभ्यांच ॥

अर्थ—वायु, वात, पित्त, कफ, तथा सप्तधातु और मल, मूत्र इन के संचार करके और ऊर्ध्वश्वास निश्वास करके शरीर का पोषण करे है ।

## सत्वंरजस्तमश्चमनोरूपतयापरिणतम् ॥

अर्थ—सत्व, रज, तम गुण ये मनोरूप करके परिणाम को प्राप्त हो कर कर्म पुरुष के शरीरांतरग्रहण के हेतु होकर पोषण करते हैं ।

अवयवहशरीरअन्यजिनजिनसमवायि\*कारणकरकेउत्पन्न होता हैउनसबकोभावप्रकाशसैंकहतेहैं ।

अथदोषाःप्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनंतरम् । आहारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्चवक्ष्यते ॥ आर्त्तवंचाथधातूनां मलास्तदुपधातवः । आशयाश्चकलाश्चापि मर्माण्यथचसन्धयः ॥ शिराश्चस्नायवश्चापि धमन्यःकण्डरास्तथा । रन्ध्राणिभूरिस्रोतांसि जालैःकूर्चाश्चरज्जवः ॥ सेविन्यश्चाथसंघाताः सीमन्ताश्चतथात्वचः । लोमानिलोमकूपाश्च देहएतन्मयोमतः ॥

अर्थ—अब दोषों को कहेंगे पश्चात् धातु, तत्पश्चात् आहार की गति और आहार का परिणाम कहेंगे । पीछे आर्त्तव, धातुओं के मल, उपधातु, आशय, कला, मर्मसंधि, शिरा, स्नायु, धमनी, कंडरा, जिस में अत्यंत छिद्र हैं ऐसैं रंध्र, कूर्चा ( डाढी मूछ ) रज्जू, चार मोटी शिरा जिन को सेवनी कहते हैं । हड्डी, केश, त्वचा, रोम, रोमकूप, इन सबका वर्णन यथाक्रम करा जायगा, क्योंकि यह देह एतन्मय है । अर्थात् यह देह इन्हीं पूर्वोक्त पदार्थों सैं बना है । बहुत सैं पदार्थ

\* जो कारण कार्य में मिला हुआ होय उस को समवायिकारण जानना, जैसे वस्त्र के कारण तंतु हैं वे वस्त्र में मिले हुए हैं इसी सैं वे तंतु वस्त्र के समवायि कारण हैं । इसी प्रकार दोष धातु मलादिक मिल कर देह उत्पन्न हुआ है । अतएव दोष धातु आदि देह-के समवायि कारण है ।

तो इसी चतुर्थ अध्याय में कहेंगे और बाकी अन्य अन्य अध्यायों में वर्णन करे जावेंगे ।

शार्ङ्गधरेतु ।

कलाःसप्ताशयाः सप्त धातवःसप्ततन्मलाः । सप्तोपधातवः  
सप्तत्वचःसप्तप्रकीर्तिताः ॥ त्रयोदोषानवशतं स्नायूनां  
संध्यस्तथा । दशाधिकंचद्विशतमस्थनाञ्चत्रिशतंमतम् ॥  
सप्तोत्तरंमर्मशतं शिराःसप्तशतंतथा । चतुर्विंशतिराख्या  
ता धमन्योरसवाहिकाः ॥ मांसपेश्यःसमाख्याता नृणां  
पञ्चशतंबुधैः । स्त्रीणांचविंशत्यधिकाः कण्डराश्चैवषोड  
श ॥ नृदेहेदशरन्ध्राणि नारीदेहेत्रयोदश । एतत्समा  
सतःप्रोक्तं विस्तरेणाऽधुनोच्यते ॥

अर्थ—सात कला, सात आशय, सात धातु, सात धातुओं के मल, सात उपधातु, सात त्वचा, तीन दोष, नौसै नाडी, तथा दोसै दश सन्धि, तीन सौ हड्डी, एक सौ सात मर्म, सात सौ छोटी शिरा अर्थात् नस, चोवीस रस के रहने वाली धमनी नाडी, मांसपेशी ५०० स्त्रियों के मांसपेशी पुरुष सैं बीस अधिक हैं। सोलह कण्डरा, पुरुष के देह में बडे छिद्र दश हैं और स्त्रियों के १३ हैं। यह संक्षेप सैं शारीरक कहा है। अब इसीको विस्तारपूर्वक कहते हैं। सर्व देह त्वचा सैं आच्छादित है इसी सैं सुश्रुत में प्रथम त्वचा का वर्णन है इसी सैं त्वचा का वर्णन करते हैं।

सप्तत्वचा ।

तस्यखल्वेवंप्रवृत्तस्यशुक्रशोणितस्याभिपच्यमा  
नस्यक्षीरस्येवसान्तानिकाःसप्तत्वचोभवन्ति ॥

अर्थ—इसप्रकार भूतात्मा के योग करके पचन होनेवाला शुक्र शोणितोंके विकार से सात त्वचा उत्पन्न होतीहैं जैसे दूधके औटाने से मलाई उत्पन्न होती है ऐसे देहमें त्वचा प्रगट होती है ।

ग्रंथान्तरेच ।

त्वचायमाखिलःकायः संवृतोविश्वकर्मणा । बाह्योपद्रव  
संघाताद्रक्षितःसाधुतिष्ठति ॥ स्तरद्वयवतीयंत्वक् तद्वा  
ह्यश्वर्मकथ्यते । स्तरौनाप्रोच्यतेःस्तस्त्वग भूमिःस्पशै

न्द्रियस्यसा ॥ उपर्युपरिविस्तीर्णस्तरसप्तकसंहतेः ।  
 एषात्वगखिलाजाता कैश्चिदितिचमन्यते ॥ तोयानिला  
 दिसंकर्षः स्वेदस्यचविनिर्गमः । दैहिकस्योष्मणोरक्षा  
 त्वचासंपाद्यतेध्रुवम् ॥

अर्थ—विश्वकर्मा ( परमात्मा ) करके इस त्वचाके द्वारा यह संपूर्ण देह ढकी हुई है । और देहके बाहर होने वाले उपद्रवसमूहों से रक्षा करती हैं । इस त्वचा के दो पुरत हैं । बाहरके पुरत को चर्म ( चाम ) कहते हैं । और भीतर की त्वचा के पुरतको अंतस्त्वक् अर्थात् भीतर की त्वचा कहते हैं । ये त्वचा स्पर्शेन्द्रियका आधार है । कोई कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि एकके ऊपर दूसरी इस प्रकार सातपूर्त मिलकर यह त्वचा बनी हुई है । इस त्वचा से यह प्रयोजन है कि, त्वचा द्वारा जल पवन आदिका शोषण ( सूखना ), पसीनों का निकलना, तथा दैहिक ऊष्मा की रक्षा संपादन होती है ।

त्वचाकेभेद कहते हैं ।

तासांप्रथमावभासिनीनामयासर्ववर्णानवभासय  
 तिपंचविधांछायांप्रकाशयति ॥

अर्थ—सात त्वचाओं में पहली त्वचा का नाम अवभासिनी कहते हैं । यह भ्राजक अग्निके योग करके गौर कृष्ण आदि सर्व वर्ण प्रतीत करे हैं, और पंचमहाभूतों की करी हुई जो पांच प्रकारकी छाया और प्रभा इन दोनोंको प्रकाशित करे हैं ।

शिष्य—छाया और प्रभा में क्या भेद है ।

गुरु—आसन्नालक्ष्यतेछाया प्रभादूरात्प्रकाशते ।

अर्थ—छाया पास से मालूम होती है और प्रभा दूरसे ही प्रकाशित होती है यह दोनों में भेद हैं ।

अवभासिनीत्वचाकाप्रमाणआदि ।

सात्रीहेरष्टादशभागप्रमाणासिध्मकण्टकाधिष्ठाना ।

अर्थ—सर्व त्वचाओं के प्रमाण विषय में यव ( जौ ) के विस्तार के वीस भाग कल्पना करे इन में अवभासिनी त्वचा का प्रमाण अठारह भाग हैं । और यह अवभासिनी त्वचा सिध्म ( विभूती ) तथा कंटक आदि चर्म रोगों के उत्पन्न होने की जगह है ।

द्वितीयत्वचा ।

द्वितीयालोहितानामषोडशभागप्रमाणातिलकाल  
कन्यच्छव्यङ्गाधिष्ठाना

अर्थ—दूसरी त्वचा लोहिता नामक है, इस त्वचाका प्रमाण यव ( जौं ) का सोलह भाग है । यह तिल, न्यच्छ और व्यंगरोग ( ये क्षुद्र रोगों में लिखे हैं ) इनके उत्पत्ति होनेकी जगह है ।

तृतीयत्वचा ।

तृतीयाश्वेताद्वादशभागप्रमाणाचर्मदलाजगल्लिका  
मशकाधिष्ठाना ।

अर्थ—तीसरी त्वचा का नाम श्वेता है । इसका प्रमाण यवके बारह भाग हैं । यह चर्मदलकुष्ठ, तथा अजगल्लिका और मस्सा, इन के होनेकी जगह है ।

चतुर्थत्वचा ।

चतुर्थीताम्रा अष्टभागप्रमाणाकिलासकुष्ठाधिष्ठाना ।

अर्थ—चौथी त्वचा का नाम ताम्रा है । उस का प्रमाण जवका आठ भाग हैं यह किलास कुष्ठ होनेका स्थान है ।

पंचमत्वचा ।

पञ्चमीवेदनीनामपञ्चभागप्रमाणाकुष्ठविसर्पाधिष्ठाना ।

अर्थ—पांचवीं त्वचा का नाम वेदनी है, उस का प्रमाण पांच भाग, तथा कुष्ठ, विसर्प, आदि चर्म रोगों की जन्मभूमि है ।

षष्ठत्वचा ।

षष्ठीलोहिताव्रीहिप्रमाणाग्रन्थ्यपच्यर्बुदश्लीपदगल-  
गंडाधिष्ठाना ।

अर्थ—छटवीं त्वचा लोहिता नामक है । उस का प्रमाण एक जव है, यह गांठ, अपची, अर्बुद रोग, श्लीपद, गलगंड और गंडमाला इन रोगों की उत्पत्तिका स्थान है ।

सप्तमत्वचा ।

सप्तमीमांसधराव्रीहद्वयप्रमाणाभगन्दरविद्ध्यशोधिष्ठाना ।

अर्थ—सातवीं त्वचा मांसधरा है । उस का प्रमाण दो जव है, यह भगंदर, विद्रधि, और बवासीर, आदि रोगों के उत्पन्न होने की जगह है । इस प्रकार सात त्वचाओं के नाम और प्रमाणादिक कहे हैं । परंतु यह प्रमाण मांसल देश अर्थात् जिस जगे अधिक मांस हो उस जगे जानना ( जैसे उदर, ऊरु, जंघा, आदि की त्वचा हैं ) किंतु ललाट ऊँगली इत्यादि सूक्ष्म देशों में यह त्वचा का प्रमाण न जानना क्यों कि आगे लिखते हैं ।

यथा ।

स्थूलअवयवोंकीत्वचाकाप्रमाण ।

उदरेव्रीहिमुखेनांगुष्ठोदरप्रमाणमवगाढंविध्येदिति ।

अर्थ—उदर में अंगुष्ठोदर प्रमाण एक सैं एक त्वचा लिपट रही है, इसी सैं पेट में एक अंगुष्ठोदर प्रमाण छेदे एसैं कहा है । तात्पर्य यह है कि, सात त्वचा मिलकर अंगुष्ठोदर प्रमाण हैं । ( अंगुष्ठोदर कहिये छः यव और एक का विसवां भाग  $६\frac{१}{२}$  को कहते हैं ) इस प्रकार सात त्वचाओं का वर्णन कर, अब सात कलाओं का वर्णन करते हैं, क्यों कि त्वचा के भीतर कलाओं का स्थान हैं ।

कलाकास्थान ।

कलाःखल्वपिसप्तधात्वाशयांतरमर्यादाः

अर्थ—कला भी सात हैं ( कला को भाषा में झिल्ली कहते हैं ) वे धातु और आशयों की मर्यादा अर्थात् सीमा है । इस जगे धातु शब्द कर के रक्त मांसादि और कफ, पित्त, मल इत्यादि धातुओं के अवस्थानप्रदेश के मध्य में सीमा के समान है ।

कलाकाज्ञानप्रत्यक्षनहींहोताइसीसैंदृष्टांतकरकेकहतेहैं ।

यथाहिसारःकाष्ठेषुच्छिद्यमानेषुदृश्यते ।

तथाहिधातुर्मासेषुच्छिद्यमानेषुदृश्यते ॥

अर्थ—जैसे वृक्षों की लकड़ी का सार छाल सैं आच्छादित होने के कारण नहीं दीखे, परंतु उस लकड़ी के छेदन करने सैं प्रत्यक्षही दीखता है उसी प्रकार धातु मांसादिकों के छेदन करने सैं दीखे हैं ।

कलाअदृश्यहै इसविषयमेंप्रमाण ।

स्नायुभिश्चपरिच्छन्नान्सततांश्चजरायुणा ।

श्लेष्मणावेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तुतान्विदुः ॥

अर्थ—कला भाग विशेष स्नायुओं से आच्छादित और जरायु कहिये गर्भवेष्टन-सदृश पदार्थ है उस को कलावेष्टक कहते हैं। उस से उत्तम प्रकार करके व्याप्त तथा कफ से वेष्टित हैं। इसी से दीखती नहीं हैं, कला का स्वरूपविशेष वृद्धवा-ग्भट में लिखा है।

प्रथमकला ।

तासांप्रथमामांसधरायस्यांमांसेशिरास्नायु-  
धमनीस्रोतसांप्रतानानिभवन्ति ।

अर्थ—सात कलाओं में प्रथम मांसधरा नाम कला है। जिस कला के आधार करके रहने वाले मांस में शिरा, स्नायु, धमनी, स्रोतसू [ छिद्र ] इत्यादि फैले हुए हैं।

मांसमेंशिरारहनेकादृष्टान्त ।

यथाविसमृणालानि विवर्द्धन्तेसमंततः ।

भूमौपङ्कोदकस्थानि तथामांसेशिरादयः ॥

अर्थ—जैसे पृथ्वी की कीच तथा जल इन में होने वाले कमल की जड़, तंतु और पत्ते इत्यादि चारों तरफ फैले हुए होते हैं उसी प्रकार कलाश्रित मांस में शिरा आदि फैली हुई हैं।

शिष्य—रस से रुधिर, रुधिर से मांस होता है, ऐसा आप कह चुके हो, फिर प्रथम रक्तधरा कला कहनी उचित थी फिर आपने मांसधरा कला क्यों कही ?

गुरु—रस से रुधिर और रुधिर से मांस यह क्रम पोषण का है, धारण का नहीं है। इसी से लिखा कि जिस कला के आधार करके रहने वाले मांसमें शिरा आदि फैली हुई है।

द्वितीयकला ।

द्वितीयारक्तधरामांसस्याभ्यन्तरतस्तस्यांशोणितंवि-  
शेषतश्चशिरायकृत्प्रीहाश्चभवन्ति ।

अर्थ—दूसरी कला रक्तधरा है। यह मांस के भीतर है उस में रुधिर और विशेष करके शिरा, यकृत और प्रीह ये होते हैं।

\* यस्तुघात्वाश्यान्तरेपुक्केदोऽप्रतिष्ठते सयथामूष्मभिः विपक्वः स्नायुश्लेष्मजरायुच्छन्नःका-  
ष्ठइवसारोधातुरसशेषोऽल्पत्वात्कलासंज्ञ इति ।

रक्तादिरहनेकेविषयमेदृष्टान्त ।

वृक्षाद्यथाभिप्रहितात्क्षीरिणःक्षीरमास्रवेत् ।

मांसादेवंक्षतात्क्षिप्रं शोणितंसंप्रासिच्यते ॥

अर्थ—जैसे दूधवाले वृक्षों की ढाली पत्ता आदि टूटने से दूध बहने लगे हैं, उसी प्रकार मांस में घाव होने से शीघ्र रुधिर निकलने लगता है ।

तृतीयकला ।

तृतीयामेदोधरा मेदोहिसर्वभूतानामुदरस्थोण्वस्थिषुच ।

अर्थ—तीसरी कला का नाम मेदोधरा है । मेद ( चरबी ) सर्व प्राणियों के उदर में और बारीक हड्डीओं में रहे हैं, और बड़ी हड्डीओंमें मज्जा रहती है ।

इसविषयमेंप्रमाण ।

स्थूलास्थिषुविशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरेस्थिता ।

अस्थ्यन्तरेषुसर्वेषु सरक्तोमेदुच्यते ॥

अर्थ—बड़ी हड्डीयों के भीतर बहुधाकर्के मज्जा रहे हैं और इतर सर्व हड्डीयों में रक्त सहवर्तमान मेदा रहता है, उसी प्रकार वसा है।मेदोमज्जानुकारी उपधातुवसा कौन सी है इस लिये कहते हैं ।

वसाकास्वरूपकहते हैं ।

शुद्धमांसस्ययःस्नेहः सावसापरिकीर्तिता ।

तप्यमानस्यवास्नेहो मेदसांसावसामता ॥

अर्थ—शुद्ध मांस का अथवा तपायमान होकर मेदा से निकला घृत तेल इनके समान पदार्थ उस को वसा कहते हैं ।

चतुर्थकला ।

चतुर्थीश्लेष्मधरासर्वसन्धिषुप्राणभृतांभवति ।

अर्थ—चौथी कला का नाम श्लेष्मधरा है । यह सर्व प्राणियों की सन्धी में रहकर कफ को धारण करती है, इस कफ करके सन्धियों का चलना हलना निर्विक्रता से होता है ।

सन्धिचलनविषयमें दृष्टान्त ।

स्नेहाभ्यक्तेयथैवाक्षे चक्रंसाधुप्रवर्तते ।

सन्धयः साधुवर्तन्ते संश्लिष्टाःश्लेष्मणातथा ॥

अर्थ-रथ के धुरा और छिद्र में तथा चाक की भोगली में, घृत तेल आदि चिकनाई लगाने से जैसा पैया और चाक का फिरना निर्विघ्नता से होता है। उसी प्रकार संधी कफलिप्त होने से निर्विघ्नता से फिरती है। ऐसा जानना।

पांचवीं कला ।

पञ्चमीपुरीषधरानामयान्तःकोष्ठेमलमभिविभजति  
पक्वाशयस्था ।

अर्थ-पांचवीं कला का नाम पुरीषधरा है। यह पक्वाशय में स्थित हो कोष्ठ में रहने वाले मल का तथा मूत्रका विभाग करे हैं।

कोष्ठोंकोकहते हैं।

स्थानान्यामाग्निपक्वानांमूत्रस्यरुधिरस्यच ।  
हृदुन्दुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठइत्यभिधीयते ॥

अर्थ-आमाशय, तथा अग्न्याशय, तथा पक्वाशय, तथा मूत्रस्थान, तथा यकृत और प्लीहा तथा हृदय और गुदा तथा गुदा में मल के लानेवाले मोटे आंतडे तथा फेफड़ा इन को कोष्ठ ऐसा कहते हैं।

पांचवींकलाकोकोष्ठाश्रितत्वस्पर्ष्टकहते हैं।

यकृतसमंतात्कोष्ठंच तथान्त्राणिसमाश्रिता ।  
उंदुकस्थंविभजते मलंमलधराकला ॥

अर्थ-मलधरा पांचवीं कला यह यकृत, प्लीहा, हृदय, फुफ्फुस, तथा आंतडे, इन सब के अवयवों में व्यापक हो रहकर उंदुकस्थ मल का विभाग करे हैं। कोष्ठ की मर्यादा ऊर्ध्वप्रदेश में हृदयपर्यंत तथा अधोभाग में गुदापर्यंत इन का आश्रय करके रहति है। उंदुक को लोक में पोदलक कहते हैं। परंतु चरक में पुरीषांत्र करके उंदुक कहा हैं।

छटवीं कला ।

षष्ठीपित्तधरानाम चतुर्विधमन्नपानमुपयुक्त-  
मामाशयात्प्रच्युतंपक्वाशयोपस्थितंधारयति ।

अर्थ-छटवीं कला का नाम पित्तधरा है। यह भोजन करे हुए चतुर्विध अन्न पानी इन को आमाशयद्वारा पक्वाशय में पित्तस्थान के प्रति प्राप्त हुए उन को पक होने के उपरांत धारण करे हैं।

उक्तश्लोककोस्पष्टकहते हैं ।

असितंखादितंपीतं लीढंकोष्ठगतंनृणाम् ।

तज्जीर्यतियथाकालं शोषितंपित्ततेजसा ॥

अर्थ—[ असित ] कहिये विशेष दंत व्यापार के विना भक्षण करा हुआ तथा [ खादित ] कहिये दांतों से तोडकर खाया जाय जैसे चना आदि, तथा [ पीत ] जो पिया जाय जैसे दुग्धादि और [ लीढ ] कहिये जो चाटा जावे जैसे सोंठ अवलेह, आदि ये चारों प्रकार के अन्न मनुष्य के कोष्ठ में पहुँचने के उपरांत पित्त-के तेज करके शोषित हो मंद, मध्य, तेज, ऐसी त्रिविध अग्नि के विषे उचित काल तथा मात्रा लघु, गुरु, इन के विषय में उचित काल के व्यतीत न होने से पचता है । अर्थात् आमाशय और कफाशय से भ्रष्ट हो पकाशय में उपस्थित अर्थात् पित्तस्थान में प्राप्त हुए अन्न को पाक करने के अर्थ धारण करती है इसी से इस को पित्तधरा कला कहते हैं ।

इसविषयमेंसंग्रहकाप्रमाण है ।

षष्ठीपित्तधरानाम याकलापरिकीर्तिता ।

पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणीपरिकीर्तिता ॥

अर्थ—छटवीं पित्तधरा कला पकाशय तथा आमाशय के मध्य में अग्नि के अधिष्ठानरूप करके रहती हुई, पूर्वोक्त चतुर्विध अन्न को पित्तके तेज करके पक करती है । इसी से इस छटवीं कला को ग्रहणी कहते हैं ।

सातवींकला ।

सप्तमीशुक्रधरानामसर्वप्राणिनांसर्वशरीरव्यापिनी ।

अर्थ—सातवीं कला का नाम शुक्रधरा है । यह कला सर्व प्राणियों के सर्व देह में रहनेवाले शुक्रको धारण करे हैं ।

शुक्रसर्वाङ्गव्यापकहोनेमेंदृष्टान्त ।

यथापयसिसर्पिस्तु गूढश्चेक्षौरसोयथा ।

शरीरेषुतथाशुक्रं नृणांविद्याद्भिषग्वरः ॥

अर्थ—जैसे दूधके सर्व परमाणुओं में घृत, तथा इसके सब अवयवों में रस, गुप्तरूप होकर रहता है । उसी प्रकार शरीर में शुक्र घातु रहती है ।

शुक्रकागमनमार्गकहते हैं ।

द्व्यंगुलेदक्षिणेपार्श्वे बस्तिद्वारस्यचाप्यधः ।

मूत्रस्रोतःपथाच्छुक्रं पुरुषस्यप्रवर्तते ॥

अर्थ—मूत्राशय द्वार के अधोभाग में दहनी तरफ दो अंगुल पर जो मूत्रवाहिनी नाडी है, उस मार्ग के समीप से पुरुष का वीर्य प्रवृत्त होता है । इस विषय में प्रमाण कहते हैं ।

तदुक्तंवृद्धवाग्भटे ।

सप्तमीशुक्रधराद्व्यंगुलेदक्षिणेपार्श्वेबस्तिद्वारस्यचाधो-

मूत्रमार्गमाश्रितासकलशरीरव्यापिनीशुक्रंप्रवर्तयति ।

अर्थ—सातवीं शुक्रधरा कला बस्तिद्वार के अधोभाग में दो अंगुल पर दक्षिण बाजू में, मूत्रमार्गका आश्रय करके सर्व शरीर में व्याप्तहो शुक्रको प्रवृत्त करतीहै । यह वृद्धवाग्भट में लिखा है ।

वीर्यक्षरणकहते हैं ।

कृत्स्नदेहाश्रितंशुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा ।

स्त्रीषुव्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥

अर्थ—जिस पुरुष का चित्त क्रोधादिक करके रहित, तथा स्त्री के साथ मैथुनादि शरीरायास ( परिश्रम ) करे उस पुरुष के सर्व देहमें व्याप्तहोकर रहनेवाला शुक्र सुख से प्रवृत्त होता है ।

गर्भवतीकेआर्त्तवकानिषेधकहते हैं ।

गृहीतगर्भाणामार्त्तववहानांस्रोतसांवर्त्मान्यवरुध्य-

न्तेगर्भेणतस्माद्गृहीतगर्भाणामार्त्तवंनदृश्यते ।

अर्थ—जब स्त्री गर्भवती होती है तदनन्तर आर्त्तव वहनेवाली नाडियों के मुख गर्भ से रुक जाते हैं, इसीलिए उन गर्भवती स्त्रियों के आर्त्तव नहीं दीखे है ।

स्तनदुग्धोत्पत्ति ।

ततस्तदधःप्रतिहतमूर्ध्वमागतमपरांचापचीयमानमपरे  
त्यभिधीयते शेषंचोर्ध्वान्तरमागतंपयोधरावभिप्रतिपद्य-  
ते तस्माद्गर्भिण्यःपीनोन्नतपयोधराभवन्ति ।

अर्थ—गर्भ धारण के पश्चात्, वह आर्तव अधोभाग में जाने से रुककर ऊपरके भागमें जाय संचित होकर आवर रूप होता है और शेषभाग ऊपर स्तनों में प्राप्त होता है इसी से गर्भवतीके स्तन पुष्ट और उन्नत ( ऊँचे ) होते हैं ।

अथगुहः ।

शरीरं त्रिगुहंप्रोक्तं करोटिहृदयोदरैः । करोटौ मस्तकस्येहो  
वक्षस्युण्डुकफुफ्फुसौ ॥ हृत्कोष्ठश्चोदरे सन्ति यकृत्पित्ता  
मधामनी । क्लोमस्कन्धोधामनीकः क्षुद्रांत्रंस्थूलमंत्रक  
म् ॥ प्लीहावृक्कद्रयं मूत्रनाडीवस्तिर्गुदंतथा । मत्तःशृ-  
णुतसर्वेषामुक्तानां गुणकर्मणि ॥

अर्थ—इस मनुष्य देह में करोटि, वक्षस्थल और उदर ये तीन गह्वर ( गुफा ) के सदृश स्थान हैं । इसी कारण इस देह को त्रिगुह कहते हैं । इन में ऊर्ध्व गुहा अर्थात् करोटी ( मस्तक की हड्डी ) में मस्तिष्क, अर्थात् घृत के सदृश पदार्थ है । इसी के घटने से मस्तकपीडा आदि अनेक रोग होते हैं । और मध्य गुहा अर्थात् वक्षस्थल में उंडुक, फुफ्फुस, और हृत्कोष्ठ है उसी प्रकार नीचे की गुहा अर्थात् उदर में यकृत, पित्ताशय, आमाशय, क्लोम, धमनी, स्कंध, छोटी आंतडी, बड़े आंतडे, प्लीहा, वृक्कद्रय, मूत्रनाडी, वस्ति और गुदा ( बड़े आंतडों के नीचे का भाग ) है । इन में प्रत्येक के गुण और कर्म क्रमसे वर्णन करते हैं उन को सुनो ।

मध्यगुहा ।

ब्रवीम्यूर्ध्वगुहांपश्चादिदानां मध्यमामया । सकोष्ठावर्ण्यतेवत्सा  
निशामयततत्त्वतः ॥ उरोऽस्थिपर्शुकोपास्थि पर्शुका अभितः  
स्थिताः । पार्श्वयोपर्शुकाः सन्ति पश्चात्पृष्ठकशेरुकाः ॥  
पर्शुकाद्योर्ध्वपट्टुश्च शिरस्यस्याभिवर्तते । आस्तेऽधस्ता  
त्तथावक्षस्थलपेशीचवक्षसः ॥

अर्थ—ऊर्ध्व गुहा का वर्णन स्नायु के वर्णन में करेंगे । अब मध्य गुहा का अर्थात् कोष्ठ सहित वक्षस्थल का वर्णन करा जायगा उस को श्रवण करो । इस गुहा के सन्मुख भाग में उरोस्थि ( छाती की हड्डी ) है, पर्शुकोपास्थि ( पांशुओं के समीप रहने वाली छोटी हड्डी ) है, पर्शुका गण ( पांशुओं का समूह ) दोनों पसवाड़े, पीछे के अर्थात् पीठ की तरफ पृष्ठकशेरुका संपूर्ण है । ऊपर के भाग में प्रथम पर्शुका, तथा ऊर्ध्व पट्टु ( वक्षस्थल के ऊपर ढका हुआ वस्त्रवत् पदार्थ विशेष ) उसी प्रकार नीचे के भाग में वक्षस्थल पेशी जाननी ।

गर्भेगुहायाएतस्या हृत्कोष्ठोण्डुकफुफ्फुसाः ।  
सन्त्यमीषांत्रयाणाञ्च ब्रवीमिगुणकर्मणी ॥

अर्थ—इसी मध्य गुहा में हृत्कोष्ठ, उंडुक और फुफ्फुस हैं, इन तीनों के गुण तथा कर्म क्रम से हम कहते हैं ।

हृत्कोष्ठः ( हृदय. )

उरोमध्यगतःकोष्ठो लवनीफलवर्तुलः । रक्ताधारश्चतु-  
र्गर्भ आवरण्यासमावृतः ॥ तिर्यक्स्थोधमनीभूमिः फु-  
फ्फुसद्वयशीर्षकः । स्फीत्याकुञ्चनशीलोऽसौ हृत्कोष्ठइ-  
तिकीर्तितः ॥ ऊर्द्धगर्भद्वयंतस्य निम्नतश्चापितद्वयम् ।  
ऊर्द्धस्थेदक्षिणेगर्भे शिरासङ्गमजेशिरे ॥ अर्पयतोमहत्यौ  
द्वे रक्तगुणविवर्जितम् । अधःस्थाद्रामगर्भाच्च धमनीमूल-  
मुत्थितम् ॥ सर्वेष्वपिचगर्भेषु रक्तक्रमसमागतम् । दो-  
षहीनगुणैर्युक्तं जन्तुंजीवयतेगुणैः ॥ अनिशंस्फायतेको-  
ष्ठः प्रकृत्यासंकुचत्यपि । आभूमिस्पर्शनाद्यावन्मृत्यु  
सर्वस्यदेहिनः ॥ तदाकुञ्चनतोरक्तं महताखलुरंहसा ।  
प्रविशेद्धमनीमूलं ततोभ्रमतिविग्रहम् ॥ स्फायनाकुञ्च-  
नेतस्य विरमेतांक्षणंयदि । सहसैवभवेन्मृत्युर्नास्तिकोऽ-  
प्यत्रसंशयः ॥

अर्थ—हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय वक्षस्थल के मध्य स्थान में तिरछा होकर रहता है । इस हृत्कोष्ठ की आकृति हरफारेवडीफलके सदृश है तथा एक प्रकार की आवरणी ( ढकने के पदार्थ ) से आच्छादित है। इसके ऊपर दो शिरवाली फुफ्फुस हैं (अर्थात् एक फुफ्फुस वामांस और एक दक्षिणांस के भेद से दो भेद हैं, यह हृत्कोष्ठ शुद्ध रुधिर का आधार है । इसी जगे से धमनी नाडी उत्पन्न है अर्थात् इसी से धमनी नाडी लगी हुई है, इस जगे चार प्रकार के गर्भ प्रकोष्ठ हैं दो ऊपर की तरफ, और दो नीचे की तरफ, प्रथम लिख आए हैं। ये जितनी शिरा हैं सब मिल कर दो बड़ी शिरा रूप परिणाम को प्राप्त हुई हैं। ये दोनों शिरा ऊपर स्थित दक्षिण हृद्गर्भ से मिली हुई हैं, ये दोनों शिरा शरीर के दुष्ट रुधिर को शुद्ध करती है, अधःस्थ वाम गर्भ से मूल धमनी उत्पन्न हुई है, दूषित रुधिर इन गर्भचतुष्टयों में प्राप्त होने से शुद्ध हो कर

देहको आत्मगुण देकर जीव को जीवाता है । यह हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय स्वभाव सेही एक वार खिलता है और एक वार संकुचित अर्थात् मूँदता है । जीव के गर्भ से निकल पृथ्वी के स्पर्श करतेही जबतक मृत्यु होती है तबतक बराबर हृदय-के खुलने मूँदने की क्रिया निरंतर होती रहती है । हृत्पिंड के खुलते ही उस जगे रहने वाला रुधिर अति वेग से उस हृत्पिंड में प्रवेश कर तदनंतर धमनी समूह-के मार्ग में प्रवेश हो सर्व देह में विचरे है ! यदि एक क्षणमात्र भी हृदय का खुलना मूँदना बंद हो जावे तो उसी समय यह मनुष्य मर जावे इस में कुछ सन्देह नहीं है ।

फुफ्फुस ( फेंफडा. )

फुफ्फुसस्तुद्विधाभिन्नौ वामदक्षिणभेदतः । पेड्यांवक्षस्थ-  
लस्थायां समासन्नोऽनुशीर्षकः ॥ अधोविशालो बहुभिः  
कोषैरिवमधुक्रमः । दुष्टशोणितसंशुद्धिकोषोऽयंपरिकी-  
र्तितः ॥ तरुणास्थिमयीनाडी जिह्वामूलत्प्रधाविता ।  
अधःशाखाद्वयवती फुफ्फुसद्वयमागताः ॥ ततःशाखाद्व-  
यात्तस्माद्बह्व्यःशाखाविनिःसृताः । कोषेषुफुफ्फुसस्थेषु  
सुसूक्ष्माःसमुपस्थिताः ॥ नासामुखसमाकृष्टः पवनःश्वा-  
सकर्मणा । श्वासनाज्यातयासर्वास्तान्कोषान्प्राविश-  
त्यसौ ॥ महाशिराभ्यांहृत्कोष्ठं संप्राप्तंदुष्टशोणितम् ।  
नाडीविशेषोनियतं तदानयतिफुफ्फुसम् ॥ श्वासाकृष्टो  
ऽनिलस्तत्र समर्प्यात्मगुणंततः । निर्दोषंशोणितंकुर्या-  
त्सुखोष्णंचसुलोहितम् ॥ तद्रक्तंहृदयंभूयः प्रविष्टंधम-  
नीगणैः । निरन्तरंमहारंहो देहान्तर्देहिनांभ्रमेत् ॥

अर्थ—फुफ्फुस अर्थात् फेंफडा दो विभागों में विभक्त है, एक वाम फुफ्फुस और दूसरी दक्षिण फुफ्फुस, यह वक्षस्थलस्थ पेशीके ऊपर स्थित है, इस के ऊपर का भाग छोटा है और नीचे का भाग विशाल है, अर्थात् बड़ा है । जैसा मधुक्रम अर्थात् मोहार की मक्खी का कोष होता है, उसीप्रकार इस का अ-संख्य कोष है । यह फुफ्फुस दुष्ट रुधिर के शोधन करने का कोष्ठ है । जिह्वा मूल के नीचे से उपास्थिमयी एक प्रकार की नाडी नीचे को मुख जिस का ऐसी क्रम से गमन करती हुई अधोभाग में दो शाखा के बीच विभक्त होकर दोनों

फुफ्फुस पर्यंत चली गई है, और इन दोनों शाखाओं में से बहुतसी छोटी छोटी शाखा प्रशाखा निकल कर फुफ्फुस के प्रत्येक कोष में विद्यमान हैं । नासिका और मुख द्वारा भीतर को खींची हुई बाहर की पवन श्वास नाडियों में प्रवेश करके प्रत्येक कोष में प्राप्त होती है । पूर्व लिख आए हैं कि, ये जितनी शिरा हैं, वो मिलकर दो शिराओं में परिणाम को प्राप्त हो दक्षिण हृद्भ्रम में मिली हुई हैं । इन दोनों शिराओं के द्वारा प्राप्त हुआ दुष्ट रुधिर हृत्कोष्ठ में प्राप्त होकर पश्चात् अन्य नाडियों के द्वारा फुफ्फुस में प्राप्त होता है । तहां यह रुधिर श्वास करके भीतर लीनी हुई पवन द्वारा विशुद्ध और सुखोष्ण तथा लोहित वर्ण होकर हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय में फिर प्राप्त होता है । फिर इस हृत्कोष्ठ में से धमनी नाडियों के मार्ग हो कर अतिप्रबल वेग से सर्व देह में विचरे हैं । पांचवे नम्बर का चित्र देखो ।

श्वासाकृष्टोऽनिलोऽस्त्राय समर्प्यात्मगुणाञ्छुभान् । अशुभां  
श्वासमादाय फुफ्फुसादथनिःसरेत् ॥ असौश्वासक्रियासाच  
कालेनयावतायदि । वारान्प्रवर्ततेनाड्याः स्पंदसंख्याच  
याभवेत् ॥ इत्याद्यानिखिलाभावाः नाडीज्ञानेपुरामया ।  
वर्ण्यतेशृणुतेदानीं हेतुवाचांप्रवर्तने ॥

अर्थ—श्वासद्वारा लीनी हुई पवन फुफ्फुस में जायकर उस जगे उस रुधिर को अपने उत्तमगुण देकर और उस रुधिर के दुष्ट गुण लेकर फुफ्फुस में से निकलती है । इसी पवनके भीतर बाहर जाने आने को श्वासक्रिया कहते हैं । यह श्वासक्रिया जितने काल में जितनी बार होवे उतने काल में उतनी बार नाडीका फडकना होता है । ( जितनी देर में मनुष्य एक श्वास लेता है उतने समय में नाडी ४ बार फडकती ऐसा जानना ) इत्यादि संपूर्ण नाडी की स्पंदन (फडकने की संख्याआदि भावों को आगे नाडीज्ञानमें हम वर्णन करेंगे । अब बोलने की प्रवृत्तिके हेतु को वर्णन करते हैं उसको सुनों ।

वाणीकेप्रवर्तनकाहेतु ।

ऊर्ध्वांशःश्वासानाड्याहि वाग्यंत्रमितिकीर्तितः । तरुणा-  
स्थिधरारज्जू पेशीस्त्रायुकलागणैः ॥ निर्मितंकण्ठदेशेतत्पुर-  
स्तादभिवर्तते । तस्योपास्थिविशेषस्य द्वेपक्षेपक्षिपक्षवत् ॥  
कण्ठोत्सेधंजनयतो मिलित्वाचपरस्परम् । लक्ष्यतेचक्षुषैवैष  
क्षीणानांचविशेषतः ॥ तस्मादुपरिवाग्यंत्रा दुपजिह्वाभिव-

तते । अन्नग्रहणकालेया श्वासरन्ध्रंप्रगोपयेत् ॥ जनयन्वाक्य-  
 यंत्रस्य हेतूनांसमवायिनाम् । जन्तुभेदानवस्थायाः स्वराञ्ज-  
 नयतेबहून् ॥ सिंहशार्दूलखद्गानां रवैर्मूर्च्छंतिजन्तवः । वि-  
 हङ्गगीतध्वनिभिः कोनमुह्यतिजन्तुषु ॥ द्रवीकरोतिहृदयं  
 बालानां सुखदः स्वरः । क्रन्दनध्वनिभिः कस्य नगलत्यश्रुनेत्र-  
 तः ॥ सुखैरमृतनिःस्यन्दैः कोमलैः कामिनीश्वरैः । सुरासुरन-  
 रेष्वेषु कोनमुह्यतिसर्वथा ॥ जिह्वोष्ठतालुदन्ताद्यैरन्योन्याऽ  
 भिहतैः स्वरः । कण्ठोद्भिन्नः कादिवर्णभेदेनाथप्रकाशते ॥  
 ननरादितरेषांतद्यंत्राङ्गानांसुसंस्थितिः । निर्मितिश्वेदशीतेऽ  
 तो नवदेरन्यथानरः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त श्वास नाडी के ऊर्ध्व भागको वाग्यंत्र ऐसे कहते हैं । वह वाग्यंत्र सरुणास्थि, धमनी, रज्जू, पेशी, स्नायु और कला आदि समूह से बना हुआ है । यह कंठदेशके अग्र भागमें विद्यमान है । उस एक प्रकार के उपास्थिविशेष वाग्यंत्र के पखेरू के तुल्य दो पंख (पर) हैं । वे दोनों पंख परस्पर मिलकर कंठोत्सेध ( अर्थात् कंठ से उत्तम स्वर को ) प्रगट करे हैं ये दोनों पंख नेत्रद्वारा विशेष करके क्षीण देहवाले मनुष्यों के प्रत्यक्ष दीखते हैं । इस वाग्यंत्र के ऊपर उपजिह्वा ( छोटी जीभ ) है, यह उपजिह्वा जिस समय मनुष्य भोजन करता है उस समय श्वास आने जाने के छिद्र को आच्छादन ( ढक ) लेती है । कि जिससे भोजन कराहुआ अन्न जल आदि श्वास के छिद्र में जाने न पावे ( दैव वश कदाचित् भोजन करते समय अन्न का ग्रास अथवा पानी आदि वस्तु इस श्वास छिद्रमें गिर जावे तो अत्यंत खांसी प्रगट होकर उसको उस श्वासछिद्रमेंसे निकालकर बाहर पटकदेती है । इसीको धांस गई कहते हैं ) यह वाग्यंत्र के समवायि कारण अर्थात् उपादान कारण समस्त जीवों के अवस्था विशेष करके अनेक प्रकारके स्वरांको प्रगट करेहैजैसे सिंह, शार्दूल, गेंडे आदिके घोर शब्द से सब प्राणी मूर्च्छित होते हैं । विहङ्ग ( कोयल, तोता, मैना, कबूतर, आदि ) के बोलने सुनने को कौन मोहित नहीं होवे? छोटे छोटे बालकों का सुखदायक मिष्ट स्वर हृदयको द्रवीभूत करता है, दुस्विया जीवों का क्रन्दन अर्थात् रुदन सुनकर किस मनुष्य के नेत्रों से आंसू नहीं गिरते ? कंठ कामिनी ( नवयौवना स्त्रियों ) के सुखदायक अमृततुल्य कोमल स्वरको सुनकर ब्रह्मांड के देवता, दैत्य, मनुष्यों में कौन मोहित न होगा ? कंठ-

नाडी के सदृश जीभ, होंठ, तालू और दांत आदि वाग्यंत्रके अङ्ग कहतेहैं । कंठसे निकलाहुआ स्वर इन पूर्वोक्त जीभ होठ और वाग्यंत्रादि द्वारा परस्पर ताडित होकर क, च. ट. त. प. इत्यादि वर्ण स्वरूप करके प्रकाशित होते हैं । मनुष्यों के वाग्यंत्र की जैसी स्थिति और जैसी बनावट है एसी इतर प्राणी ( सिंह, व्याघ्र, कुत्ता, बिल्ली, वानर आदि ) के नहीं हैं, इसी सैं जैसा मनुष्य बोलता है ऐसैं कुत्ता बिल्ली आदि जीव नहीं बोल सक्ते ।

उण्डुकः ।

शोणितकिट्टप्रभवउण्डुकः ।

अर्थ—रुधिर के मैल सैं उण्डुक प्रगट होता है ।

कुप्फुसस्यावरण्यौद्रे ऊर्णुतस्तद्व्यंतयोः ।

उण्डुकःशैशवेमध्ये मध्यास्तेमहतांनिहि ॥

अर्थ—दो आवरनी द्वारा कुप्फुसद्वय ढकी हुई है । इन के मध्य भाग में बालक-अवस्था में उण्डुक होता है । अवस्था के बढने सैं बाल्य अवस्थाके साथही यह उण्डुक नष्ट हो जाता है । गांठ के सदृश एक प्रकार का पदार्थ होता है उस को उण्डुक बोलते हैं ।

अधोगुहा ।

गुहानांतिसृणाज्ञेया गुहाधःस्थामहत्तमा । बहुयंत्राण्ड  
वदृत्ता स्थानंपाकादिकर्मणाम् ॥ ऊर्ध्वक्षस्थलस्थास्याः  
पेशीवस्तिरधःस्थिता । पार्श्वयोश्चाभितःपेश्यः पश्चा-  
त्पेश्यःकशेरुकाः ॥

अर्थ—तीनों गुहान में नीचे की गुहा अर्थात् उदर गद्दर बहुत बडा है । इस में अनेक शारीर यंत्र हैं, यह अंडा के सदृश गोलाकार है, इस में अन्न परिपाकादि क्रियाओं का स्थान है, इस गुहा के ऊपर वक्षस्थलस्थ पेशी है । और अधोभाग में बस्तिदेश है, पार्श्व ( पसली ) दोनों तथा सन्मुख उदर की पेशी है, इसी प्रकार पीछे की तरफ औदरीय पेशी और कशेरुका गण हैं ।

आंतडेआदिकीउत्पत्ति ।

अंसृजःश्लेष्मणश्चापि यःप्रसादपरोमतः । तंपच्यमानं  
पित्तेन वातश्चाप्यनुधावति ॥ ततोत्राणिप्रजायन्ते गुदं

वस्तिश्चदेहिनः । उदरेपच्यमानानामध्मानाद्ब्रुकमसार  
वत् ॥ कफशोणितमांसानां सारान्मज्जाप्रजायते ।

अर्थ—रुधिर, तथा कफ, इन का उत्कृष्ट पदार्थ पित्त की ऊष्मा कर्के पचन होने से इन में वायु आनकर मिलता है, तिन सबों के मिलने से आंतडी, वस्ति और गुदा ये होते हैं । तथा उदर में देह की अग्नि के योग से पच्यमान कफ, रुधिर, मांस के सार से मज्जा होती है । जैसे सुवर्ण को तपाते तपाते उस से सार पदार्थ अर्थात् शुद्ध सुवर्ण प्रगट होता है. गयी आचार्य उदर के स्थान में हृदय ऐसा पाठ कहता है अर्थात् हृदय में देह की अग्नि से पच्यमान कफ रुधिर ।

ऊष्मोत्पत्ति ।

यथार्थमूष्मणायुक्तो वायुःस्रोतांसिदारयेत् ।

अर्थ—पित्त से मिली हुई वायु, जैसा जिस का कार्य है तैसा रस, रुधिर, वीर्य, शब्द इत्यादिकों को वहने वाली नाडियों को करे हैं ।

पेद्युत्पत्ति ।

अनुप्रविश्यपिशितं पेशीर्विभजतेतथा ॥

अर्थ—वायु मांस में प्रवेश होकर पेशियों का विभाग करे है । मांस के चौकोन तथा कोई लंबे ऐसी मांस की वोटियों को पेशी कहते हैं । इन की संख्या आगे पंचम अध्याय में कहेंगे ।

पेशियोंकास्वरूप ।

पेद्यस्तुलोहिताः सौत्राः सर्वकायसमाश्रिताः । ताःसङ्को  
चनशीलाश्च समन्तात्कालयावृताः । स्पन्दनानिप्रवर्ति  
न्यो द्विधाताःपरिकीर्त्तिताः । स्वेच्छाधीनश्चकाश्चित्स्युः  
स्वाधीनाःकाश्चिदेवहि ॥ सक्थिबाह्वादिषुज्ञेया इच्छा  
धीनास्तथापरा । अंत्रोपस्थादिषुप्रोक्तामुनिभिर्देहवैतृभिः ॥  
धमन्यस्थिशिरास्नायु सन्धयश्चशरीरिणाम् । पेशीभिःसंवृताः  
सर्वे भवन्तिबलिनोह्यतः ॥

अर्थ—सब पेशी लाल रंग की बहुत बारीक बारीक सूतसदृश पदार्थ से बनी हुई सर्व देह में व्याप्त हैं और सर्वत्र झिल्ली से आच्छादित हैं, ये पेशी संकोचन-शील अर्थात् इन्हों का सिमटने का स्वभाव है, और स्पंदन ( फडकना आदि )

क्रियाओं की प्रवर्तक हैं । पेशी दो प्रकार की हैं, एक स्वाधीन, दूसरी इच्छाधीन, तिन में सक्रिय, भुजा, आदिमें इच्छाधीन पेशी हैं और आंतडी तथा उपस्थ ( भग, लिंग, ) प्रभृति आदि में स्वाधीन पेशी हैं । मनुष्यों के हड्डी, धमनी, शिरा, स्नायु, ( पट्टे ) और सन्धि ये सब पेशियों के द्वारा बँधी हुई होने से सुरक्षित और बलवान् रहती हैं । पेशी का दूसरा नाम मांस है बकरी आदि के मांस में प्रत्यक्ष दीखती है नेत्रों में जो लाल लाल डोरे हैं वे भी पेशी जाननी ।

स्नायुकीउत्पत्ति ।

मेदसःस्नेहमादाय शिरास्नायुत्वमाप्नुयात् ।

शिराणांतुमृदुःपाकः स्नायूनांतुततःखरः ॥

अर्थ—वायु, मेदा के स्नेह को लेकर पूर्वोक्त ऊष्मा से पक करके शिरा ( रग ) और स्नायु ( पट्टे ) इन को उत्पन्न करे हैं ।

शिष्य—आपने कहा कि मेदा के स्नेह से शिरा और स्नायु प्रगट होती हैं सो मुझ को सन्देह है कि एक प्रकार के पदार्थ से दो प्रकार के पदार्थ कैसे बनते हैं ।

गुरु—इसका यह कारण है कि शिराओं के स्नेह का थोडा नम्र पाक होता है और स्नायुओं के स्नेह का अधिक पाक होता है । इसी से दो प्रकार के पदार्थ बनते हैं, जैसे ईख के रस से राब और कंद होता है ।

आशयोत्पत्ति ।

आशयाभ्यासयोगेन करोत्याशयसम्भवम् ।

अर्थ—वायु अपनी स्थिती करके अपने सहवास करके आशयों को करे हैं ।

सताशयानाह ।

उरोक्ताशयस्तस्मादधश्चेष्माशयःस्मृतः । आमा-

शयस्तुतदधस्तल्लिङ्गचरकोवदत् ॥

अर्थ—उरःस्थल रक्ताशय कहाता है, उस उर ( छाती ) के नीचे कफाशय है, उसके नीचे आमाशय है, उस के लक्षण चरक में इस प्रकार लिखे हैं ।

नाभिस्तनान्तरंजन्तोरहुरामाशयंबुधा इति ।

अर्थ—मनुष्य के नाभि और स्तनों के बीच में, पंडितजन आमाशय कहते हैं ।

आमाशयादधःपक्वाशयादूर्ध्वतुयाकला । ग्रहणानामि-  
कासैव कथितःपावकाशयः ॥ ऊर्ध्वमग्नाशयोनाभेर्मध्य-

भागेव्यवस्थितः । तस्योपरितिलज्ञेयं तदधःपवनाशयः ॥  
पक्वाशयस्तुतदधः सएवतुमलाशयः ॥ तदधःकथियोव-  
स्तिःसहिमूत्राशयोमतः ॥

अर्थ—आमाशय के नीचे और पक्वाशय के ऊपर जो कला ( झिल्ली ) है, उस-  
को ग्रहणी कहते हैं उसी को पावकाशय भी कहते हैं । नाभि के ऊपर मध्यभाग  
में अग्र्याशय है उस के ऊपर तिल है, उसके नीचे पवनाशय है, उस के नीचे  
पक्वाशय है, उसी को मलाशय कहते हैं, उसके नीचे बस्ति है, उसी को मूत्राशय  
कहते हैं ।

आशयोंकाअनुक्रमवाग्भटमेंइसप्रकारलिखाहै ।

रक्तस्याधःक्रमात्परे । कफाऽऽमपित्तवातानामाशयाम-  
लमूत्रयोः । पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयान्नयः ॥  
धरागर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयांतरे । स्तनौप्रवृद्धौतावे-  
व बुधैःस्तन्याशयोमतः ॥

अर्थ—रक्ताशय के नीचे क्रम सैं, कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, पवनाशय,  
मलाशय और मूत्राशय ये आशय हैं । पुरुष की अपेक्षा स्त्री के तीन आशय अ-  
धिक हैं । पित्ताशय और पक्वाशय के बीच के स्थान को गर्भाशय कहते हैं । तथा  
दोनों स्तन जब बढ़ते हैं तब उन्हीं दोनों स्तनों को पंडित स्तन्याशय मानते हैं ।

रक्तमेदप्रसादाद्बृक्कौ ।

अर्थ—रुधिर और मेदा इन के सार सैं वृक्क ( कुक्षिगोलक ) होते हैं । कूख में  
दो मांस के पिंड होते हैं उनको वृक्क कहते हैं ।

वृषणोत्पत्ति ।

मांसासृक्कफमेदःप्रसादाद्वृषणौ ।

अर्थ—मांस, रुधिर, कफ और मेद इन के सार सैं वायू के योग करके पूर्व-  
बत् वृषण ( अण्डकोश ) उत्पन्न होते हैं ।

अथाण्डद्वयम् ।

रेतःसूत्रसमाबद्धं कोषगर्भेऽवतिष्ठति । रेतःस्राव्यण्डयुगुलं  
ग्रंथ्याभंचाण्डवर्तुलं ॥ भूणस्योदरवेष्टिन्याः पश्चादुदरग

ह्वरे । तिष्ठेत्प्राक्स्पर्शनाद्भ्रुमेः कोषमायातितद्वयं ॥ दक्षि-  
णस्मात्स्थूलतरं वामाण्डनिम्नलम्बिच । वामं रैतसिकंसूत्रं  
यतोदीर्घतरंपरात् ॥ उपर्य्युपरिसंस्थानस्तरद्वंद्वेननि-  
र्मितः । कोषोरैतसिकेसूत्रे धत्तेऽण्डयुगुलंतथा ॥ तयोरा-  
भ्यन्तरोरक्तः संकोचनगुणान्वितः । स्तरोबाह्यश्चर्ममयो-  
लोमभिःकतिभिश्चन ॥ स्तरस्तिरष्करण्यान्तरेकयाभि-  
द्यतेद्विधा । तद्गर्भद्वयमध्यास्ते पुंसोऽण्डयुगुलंननु ॥  
उदराद्वेतसःसूत्रे पश्चाद्भागमथाण्डयोः । नियतं समनु-  
प्राप्ते धरास्त्राय्वादिनिर्मिते ॥

अर्थ—दोनों अण्ड रेत सूत्र से बंधे हुए कोष के भीतर रहते हैं, इन दोनों का स्वरूप अंडे के सदृश गोलाकार है । इन्हीं दोनों अण्डकोषों में से वीर्य गिरता है, गर्भावस्था के समय अर्थात् जिस समय बालक गर्भ में होता है इस समय इस बालक के उदर गव्हर में उदरवेष्टनी के पिछाडी रहते हैं । बालक के पृथ्वी स्पर्श करने के पूर्व दोनों अण्ड दोनों कोषों में उतर आते हैं । बाँया अण्ड दहने अण्ड की अपेक्षा कुछ बड़ा और उसी प्रकार वाम रेत सूत्रके अधिक लम्बे होने से कुछ अधिक नीचे को लटकता है । इन का आवरण कर्त्ता कोष एक के ऊपर दूसरा इस प्रकार के दो परतों से बना हुआ है । इन कोषों में दो रेत सूत्रों के नीचे ये दोनों अण्ड लटके हुए हैं । इन दोनों परतों में भीतर का परत सङ्कोचन गुणवाला है, अर्थात् ( अंडों को खींचने से अथवा सरदी पाने से तथा स्वतः स्वभाव सुकड जाता है, कभी कभी वारंवार सुकडते हैं और फिर लटक कर लम्बे हो जाते हैं ) तथा भीतर के परत का लाल रङ्ग है । बाहर का परत चर्म मय है । यह परत बहुत से रोमांचों से व्याप्त है, भीतर का परत एक तिरष्करनी ( अर्थात् पर्दा के सदृश एक प्रकार के पदार्थ से ) दो विभागों में विभक्त होकर दो गर्भों में परिणत है । इन्हीं दोनों गर्भों में दो अण्ड रहते हैं । रेतसूत्र दोनों उदर से लेकर दोनों अंडों के पिछाडी के भाग पर्यंत विस्तारित हैं । ये रेतसूत्र धमनी और स्नायुप्रभृति द्वारा निर्मित है\* प्रसङ्गवश सूत्रयंत्र और पुंजननेन्द्रियों को कहते हैं ।

अथ सूत्रयन्त्राणि ।

वृक्कौद्रौमूत्रनाड्यौद्वेतथावस्तिश्चमूत्रणे । ज्ञेयानीमानियं  
त्राणि रंध्रमौषस्थिकंतथा ॥ शिम्बीबीजनिभौवृक्कौ यकृतप्ली-

ह्रोरधःस्थितौ । पश्चादुदरवेष्टिन्याः कटिदेशगतौमतौ ॥  
 अत्रस्रोतांसिभूयांसि धमन्यस्रादयःसदा । गृह्णन्तिदो-  
 षसहितास्तेनास्रंशुद्धतां व्रजेत् ॥ बुक्कफुप्फुसचर्मा  
 णि धमनीशोणितादयः । सदोषाःसम्यगादाय शोधयन्त्य  
 निशंहितत् ॥ बुक्काङ्गनिःसृतेनाड्यौ बस्तिपृष्ठमधोगते ।  
 बुक्कसंचितमूत्राणि बस्तिमानयतःशनैः ॥

अर्थ—दो बुक्क, दो मूत्रनाडी, बस्ति तथा उपस्थ ( लिंग तथा योनि ) रन्ध्र  
 ये सब मूत्रयंत्र के नाम हैं । दोनों बुक्कों का आकार, सैमके बीजकासा है । ये  
 दोनों कटिदेश ( कमर ) में यकृत तथा ग्रीहा के नीचे उदरवेष्टनी के पिछाड़ी र-  
 हते हैं । बुक्कस्थ स्रोतो नाडीसमूह जो है सो धमनी नाडियों रहनेवाले रुधिर में  
 जो दूषित जलका भाग है उसको खींचकर रुधिर को निर्दोष करती है । वही रुधिर  
 का दूषित जलभाग जो है सो मूत्रनामसे विख्यात होता है ।

बुक्कः फुप्फुस तथा चर्म ये रुधिर का दूषित भाग ग्रहण करके सदैव उस रुधिर  
 को विशुद्ध करते रहते हैं । दोनों बुक्क के अंग से दो नाडी निकल कर बस्ती के  
 पृष्ठभागके नीचे जायकर मिल गई है । ये दोनों नाडी बुक्कस्थ मूत्रकोष में सं-  
 चित हुए मूत्रको धीरे धीरे उस मूत्रको बस्ती में मिलाती है ।

अथबस्तिः ।

कलापेश्यात्मिकाबस्तिर्गुदस्यपुरतःस्थिता । पश्चादौप-  
 स्थिकास्थनोश्चमूत्राशयइतिस्मृतः ॥ बस्तेरूर्ध्वमुखंर-  
 ज्ज्वा नाभौसंबद्धमेकया । अपराभिर्निबद्धाच बस्तिःस्था  
 नेऽवतिष्ठते ॥ स्त्रीषुयोनिर्धराचापि गुदस्यपुरतःस्थिता ।  
 तयोस्तुपुरतोबस्तिर्विशेषोऽयमुदीरितः ॥ बस्तेःसंकुचि  
 तंनिम्नं मुखंरन्ध्रेणसंयुतं । औपस्थिकेनमूत्रस्य बाहिर्निःस  
 रणायहि ॥ आशयेसंचितंमूत्रमतिमात्रंयदाभवेत् । तदौ  
 पस्थिकरन्ध्रेण रंहसानिःसरेद्बहिः ॥

अर्थ—बस्ति ( अर्थात् मूत्राशय ) पेशी और कला इन दोनों से बनी है । वह  
 गुदाके सन्मुख तथा उपस्थिका की हड्डी के पिछाड़ी स्थिति है । यह मांसमयी एक  
 छिद्र द्वारा नाभी से बंधी हुई है । उसीप्रकार और भी कितने छिद्रों से सम्बद्ध

हो अपने ठिकाने पर स्थित हैं । स्त्रियों की देह में गुदाके सन्मुख योनि तथा ज-  
रायु विद्यमान हैं । इन दोनों के सन्मुख बस्ति विद्यमान है, बस्ती का नीचे को  
मुख सुकड़ा हुआ और उस जगे उपस्थिक (लिंग योनि) के छिद्र करके संयुक्त है ।  
जब मूत्राशय में प्रमाण से अधिक मूत्र इकट्ठा संचय होजाता है, तब उपस्थके छिद्र  
करके अतिवेगसे बाहर निकलता है ।

अथ जननेन्द्रियम् ।

जीवस्रोतसिहेतुर्यद्यदृतेतस्यसंहतिः । इन्द्रियंजनना  
ख्यंतदुपस्थश्चेतिकथ्यते ॥ उत्पत्तौजीवसंघस्य द्वारंना  
न्यद्धिविद्यते । बलाद्धिहीनेतत्सङ्गे जीवोत्पत्तिः खिलीभ  
वेत् ॥ यंत्रंविचित्रनिर्माणमहोधात्रावितर्किणा । ध्यात्वा  
ध्यात्वेवरहसि विहितंनिपुणेनतत् ॥ अहोयंत्रस्यशक्तिंतां  
कोवदेच्छक्तिमान्भुवि । सम्यग्जानातिविश्वात्मातत्स्र  
ष्टैवहितद्रुणं ॥ यस्यशक्त्याजगत्यस्मिन् पाशैरिववलीमु  
खाः । नृत्यन्तिजन्तवोनित्यमवशासुग्धमानसाः । नित्य  
मानंदसंतान उत्साहःकरुणाक्षमा । शांतिर्दाक्षिण्यमास्ति  
क्यं मैत्रीचेहविराजते ॥ तदिन्द्रियभवंजीवा नित्यंभुंजं  
तियत्सुखं । विचेतनाइवस्वर्ग्यं तस्यनास्त्युपमाभुवि ॥  
वनालयाश्चमुनयोभूपाःप्रासादवासिनः । कुटीरस्थादरि  
द्राश्चसर्वैतेनजिताध्रुवं ॥ पुमांसोनिखिलालोके यौवनस्थाः  
स्त्रियस्तथा । जन्तुष्वश्रान्तमवशाःकामयन्तेसुखंनुतत् ॥  
शान्तौतदिन्द्रियंहेतुर्विद्रोहेचमहत्यापि । महिमानमतस्त  
स्यकःस्याद्गमितुमीश्वरः ॥ जीवप्रवाहरक्षार्थंशांतिसंस्था  
पनायच । इदमेवंगुणंधात्रा विहितंविश्वकर्मणा ॥ शक्ति  
र्महीयसीयंचेन्नस्यादस्याबलीयसी । इयमानन्दानिलयोध  
न्वेवधरणीभवेत् ॥ आलोच्यभावंनिखिलंतदीयमुन्मीलि  
ताक्षाननुमूढजीवाः । अपास्यसंदेहमहोहिसत्तां शक्तिं तथेक्ष  
ध्वमर्चित्यशक्तेः ॥

अर्थ—ये इन्द्री जीवस्रोतोविषय अर्थात् जीवों के आनेका कारण है, उसी प्रकार इस जननेन्द्री के व्यतिरिक्त जीव का संहार जानना, अर्थात् विना जननेन्द्री के जीव किसी रीति से नहीं प्रगट हो सक्ता, इसी कारण इस को जननेन्द्री कहते हैं । जननेन्द्री का दूसरा नाम उपस्थ है, इस के विना जीव के उत्पन्न होने का दूसरा रास्ता नहीं है, यदि दोनों स्त्री पुरुष प्रतिज्ञापूर्वक संग करना छोड़ दें तो जीवोत्पत्ति का होना बन्द हो जावे; इस जननेन्द्री रूप यंत्र का निर्माण अति विचित्र है! यह विधाता ने अपूर्व कौशलतापूर्वक निर्माण करा है । इस के अङ्ग प्रत्यङ्ग समुदाय का परस्पर संबंध तथा विशेषकारित्व शक्ति अनिर्वचनीय है । इस यंत्र की इस शक्ति से ब्रह्मांडस्थ जीवगण अवश तथा मुग्ध मानस हो डोरी से बंध हुए ( बंदर ) की तरह निरंतर नाचते हैं । पृथ्वी में ऐसा कौन सामर्थ्यवाला है जो इस यंत्रशक्ति का वर्णन करे, इस के गुण तो वोही विश्वप्रकाशक सृष्टि का रचनेवाला जानता है । इसी के प्रभाव से, आनन्दप्रवाह, कर्मोत्साह, दया, क्षमा, शान्ति, चातुर्य, आस्तिक्य और मैत्री, पृथ्वीमंडल में नित्य विराजमान रहती है, जीवगण नित्य विचेतनसे होकर इस इन्द्री से उत्पन्न हुए स्वर्ग के सुख सदृश इस अपूर्व सुखको संभोग करते हैं । इस सुख की पृथ्वी में कोई उपमा नहीं है । वनवासी ऋषीश्वर महलों में रहनेवाले राजा महाराजा, और कुटी ( झोंपडी ) में रहने वाले दरिद्री मनुष्य ए सब इस विषय सुख से जीते गए हैं । यावन्मात्र मनुष्यों में यौवन अवस्था वाले पुरुष और यावन्मात्र नवयौवना स्त्री है, सब सुख की निरंतर आकांक्षा करे हैं येही इन्द्री अत्यंत शान्ति और अत्यंत द्रोहका कारण है । जीव प्रवाह की रक्षार्थ और शान्ति संस्थापनार्थ विश्व कर्त्ताने इस इन्द्री को ऐसी अद्भुत शक्ति दीनी है, यदि इस इन्द्री में ऐसी प्रबल तथा अलंघ्य शक्ति न होय तो यह आनंदधाम धरणी, थोड़े ही काल में मरुभूमि (जंगल) के सदृश हो जावे।

हे मूढ जीवगण जननेन्द्रिय संबंधी सर्व भाव को विचार कर चिरसंचित सन्देह को दूर कर और बोध रूप नेत्रों को खोल कर, अचिंत्य शक्ति संपन्न जगदीश्वर का सत्व और शक्ति को देखो ।

आधारकारभेदेन पौंसःस्त्रैणइतिद्विधा । विशिष्यतउप  
स्थःस चेतनावानिवस्थितः ॥ शिश्रोमेद्रोव्यङ्गलिङ्गेमेहनं  
शेफशेफसी । पुरुषेन्द्रियनामानि ध्वजोपस्थौचसाधनम् ॥  
स्त्रीन्द्रियस्यतुनामानि योन्युपस्थौभगोधरे । तत्वंवचम्य  
नयोःसम्यगुभयोरप्युपस्थयोः ॥

अर्थ—आधार और आकार भेद करके उपस्थ दो प्रकारकी है, पुरुषाधार पौंसन और स्त्री आधार स्त्रैण उपस्थ कहाती है । दोनों उपस्थ चेतनासंयुक्त के सदृश प्रतीत होती है । शिश्र, मेद्र, व्यंग, लिंग, मेहन, शोफ, शोफः ( सू ) ध्वज, उपस्थ, और साधन, ए पुंजननेन्द्रिय अर्थात् पुरुषकी उपस्थ इन्द्री के नाम है । और योनि, उपस्थ, भग और अधर, इतने स्त्री जननेन्द्री के नाम हैं । दोनों उपस्थों के कार्य साधन मुष्कादि ( पुरुषों के ) और डिंबकोष आदि ( स्त्री जाति के ) जननेन्द्रिय-पदवाच्य इन दोनों प्रकार की जननेन्द्रियों का स्वरूप क्रम सैं वर्णन करते हैं ।

अथपुंजननेन्द्रियाणि ।

मेद्रभूमि ।

यत्रोपस्थिसमायोगादस्थिनीमिलितेउभे । उपस्थिके  
अधस्तस्मात्पश्चाद्यास्तिगुदाशना ॥ दृढाग्रन्थिनि  
भापांडुः संवेष्ट्यवस्तिकंधराम् । मूत्रस्रोतोऽन्तरस्थश्च  
सामैद्रीभूमिरुच्यते ॥

अर्थ—जिस स्थान में औपस्थिक दोनों हड्डियों का उपस्थ संयोग परस्पर मिला हुआ है, उसी के नीचे और पश्चात् भाग में गुदा के ऊपर स्थित दृढ़, तथा पीले रङ्ग का ग्रन्थि ( गांठ ) सदृश पदार्थ को मेद्रभूमि कहते हैं । यह बस्ती की ग्रीवा को तथा भीतर के मूत्र छिद्रों को वेष्टन कर रही है ।

कलायिकाद्वयम् ।

मेद्रभूमिसमीपेद्रे कलायपरिमण्डले ।

आयुषोद्वासशीलेस्तो गुटिकेतेकलायिके ॥

अर्थ—मेद्रभूमि के निकट मटर के समान गोल दो गुटिका ( गोली ) के सदृश पदार्थ हैं, इन दोनों का जैसे आयुष्य का घटना होता है उसी के साथ क्रम सैं इन का भी हास होता है, इन को कलायिका कहते हैं ।

मेद्रः ।

मेद्रभूमिसमारभ्य दीर्घःशृंगारसाधनः । उपस्थारन्थोःस  
काशाच्च मेद्रंसमभिवर्तते ॥ मूलादयमुपस्थारन्थोः कौ  
षिकेणचचर्मणा । संसक्तोवेष्टितश्चापि परंमूर्द्धनिकेवल  
म् ॥ आवृतोनचसंसक्तस्तस्मिन्नग्रीयचर्मणि । पश्चादा

कृष्टलिंगस्य मुंडं व्यक्तं प्रकाशते ॥ कदलीकुसुमाकारं लिङ्गमुण्डं सचेतनम् । ततः पश्चाल्लिंगसरिल्लिंगग्रीवाचसोच्यते ॥ तत्रश्रान्तरसः पूतिर्निःस्रवेत्क्षारधर्मवान् । ततश्चर्मसमासक्तं गात्रं लिङ्गस्य वर्तते ॥ ततो गुदसमीपे च लिङ्गमूलमवस्थितम् । वस्तितो मौत्रिकं स्रोतो लिङ्गपुण्डाद्बहिर्गतम् ॥ मेढ्रोऽहृष्टस्य पुंसः स्याच्छिथिलं स्तंभवर्तुलम् । जाते हर्षे स एव स्याद्वटस्त्रिभुजसन्निभः ॥

अर्थ—उपस्थ की दोनों हड्डियों के समीप मेढ्रभूमि से मेढ्र ( लिंग ) की उत्पत्ति है, अर्थात् इतनी लम्बाई को लिंग कहते हैं । यही संगम साधन इन्द्री है, यह लिंग, उपस्थ की दोनों हड्डियों के मूल भाग से लेकर ऊपर पर्यंत अण्डकोष के टकने वाले चर्म से मिला और लिपटा हुआ है । परंतु मुंडांशभाग जिस को कि, सुपारी कहते हैं, वह चर्म से टका हुआ है । किंतु उस चर्म में मिला हुआ नहीं है । इस लिंग के टकने वाले चर्म को पिछाड़ी खींचने से लिंग का मुख उघड कर दीखने लगे हैं । लिंग के मुख का अर्थात् सुपारीका आकार केला के फूल के सदृश और चैतन्य के समान है । लिंग की सुपारी के पिछाड़ी में लिंग सहित, अथवा लिंग की ग्रीवा ( नाड ) है । इसी जगह से बराबर एक प्रकार का दुर्गंधवाला खारी रस निकसता है । वही लिंगग्रीवा में चिपट जाता है तब उस को मनुष्य लिंग में अंडे पडगए ऐसा कहते हैं । और लिंग की ग्रीवा के पिछाड़ी के चिपटे हुए चर्म को लिंगगात्र ऐसा कहते हैं । तदनंतर गुदा के समीप भागको लिंगमूल कहते हैं । मूत्रस्रोत अर्थात् जिस में हो कर मूत्र आता है वह छिद्र बस्ती की ग्रीवा से लेकर लिंग के भीतर होकर लिंग के मस्तक के बाहर तक चला आया है, इसी छिद्रद्वारा संचित मूत्र बाहर को गिरता है । जबतक हर्ष नहीं होता तबतक लिंग सिथिल और स्तंभ के सदृश वर्तुलाकार पडा रहता है । और जहां हर्ष हुआ उसी समय लिंग खडा हो कर दृढ और त्रिभुजाकार हो जाता है । यद्यपि इस लिंग में कोई हड्डी नहीं है परंतु हर्ष के होने से लिंग की सर्व नाडी फूल जाती हैं, इसी से यह कठोर हो जाता है । इस को काम शास्त्र में मदनांकुश करके लिखा है । जैसे अंकुश के लगने से हाथी चैतन्य होता है, उसी प्रकार इस के लगने से कामदेव चैतन्य होता है । लिंग का प्रमाण तथा सामुद्रिक द्वारा शुभाशुभ फल आदि विशेष वार्ता निघंट में ( लिंग ) शब्द की व्याख्या में लिखेंगे सो देखलेना ।

बीजकोषद्वय ।

बस्तिमूलगुदान्तस्थौ बीजकोषौनृणांस्मृतौ । बीजंधार  
यतोगर्भजननेमुख्यकारणम् ॥ तद्वीजंतरलंस्त्यानं शुभ्रं  
गंधविशेषवत् । चेतनाण्डपरिव्याप्तं रेतःशुक्रंतदुच्यते ॥  
नाड्याशुक्रप्रवाहिन्या फलमागत्यवैततः । उपस्थिकेन  
रंध्रेण बहिर्निधुवनात्सरेत् ॥ आहारजःपरःसारःशुक्रं  
प्राणकरंपरम् । कारणंजीवनेचोक्तं तत्क्षयान्मरणंध्रुवम् ॥  
अतोरक्ष्यंप्रयत्नेन शुक्रंजीवनकांक्षिणा । नित्यंतत्संचये  
चापि यतितव्यंचसर्वथा ॥ रेतस्युपचितेऽत्यर्थं जायते  
रमणीस्पृहा । तदानिधुवनंकुय्यात्प्रिययानाविचारयन् ॥  
अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिःशिथिलतातनोः । यतःस्यान्न  
हितंतरमात्कामस्यातिविनिग्रहः ॥

अर्थ-बस्ति के मूल में और गुदा के मध्य में दो बीजकोष रहते हैं । ये दोनों गर्भोत्पत्ति के हेतुभूत बीज को धारण करते हैं, यह बीज घन, स्वच्छ, और विशेष गन्ध युक्त, एक प्रकार का तरल पदार्थ है । यह बहु चेतनावाले परमाणुओंसे व्याप्त है । बीज, रेत और शुक्र आदि इस के नाम विख्यात हैं। ये वीर्य, विषय के समय वीर्यवाहिनी नाडियों के द्वारा अण्डकोषों में आकर पीछे उस जगे से चलकर उपस्थिक छिद्र ( लिंग के छिद्र ) द्वारा निकलता है । यह शुक्र आहारजन्य प्रधान सार पदार्थ है, यही बल रक्षा, तथा जीवन धारण का कारण-भूत है, इस के अतिक्षीण होने से निश्चय मृत्यु होवे, इसीसे जीवन की इच्छा-वाले मनुष्य को नित्य सर्व यत्नों से इस वीर्य के संचय और रक्षा में तत्पर होना चाहिये जब वीर्य का अधिक संचय होता है तब इस पुरुष को अत्यंत स्त्री के संग की इच्छा होती है, जब अत्यंत स्त्रीसंग की इच्छा होय उस समय यथा शास्त्र के विचार पूर्वक परमसुंदर प्रियतमा स्त्री के साथ रतिकर्म में प्रवृत्त होना उचित है, यदि वीर्य वृद्धि में भी स्त्रीसंग न करे तो प्रमेह, मेदवृद्धि और देह में शिथिलता आदि अनेक रोग होते हैं इसी से काम प्रवृत्ती का अत्यंत रोकना हितकारक नहीं है । ६ छटे नम्बर का चित्र देखो ।

अथस्त्रीजननेन्द्रियाणि ।

भगमणिर्भगोष्टौच भगपक्षद्वयंतथा । भगलिगंचयो-

निश्च तथाद्वेचकलायिके ॥ जरायुडिम्बवाहिन्यो डि-  
म्बकोषौसडिम्बकौ । स्तनौचेतीन्द्रियगणो नारीणां  
कथितोबुधैः ।

अर्थ—स्त्रियों की जननेन्द्रिय कहते हैं । भगमणि, भगोष्ठद्वय, भगपक्षद्वय, भग-  
लिंग, योनि, कलायिकाद्वय, जरायु, दोनोंडिम्बवाहिनी, दोनोंडिम्बकोष, सर्वडिम्ब  
और दोनों स्तन इतनी स्त्रियों के जननेन्द्री होती है ।

भगमणिः ।

औपस्थिकाश्रोःपुरतस्त्वग्वसापरिनिर्मितः ।  
उच्चैःसुकोमलोवृत्तः स्त्रीणांभगमणिःस्मृतः ॥  
यदाबाल्यमतिक्रम्य तारुण्यंयान्तियोषितः ।  
तदुद्भवन्तिलोमानि समंतादस्यगात्रतः ॥

अर्थ—दोनों उपस्थि की हड्डियों के सम्मुख त्वचा और वसा द्वारा बने हुए  
ऊंचे और गोलाकार कोमल स्थान को भगमणि कहते हैं, स्त्री की बाल्य अवस्था  
व्यतीत होने पर और यौवन अवस्था के प्राप्त होते ही इस भगमणि के ऊपर चारों  
तरफ रोमांच उत्पन्न होते हैं ।

भगोष्ठद्वयम् ।

भगविवरसंवेष्टौ भगोष्ठौपीवरौमणेः । मूलाधाराग्रसीमा  
नं स्थितायावत्तुतद्वयम् ॥ पुंसांकोषद्वयमिव स्मृतंप्रकृ-  
तितोबुधैः ॥ बहिश्चर्ममयंचान्तःकलावद्यौवने पुनः ॥ लो-  
मभिर्व्रियतेस्नायु धराग्रन्थ्यादिसंयुतम् ।

अर्थ—भगरूप विवर ( गद्द ) के संवेष्टन करनेवाले स्थूल अङ्गद्वय को भगोष्ठ  
कहते हैं, ये भगमणिसे लेकर मूलाधारकी ( गुदा और उपस्थके मध्यवर्ती स्थान  
को मूलाधार कहते हैं ) आगे की सीमापर्यन्त विस्तारित हैं । दोनों भगोष्ठ पुरुषों  
के अण्डकोष के सदृश रूपवाले हैं । इनके बाहर का देश चर्मद्वारा तथा भीतरका  
भाग कलाद्वारा बना हुआ है, ये दोनों यौवन अवस्था में वालों के समूह से आ-  
च्छादित होते हैं, इनके भीतर फेलीहुई स्नायु धमनी और गांठ है ।

भगपक्षौ ।

पश्चाद्भगोष्ठयोरूर्ध्व कलावन्तौ सुकोमलौ ।  
लिङ्गमुभयतः पक्षौ किंचित्रिभ्रं समागतौ ॥

अर्थ—दोनों भगोष्ठों के भीतर ऊपरले भागमें कलासे बना, अत्यंत कोमल अंग द्रव्य को भगपक्ष कहते हैं । ए भगलिङ्गसे लेकर दोनों तरफके पार्श्वोंमें कुछ दूर नीचेतक विस्तृत हैं ।

भगलिङ्गम् ।

भगोष्ठयोरूर्ध्वसन्धेः प्रायेणद्वयंगुलादधः । चेतनं  
दीर्घदेहंचभगलिङ्गमितिस्मृतम् ॥ भगलिङ्गंतथा  
पुंसां मेद्रःप्रकृतितोमतम् ।

अर्थ—दोनों भगोष्ठों के ऊपरकी संधी के प्रायः करके दो अंगुल नीचे, लंबी आकृतिवाले चेतनाविशिष्ट अङ्ग विशेष को भगलिङ्ग ऐसे कहते हैं । इस भगलिङ्ग का आकार पुरुष के लिङ्ग सदृश होता है ।

सामिचन्द्रः ।

अधस्ताद्योनिरन्ध्रस्य तनुश्चन्द्रार्द्धसन्निभः ।  
कौमारेप्रायशःसामिचन्द्रो नारीषुदृश्यते ॥

अर्थ—योनि छिद्रके नीचे के भागमें अर्द्धचन्द्राकृति ( जैसा आधा चन्द्र होता है ) और पतला पर्दा के सदृश पदार्थ को सामिचन्द्र कहते हैं, यह सामिचन्द्र कुमारी अवस्थामें प्रायः दीखता है ।

कलायिकाद्वयम् ।

योनिरन्ध्रमुभयतः स्त्रीणांपुंवत्कलायिके ।

अर्थ—पुरुषों के जैसी दो कलायिका होती है उसी प्रकार की स्त्रियोंके योनिरन्ध्रके दोनों तरफ कलायिका होती है ।

योनिः ।

योनिःकलामयीनाडी बस्तिगर्भेव्यवस्थिता । गुदस्यपुर  
तःपश्चान्मूत्राधारस्यकोमला ॥ आवर्त्तनीभगोष्ठात्तु जरायुं  
समुपस्थिता । अधस्तान्मूत्ररन्ध्रस्य मुखंयोनेरवस्थितम् ॥

अर्थ—योनि एककलानिर्मित नाडी विशेषको कहते हैं । यह बस्तिगह्वर में गुदाके सन्मुख और मूत्राधारके पिछाड़ी है । तथा भगोष्ठसे लेकर जरायु पर्यंत विस्तृत है; यह अतीव कोमल है, और आवर्त्तमयी अर्थात् आंटेदार है । मूत्रछिद्रके नीचे योनिका मुख है ।

जरायुः ।

गुदमूत्राशयान्तःस्थो जरायुर्गर्भमंदिरम् । जरायुपार्श्वना  
ड्यौद्रेडिम्बनाड्यौप्रकीर्तिते ॥ डिम्बकोषद्वयाडिम्बं नय  
तोगर्भकारणम् । जरायुकोषंनारीणां जातर्तूनांस्वभावतः ॥

अर्थ-गुदा और मूत्राशय के बीचमें जरायु है । इसी स्थान में गर्भ रहता है तथा वृद्धि को प्राप्त होकर यथासमय पृथ्वी पर पड़ता है, जरायु के पार्श्व दो डिम्बनाड़ी रहती हैं । डिम्बकोषद्वयसे गर्भोत्पत्तिके हेतुभूत डिम्ब को वहन करके ये दोनों नाड़ी लाती हैं । रजोदर्शवती स्त्रियों के स्वभावेसेही जरायुकोष विद्यमान होता है ।

अथस्तनद्वयौ ।

स्तनौद्रौसंख्ययास्यातां स्त्रियांचपुरुषेतथा । तारुण्येतु  
स्त्रियांपीनौ भवेतांचातिमोहनौ ॥ पशुकायास्तृतीयाया  
यावत्षष्ठीमुरोऽस्थितः । आकक्षंचकृतस्थानावर्धवृत्तौ  
सुकोमलौ ॥ जातेमहत्तमौगर्भे स्यातांचापिपयस्विनौ ।  
लम्बमानौप्रसूताया वृद्धायाःशुष्यतश्चतौ ॥ स्तनयोरुभ  
योर्ज्ञेयो वामःकिंचिन्महतरः । चूचुकःस्तनवृन्तंस्या  
दुग्धनाडीभिरन्वितम् ॥

अर्थ-योनि और जरायु आदिके सदृश स्तनभी जननेन्द्रियों में गिने जाते हैं । स्त्री पुरुष दोनों के दो दो स्तन होते हैं, इन में पुरुषों के जैसे बाल्य अवस्था में होते हैं उसीप्रकार के रहते हैं, परन्तु स्त्रियों के यौवन ( जवानी ) अवस्था आनेपर पुष्ट और ऊंचे तथा देखने में मनके चुरानेवाले अतिसुन्दर होजाते हैं । ये तीसरी पांशूसे लेकर छठवीं पांशू पर्यंत, तथा छाती की हड्डीसे ले कक्ष ( बगल ) पर्यंत फैले हुए होते हैं । ये अर्द्ध वृत्ताकार और अति कोमल हैं । जब स्त्री गर्भवती होती है तब ये दोनों स्तन बड़े और दूधसे परिपूर्ण हो जाते हैं । प्रसूता ( जिसके बालक होचुकाहो ) ऐसी स्त्रीकेस्तन नीचे को लम्बे होकर लटक जाते हैं । और बुढ़्डी स्त्री के स्तन सूख जाते हैं । दहने स्तनकी अपेक्षा वाम स्तन कुछ बड़ा होता है । स्तनों के ऊपर की घुंटी को चूचुक और स्तनवृंत कहते हैं । ये स्तनवृंत अनेक दूधवाली नाडियों से व्याप्त होते हैं ।

मूलाधारः ।

पायूपस्थान्तरस्थोऽसौ मूलाधारः प्रकीर्तितः ।

हर्षोऽस्यापिरिरंमूनामन्याङ्गानां यथा भवेत् ॥

अर्थ—गुह्यद्वार और उपस्थ अर्थात् गुदा और भगलिंग के बीचवाले अंग को मूलाधार कहते हैं । रमण कर्त्ता मनुष्यों को जैसे और इन्द्री सुखदायक हैं उसी प्रकार यह हर्ष कर्त्ता है । सातवें नम्बरका चित्र देखो ।

हृदयोत्पत्ति ।

शोणितकफप्रसादजं हृदयं यदाश्रिताधमन्यः प्राणवहाः त  
स्याधोवामतः प्रीहाफुफ्फुसश्च दक्षिणतोयकृत्क्लोमच तत् हृद्  
यं विशेषेण चेतनास्थानमतस्तस्मिन् तमसावृते प्राणिनः स्वपंति

अर्थ—रुधिर और कफ इनके सार से हृदय बना है । जिस के आश्रय करके रहनेवाली धमनी नाडी प्राणों को बहती है । तथा हृदय के अधो भागमें वाई तरफ प्रीहा है । और दहनी तरफ फुफ्फुस है, तथा हृदय के दहनी तरफ कुछ नीचे को यकृत् और क्लोम ये हैं । यकृत् कलेजे को कहते हैं । और क्लोम तिलकालकको कहते हैं । ये प्यास लगने के स्थान हैं । और यह हृदय विशेष करके चेतना का स्थान है जब यह तमोगुण से व्याप्त होता है तब प्राणी सोते हैं । इसजगे हृदयके कहने से सर्व देह चेतना स्थान है ऐसा जानना, जैसे चरक में लिखा है ।

शरीरको चेतनास्थान कहते हैं ।

चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्च सेन्द्रियम् ।

केशलोमनखाग्रान्तमलद्रव्यगुणैर्विना ॥

अर्थ—इन्द्री सह मन और सर्व देह चेतना का स्थान है । परन्तु केश, लोम, और नखों के अग्रभाग अर्थात् छेद्यनक इत्यादि मलद्रव्यों के गुण विना सर्व देह चेतना का स्थान है ।

हृदयका स्वरूप ।

पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम् ।

जाग्रस्ततद्विकसति स्वपतश्च निमीलति ॥

अर्थ—हृदय कमल के समान अधोमुख है वह जागृत अवस्था में खुल जाता है और जब प्राणी सोते हैं तब मूंद जाता है ।

प्रसंगवशनिद्राकावर्णनकरते हैं ।

निद्रातुवैष्णवीमाया पाप्मानमुपदिश्यति ।

सास्वभावतएवसर्वप्राणिनोभिस्पृशति ॥

अर्थ—निद्रा विष्णु की माया है । उसका स्वभाव ऐसा है, कि यह सर्व प्राणी-मात्रों को स्पर्श करके शुभाशुभ कर्म का निरोध करती है । इसी से पापोंकाही उपदेश करे हैं । यद्यपि अन्य ग्रंथों में सात प्रकार की निद्रा कही है । तथापि तामसी, स्वाभाविकी और वैकारिकी, ऐसे तीनप्रकार की मुख्य निद्रा है उन्को कहते हैं ।

तामसीनिद्रा ।

यदासंज्ञावहानिस्रोतांसितमोभूयिष्ठंश्लेष्माणंप्रतिप  
द्यन्तेतदातामसीनिद्राभवतिअनवबोधनीसाप्रलये ।

अर्थ—जिसकाल में शरीर के चैतन्य वहने वाली नाडियों में तमोगुण प्रधान कफ जायकर उन नाडियों के मार्गको रोकलेता है । उसकाल में घोर निद्रा आती है उसमें ज्ञान नहीं रहता तथा यह प्रलय काल में मूर्च्छा के विषे होती है । यद्यपि सर्व निद्राओंका हेतु तमोगुण है । तथापि इसमें अधिक होता है । इससे इसको तामसी निद्रा कहते हैं ।

स्वाभाविकीनिद्रा ।

तमोभूयिष्ठानामहःसुनिशासुचभवति,  
रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं सत्वभूयिष्ठानामर्धरात्रे ।

अर्थ—निद्रा तमोगुणी पुरुषों को दिन रात और रजोगुणी पुरुषों को कभी रात में और कभी दिन में कभी सायंकाल मे कभी सूर्योदय, कभी तीनों सन्ध्या-में निद्रा आती है । और सतोगुणी पुरुषों को आधीरात्रि के समय अल्पसत्व होता है और तमोगुण अधिक होता है इसीसे अर्द्धरात्रि के समय निद्रा आती है ।

वैकारिकीनिद्रा ।

क्षीणश्लेष्मघातूनामनिलबहुलानामनःशरीरा  
भिघातवतांचनैवसावैकारिकीभवति ।

अर्थ—जो प्राणियों के शरीर को बल देने वाला कफ और सप्त घातु ए क्षीण होनेसे तथा शरीर में वायु प्रबल होने से, तथा मन और शरीर इन में किसी प्रकार की चोट लगने से उस मनुष्य को निद्रा नहीं आती है, कदाचित् थोड़ी आने से उस को वैकारिकी निद्रा जाननी ।

लंघन श्रमादिक करके शरीर में वायु बढती है और कफ क्षीण होता है, उस काल में निद्रा कैसे आती है ? उस को कहते हैं । उस काल में मन को अत्यंत ग्लानी होने से भूतात्मा की विषयों से निवृत्ति होने से प्राणी सोते हैं इस में प्रमाण है ।

तदुक्तंचरके ।

यदातुमनसिक्लान्ते कर्मात्माचश्रमान्वितः ।

विषयेभ्योनिवर्तन्ते तदास्वपितिमानवः ॥

अर्थ—जिस समय मन ग्लानि युक्त होता है, और कर्मात्मा ( कर्मपुरुष ) को श्रम होने से विषयों से निवृत्त होती है उस काल में मनुष्य सोता है ।

पूर्व गद्य करके कहे हुए अर्थ को मुखबोधार्थ फिर दो श्लोकोंसे कहते हैं ।

हृदयंचेतनास्थानमुक्तंसुश्रुतदेहिनाम् । तमोभिभूतेस्त  
स्मिस्तुनिद्राविशतिदेहिनाम् ॥ निद्राहेतुस्तमःसत्त्वबोध  
नेहेतुरुच्यते । स्वभावएववाहेतुर्गरीयान्परिकीर्तितः ॥

अर्थ—हृदय प्राणियों का चेतनास्थान है, वह तमोगुण करके व्याप्त होनेसे निद्रा आती है, निद्रा का कारण तमोगुण और जगने का कारण सतोगुण है, अथवा परमश्रेष्ठ स्वभावही दोनों अवस्थाओंका कारण कहा है ।

निद्रावस्थामेंस्वप्नदर्शनकैसेहोताहैसोकहतेहैं ।

पूर्वदेहानुभूतानां भूतात्मास्वपतःप्रभुः ।

रजोयुक्तेनमनसा गृह्णात्यर्थान्शुभाशुभान् ॥

अर्थ—भूतात्मा जो सोनेवाले के देह का नियंता क्षेत्रज्ञ वह पहले अनन्त जन्मों के अनुभव करे विषयों के सुखदुःखों को भोगासक्तिरूप मन करके ग्रहण करे हैं उसी को स्वप्न कहते हैं ।

इन्द्रियोंकेलयकरकेआत्मानिद्रितसादीखताहै ।

करणानांतुवैकल्ये तमसाभिप्रवर्धिते ।

अस्वपन्नपिभूतात्मा प्रसुप्तइवचोच्यते ॥

अर्थ—तमोगुणकी वृद्धि करके इन्द्री विकल होनेसे क्षेत्रज्ञ न सोता हुआ भी सोता हुआसा प्रतीत होता है ।

दिनकीनिद्राकाविधिनिषेधकहतेहैं ।

सर्वर्तुषुदिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्रग्रीष्मात् ।

अर्थ—ग्रीष्म ऋतु को त्याग कर अन्य ऋतुओंमें दिन का सोना वर्जित है ।

प्रतिषिद्धेष्वपिबालवृद्धस्त्रीकर्षितक्षतक्षीणनित्यमद्यपान  
वाहनाऽध्वकर्मपरिश्रान्तानामभुक्तवतामेदःस्वेदकफरक्तक्षी  
णानामजीर्णानांचमुहूर्त्तस्वापनमप्रतिषिद्धम् ॥

अर्थ—वर्जित ऋतु में भी बालक, वृद्ध और मैथुन करके क्षीण तथा उरःक्षत करके क्षीण तथा नित्य मद्यपान कर्त्ता तथा घोडा, उंट आदि वाहन पर चढ़ने करके थका हुआ तथा उपवास और जिस के मेद, पसीने, कफ रस, रुधिर, ए क्षीण होगए हों उसको तथा अजीर्णवाला इन सब को दिन में दो घडी निद्रा लेने का निषेध नहीं है, उसी प्रकार रात्रि में जगे हुए मनुष्य को जितने समय रात्रि जगा हो उस सैं अर्धकाल पर्यंत दिन में सोना हितकारी है ।

अतिनिद्राकेदोष ।

विकृतिर्हिदिवास्वापोनाम तत्रस्वपतामधर्मः  
सर्वदोषप्रकोपश्चकासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवां  
गमर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानिभवंति ॥

अर्थ—दिनमें सोने सैं विकृति होती है और अधर्म होता है तथा वात रक्तादि सर्व दोषोंका प्रकोप हो कर खांसी, श्वास, सरेकमां देह भारी, अंगोंका टूटना, अरुचि ज्वर, मंदाग्नि और दुर्बलता इत्यादि विकार होते हैं ।

तस्मान्नजागृयाद्रात्रौदिवास्वापंतुवर्जयेत् । ज्ञात्वादोषकरा  
वेतौ बुधःस्वापंमितंचरेत् ॥ अरोगःसुमनाह्येवं बलवर्णा  
न्वितोबुधः । नातिस्थूलकृशःश्रीमान्नरोजीवेत्समाःशतम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त अधर्म और विकार होते हैं इसी सैं रात्रिमें जागना और दिनमें निद्रा लेना त्याग देवे, पण्डितोंको ये दोनों दोष कारक ऐसैं जान कर निद्रा तथा जागरण परिमाणके करने चाहिये, इस प्रकार वर्त्ताव करनेवाले पुरुष रोगरहित जि-नका मन निर्दोष तथा बल करके और वर्ण करके युक्त तथा स्त्री रमणशक्ति युक्त, न अत्यंत मोटे न बहुत पतले ऐसैं होते हैं, तथा शरीरकी शोभा युक्त हो सौ १०० वर्ष पर्यंत जीते हैं ।

निद्रानाशकेहेतु ।

निद्रानाशोनिलात्पित्तान्मनस्तापात्क्षयादपि ।

संभवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैश्चशाम्यति ॥

अर्थ—वात, पित्त, क्षय तथा मनःसंताप चोट इत्यादि कारणों करके निद्राका नाश होता है । और वो निद्रानाश जिन कारणोंसे होता है, उसके विरुद्ध अभ्यंगादि उपचार करनेसे शान्ति होता है ।

उपचारोंकोकहतेहैं ।

निद्रानाशेभ्यंगयोगो मूर्ध्नितैलनिषेवणम् । गात्रस्योद्धर्त  
नंचैव हितसंवाहनानिच ॥ शालीगोधूमपिष्टान्नभक्षैरैक्ष  
वसंस्कृतैः । भोजनमधुरंस्निग्धं क्षीरमांसरसादिभिः ॥ र  
सैर्विलेशयानांच विष्कराणांतथैवच । द्राक्षासितेशुद्रव्या  
णामुपयोगोभवेत्त्रिंशे ॥ शयनाशनयानानि मनोज्ञानि  
मृदूनिच । निद्रानाशेचकुर्वीत तथान्यानपिबुद्धिमान् ॥

अर्थ—निद्रा नाश होने पर तेल का मालिस कर भले प्रकार गरमजल से स्नान करे तथा मस्तक में तेल डालना तथा शरीर में उवटना उत्तम रीत से कर अस्नान करें तथा अंगोंको धीरे धीरे मसलवावे तथा सांठी चांवल और खांड से बने हुए गोधूम मिष्टान्न का भोजन तथा दूध और मांस इत्यादि करके स्निग्ध मधुर ऐसे भोजन करें, बिले में रहनेवाले ससे, सेह आदि जानवर तथा मुरगा, तीतर आदि विष्कर (पक्षी) इनका मांस रसकरके तथा दाख, मिश्री और गंडे इन कारात्रि में सेवन कर के तथा शयन स्थान आसन और सवारी ए उत्तम नम्र मन को आल्हाद करने वाली और प्रावर्ण ( हिम नाशक कपडे ) आदि करके निद्रा नाश का उपशम अर्थात् शान्ति होती है ।

अतिनिद्राआनेकाउपाय ।

निद्रातियोगेवमनं हितंसंशोधनानिच ।

लंघनंरक्तमोक्षश्च मनोव्याकुलतापिच ॥

अर्थ—निद्रा का अति योग होने से वमन करना हित है, तथा वमन, विरेचन, स्वेदन इत्यादिकों करके शरीर का शोधन तथा लंघन और रुधिर का कटाना तथा मनको व्याकुलता इत्यादिक उपचार हितकारक होते हैं; यद्यपि संशोधन के क-

इने सैं ही वमन का बोध होगया तथापि पुनः वमन का ग्रहण करने से विशेषता द्योतन करी है ऐसा जानना ।

रात्रिमेंनिद्रावर्जितमनुष्य ।

कफमेदोविषार्त्तानां रात्रौजागरणंहितम् ।

अर्थ—कफ रोगी, मेद रोगी, और विष से व्याकुल पुरुषों को रात्रिमें जागरण करना हितकारक है ।

दिनमेंकौनसेमनुष्योंकोसोनाचाहिये ।

दिवास्वापश्चत्शूलहिक्काजीर्णातिसारिणाम् ॥

अर्थ—तृषा, शूल, हिचकी, अजीर्ण और अतीसार इन रोगों से व्याप्त मनुष्यों को दिन में सोना हितावह है ।

निद्राकेप्रसंगकरकेतंद्राकोकहते हैं ।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवजृम्भणंक्लमः ।

निद्रार्त्तस्येवतस्येहा तस्यतन्द्रांविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—जिस अवस्था में शब्दादिक विषयों का अज्ञान, शरीर की जडता तथा जँभाई, क्लम ए होते हैं तथा निद्रा युक्त होने पर भी चैतन्यता होय उस अवस्था को तंद्रा कहते हैं, निद्रा के विषे जागने के पश्चात् ग्लानि नहीं होती, और तन्द्रा में ग्लानि होती है ऐसा जानना ।

जँभाईकेलक्षण ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्रेष्टंविवृताननः ।

संमुंचतिसनेत्राश्रुं सजृम्भइतिकीर्त्तितः ॥

अर्थ—जिस अवस्था में मनुष्य एक उच्छ्वास संबंधी वायु मुख को पसार कर पीवे पीछे छोडते समय मुख विकसित करके आंसू छोडे उस अवस्था को जँभाई कहते हैं ।

छीककेलक्षण ।

प्राणोदानौसमौस्यातां मूर्ध्निस्त्रोतःपथिस्थितौ ।

नस्तःप्रवर्त्ततेशब्दःक्षवथुंतंविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—हृदयस्थ वायु और कंठस्थ वायु ए मस्तक में जाय कर शिरा ( नाडी )

के मार्ग बंदकरके क्षणमात्र स्थिर होकर अकस्मात् नासिका से शब्द युक्त बाहर निकले उस अवस्थाको छिक्का ( छीक ) कहते हैं ।

क्लमकेलक्षण ।

योनायासश्रमोदेहे प्रवृद्धश्वासवर्जितः ।  
क्लमःसइतिविज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥

अर्थ—जिस अवस्था में परिश्रम बिना देह के विषे श्रम होय परंतु श्रम में भारी श्वास होय वो होय नहीं और इन्द्रियों की सर्व कर्मों के विषय में प्रवृत्ति होय नहीं उस अवस्था को क्लम और ग्लानि कहते हैं ।

आलस्यकेलक्षण ।

सुखस्पर्शमसंगित्वं दुःखद्वेषणलोलता ।  
शक्तस्यचाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते ॥

अर्थ—जिस अवस्था में सुखस्पर्श की इच्छा और दुःखसे द्वेष होय और शक्ति होने परभी कर्म करनेमें उत्साह न होय उस अवस्थाको आलस्य कहते हैं ।

कोईइसजगेउत्क्लेशऔरग्लानीकेलक्षण ।

उत्क्लेश्यान्ननिर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम् । हृदयंपी  
ड्यतेचास्य तमुत्क्लेशंविनिर्दिशेत् ॥ वक्त्रेमधुरतात  
न्द्रा हृदयोद्वेष्टनंभ्रमः । नचान्नमभिकांक्षेत ग्लानि  
स्तस्याविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—जिस अवस्थामें पेट में से टकिल कर ऊर्ध्व वेग आवे परंतु उस वेग के साथ अन्न बाहर न निकले और ओकारी आवे, मुखसे लार और पानी गिरे तथा हृदयमें पीडा होय उस अवस्थाको उत्क्लेश कहते हैं; तथा मुखमें मिठास आय कर तन्द्रा होय तथा हृदय भारी और धिरासा प्रतीत हो, भ्रम होय अन्न पर इच्छा होय नहीं उस अवस्थाको ग्लानि कहते हैं ।

गौरवकेलक्षण ।

आर्द्रचर्मावनद्धंवा योगात्रमन्यतेनरः ।  
तथागुरुशिरोत्यर्थं गौरवंतद्विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—जिस अवस्थामें मनुष्य अपनी देहको गीले चमडेसे टका हुआसा भारी जाने और मस्तक अत्यंत भारी प्रतीत होय उस अवस्थाको गौरव कहते हैं ।

मूर्च्छादिकोंका कारण कहते हैं ।

मूर्च्छापित्ततमः प्राया रजःपित्तानिलाद्धमः ।

तमोवातकफात्तन्द्रा निद्राश्लेष्मतमोभवा ॥

अर्थ—अकस्मात् अंधकार आय कर मनुष्य निश्चेष्ट गिर पड़े ऐसी अवस्था पित्त और तमोगुण इन से होती है, उस को मूर्च्छा कहते हैं, चाक पर बैठा कर फिराने से जैसी अवस्था होती है, वह रजोगुण पित्त और वायु इन से होती है इस को भ्रम कहते हैं, तंद्रा तमोगुण वायु और कफ इन करके होती है, तथा निद्रा, कफ और तमोगुण इन करके होती है ।

गर्भवृद्धिविषयमें अन्यहेतुकहते हैं ।

गर्भस्यखलुरसनिमित्तामारुताध्माननिमित्ताच्च  
परिवृद्धिर्भवति ॥

अर्थ—गर्भ की वृद्धि दो प्रकार से होती है, एक रसनिमित्ता दूसरी मारुताध्माननिमित्ता, तहां रसनिमित्ता वृद्धि उसे कहते हैं, जैसे माता के रस बाहिनी नाडी से गर्भ की नाभि नाडी लगी हुई है, वह माता के आहार रस से रस को लेकर गर्भ का पोषण करे है यह प्रकार प्रथम कह आए हैं, और दूसरे प्रकार की वृद्धि वायु करके शिराओंकी पूर्णता हो कर गर्भ के सर्व अवयवों की वृद्धि होती है ऐसे जानना ।

स्रोतसोंका आध्मानकी प्राप्ति कहते हैं ।

तस्यांतरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानंध्रुवंस्मृतम् ।

तदाधमतिवायुस्तु देहस्तेनाभिवर्द्धते ॥

अर्थ—गर्भ के नाभी में अग्निका स्थान है, ऐसे मुनीश्वरों ने कहा है, उस आग्ने को वायु प्रज्वलित करता है वह अग्नि वायु सहवर्त्तमान शिराओं में प्रवेश होकर पूर्ण होने से गर्भकी वृद्धि होती है ।

सर्वदेहकी वृद्धि कहते हैं ।

ऊष्मणासहितश्चापि दारयत्यस्यमारुतः ।

ऊर्ध्वतिर्यग्धस्ताच्च स्रोतांस्यपियथातथा ॥

अर्थ—ऊष्माकरके संयुक्त वायु जैसे जैसे आपाद मस्तक पर्यंत शिराओं को पूरण करता है, तैसे तैसे गर्भका देह बढ़ता है ।

जैसे २ शरीरबढता है तैसे २ दृष्ट्यादिकनहींबढते ।

दृष्टिश्चरोमकूपश्च नवर्द्धन्तेकथंचन ।

ध्रुवाण्येतानिमर्त्यानामितिधन्वन्तरेर्मतम् ।

अर्थ—दृष्टि और रोम कूप ए मनुष्यों के निश्चल है, इसीसे देहके बढने से ये नहीं बढते यह धन्वन्तरी का मत है ।

शरीरकेक्षीणहोनेसेकोईअवयवोंकीवृद्धिहोतीहै सोकहतेहैं ।

शरीरेक्षीयमाणोपि वर्धतेद्वाविमौसदा ।

स्वभावंप्रकृतिकृत्वा नखकेशावितिस्थितिः ॥

अर्थ—शरीरके क्षीण होने पर भी नख और केश दोनों सदैव बढते हैं, इनका कारण स्वभाव जानना ।

प्रसंगकरकेप्रकृतीकेरूपहेतु, लक्षणोंकोक्रमकरकेकहते हैं ।

सप्तप्रकृतयोभवंतिपृथग्द्विशःसमस्तैश्च ।

अर्थ—मनुष्यों की प्रकृति वात, पित्त और कफ इस भेद करके तीन और द्रुंद्रज तीन तथा सन्निपातसे एक ऐसे सातप्रकारकी होती है ।

उनकीउत्पत्तिविषयमें हेतुकहतेहैं ।

शुक्रशोणितसंयोगाद्योभवेदोषउत्कटः ।

प्रकृतिर्जायतेतेन तस्याग्रेलक्षणंशृणु ॥

अर्थ—शुक्र शोणित के संयोग होने के समय वातादि दोषों में जो जो स्वभाव करके प्रबल होता है उस दोष करके मनुष्यकी प्रकृति होती है उनके लक्षण आगे कहेंगे, उसको तू सुन । उदाहरण, जैसे गर्भाधानके समय वायु प्रबल होने से वात-प्रकृति होती है, उसी प्रकार कफ तथा पित्तके प्रबल होने से, कफ और पित्तप्रकृतिवाला मनुष्य होता है ।

वातादि दोष दो प्रकार से प्रबल होते हैं, एक स्वभाव करके और दूसरे कुपित होकर प्रबल होते हैं तिन में स्वभाव करके प्रबल होते हैं, वे प्रकृतिके कारण होकर शरीरको उत्पन्न करते हैं, और कुपित होकर जो प्रबल होते हैं वे दोष रोगोंके कारण होकर गर्भ को नाश करते हैं ।

यथोक्तंवाग्भटे ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु ।

यःस्याद्दोषोधिकस्तेनप्रकृतिःसप्तधोदिता ॥

अर्थ—गर्भाधान के समय शुक्र, रुधिर और गर्भ की माताके भोजन चेष्टा ( आहार विहार ) गर्भाशय और ऋतु इन में जो वातादिक दोष अधिक हो उस से उसी दोषकी प्रकृति होती है उस प्रकार दोष भेद करके सात प्रकार की प्रकृति होती है ।

वातकोमुख्यतादिखाते हैं ।

विभुत्वादाशुकारित्वाद्बलित्वादन्यकोपनात् ।

स्वातंत्र्याद्बहुरोगत्वाद्दोषाणांप्रबलोऽनिलः ॥

अर्थ—व्यापक आशुकारी और बली होनेसे तथा अन्य दोषों को कुपित करनेसे, तथा स्वतंत्र और बहु रोगवान् होने से दोषों में वात प्रबल है, प्रयोजन यह है कि, वायुही व्यापक आशुकारी और बली है ऐसे कफ पित्त दोनों नहीं है, उसीप्रकार कफ पित्तको वायुही कुपित करती है, कफ पित्त इसप्रकार वायु को कुपित नहीं कर सके, और इन दोनों दोषोंको प्रेरणा करनेवाला वातही है \* कफ पित्त, वातको प्रेरणा नहीं कर सके इसीसे वातको स्वतंत्रता है, तथा वातके जितने अधिक रोग हैं उतने कफ पित्तके रोग नहीं है, जैसे “ अशीतिर्वातजारोगाश्चत्वारिंशच्चपैत्तिकाः ॥ विंशतिः श्लेष्मजाश्चेति” अर्थात् वातके ८० रोग हैं, पित्तके ४० रोग हैं, और कफके २० रोग हैं, इन पूर्वोक्त छः कारणोंसे वातको प्राधान्यता है, इसीसे प्रथम वात प्रकृतिका वर्णन करते हैं ।

वातप्रकृतिकेलक्षण ।

प्रायस्तएवपवनाध्युषितामनुष्यादोषात्मकाःस्फुटितधू  
सरकेशगात्राः । शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टासौ  
हार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः॥अल्पपित्तबलजीवितानि  
द्राः सन्नसक्तचलजर्जरवाचः । नास्तिकाबहुभुजःसविला  
सागीतहासमृगयाकलिलोलाः ॥ मधुराम्लकटूष्णसा  
त्म्यकांक्षाः कृशदीर्घाकृतयःसशब्दयाताः । नदृढान  
जितेन्द्रियानचार्या नचकान्तादयिताबहुप्रजावा । नेत्राणि  
चैषांखरधूसराणि वृत्तान्यचारूणिमृतोपमानि । उन्मी

\* पित्तः पंशु फकः पंगुः, पंगवोमलधातवः ।

वायुनायत्रनीयन्ते, तत्रवर्षन्तिमेषवत् ॥

लितानीव भवन्तिसुप्ते शैलद्रुमास्तेगगनंचयांति ॥ अध  
न्यामत्सराध्माताःस्तेनाःप्रोद्धद्धपिण्डिकाः । श्वसृगालो  
दृग्ध्राखुकाकानूकाश्ववातिकाः ॥

अर्थ—विशेष करके वातप्रकृतिवाले मनुष्य दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं उन्होंके केश और गात्र ( देह ) फटे हुए तथा कुछ कुछ पिलाई लिये होते हैं. शीत से द्वेष करने वाले तथा धीरज, स्मरण, बुद्धि, चेष्टा, सुहृदता दृष्टि और इनकी गति ये चंचल होते हैं, अत्यंत वाचाल होते हैं, पित्त, बल, जीवन और निद्रा ये अल्प होते हैं, तथा वात प्रकृति वाले मनुष्योंमें किसीके वचन टूटे हुए, किसीके हकलाय कर और किसीके कुछके कुछ और कोई फूटे कांसेके शब्द समान बोलता है, नास्तिक, बहुत भोजन करने वाला, विलास कर्त्ता तथा गीत, हास, और शिकार तथा कलह करनेकी रुचिवाला होता है । मीठा, खट्टा, खारी और गरम पदार्थ अनुकूल लगते हैं, देह पतला और लंबा होता है, तथा शब्दयुक्त गमन होता है, और न दृढ देह होते, न जितेन्द्री होते, न साधु होते न स्त्रियोंको प्यारे लगते और न वात प्रकृति-वालेके बहुत संतान होती तथा इन्होंके नेत्र रूखे और सपेदाई लिये गोल सुंदरता रहित मुद्देकेसे होते हैं, और जब वात प्रकृतिवाला मनुष्य सोता है तब नेत्र खुलेसे होजाते हैं तथा सपनेमें पर्वत, वृक्ष और आकाशमें गमन करता है, भाग्यशाली नहीं हो द्वेषी और चोर होता है तथा इनकी पिंडली गांठदार होती हैं, तथा कुत्ता, स्यार, ऊंट, गीध, चूहा और कौआ इन्होंकासा स्वभाव स्वर ( आवाज ) रूप और चेष्टाके करने वाले होते हैं, इतने लक्षण वात प्रकृतिवाले मनुष्यके कहे हैं ।

पित्तप्रकृतिकेलक्षण ।

पित्तं वह्निर्वह्निजं वायुदस्मात्पित्तोद्भक्तस्तीक्ष्णतृष्णाबुभु  
क्षः ॥ गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्तांऽघ्रिवक्रःशूरोमानीपिंगकेशो  
ल्परोमा ॥ दयितमाल्यविलेपनमंडनः सुचरितःशुचिरा  
श्रितवत्सलः ॥ विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवतिभीषुग  
तिर्द्विषतामपि ॥ मेधावीप्रशिथिलसंधिबंधिमांसो नारीणा  
मनभिमतोऽल्पशुक्रकामः । आवासःपलिततरंगनीलि  
कानां भुंक्तेऽन्नमधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ धर्मद्वेषीस्वेदनः  
पूतिगंधिर्भूर्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः । सुप्तःपश्येत्कार्ण  
कारान्पलाशान् दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ तनूनि

पिंगानिचलानिचैषां तन्वल्पपक्ष्माणिहिमप्रियाणि । क्रो  
धेनमद्येनरवेश्वभासा रागंत्रजंत्याशुविलोचनानि ॥ म  
ध्यायुषोमध्यबलाः पण्डिताःक्लेशभीरवः । व्याघ्रर्क्षकपि  
मार्जारयज्ञानूकाश्चपैतिकाः ।

अर्थ—धन्वन्तरि के मत में पित्त ही अग्रिरूप है क्यों कि अन्न और रसादिक धातुओं का परिपाक कर्ता यही है, अथवा अग्नि से उत्पन्न हुआ क्यों कि पित्त को अग्न्याधारत्व लिखा है इसी से रुधिर के कीट को पित्त कहते हैं इन पूर्वोक्त कारणों से पित्त प्रकृति वाले मनुष्यको भूख और प्यास अधिक लगती है, गौरांग तथा गरम देह वाला होय है; हाथ, पैर और मुख ये लाल होते हैं, शूरवीर और अभिमानी होता है, पीले केश और अल्प रोम ( रूआं ) वाला होता है, फूल, माला और चन्दन लगाना तथा भूषणों का धारण करने वाला होता है, रीत भांत उत्तम होती है, देह वाणी और मन के मलिन व्यापारों से दूर रहता है, आश्रित मनुष्यों पर प्यारका करने वाला होता है, वैभव, साहस तथा बुद्धिबल युक्त होता है, भय में शत्रुओंकाभी रक्षा करने वाला होता है, ( फिर इष्ट मित्र और मध्यस्थोंकी तो क्यों नहीं रक्षा करेगा ) स्मरण शक्ति उत्तम होती है, सन्धियों के बंधन तथा मांस ये शिथिल होते हैं तथा स्त्रियों को अप्रिय, वीर्य और कामदेव जिसके अल्प तथा जल में जैसी तरंग पडती है ऐसी देह में गुजलट पड जावे, बाल सपेद हो जावें और नीलिका ( क्षुद्र रोग विशेष ) करके युक्त होता है, मिष्ट, कषेले कडुए और शीतल ऐसे पदार्थों को भोजन करता है, धर्म का विरोधी अथवा [ वर्म-द्वेषी ] अर्थात् गरमी सुहाय नहीं, पसीने बहुत आवे, देह में दुर्गंध आवे, तथा विष्टा, क्रोध, जलपान, भोजन और ईर्ष्या ए अधिक होते हैं, सपने में कणेर, ढाक, दिशाओं में दाह, उल्कापात, विजली, सूर्य और अग्नि को देखे, तथा पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के नेत्र छोटे, पीले, चंचल और छोटी वरुनी तथा पतले पलक और शीलता प्रिय लगे ऐसे होते हैं और क्रोधसे, मद्य पीने से तथा सूर्यकी घामसे, नेत्र तत्काल लाल हो जाते हैं, पित्त प्रकृति वाला मनुष्य मध्यायु, मध्यवली, पण्डित, और क्लेशों से डरने वाला होता है, तथा वघेरा, रीछ, वानर, बिलाव और शूकर इन की सी चेष्टा, स्वभाव, स्वर और रूप वाले होते हैं, ये लक्षण पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के कहे हैं ।

कफप्रकृतिवालेमनुष्यकेलक्षण ।

श्लेष्मासोमःश्लेष्मलस्तेनसौम्यो गूढस्निग्धश्चिष्टसंध्यस्थि

मांसः । क्षुत्तृडदुःखक्लेशधर्मैरतप्तो बुद्ध्यायुक्तःसात्विकः  
सत्यसंधः ॥ प्रियङ्गुदूर्वाशरकांडशस्त्रगरोचनापद्मसुवर्ण  
वर्णः । प्रलंबबाहुःपृथुपीनवक्षा महाललाटोघननीलकेशः ॥  
मृदंगःसमसुविभक्तचारुवर्ष्मा बह्वोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृ  
त्यः । धर्मात्मावदतिननिष्ठुरंचजातुप्रच्छन्नंवहतिदृढंचिरंचवै  
रम् ॥ समदद्विरदेन्द्रतुल्ययातो जलदांभोधिमृदंगसिंहघोषः ।  
स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो नचबाल्येऽप्यतिरोदनोनलो  
लः ॥ तित्तंकषायंकटुकोष्णरूक्षमल्पसंभुक्तेबलवांस्तथापि ।  
रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घं सुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः\* ॥  
अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः प्राज्यायुर्वित्तोदीर्घदर्शीवदान्यः ।  
श्राद्धीगंभीरःस्थूललक्ष्यः क्षमावानार्योनिद्रालुदीर्घसू  
त्रीकृतज्ञः ॥ ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जोभक्तोगुरूणां स्थि  
रसौहृदश्च । स्वप्नेसपद्मान्सविहंगमालांस्तोयाशयान्पश्य  
तितोयदांश्च ॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुणताक्षर्यहंसगजाधिपैः । श्लेष्म  
प्रकृतयस्तुल्यास्तथांसिहाऽश्वगोवृषैः ॥

अर्थ—कफ सौम्य है इसी से कफप्रकृतिवाला मनुष्यभी सौम्य होता है, इस की संधी, हड्डी और मांस परस्पर मिले हुए स्निग्ध और गूढ़ होते हैं । भूख, प्यास, दुःख, क्लेश, आदि धर्मों से तापित ( दुःखी ) नहीं होवे, उत्तम बुद्धि होती है तथा सत्वप्रधान और सत्य वचन का पालन कर्त्ता होता है, प्रियंगुपुष्प, दूध, मूँज, शस्त्र, गोरोचन, कमल और सुवर्णकासा देहका वर्ण होता है, हाथ लम्बे होते हैं, छाती विशाल और पुष्ट होती है, ललाट विस्तीर्ण होता है; घुघरारे, कारे और लम्बे बाल होते हैं, कोमल अङ्ग और सर्व देहके अवयव मुडोल और दिखनोट होते हैं; ओज, रति ( स्त्री संग ) रस, शुक्र पुत्र और भृत्य ये अधिक होते हैं, धर्मात्मा होता है, अप्रिय वचन कदाचित् नहीं बोले, किसीकी प्रतीत नहो ऐसी रीति से शत्रुके प्रति बहुकालपर्यंत वैरभाव रखता है, मत्तवारे हाथीकासा गमन, मेघकी सी घुमडन, समुद्रकी सी गर्जना, मृदंग और सिंहकीसी गर्जनाके स-

\* अव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः प्रज्ञायुक्तोदीर्घदर्शीवदान्यः । हर्षभीरः स्थूललक्ष्यः क्षमावान् आर्योनिद्रालब्धवित्तःकृतज्ञः ॥

दृश शब्द होता है, स्मृतिवान् ( सब आगे पीछेकी बातको स्मरण रखने वाला ) श्रेष्ठ उद्योगवाला और विनयवाला होता है, बालकपनमेंभी बहुत नहीं रोवे-और न बहुत लोलुप होता है; कडुआ, कषेला, चरपरा, गरम, रूखा और थोडा ऐसा भोजन मिलनेपरभी बलवान् होवे, स्निग्ध, विशाल, लम्बे, स्पष्ट, सपेद और काली वन्नीवाले तथा जिनके प्रांत लाल हो ऐसे नेत्र होते हैं, अल्प है भाषण, क्रोध, पीना, भोजन और ईर्ष्या अथवा [ ईहा ] देहकी चेष्टा जिसकी, दीर्घ है आयु और धन जिसके तथा दीर्घदर्शी ( आगे होने वाले कार्यको प्रथमही विचार करने वाला ) मनोहर बोलने वाला, दान आदिमें श्रद्धावाला, गंभीर, बहुत देने-वाला, क्षमावान्, आर्य ( सज्जन ) बहुत सोने वाला, दीर्घसूत्री ( जो कार्य जल्दी करनेका ही उसके करनेमें देर कर देवे ) और कृतज्ञ होता है ।

जिसका चित्त कुटिल न हो, और पण्डित हो, सबोंको प्रिय और लज्जावान्, माता पिता गुरु आदिकी सेवा करने वाला, तथा दृढ सौहृद् ( मित्रता ) वाला होता है, तथा कफ प्रकृतिवाला मनुष्य सपनेमें कमल और ( चक्रवाकादि ) पक्षियोंकी पंक्ति सहित जलाशय ( तालाव, पुष्करणी ) आदिकी और बद्दलोंको देखे है । ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, गरुड, इंद्रावत-हाथी तथा सिंह, घोडा, गौ और बैल इनकीसी चेष्टा रूप, स्वभाव, स्वरवाले होते हैं, ये लक्षण कफ प्रकृतिवाले मनुष्यके कहे हैं ।

द्रुद्रजऔरसन्निपातजप्रकृति ।

द्रयोर्वातिसृणांवापि प्रकृतीनांतुलक्षणैः ।

ज्ञात्वासंसर्गजावैद्यैः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—वैद्योंको दो दोषोंकी तथा तीन दोषोंकी प्रकृतियोंके लक्षणों करके द्रुद्रज, और सन्निपातज प्रकृति जानना, अर्थात् जिस मनुष्यमें वात पित्त, वा वात कफ वा पित्त कफके लक्षण मिलते हों उसको द्रुद्रज प्रकृति कहनी । और जिसमें वात, पित्त, कफ तीनोंके लक्षण पाए जावें उसकी सन्निपात प्रकृति कहनी चाहिये ।

वेप्रकृतिकेभावपलटतेनहीं ।

प्रकोपोवान्यभावोवा क्षयोवानोपजायते ।

प्रकृतीनांस्वभावेनजायतेतुगतायुषः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकृतिके स्वभाव करके प्रकोप, विकार, और क्षय ए होते नहीं । परंतु गतायु मनुष्य ( अर्थात् मरने वाला मनुष्य ) जब होता है, उस कालमें प्रकृति प्रबल होकर स्वभाव पलट जाता है । अर्थात् मरणवाले मनुष्यकी प्रकृति पलट जाती है ।

शिष्य-वातादि प्रकृतिके दोष इस प्राणीको पीडा क्यों नहीं देते ।

गुरु-विषजातोयथाकीटो नविषेणविहन्यते ।

तद्वत्प्रकृतयोमर्त्यं शक्रुवन्तिनबाधितुम् ॥

अर्थ-जैसे विष से उत्पन्न हुआ कीडा उस विष करके पीडित नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिगत वातादि दोष, स्वजन्य मनुष्योंको विशेष बाधा नहीं करते । किंतु हाथपैरका फटना आदि विकार करके अल्प बाधा करते हैं ।

इस जगे यह औरभी जानना चाहिये कि केवल एक दोष प्रकृतिवाले मनुष्य सदैव रोगाक्रांत रहतेहैं, क्योंकि एकदोषका आधिक्य देहमें सदैव विशेष रहता है, और जो द्विदोषप्रकृतिवालेहैं, वो सत्त्वादि गुणोंके मिश्रित विकार करके रोगवान् भी आरोग्य कहलातेहैं। जैसे भूख प्यास आदि यद्यपि रोगहैं परंतु उन्हींकी रोगोंमें गणना नहीं है।

मतान्तर कहतेहैं ।

प्रकृतिमिहनराणां भौतिकीं केचिदाहुः

पवनदहनतोयैः कीर्तितास्तास्तु तिस्रः ।

स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान्

शुचिरथ चिरजीवि नाभसः खैर्महद्भिः ॥

अर्थ-कोई आचार्य इसप्रकार कहते हैं कि, मनुष्यकी प्रकृति पंचमहाभूतोंके बनी हुई है; तिनमें वात, पित्त और कफ इन करके ( पवनवात, दहनपित्त और तोयकहिये कफ ) ये तीन प्रकारकी कहआएहैं और जिसका देह स्थिर, पुष्ट और जो व क्षमावान् हो, उसकी पार्थिव अर्थात् पृथ्वीसंबंधी प्रकृति जाननी । तथा जो पवित्र हो बहुतकालपर्यंत जीवे उसकी आकाश प्रकृति जाननी इसप्रकार पंचमहाभूतात्मक प्रकृति कही है। वो प्रकृति एक, दो, तीन और चार भूतोंके संबंध करके अनेक प्रकारकी होती है । जैसे एक एक भूतोंके संज्ञसे पांचप्रकारकी; दोदो भूतोंके संबंधसे दश प्रकारकी, ऐसे प्रस्तार करनेसे अनेक प्रकारकी होतीहै \* उसीप्रकार स-तोगुण, रजोगुण, और तमोगुण के भेदसे सात प्रकृति होती है, तथा नागार्जुन आ-

\* उक्तंच. एकैकैनवदतिपंचदशतुद्वाभ्यांत्रिभिस्तावती  
भूतैः पंचचतुर्भिरेवभिषजस्त्वेकांसमस्तैरपि ।  
एकात्रिंशकमत्रभूमिसलिलस्वाहाप्रियस्पर्शाना-  
काशैश्चप्रकृतीगुणैरपिपुनः प्राहुः स्म सप्तापरे ॥

चार्य कहता है कि, सात प्रकृति दोषों करके और सातही प्रकृति सत्त्वादिगुण करके होती हैं । उसीप्रकार जाति, कुल, देश, काल, अवस्था, बल, और आत्मसंश्रय प्रकृति करके सात प्रकारकी प्रकृति होती है । क्योंकि पुरुषोंमें जात्यादि भाव विशेष परस्पर विलक्षण दीखते हैं. इन्हीं सत्त्वादि असंख्य भेदवशसे और रूप, स्वर, चरित, अनुकरण ( अनूकशब्दवाच्य ) भी असंख्य भेदवान् होता है. सत्त्वादि आवेश तो अनेक जन्माभ्यास वासना करके प्रगट होता है, इसीसैं देव, मानुष, तिर्यक्, प्रेत और नारकी जीवोंका अनुकरण पुरुषमें उन्हीं उन्हीं के लक्षणों से जानना चाहिये । उनके लक्षण आगे कहते हैं ।

ब्राह्मकायकेलक्षण ।

शौचमास्तिक्यमभ्यासोवेदेषुगुरुपूजनम् ।

प्रियातिथित्वमिज्याचब्राह्मकायस्यलक्षणम् ॥

अर्थ—पवित्रता, परलोक और ईश्वरमें आस्तिक्यबुद्धि, वेदोंमें अभ्यास, गुरु ( माता, पिता, आचार्य आदि ) का पूजन, सत्कर्मका आचरण, अभ्यागतमें भक्ति, क्रिया ( यागादि ) में प्रीति, इत्यादि लक्षण निरंतर जिसके शरीरमें रहते हो उसकी ब्रह्मकाय जाननी ।

माहेन्द्रकायकेलक्षण ।

माहात्म्यंशौर्यमाज्ञाचसततंशास्त्रबुद्ध्यः ।

भृत्यानांभरणंचापिमाहेन्द्रकायलक्षणम् ॥

अर्थ—बडेपन, शूरवीरता, आज्ञाशक्ति, शास्त्राभ्यास, सेवकोंका पोषण, इत्यादि लक्षण निरंतर जिसके देहमें रहते हो उसकी माहेन्द्रकाय जाननी ।

वरुणकायकेलक्षण ।

शीतसेवासहिष्णुत्वंपैङ्गुल्यंहरिकेशता ।

प्रियवादित्वमित्येतद्धारुणंकायलक्षणम् ॥

अर्थ—शीतपदार्थ में प्रीति, सहनशीलता, पीले नेत्र, कपिश ( किसमिसी ) वर्ण केश हो, और मधुर भाषण इत्यादि लक्षण करके युक्तहो उसकी वरुणकाय जाननी ।

कुबेरकायकेलक्षण ।

मध्यस्थतासहिष्णुत्वमर्थस्यागमसंचयौ ।

महाप्रसवशक्तिश्चकौबेरंकायलक्षणम् ॥

अर्थ—मध्यस्थपना, सहनशीलता, धनका आना और संचय करना, तथा प्रबल प्रजोत्पादन की शक्ति, ए लक्षण जिस्में होवे उसकी कुबेरकाय जाननी ।

गांधर्वकायकेलक्षण ।

गंधमाल्यप्रियत्वंचनृत्यवादित्रकामिता ।  
विहारशीलताचैवगांधर्वकायलक्षणम् ॥

अर्थ—जिसको गंध ( चन्दन अतर आदि ) फूलमाला, नाच, गाना वाजोंका बजाने आदि प्रिय और इनकी इच्छारहे, तथा विहार करनेका जिस्का स्वभाव होय, वो गंधर्वकायावाला प्राणीहै, ऐसाजानना ।

यमकायकेलक्षण ।

प्राप्तकारीदृढोत्थानोनिर्भयः स्मृतिमान्शुचिः ।  
रागमोहभयद्वेषैर्वर्जितोयामसत्ववान् ॥

अर्थ—जो यथार्थ कर्मका करनेवाला, आरम्भ करेहुए कर्मको समाप्ति करनेवाला, भयरहित, स्मृतिमान्, पवित्र, तथा रागद्वेष, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या आदि करके जो वर्जितहो उसको यमशरीरयुक्त जानना ।

ऋषिकायलक्षण ।

जपव्रतब्रह्मचर्यहोमाध्ययनसेवनम् ।  
ज्ञानविज्ञानसहितं ऋषिसत्वंविदुर्नरम् ॥  
सप्तैतेसात्त्विकाःकाया राजसांस्तुनिबोधमे ।

अर्थ—जप, व्रत, ब्रह्मचर्य, होम, पढ़ना, पढ़ाना, तथा ज्ञान, विज्ञान करके युक्त इन लक्षणों से ऋषिकायावान् मनुष्यको जानना । इस प्रकार ब्रह्मकायसे लेकर ऋषिकायपर्यंत सात देह सात्त्विकी कही हैं । अब राजसी कहते हैं ।

आसुरकायकेलक्षण ।

ऐश्वर्यवन्तंरौद्रं चशूरं चण्डमसूयकम् ।  
एकाशिनं चौदरिकमासुरं सत्वमीदृशम् ॥

अर्थ—ऐश्वर्यवान्, भयानक, शूर, अत्यंत क्रोधी, परायेगुणोंकी निंदा करनेवाला, अकेला भोजनकर्ता ऐसा जिस्का स्वभाव, भक्ष्याभक्ष्य का खानेवाला, गयदास औदरिक के स्थानमें [ औपधिकम् ] ऐसा कहकर कपट करता ऐसा अर्थ करता है, अथवा उपाधिकर्ता हो, इस प्रकार असुरकाययुक्त मनुष्य जानना ।

सर्पकायलक्षण ।

तीक्ष्णमायासिनंभीरुंचंडंमायान्वितंतथा ।

विहाराचारचपलंसर्पसत्वंविदुर्नरम् ॥

अर्थ—जो तीक्ष्णस्वभाव और तीव्रवेगवान् हो, डरपनेवाला और क्रोधी होकर अत्यंत शूर, अथवा [ भीरु ] कहिये अक्रोधी, मायावी, जिसके आहार और आचार अत्यंत चपल हो, उस पुरुषकी सर्पदेह जाननी ।

पक्षिकायकेलक्षण ।

प्रवृद्धकामसेवीचाप्यजन्नाहारएववा ।

अमर्षणोनवस्थायीशाकुनंकायलक्षणम् ।

अर्थ—जो मनुष्य प्रबलकामसेवी हो, तथा स्वभाव करके निरन्तर भोजन करने वाला, क्रोधी, एकस्थल में क्षणमात्र भी न ठहरने वाला, ए पक्षीदेहवान् के लक्षण हैं ।

राक्षसकायकेलक्षण ।

एकांतग्राहितारौद्राप्रकृतिर्धर्मबाह्यता ।

भृशमात्रंतमश्चापिराक्षसंकायलक्षणम् ।

अर्थ—एकांत स्थलमें रहने वाला, उग्रस्वभाव, धर्मका निंदक, अत्यन्ततामसी, इत्यादि राक्षसकायाके लक्षण जानने ।

पिशाचकायाकेलक्षण ।

उच्छिष्टाहारतातैक्ष्ण्यंसहसाप्रियतातथा ।

स्त्रीलोलुपत्वंनैर्लज्यपैशाचंकायलक्षणम् ।

अर्थ—उच्छिष्ट भक्षण, शास्त्रविरुद्ध कर्ममें प्रीति, तीक्ष्णस्वभाव, स्त्रीविषयमें लंपट, निर्लज्जता, इत्यादि लक्षणोंकरके जो युक्त हो उसको पिशाचकाय जानना ।

प्रेतकायाकेलक्षण ।

असंविभागमलसंदुःखशीलमसूयकम् ।

लोलुपंचाप्यदातारं प्रेतसत्वंविदुर्नरम् ॥

षडेतेराजसाःकाया स्तामसांस्तुनिबोधमे ।

अर्थ—जो कार्य और अकार्य के विचार करके शून्य हो, आलसी, दुःखशील,

निंदक, लोभी, और कृपणहो, वो प्रेतसत्त्व जानना । इसप्रकार राजसी छः प्रकार-की काया कही है । अब तामसी कायाओंको कहते हैं।

पशुकायकेलक्षण ।

दुर्मेधस्त्वंमन्दताचस्वप्रेमैथुनमिच्छति ।

निराकरिष्णुताचैवविज्ञेयाःपाशवोगुणाः ॥

अर्थ—मूर्खता, सर्व कार्य विषयमें मंदता, सोते में मैथुनका अनुभव और किसी कार्यको न करना, इत्यादि पशुदेह के गुण जानने ।

मत्स्यकायकेलक्षण ।

अनवस्थिततामौर्यभीरुत्वंसलिलार्थिता ।

परस्पराभिमर्शश्चमत्स्यसत्त्वस्यलक्षणम् ॥

अर्थ—सर्व कार्यमें अव्यवस्थितता, मूर्खता, डरपना, सर्वकाल में जलसँ प्रीति और परस्पर द्वेष, ए मत्स्यकाय अर्थात् मछलीकी देहवाले पुरुषके लक्षण हैं ।

वानस्पत्यकायकेलक्षण ।

एकस्थानेरतिर्नित्यमाहारेकेवलैरतः ।

वानस्पत्येनरः सत्वेधर्मकामार्थवर्जितः ॥

अर्थ—एकही स्थानमें प्रीति, सर्वकाल भोजन करनेमें रुचि, तथा धर्म, अर्थ, काम इनकरके वर्जित हो, उसको वनस्पति ( वृक्ष ) की प्रकृतिवाला जानना ।

इत्येतास्त्रिविधाःकायाःप्रोक्तावैतामसास्तथा ।

कायानांप्रकृतीर्ज्ञात्वात्वनुरूपांक्रियांचरेत् ॥

अर्थ—इसप्रकार त्रिविध तामसी प्रकृति कही है, वैद्यको उचित है कि पूर्वोक्त देहोंकी प्रकृति जानकर उसके अनुरूप चिकित्सा करे । अर्थात् प्रथम वैद्यको रोगीकी कायाका विचार करना चाहिये कि, इस रोगी की वात, पित्त और कफ से जो सातप्रकारकी कही है उनमें से कौनसी प्रकृति है । फिर ब्राह्मकाया आदि जों सात्विकी सात प्रकृति और आसुरी आदि छः राजसी प्रकृति, तथा पशुआदि तीन तामसी प्रकृतीओंका विचार करके पश्चात् चिकित्सा करनी चाहिये इसमें औरभी प्रमाण देते हैं ।

महाप्रकृतयस्त्वेतारजःसत्त्वतमःकृताः ।

प्रोक्तालक्षणतः सम्यग्भिषक्ताश्चविभावयेत् ॥

अर्थ—ए सत्व, रज और तमोगुणोंकी करी महाप्रकृति, लक्षण करके उत्तम प्रकार सैं कहीहै । इनका विचार वैद्योंको भले प्रकार करके पश्चात् चिकित्सा कर्त्तव्यहै । इस प्रकार वातादि प्रकृति और सत्त्वादि प्रकृतियोंको कहकर इन दोनोंके ज्ञानार्थ यह श्लोक कहते हैं.

आयुकाज्ञान ।

वयस्त्वाषोडशाद्वालं तत्रधात्विन्द्रियौजसाम् ।  
वृद्धिरासत्तेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परंक्षयः ॥

अर्थ—कालकृत शरीरकी अवस्थाको ( वय ) कहते हैं । उसके तीन भेदहैं, १ बाल २ मध्य ३ वृद्ध । इन्होंमें जन्मसै लेकर १६ वर्षपर्यंत अवस्था को बाल कहते हैं, उस बाल अवस्थाकेभी तीनभेद हैं, एक तो जिसमें बालक केवल दूधही पीताहै; दूसरी वह है कि, जिसमें दूध और अन्न दोनों सेवन करे; तीसरी बाल अवस्था का भेद वह है कि, जिसमें दूधको छोड़ केवल अन्नही भक्षण करताहै; इन तीनों ( क्षीर, क्षीरान्न, और अन्नवृत्तिवाली ) बाल्यअवस्थाओंमें रसादि धातु, नेत्र आदि इन्द्री, तथा सर्वधातुओंके पोषण करता ओजकी वृद्धि होतीहै । और बाल्य अवस्थामें कफकी अधिकवृद्धि रहनेसे बालक का देह सच्चिक्लण, नम्र, सुकुमार, अल्पक्रोध और सुंदर रहता है; तथा सोलह वर्षसे लेकर ६८ वर्ष तक मध्य अवस्था कहातीहै । इस मध्यअवस्था केभी तीनभेदहैं; १ यौवन २ संपूर्ण और ३ अपरिहानि; इस मध्यअवस्थामें पित्तकी वृद्धि रहतीहै; इसीसे जठराग्रिका प्रबल होना, संतानकी उत्पात्ति और पराक्रमकी अधिकता होती है. तहां सोलहसे लेकर तीस वर्षपर्यंत यौवनअवस्था कहाती है; और तीससे लेकर चालीसपर्यंत अवस्थाको संपूर्णता कहते हैं; इसमें सर्व धातु, इन्द्री, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, स्मरण, वचन, विज्ञान और प्रेमआदिकी संपूर्णता रहती है । इसके उपरांत अर्थात् चालीसवर्षके उपरांत अवस्थाको अपरिहानि कहते हैं. इस मध्यअवस्थामें धातु, इन्द्री आदिकी वृद्धि नहीं होती किंतु ज्योंके त्यों रहते हैं; इस सत्तर वर्षकी अवस्थासे जो शेष अवस्था बाकी है उस अवस्थाको क्षयअवस्था कहते हैं. इसमें धातु, इन्द्री और ओजका क्रम से क्षय होता है; तथा बल, वीर्य, पुरुषार्थ, वचन, विज्ञान, स्मरण, आदिकीभी क्षीणता होती है; तथा गुजलटका पडना, बालोंका सपेद होना, श्वास, खांसी, मंदाग्नि आदिके व्यासहोनेसे जैसे पुराना भवन वर्षाके होनेसैं गिरताहै, ऐसे रोगरूप वर्षासैं दिनप्रतिदिन यह वृद्धदेह क्षीण होता है । इस वृद्धावस्थामें वात प्रबल होती है, इसीसे बलसिथिल, मांस, संधि, हड्डी, त्वचा और पुरुषार्थ ए नष्ट होते हैं । तथा देहमें कंफ, कंठमें कफ, बोलना, नेत्र कान आदिमें मैलका निकलना होताहै ।

सुखायुकेलक्षण ।

स्वंस्वंहस्तत्रयं सार्द्धं वपुःपात्रं सुखायुषोः ।

अर्थ—अपने अपने हाथोंसे साढ़ेतीन हाथका लंबा देह उत्तम आयु ( उमर ) वालेका होताहै ।

नचयद्युक्तमुद्रितैरष्टाभिर्निन्दितैर्निजैः ।

अरोमशासितस्थूलदीर्घत्वैः सविपर्ययैः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त साढ़ेतीनहस्त परिमित भी देह इन निन्दित अपने आठ कारणों की आधिक्यता करके शुभ नहीं है । उन आठ कारणोंको कहतेहैं कि, जिस्की देहमें रोम ( बाल ) रहितहो, उसीप्रकार जिस्की देहमें अधिकरोमहोवे, जो अत्यंत काला होय, और जो अत्यंत गौर होवे, जो अत्यंत मोटा हो, और जो अत्यंत पतला हो; उसी प्रकार जो अत्यंत लंबाहो, और जो अत्यंत ठिगना हो, ए आठ कारण सुखायु अर्थात् दीर्घ उमरवालेके नहीं होते, किंतु अल्पायु और मध्यमायु वालेके जानना ।

दीर्घायुकेलक्षण ।

सुस्निग्धामृदवःसूक्ष्मानैकमूलाःस्थिराःकचाः । ललाटमुन्नतंश्लिष्टं  
शंखमर्धेन्दुसन्निभम् । कर्णौनीचोन्नतौपश्चान्महान्तौश्लिष्टमांसलौ ॥  
नेत्रेव्यक्तासितसितेसुबद्धेघनपक्ष्मणी । उन्नताग्रामहोच्छ्वासापीन  
जुर्नासिकासमा । ओष्ठौरक्तावनुद्धृतौमहत्तौनोल्बणेहनू । महदा  
स्यंघनादन्ताःस्निग्धाःश्लक्ष्णाःसिताःसमाः । जिह्वारक्ताऽऽयतात  
न्वीमांसलंचिबुकंमहत् । ग्रीवाह्रस्वाघनावृत्तास्कंधावुन्नतपीवरौ ।  
उदरंदक्षिणावर्तगूढनाभिसमुन्नतम् । तनुरक्तोन्नतनखंस्निग्धमाता  
प्रमांसलम् । दीर्घाच्छिद्राङ्गुलिमहत्पाणिपादंप्रतिष्ठितम् ॥

अर्थ—जिसके चिकने, नरम, पतले, अनेक जडवाले, ( एकजडमेंसे दो तीन न ऊगेहो ) और मजबूत ऐसे केश ( बाल ) उत्तम होते हैं । अर्थात् दीर्घावस्था वालेके होते हैं । जिस्का ललाट ऊंचा [ सुदार ] और स्पष्ट तथा अर्धचंद्राकार है कनपटी जिस्में, और नीचेसे छोटे, और ऊपर से बड़े, पीछेसे विस्तृत और रमणीक तथा पुष्ट ऐसे कान उत्तम होते हैं । प्रकाशित है सपेद और काले भाग जिन्होंमें, ( अर्थात् काले भाग कालेहो और सपेद भाग सपेदहो किंतु मिलाहुआ वर्ण न हो ) सु-

बद्ध और घन है। पलकों की वन्नी जिन्हों में ऐसे नेत्र उत्तम होते हैं । जिसका अग्रभाग ऊँचा और महान् उच्छ्वास जिसका तथा पुष्ट सरल और समान ऐसी नासिका उत्तम होती है । लाल और बाहर की तरफ निकलेहुए ओष्ठ ( होठ ) उत्तम होते हैं । किंतु बडे होठ उत्तम नहीं होते; सुन्दर ठोडी उत्तम होती है । बड़ासुख, मिलेहुए चिकने और सुन्दर सपेद तथा समान दांत उत्तम होते हैं । लाल लम्बी और पतली जीभ शुभ होती है । मांसल और बडी चिबुक ( ठोडीसे ऊपर और अधरोंसे नीचिका भाग ) शुभ होता है । छोटी घन और गोल ग्रीवा ( नाड ) ऊंचे और पुष्ट कंधे शुभ होते हैं । दक्षिणावर्त्त और गम्भीरनाभि जिसमें तथा किंचित् ऊंचा ऐसा उदर शुभ होता है । पतले ऊंचे और लाल ऐसे नख जिन्हों में तथा चिकने लाल और मांसदार ऐसे हाथ पैर शुभ होते हैं । तथा लंबी छिद्ररहित परस्पर मिली हुई उंगली दीर्घायुवाले पुरुषकी होती है ।

गूढवंशंबृहत्पृष्ठं निगूढाः संधयोदृढाः ।

धीरःस्वरोऽनुनादीचवर्णः स्निग्धःस्थिरप्रभः ।

स्वभावजंस्थिरं सत्वमविकारिविपत्स्वपि ॥

अर्थ—छिपाहुआ है पृष्ठका वांस जिसमें और विशाल पीठ शुभ होती है । भीतर छीपी और दृढ ( टूटेनहीं. ) ऐसी संधीहो कृपणता रहित और सुन्दर शब्द तथा मेघकीसी घुमडनकासा प्रतिध्वनि करता वचन शुभ होता है सचिक्रण और स्थिर है कांति जिसकी ऐसा देहका वर्ण शुभ होता है । स्वभाव से प्रगट और पलटे नहीं. तथा विपत्तिमें भी क्षोभित न हो ऐसी प्रकृति उत्तम होती है ।

उत्तरोत्तरसुक्षेत्रं वपु शुभं होता है । जैसे अपने अपने हाथोंसे ३॥ हाथ

आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानं शनैः शुभम् ॥

का लंबा देह शुभ होता है; तथा ललाट आदि देहके जो लक्षण कहे हैं उन्हीं संयुक्त देह शुभतर होता है, और यथोक्त सत्व ( प्रकृति ) के लक्षण कहे हैं जैसे [ स्वभावजंस्थिरंसत्वं ] इत्यादि गुणयुक्त देह शुभतम होता है, और बाल यौवन आदि अवस्था जिसकी रोगरहितहो ऐसा देह शुभ होता है, तथा देहका बढना, और ज्ञान ( लौकिकव्यवहार ) विज्ञान ( विशेषज्ञान जो शास्त्राभ्याससे हुआ हो ) ए सब जिस्के क्रमसे धीरे २ बढेहों ऐसा देह शुभ होता है अर्थात् ए लक्षण दीर्घायु वालेके जानने ।

इतिसर्वगुणोपेते शरीरेशरदांशतम् ।

आयुरैश्वर्यमिष्टाश्चसर्वेभावाः प्रतिष्ठिताः ॥

अर्थ—इसप्रकार पूर्वोक्त सर्वगुण युक्त देहकी सौ वर्षकी आयु होती है तथा ऐश्वर्य और जो शुभवस्तु होती है वो सब इसदेहमें सौवर्ष पर्यंत रहती है ।

इसप्रकारदेहकेउत्तमलक्षणकहकर  
बलप्रमाणजाननेकेअर्थकहते हैं ।

त्वग्रक्तादीनिसत्वांतान्यग्राण्यष्टौ यथोत्तरम् ।

बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानि देहिनाम् ॥

सारैरुपेतः सर्वैः स्यात्परं गौरवसंयुतः ।

सर्वारंभेषुचाशावान्सहिष्णुः सन्मतिःस्थिरः ॥

अर्थ—त्वचा, रुधिरसे लेकर सत्वपर्यंत जो ए आठ सार हैं सो क्रमसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, अर्थात् त्वक्सारसे रक्तसार. रक्तसारसे मांससार, मांससारसे मेदसार, मेदसारसे, अस्थिसार, अस्थिसारसे मज्जसार, मज्जसारसे शुक्रसार, और शुक्रसारसे श्रेष्ठ सत्वसारवान् मनुष्य होता है, । ये सार मनुष्यों के बल प्रमाण जाननेके अर्थ कहे हैं इन सर्वसारोंकरके युक्त पुरुष अत्यंत गौरवसंयुक्त होता है । और सर्व आरंभ कार्य में आशावान् होता है, सहनशील, श्रेष्ठबुद्धिवाला और कर्तव्यकार्यमें स्थिर बुद्धिवाला होता है । \*

\* आठप्रकारकेसारोंकेलक्षणचक्रमुनिने अपनीतंहितामेंइसप्रकार लिखेहैं—  
त्वग्रक्तमांस मेदोस्थिमज्जशुक्रसत्वानि । तत्रस्निग्धश्चक्षुण्मृदुप्रसन्नसूक्ष्माणंगंभीर सुकुमार-  
लोमशप्रभत्वंत्वक्सारणांसारता । सुखसौभाग्यैश्वर्योपभोगबुद्धिविद्यारोग्यप्रहर्षाण्यायुष्याणि-  
परमाचष्टे ।

कर्णाक्षिमुखजिह्वानासौष्ठपाणिपादतलनखललाटमेहनस्निग्धरक्तंश्रीमत्भ्राजिष्णुरक्तसारा  
णांसारता । सुखमुदग्रतांमैधानमस्विवंसौकुमार्यमनतिबलमक्लेशसहिष्णुतांचाचष्टे ।

शंखललाटकृकाटिकाऽक्षिगण्डहनुग्रीवास्कंधोदरवक्षःकक्ष्यापाणिपादसन्धयः स्थिरगुरुमां-  
सोपचितामांससाराणांसारता । क्षमाधृतिमलौल्यं वित्तंविद्यांसुखमार्जवमारोग्यंबलमायुश्चदीर्घ-  
माचष्टे ।

वर्णस्वरनेत्रकेशलोमनखदन्तोष्ठमूत्रपुरीषेषुविशेषेणस्नेहो मेदःसाराणांसारता । वित्तैश्वर्य-  
सुखोपभोगप्रदान्प्रत्यार्जवंसुकुमारोपचारतांचाचष्टे ।

पार्ष्णिगुल्फजानूरुजत्रुचिबुकशिरःपर्वस्थूलास्थिनखदन्ताश्चास्थिसायः । तेमहोत्साहाः  
क्रियावंतः क्लेशसहाः सारास्थिरशरीराभवंत्यायुष्मंतश्च ।

तन्वद्गाबलवन्तश्चस्निग्धवर्णस्वराः स्थूलदीर्घवृत्तसन्धयश्च मज्जसाराः तेदीर्घायुषोबलवंतः  
श्रुतविज्ञानावित्तापन्नाः सन्मानभाजनाश्च सदाभवन्ति ।

सत्वादि तीनोंप्रकृतियोंको कौनसीरीतिसें सुख दुःखका अनुभव होताहै-

अनुत्सेकमदैन्यंचसुखंदुःखंचसेवते ।

सत्ववांस्तप्यमानस्तुराजसोनैवतामसः ॥

अर्थ—सतोगुणी मनुष्य अभिमानको परित्यागकर सुखका अनुभव करता है । और दीनताको त्यागकर दुःखका सेवन करते हैं । और राजसी पुरुष तप्यमान होकर अर्थात् हमही इससुखसें सुखी हैं ऐसें सुखका सेवन करे हैं । और अहंकार युक्त दुःखका सेवनकर्ता है, अर्थात् मैंही इस दुःखको भोगसकताहूं ।

सौम्याः सौम्यप्रेक्षिणः क्षीरचूर्णलेहनादेव प्रहर्षबहुलाः स्निग्धवृत्तसारसमसंहतशिखरद-  
शनाः प्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराभ्राजिष्णवो महास्फिजश्च शुक्रसाराः ॥ तेस्त्रियोपभोगाबलवन्तः  
सुखभोग्यावित्तैश्वर्यसमानाः फलभाजश्चभवन्ति ॥

स्मृतिमंतो भक्तिमंतः कृतज्ञाः प्राज्ञाः शुचयो महोत्साहा धीराः समराविक्रान्तयोधिनस्त्य-  
क्तविषादाः स्ववस्थितगतिगंभीरबुद्धिचेष्टाः कल्याणाभिनिवेशिनश्चसत्वसाराः । तेषांस्वलक्षणै-  
रेवगुणाव्याख्याताः ॥

तत्रसर्वैः सारैरुपेताः पुरुषाभवन्त्यतिबलाः ॥ परमगौरवयुक्ताः क्लेशसहाः

सर्वारंभेष्वात्मनि जातप्रत्याशाः कल्याणाभिनिवेशिनः स्थिरसमाहितशरीराः सुसमाहित-  
गतयः सानुनादगंभीरमहास्वराः सुखैश्वर्यावित्तोपभोगसन्मानभाजो मंदजरसो मंदविकाराः  
प्रायस्तुल्यगुणाविस्तीर्णापत्याश्चरजीविनश्च भवन्ति । अतोविपरीतास्त्वसाराः ॥

देहका प्रमाणभी संग्रहमें लिखाहै-

स्वाङ्गुलैः पादाङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौद्व्यङ्गुलायते । तिस्रोऽन्याः क्रमेणोत्तरोत्तरंपंचभागहीनास्तत्र-  
खहीनावा । चतुरङ्गुलायताः पृथक् प्रपदपादतलपाष्ण्यः षट्पंचचतुरङ्गुलिविस्तृताः । चतुर्द-  
शैवायामेन पादश्चतुर्दशैव परिणाहेन । तथा गुल्फौजंधामध्यंच । चतुरङ्गुलोत्सेधः पादः । अ-  
ष्टादशायामाजंधाऊरुश्च । चतुरङ्गुलंजानु । त्रिंशदङ्गुलपरिणाहऊरुः । षडायामौ मुष्कमेद्वावष्टपंच  
परिणाहौ । षोडशविस्ताराकटी पंचाशत्परिणाहा । दशाङ्गुलं बस्तिशिरः । द्वादशाङ्गुलमुदरम् ।  
दशविस्तारं द्वादशायामं द्वादशोत्सेधं त्रिकम् । अष्टादशोत्सेधं पृष्ठम् । द्वादशकं स्तनान्तरम् ।  
द्व्यङ्गुलः स्तनपर्यंतः । चतुर्विंशत्यङ्गुलविशालं द्वादशोत्सेधमुरः । द्व्यङ्गुलं हृदयम् । अष्टकौ  
स्कन्धौकक्षेच । षड्वांसौ । षोडशकौ प्रबाहू । पंचदशकौपाणी । दशाङ्गुलौ पाणी । तत्रापि  
पंचांगुलामध्यमा । ततोद्व्यङ्गुलहीने प्रदेशिन्यनामिके । सार्द्धत्र्यङ्गुलौकनिष्ठाङ्गुष्ठौ । चतुरंगुलो-  
त्सेधा द्वाविंशतिपरिणाहा शिरोधरा । द्वादशोत्सेधं चतुर्विंशतिपरिणाहमाननम् । पंचाङ्गुलमा-  
स्यम् । चतुरंगुलं पृथक्चिबुकोष्ठनासादृष्ट्यंतरकर्णललाटम् । शंखगंडाश्चतुरंगुलाः त्रिभागां-  
गुलविस्तारौ नासापुटौ । द्व्यङ्गुलायतमंगुष्ठोदरविस्तृतं नेत्रम् । तत्रशुक्लतीयांशः कृष्णः ।  
कृष्णनवमांशामसूरदलमात्रादृष्टिः । षडंगुलोत्सेधं द्वात्रिंशत्परिणाहं शिरः इति । सर्वपुनःश-  
रीरमंगुलानि चतुराशीतिः । तदायामाविस्तारसमं सममुच्यते । यथोक्तपरिमाणमिष्टम् ॥

उसीप्रकार तामसी पुरुष अत्यंत मूढ होनेसे न सुखका सेवन करे और न दुः-  
खका सेवन, उसीप्रकार द्वंद्वप्रकृति वाला भी सुखदुःखका सेवन नहीं करे । समान-  
प्रकृतिवाला सुखदुःखका सेवन अदीन होकर करे हैं ।

आयुबढानेवालेकर्म ।

दानशीलदयासत्यब्रह्मचर्यकृतज्ञताः ।

रसायनानि मैत्रीचपुण्यायुर्वृद्धिकृद्गुणः ॥

इतिश्रीसौश्रुतशारीरेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्थ—दानशीलता, दया, सत्यता, ब्रह्मचर्य, कृतज्ञता, रसायन औषध, और  
सर्वप्राणियोंमें मित्रता इत्यादि गुण पुण्य और आयुके बढाने वाले हैं । अर्थात् इ-  
नमें कोई पुण्यको बढाता है. और कोई वस्तु आयुको बढाती है ।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्द्वारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेसप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

गर्भवर्णनकरनेकेअनन्तरगर्भमेंप्रगटहुएबालककेशरीरकेअवयवोंकीसंख्याकरणीउचि-  
तहै, अतएवउससंख्याकावर्णनकरतेहैं ।

अथातः शरीरसंख्याव्याकरणशारीरव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—पंचमहाभूत शरीर समवायको शरीर कहते हैं. । उस शरीरके अवयवोंकी  
संख्या का विवरण है जिस शरीरमें उस शारीरकी हम व्याख्या करेंगे । तहां  
शरीरावयव संख्या विवरण प्रतिपादन की कामना करके शरीर शब्द के व्यपदेश्य  
करके उसीका क्रमसै वर्णन करते हैं ।

शुक्रशोणितंगर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्च्छितं  
गर्भइत्युच्यते ।

अर्थ—गर्भाशयमें स्थित जो शुक्रशोणित वो क्षेत्रज्ञ और प्रधान आदि आठ प्र-  
कृति, तथा पंचभूत, ग्यारह इन्द्री, ए सोलह विकार इनसे मिलकर गर्भसंज्ञाको प्राप्त  
होताहै. [ इस करके योगियों का उपयोगी पंचविंशति कोष कहाहै. ] उसीको वै-  
द्योंका उपयोगी छः धातुवाला कोष है उसको कहते हैं ।

तंचेतनावस्थितंवायुर्विभजति तेजएनंपचति आपःक्लेदय  
न्ति पृथ्वीसंहनयति आकाशंविबद्धयति एवंपिबद्धितः सय-  
दा हस्ताद्यङ्गैरुपेतस्तदाशरीरमितिसंज्ञालभते ॥

अर्थ—आयु प्रसवकालपर्यंत चेतनायुक्त जो गर्भ उसके दोष, धातु, मल, अंग, प्रत्यंग, इन्होंका विभाग करता है । तदनंतर तेज उस गर्भका रूपांतर उत्पन्न करे है । गर्भके विभाग और परिणाम इनके करने वाला वायु और पित्त इसको सुखाता है । जब वात और पित्त ( अग्नि ) इसको सुखाते हैं तब जल फिर इस गर्भको-गीला कर देता है । जब जलसे गर्भ गीला हो जाता है उसको पृथ्वी मूर्तिमान्करे है, तब उस गर्भकी शरीर संज्ञा होती है । और इस गर्भको आकाश बढाता है, इस प्रकार बढाहुआ गर्भ जब हस्तादि अंगों करके युक्त होता है तब शरीर संज्ञाको प्राप्त होता है ।

**तच्चषडङ्गं शाखाश्चतस्रोमध्यंपंचमंषष्टंशिरइति ॥**

अर्थ—उस शरीरके छः अंग हैं । हाथ पैर चार, मध्यम भाग पांचवा और मस्तक छठा अंग है । इसके उपरांत प्रत्यंगोंको कहते हैं ।

प्रत्यङ्ग

मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकवस्तिग्रीवा  
इत्येताएकैकाः । कर्णनेत्रभ्रुवोसगंडकक्षास्तनवृषण  
पार्श्वस्फिग्जानुबाहूरुप्रभृतयोद्वेद्रे । विंशतिरङ्गुलयः ।  
स्रोतांसिवक्ष्यमाणानि एषप्रत्यङ्गविभागोक्तः ।

अर्थ—अब प्रत्यंगोंकी संख्या कहते हैं । तिनमें, मस्तक, पेट, पीठ, नाभि, ललाट, नासिका, ठोडी, बस्ती, नाड, ए अवयव एक एक हैं । तथा कान, नेत्र, भोंह, कंधे, गाल, कांख, स्तन, अंडकोश, कूख, स्फिक् ( कूले ) घोटू, हाथ, जांघ, होठ, सृक्कणी कहिये होठोकेप्रांत इत्यादि अवयव दो दो हैं । बीस उंगली, स्रोतस् आगे कहेंगे, यह प्रत्यंग विभाग कहा ।

त्वगादिकोंकीसंख्या ।

तस्यपुनः संख्यानं त्वचः कलाधातवोमलायकृत्प्लीहा  
नौफ्रुप्फुसउन्दुकोहृदयामी आशयाअंत्राणिवृक्कोस्रोतां  
सिकण्डराजालानिकूर्चारज्वः सेवन्यःसंघातासीमंती  
अस्थीनिसन्धयः स्नायवः पेश्योमर्माणिशिराधमन्यो  
योगवहानिस्रोतांसिच ।

अर्थ—उस गर्भके अंग प्रत्यंग इन करके जो शरीर बना उन अंगोंको कहतेहैं,

त्वचा, कला, धातु, मल, दोष, कलेजा, ग्रीहा, फुफ्फुस, उंदुक, आशय आंतडी, वृक्क, स्त्रोतस, कंडरा, जाल, कूर्चा, रज्जू, सेवनी, संघात, सीमंती हड्डी, संधी, स्नायु, पेशी, मर्म, शिरा, धमनी तथा योगवदस्त्रोतस् कहिये धमनी, प्राण, उदक, अन्न, इनको वहने वाली स्त्रोतस्, ये २९ उनतीस अंग जानने, अब इनकी विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं.

**रक्तस्याधःक्रमात्परे । कफामपित्तेपक्वेति ।**

अर्थ—आशयोका वर्णन चतुर्थाध्यायमें कर आएहैं इसीसै इसजगे अर्थ नहीं लिखा है.

स्त्रोतसोंकोकहतेहैं ।

**स्त्रोतांसिनासिकेकर्णैनेत्रेपाय्वास्यमेहनम् ।**

**स्तनौरक्तपथश्चेतिनारीणामधिकंत्रयम् ॥**

अर्थ—कान, नेत्र, मुख, नाक, गुदा, मेद्र, इस प्रकार बहिर्मुख स्त्रोतस् ( छिद्र ) ए स्त्री पुरुषोंके समान हैं। तथापि स्त्रियोंके बहिर्मुख स्त्रोतस् तीन अधिकहैं; दो स्तन-संबंधी तथा तीसरा योनि-संबंधी आर्त्तवका वहने वाला स्त्रोतस् हैं। स्मरातपत्र यो-निके तीसरे आवर्त्तमें है. इसका प्रमाण लिखते हैं.

**विपुलपिप्पलपत्रसमाकृतेरवयवस्यशिरस्तलमाश्रितम् ।**

**सकलकामशिरामुखचुंबितंविमृदितंमदनातपवारणम् ॥**

अर्थ—बड़ेपीपलके पत्तेकी सी आकृतीवाले अवयववाली जो योनि उसके म-स्तकके आश्रय करके रहती हुई सर्वकामवाहिनी नाडी उनके मुखकरके चुंबित तथा मर्दित ऐसा मदनका छत्र है.

मतान्तरम् ।

तत्रकेचिदाहुः-शिराधमनीस्त्रोतसामविभागः शिराविकाराएव ।

धमन्यः स्त्रोतांसिचेति । तत्तुनसम्यक् अन्यान्येवहिस्त्रोतांसि ।

धमन्यश्चशिराभ्यःकस्माद्द्वयंजनान्यत्वान्मूलसंनियमात् ।

कर्मवैशेष्यादागमाच्च केवलंतु परस्परसन्निकर्षात्सदृशागमकर्म

त्वात्सौक्ष्म्याच्च विभक्तकर्मणामप्यविभागइवकर्मसुभवति ।

अर्थ—कोई कोई आचार्य कहते हैं कि, शिरा, धमनी, और स्त्रोतस् इनमें कुछ भेद नहीं है, केवल धमनी तथा स्त्रोतस् शिराके रूपांतर मात्रहै। यह वार्त्ता वि-

शेष युक्तिसंगत नहीं है स्रोतस और धमनी शिरासैं पृथक् है । रूपभेद, मूलनिवेश-भेद और कार्यकारित्वभेद हेतु इन तीनोंके भिन्न भिन्न हैं केवल परस्पर सन्निकर्ष, सदृशकर्मकारित्व, सूक्ष्मभेदाश्रयत्व उसी प्रकार शास्त्रमें सदृशरूपवर्णनहेतु इन्होंका अभिन्न कहना अनुभूतसा होता है । वास्तवसैं विचारकर देखो तो इन प्रत्येकके कार्य अपने अपने अधीन हैं ।

स्रोतांसिसन्तिदेहेऽस्मिन्धमन्यश्चशिरायथा । तानिलसीकागर्भा  
णिकर्मकुर्वन्तिदैहिकम् ॥ मस्तिष्केनाभिरज्जौचनेत्रयोःपृष्ठमज्जनि ।  
नखेषुकण्डरायांचनसन्त्यस्थन्युपास्थनि ॥ स्रोतसांनिखिलानांच  
परस्परसमागमात् । महास्रोतोद्वयंजातमधस्ताज्जत्रुणोश्चतत् ॥  
शिरासङ्गमसंप्राप्तंस्वरसंतत्रनिक्षिपेत् । सरसःशैररक्तेनहृत्कोष्ठंच  
समागतः ॥ शोणितीभूयत्रजतिदेहमेतन्निरन्तरम् । सरसोदेहजंपूर्व  
पश्चाच्छोणिततांत्रजेत् ॥ धराभ्यस्तान्याददेतपदार्थान्देहपोषकान् ।  
ग्रहण्यादिभ्यआदायरसमाहारजंतथा ॥ शिरामार्गेणहृदयमानय  
न्तिनिरंतरम् । बलंपुष्टिंचलावण्यंदेहस्तन्नित्यमात्रजेत् ॥

अर्थ—इसदेहमें स्रोतस् समूह, धमनी और शिराके सदृश एक प्रकारकी नाडी-विशेषको कहते हैं । इनके भीतर एक प्रकार का जलसंबंधी पदार्थ रहता है; उसको लसीका कहते हैं; ये देहको सर्व अंशमें रहकर दैहिक कार्योंका निर्वाह करेहैं, मस्तिष्क, नाभिरज्जु, नेत्र, पीठके वांसकी मज्जा, नख, कंडरा, हड्डी तथा उपास्थि इन सबजगे स्रोतोनाडी नहीं हैं ।

जितने स्रोत हैं सबके मिलनेसैं दो बड़े स्रोत होगए हैं । ए दोनों महास्रोत जत्रुके नीचे शिरासंगम ( जिसजगे शिराओंके गण मिलकर महाशिरारूपको प्राप्त हुए हैं ) में मिलकर तहां आत्मगर्भस्थ रसको देते हैं, यह रस शिरामें स्थितरक्तके साथ मिलकर हृत्कोष्ठमें आता है । उसजगे रुधिरहोकर निरंतर इसदेहमें विचरे हैं, यहरस प्रथमदेहसे उत्पन्न होकर फिर रुधिरके भावको प्राप्त होता है.

स्रोतोनाडीगण धमनियोंमें रहने वाले रुधिरसैं, देहपोषणोपयोगी पदार्थ को आकर्षण करके देहको बढाते हैं और येही स्रोतोनाडीगण, ग्रहणी ( क्षुद्रांत्रके अंश-विशेष ) आदिसैं आहारजन्य रसको आकर्षण करके शिरामार्ग होकर हृदयमें प्राप्त करती है, इसीसैं देहमें बल, पुष्टता, और लावण्यता की वृद्धि होती है ।

कण्डरा ।

षोडशकण्डरास्तासांचतस्रःपादयोस्तावन्त्योहस्तग्रीवापृष्ठेषु ।

अर्थ—कंडरा ( मोटेस्नायु ) सोलहहैं. तिनमें चारपैरोंमें है, चार हाथोंमें, चार नाडमें और चार पीठमें हैं.

अब हस्तादिगत कंडराओंके अग्रिमभागको कहते हैं ।

तत्रहस्तपादगतानांकण्डराणांनखाग्रप्ररोहाः ।

ग्रीवाहृदयनिबंधनीनामधोभागगतानामग्रे

बिंबंश्रोण्यासहपृष्ठनिश्चलबंधंकुर्वतीनां

पृष्ठजानांचतमृणामधोभागगतानांबिंबमण्डलं

आपान्नितम्बस्यमूर्धोरुवक्षोक्षपिण्डादीनांच ।

अर्थ—तिन कंडराओंमें हाथपैरमें गण्डुए कंडरा उनके अग्रभाग नखाग्रहैं । तथा ग्रीवा और हृदय इनका बंधन करके अधोभागमें जानेवाले जो स्नायुहैं, उनके अग्रभागमें बिंब कहिये मंडल है । तथा श्रोणी कहिये कमर उसके साथ पृष्ठका बंधन करके अधोभागमें जाने वाली जो स्नायु उन्होंके अग्र उदक और कमर एहैं, उसी प्रकार, मस्तक, उर वक्षस्थल तथा अक्षिपिंड इनके मंडल तथा आदिशब्दकरके स्तनपिंडोंके मंडल ए कंडरा ( बड़ीस्नायु ) ओंके अग्रिमभाग जानने ।

अथजालानि ।

मांसशिराम्नाय्वस्थिजालानिप्रत्येकं चत्वारिचत्वारि

रितानिमणिबन्धगुल्फसंश्रितानिपरस्परनिबद्धानि

परस्परसंश्लिष्टानिपरस्परगवाक्षितानिचेतियैर्गवा

क्षितमिदंशरीरम् ।

अर्थ—मांस, शिरा, स्नायु और हड्डी इनके जाल कहिये झरोखा के समान छिद्रयुक्तपदार्थ वे एक एक के चारचार हैं । उन्होंमें मांसके चार जाल एकएकमणिबंध ( पट्टुचों ) में हैं, और एकएकगुल्फ ( टकना ) में है; उसीप्रकार शिराके, स्नायुके और हड्डीके जाल जानने चाहिये. इन चारोंप्रकारके चारचार जालसैं यह देहगवाक्षित ( झरोखोंकेसदृशहोरहा ) है । ए चारों प्रकारके जाले परस्पर बंधेहुए परस्पर मिलेहुए हैं । तात्पर्य यह है कि, मणिबंधमें एक मांसजाल, तथा एक शिराजाल, तथा एक स्नायुजाल और एक अस्थिजाल ऐसे चार जाल हैं । इसी प्रकार दूसरे मणिबंधमें और गुल्फमें जानो ।

कूर्च कहते हैं ।

### षट्कूर्चास्तेहस्तपादग्रीवामेद्रेषु ।

अर्थ—इसजगे कूर्चशब्द करके कूर्चाके समान तथा लाल, तेजस्वी पदार्थ, मांस, शिरा, स्नायु और हड्डियोंके जालकके विस्तारकरके प्रगटहुए जानने, तिनमें हाथ तथा पैर, इनमें चार और एक ग्रीवामें तथा एक शिश्रेंद्री में ऐसे छः हैं । कुशापुंजसदृश पदार्थको कूर्चा कहते हैं ।

रज्जू ( बंधनी । )

### महत्योमांसरज्जवश्चतस्रः पृष्टवंशेऽभयतः पेशी बन्धनार्थबाह्येऽभ्यन्तरेऽद्वेद्रे ।

अर्थ—बड़े मांसमय रस्सीसदृश चार पदार्थ हैं. वे पीठके वांसके दोनों तरफ हैं. इन्होंका कार्य पेशियों का बन्धन करना है, तिनमें दो भीतरके अंग में हैं, तथा दो बाहर हैं ।

अस्थनां संयोजिकाः शुभ्राः सौत्रिकारज्जवोमताः ।  
काश्चित्स्थूलाः प्रशस्ताश्च दीर्घा बहुविधास्तथा ॥  
मध्यकाये तथा बाह्योः सक्थोरेव च ताः स्थिताः ।  
अस्थीन्यभिनिबद्धानि स्वस्थानान्त्रचलंति हि ॥

अर्थ—हड्डियों में परस्पर संयोजक, सपेदवर्ण, सूत्रमय पदार्थविशेष को रज्जू कहते हैं । कोई कोई रज्जू स्थूल तथा प्रशस्त और कोई दीर्घ इत्यादि अनेक प्रकारके हैं । मध्यदेह, दोनों भुजा और सक्थिद्रियों में सब रज्जू अवस्थित हैं । इन रज्जूओंसे बँधी हुई हड्डी संपूर्ण अपने अपने स्थानसे चलायमान नहीं होती है ।

पादाङ्गुलीनां पर्वास्थ्रां योजिन्यस्ताः परस्परम् । अङ्गुल्यस्थ्रां  
तथा सन्ति प्रपदास्थ्रां च योजिकाः ॥ गुल्फास्थ्रां प्रपदास्थ्रां च  
गुल्फास्थ्रां च परस्परम् । गुल्फसन्धेश्च जंघास्थ्रानुसन्धेस्त  
तः परम् ॥ तथा वंक्षणसन्धेश्च रज्जवो विविधामताः ।

अर्थ—पैरकी उंगलियों के सब पोरुओं के मिलानेवाली अंगुल्यस्थि और प्रपदास्थि आदिके मिलानेवाली प्रपदास्थि और गुल्फास्थि आदिकी योजक, गुल्फा-

स्थि आदिकी परस्पर संयोजक, गुल्फसंधिकी संयोजक जंघास्थि दोनोंकी परस्पर मिलाने वाली, जानुसंधिके मिलाने वाली और वंक्षणसंधिके संयोजक रज्जु-समूह एक एक सक्थी में रहते हैं । इसका तात्पर्यार्थ यह है कि जो अंगुली की हड्डी के बंधन करनेवाली है वोही बंधनी पैरकी हड्डियों के बंधनकर्ता जाननी, अर्थात् अंगुलीकी हड्डियों के साथ पैरकी हड्डियोंको मिलाती है; इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना ।

करांगुलीनांपवास्त्रांसंयोजिन्यापरस्परम् । अंगुल्यस्त्रांतथा  
संतिकरभास्त्रांचयोजिकाः ॥ तदस्त्रांमणिवन्धास्त्रांतेषांचापि  
परस्परम् । मणिबंधस्यसंधेश्चप्रकोष्ठास्त्रश्चयोजिकाः । कफोणेः  
स्कन्धसंधेश्चतथाप्यंसस्यरज्जवः । अंसजत्वस्थियोजिन्यउरोऽ  
स्थिजत्रुयोजिकाः ॥

अर्थ—हाथकी अंगुलियों के सब पोरुओं के परस्पर योजक अंगुल्यस्थि, तथा कर-भास्थि आदिके मिलाने वाली, करभास्थि और मणिबंधास्थि आदिकी संयोजक और मणिबंध संधियोंकी योजक, प्रकोष्ठास्थिद्वयकी परस्पर संयोजक, कफोणि ( कुहनी ) की संधियोंके मिलानेवाली और कंधेकी संधियोंको मिलानेवाली, अंसास्थियोजक अंसास्थि और जत्रू ( हसली ) के हड्डियोंके योजक इसीप्रकार जत्रूकी हड्डी और ऊरुकी हड्डीके मिलाने वाले रज्जूसमूह एक एक भुजामें है.

रज्जवोमध्यकायस्यपर्शुकोरोऽस्थियोजिकाः।त्रयाणा  
मापिभिन्नानामुरोऽस्त्रःपरिमेलिकाः॥कसेरुकापर्शुका  
नांकशेरूणांपरस्परम् । शिरसःपश्चिमास्त्रश्चतथाप्यु  
र्ध्वगयोर्द्रयोः ॥ कशेर्वोर्हनुकूल्यस्यपृष्ठवस्त्यस्थियो  
जिकाः । संयोजिन्यश्चबस्त्यस्त्रांपरस्परमुदीरिताः ।

अर्थ—मध्यदेहमें नीचेलिखे सबरज्जू हैं । जैसे ऊपर स्थित सातपांशुओंके सहित वक्षोस्थि के योजक, वक्षोस्थिके खंडत्रयके योजक, ( एक वक्षस्थलकी हड्डी तीन जगे विभक्त है ) कशेरुका ( पिछाडीका वांस ) और पर्शुका आदिके मिलानेवाले कशेरुकादिकोंके परस्पर मिलाने वाले, करोटी ( मस्तककीहड्डी ) के पिछाडीकी हड्डीसहित ऊर्ध्वस्थकशेरुका दोनों द्वयके संयोजक, हन्वस्थिके योजक, पृष्ठवंशास्थि तथा बस्तीकी हड्डी, आदिके मिलानेवाले तथा सर्व बस्तीकी हड्डीयोंके पर-स्पर मिलाने वाले रज्जूसमूह मध्यदेहमें है. रज्जुओंको बंधनीभी कहते हैं ।

सेविन्यः ।

सप्तसेविन्यःशिरसिविभक्ताःपंचजिह्वाशे  
फसोरेकैकाताः परिहर्तव्याःशस्त्रेण ।

अर्थ—सेवनी सातहैं, तिनमें मस्तक के विषे पृथक् पृथक् पांच और जीभ तथा शिश्र इनमें एक एक ऐसे सातहैं, इनको शस्त्रकरके तोडने चाहिये. सुईके सदृश मिलीहुई जगहको सेवनी कहतेहैं ।

संघाताः ।

चतुर्दशास्त्रांसंघातास्तेषांत्रयोगुल्फजानुवंक्षणेष्ु ।

एतेनइतरसक्थिबाहुचव्याख्यातौ । त्रिकशिरसोरेकैकः ।

अर्थ—हड्डियोंके समूह चोदश हैं, तिनमें पैरोंके टकना, जानु और वंक्षण ( ऊरुकीसंधि ) इनस्थानों में तीन, इसीप्रकार दूसरे पैरमें तीन तथा दोनों हाथोंमें तीन तीन और एक त्रिक ( बाहु और मस्तककी संधीमें ) और एक मस्तकमें ऐसे १४ संघात हैं ।

मतान्तरे ।

येह्युक्ताःसंघातास्तेखल्वष्टादशैकेषाम् ।

अर्थ—किसी किसी आचार्य के मतसैं पूर्वोक्त संघात १८ हैं । सो इसप्रकारहैं, जैसे कि पूर्वोक्त १४ श्रोणिकांडके ऊपर एक; वक्षस्थलमें उदर और उर इनकी संधीमें एक, और अंसकूट के ऊपर एक, ऐसे हड्डीके समूह, अठार हैं । यद्यपि श्रोणी कांडभाग अर्थात् कमरमें त्रिकस्थान प्रसिद्धहैं तथापि नाडकी जडको भी त्रिक कहतेहैं क्योंकि इसजगे दोनों भुजा और ग्रीवा इन तीनोंका समूह एकत्रित हुआहै.

अथास्त्रः स्वरूपमाह ।

मेदोयत्स्वाग्निनापक्वायुनाचातिशोषितम् ।

तदस्थिसंज्ञालभतेससारःसर्वविग्रहे ॥

अर्थ—अब प्रथम हड्डीयोंका स्वरूप कहतेहैं. जैसेकि मेदा अपनी अग्निसे पक होती है और पवन उसको अत्यंत शोषण करेहैं तब वोही मेद अस्थि ( हड्डी ) कहलातीहैं वह हड्डी इस देहमें सारभूतहै ।

तहां कहतेहैं कि, शरीर दो प्रकार का है, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, तिनमें मृत्तिका, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचभूतोंसे निर्मित और चक्षुरादि इन्द्रियोंसे ग्राह्य देहको स्थूलदेह कहते हैं। और पंचप्राण, मन, बुद्धि और दशइन्द्री

करके समन्वित अपंचभूतसे प्रगट देहको सूक्ष्म देह कहतेहैं । परंतु इस आयुर्वेद शास्त्रमें मनुष्यके स्थूल देहकाही वर्णनहै, देहकी प्रधान उपादान कारण हड्डीहैं, अत एव अब उनको वर्णन करतेहैं ।

शरीरधारणविषयमें हड्डियोंको प्रधानताहै ।

अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः । अस्थिसारैस्तथा  
देहो ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ॥ तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु  
शरीरिणाम् । अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि देहिनाम् ॥  
मांसान्यत्र निबद्धानि कलाभिश्छादितानि च । अस्थीन्या  
लम्बनं कृत्वानशीर्यते पतन्ति वा ॥

अर्थ—जैसे वृक्ष भीतर रहनेवाले सारके आश्रयसे खड़े रहते हैं, उसी प्रकार देहमें देहके सारभूत हड्डियोंके द्वारा यह मनुष्य का देह खड़ा हुआ है । त्वचा और मांस आदिके नष्टहोनेपर हड्डियों का नाश नहीं होताहै । ये देहधारियोंके देहमें सारभूतहै, कलाच्छादित मांससमूहसे हड्डी जहांकी तहां अवस्थितहैं और देहके बंधन अर्थात् नाडी, नस, कंडरा, बंधनी और स्नायु आदिसे बंधीहुईहैं. पूर्वोक्त पदार्थ हड्डियोंका आलंबन करेहुए हैं, इसीसे ये हड्डी नती विखरती हैं और न गिरतीहैं ।

कंकाल ।

त्वङ्मांसादिरहितः स्वस्थानस्थितः शरीरास्थिचयः  
कङ्कालसंज्ञो भवति । सच कङ्कालः षडङ्गो भवति यथा  
शाखाश्च तस्मै मध्यपंचमं षष्ठशिर इति ।

अर्थ—त्वचा मांस आदि करके रहित, स्वस्थान स्थित, देहकी हड्डियोंके समूहको कंकाल ऐसा कहते हैं । अर्थात् केवल हड्डीमात्रवाले देहको कंकाल जानना । वह कंकाल छः अंगोंमें विभक्त हैं । जैसे चार हाथ पैर, एक मध्यभाग, और एक मस्तक ।

हड्डियोंका विशेष वर्णन ।

सर्वाण्येवास्थीनि बहिरन्तः समन्तात्कलावृतानि सगर्भाणि च  
तेषां गर्भाः पीता भस्त्रे हविशेषेण पूर्णाः समज्जेत्यभिधीयते ।  
अस्थ्यांसन्धिषुकलानदृश्यते तेहितनुभिस्तरुणास्थिभिरावृताः  
सन्ति । अस्थिगात्राणि क्वचिद्वटुमन्ति क्वचिदुत्सेधवन्ति च ।

अर्थ—संपूर्ण हड्डी बाहर भीतर से कला अर्थात् झिल्ली द्वारा ढकी हुई हैं । और हड्डियों के भीतर पीले रंगकी चिकनाई भरी हुई है. उसीको मज्जा ऐसे कहते हैं । हड्डीकी संधियोंमें झिल्ली नहीं है । परन्तु संधिस्थान पतली उपास्थियोंसे ढका हुआ है । कोई हड्डी गट्टेके सदृश नीची है । और कोई हड्डी ऊंची प्रतीत होती है ।

अस्थियोंके पांचप्रकार ।

तान्यस्थीनिपंचविधानिभवन्ति । तद्यथा । अनुकपालनलकासम  
गात्ररुचकसंज्ञकानि । कैश्चित्कपालरुचकतरुणवलयनलकसंज्ञा  
निपंचविधान्युच्यन्तेतत्रवल्यादीनामण्वादिष्वन्तर्भावइत्यभेदः  
सुकोमलास्थीनितरुणसंज्ञामुपास्थिसंज्ञांवाल्भन्ते ।

अर्थ—ए संपूर्ण हड्डी पांच भागोंमें विभक्त हैं; जैसे अण्वस्थि, कपालास्थि, नलकास्थि, असमगात्रास्थि और रुचकास्थि. कोई कोई आचार्य कपाल, रुचक, तरुण, वलय और नलकसंज्ञक पांच प्रकार हड्डीके कहते हैं, तिनमें वलयादि अस्थि अण्वस्थि अर्थात् क्षुद्रास्थिके अन्तरगत मानते हैं, सुतरां उभयमतोंमें विशेष भेद नहीं है । और अतिकोमल हड्डियों को तरुणास्थि अथवा उपास्थि कहते हैं ।

अबइनपंचविधअस्थियोंका पृथक् २ वर्णन.

अन्वस्थीनि ।

देहस्यदृढान्याचलान्यङ्गानिअन्वस्थिभिर्विनिर्मिता-  
निमणिबन्धगुल्फादिषुतान्येवस्थितानि ।

अर्थ—शरीरके मध्यमें दृढ़ और अचल अंग सब अण्वस्थि समूहद्वारा बने हैं । मणिबंध तथा गुल्फ आदिमें यही अण्वस्थि हैं ।

कपालास्थीनि ।

देहस्यास्थिमयविवराणिकपालास्थिभिर्निर्मितानितानिप्रशस्ता  
कृतीनि । करोटिबस्त्याद्यङ्गेषुकपालास्थीनिसन्ति ।

अर्थ—देहके अस्थिमय विवर ( गट्टे ) समग्र कपालास्थि द्वारा बने हुए हैं ये सुन्दर आकृतिवाली है । करोटि ( मस्तक की हड्डी ) और बस्तीआदि अंगोंमें कपालास्थि हैं ।

नलकास्थीनि ।

नलकास्थीनिनलवत्सुषिराणिसुदीर्घाणिचतानिशाखा  
स्ववस्थितानि ।

अर्थ—नलकास्थि समूह नलके सदृश छिद्रवाले और लंबे हैं । ये भुजा और पैरों-में विद्यमान हैं ।

असमगात्रास्थीनि ।

असमगात्राणामस्थ्रानाम्नैवाकृतिर्व्याख्याता कशे-  
रुकाशंखास्थिप्रभृतीन्यसमगात्राणि ॥

अर्थ—असमगात्रास्थियोंकी आकृति नामानुसार कही है अर्थात् इनका कोई अंश लंबा, कोई अंश छोटा, कोई मोटा, कोई अंश पतला है । कशेरुका(पीठकावांस ) शंख ( कनपटी ) आदि की हड्डी असमगात्रास्थि कहलाती हैं ।

रुचकानि ।

दशनारुचकानिस्युश्चतुर्धातिभवन्तिहि । छेदनाः शौवनाद्वचग्राः  
पेषणास्तेतुसंख्यया ॥ अष्टौचत्वारश्चाष्टौहितस्तुद्रादशस्मृताः।  
दन्तानांपतनंजन्मपुनः पातेत्वसंभवः ॥

अर्थ—सब दांतोंको रुचक कहते हैं । ए चारप्रकारके हैं, जैसे कि छेदन, शौवन, द्वचग्र और पेषण. छेदन दांतऊपरकी पंक्तिमें ४ और नीचेकी पंक्तिमें ४ हैं । शौवन दांतऊपर २ और नीचे २ हैं । द्वचग्रदांतऊपर ४ और नीचे ४ हैं । तथा पेषण दांतऊपर ६ और नीचे ६ हैं । सबमिलकर ३२ हैं । बाल्य अवस्थामें प्रगट हुए दांत यथाकालमें गिरजाते हैं । फिर दूसरे स्थायी (ठहरनेवाले) दांत प्रगट होते हैं । एकस्थायी दांतोंके गिरनेके पश्चात् फिर दांत नहीं आते हैं ।

यूनानी वैद्य कहते हैं, कि दांत हड्डीकी जातिमें से हैं. क्यों कि कठोर और बेहरकत हैं । इसीसे इनके काटनेसे कष्ट नहीं होता. परंतु किसी २ की यह संमति है कि ये दांत पट्टेकी जातिमेंसे हैं । क्योंकि इनमें शरदी गरमी असर करती है ।

आगेके ४ दांत छेदनकहाते हैं, उनके ओर पास जो दांत हैं उनको शौवन ( खूंटा ) कहते हैं । और इनके पासवाले दांतोंको द्वचग्र अर्थात् इनके ऊपरके दोभाग उठेहुए हैं इसीसे इनको द्वचग्रकहाते हैं । और इनके पास जो चारदांत हैं उनको पेषण अर्थात् डाढाकहाते हैं । और संस्कृतमें इनको दंष्ट्रा कहते हैं । फारसीमें, सनाया, रवाईतान, नावान, और अजरासकहाते हैं. सनाया और रवाई तानकाटनेकेवास्ते हैं, और नावानवास्ते चवानेके हैं; और अजरासवास्तेदवानेके हैं, और दांतोंकी जड़की बहुत बारीकहै वेवेजाबडेकेछिद्रोंमें गठीहुई है । और प्रत्येकछिद्रके चारोंतरफ गोल मंडल है, कि दांतोंपर टकेरइनेसे टढरहाते हैं, उनको मसूडे कहते हैं ।

अथास्थिसंख्या ।

त्रिषष्टीन्यस्थिशतानिवेदवादिनोभाषन्ते ।

अर्थ—अस्थि ( हड्डी ) तीनसौसाठ ३६० हैं ऐसे आयुर्वेदवादीकहतेहैं ।

शल्यतंत्रे त्रीण्येवास्थिशतानि । तेषांविंशमधिकंशतंशाखासु ।

सप्तदशोत्तरंश्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरः सुग्रीवांप्रत्यूर्ध्वत्रिषष्टिः ।

अर्थ—शल्यतंत्रमेंअस्थी ३०० तीनसौकहीहैं, तिनमें १२० हाथपैरोंमें तथा ११७ कमरपार्श्व ( पसवाडें ) उदर उर इन्होंमें, और नाडसैलेकर ऊपरके भागमें ६३ ऐसे सबहड्डी ३०० हुई ।

शाखागतहड्डीयोंकोकहते हैं ।

एकैकस्यांपादांगुल्यांत्रिणितानिपंचदश तलगुल्फकूर्चसंश्रिता  
निदश पाष्णाविकेजंधायांद्विजानुन्येकमूराविति । त्रिंशदेवमेक  
स्मिन् सक्थीनिभवन्ति । एतेनेतरसक्थिबाहुचव्याख्यातौ ।

अर्थ—पैरकी एक एक उंगली में तीन तीन हड्डीहैं, सबमिलकर १५ हुई, पादतल ( तरुआ ) गुल्फ ( टकना ) कूर्चक ( पैरकापिछलाभाग ) इनमें १० हैं, पाष्णी ( एडी ) में १ जंघा ( पीडरी ) में २ जानु ( घोटू ) में १ और ऊरु ( जाँघ ) में १ हड्डीहैं ऐसेएकसक्थी ( पैर ) में ३० हड्डी हुई और दोनों पैरोंकी मिलानेसे ६० होती है, और दोनोंहाथोंकीभी ६० होतीहैं, ऐसे दोनोंहाथपैरोंकीसंख्या-मिलानेसे १२० होती हैं ।

श्रोण्यादिगतहड्डीयोंकोकहतेहैं ।

श्रोण्यांपंचतेषांभगगुदनितंबेषुचत्वारित्रिकसंश्रित  
मेकंपार्श्वेषट्त्रिंशदेकस्मिन्द्वितीयेत्येवंपृष्ठेत्रिंशदष्टा  
वुरसिद्वेअक्षकसंज्ञे ।

अर्थ—कमरमें ५ हड्डीहैं, ( तिनमेंभगऔरलिंगमें १ नितंब अर्थात् कूलेन्में २ गुदामें १ और त्रिकस्थानमें १ हड्डीहैं ऐसे ५ हुई ) एकपार्श्व ( पांसूअथवाकूख ) में ३६ उसीप्रकार दूसरीपांसूमें ३६ और पीठमें ३० और उर ( वक्षस्थल ) में ८ और अक्षकसंज्ञककी २ हड्डीहैं, ऐसे कुलश्रोण्यादिहड्डीयोंकी संख्यामिलानेसे ११७ होतीहै ।

श्रीबोर्ध्वगतहड्डियोंकोकहतेहैं ।

श्रीवायांनवकण्ठनाड्यांचत्वारिद्रेहनोः दन्तानां  
द्वात्रिंशत्नासायांत्रीणि एकंतालुनिगण्डकर्णशंखे  
ष्वकैकंषट्शिरसि ।

अर्थ—श्रीवा ( नाड ) में ९ कंठकी नाडी में ४ ठोडी में २, दंतसंबन्धी हड्डी ३२  
नाकमें ३ तालुओं में १ गालों में २, कानों में २, कनपटीन्में २ और मस्तकमें  
६ हड्डी हैं ऐसे सब मिलकर ६३ त्रेसठ हड्डी हैं ।

मतांतरसेहड्डियोंकीसंख्या.

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांत्रीणित्रीणिअन्यत्राङ्गुष्ठात् अङ्गुष्ठेद्रे  
तानिचतुर्दश प्रपदेपंचतान्यग्रतोऽङ्गुलीनामूलास्थिखण्डैः  
पंचभिर्मिलितानि । तेषांकतिपयानिगुल्फसन्धिपर्यन्तंवि  
स्तृतानि गुल्फेसप्त । जंघायांद्रेजानुन्येकम् । एकमूराविति ।  
त्रिंशदेवमेकस्मिन्सक्त्रिभ्रभवन्ति द्वयोः सक्त्रोरुपरिवास्ति  
मुभयतोद्वेश्रोण्यास्थिनीस्तः।अनयोरग्रभागवौपास्थिकास्थि  
संज्ञालभेते एतेनेतरसक्त्रिव्याख्यातम् ।

अर्थ—अंगूठे को त्यागकर अन्य चारउंगलियोंमेंतीन तीन हड्डीहैं, और अंगूठेमें२  
हड्डी हैं, ऐसे पांचोउंगलियों में १४ हुई, पैरमें ५ हड्डी हैं । इन प्रत्येकके अग्रभाग  
यथाक्रम पांचोउंगलियोंके मूल पर्वास्थियोंसे मिलेहुएहैं । और ये कितनीएक गुल्फ  
संधियों से मिलेहुए हैं ।

गुल्फ ( टकना ) में ७ हड्डी हैं, जंघा ( पीडली ) में २ जानू ( घोटू ) में १ ऊरू  
( जांघ ) में १ हड्डीहैं, ऐसे प्रत्येक पैरमें ३० हड्डीहैं । दोनों पैरोंके ऊपर बस्तीके  
दोनों पार्श्वों में एक एक श्रोणास्थि है । इन दोनोंहड्डियों के अग्रभागको उपास्थि-  
कास्थि अर्थात् मेदू वा योनिसंपृक्तअस्थि कहते हैं । श्रोणास्थि मिलाकर गणना करने-  
से प्रत्येक पैरों में ३१ हड्डी होती हैं ।

ऊर्ध्वशाखहड्डीयोंकीसंख्या ।

पादाङ्गुलिवत्कराङ्गुलिषुचतुर्दश । प्रपदवत्करभेपंच मणिबन्धे  
अष्टौ।प्रकोष्ठे द्वे प्रगण्डेएकम् ।त्रिंशदेवमेकस्मिन्वाहावस्थीनिभव

न्ति । प्रगण्डास्त्रउपरितएकमंसास्थि । अंसास्थितउरोऽस्थि  
पर्यंतविस्तृतंजञ्वस्थि । एतेनेतरबाहुव्याख्यातः ॥

अर्थ—पैरकी उंगलियों के सदृश हाथकी भी पांचों उंगलियोंमें १४ हड्डी हैं, और पैरके सदृश करभ ( हथेली ) में ५ हड्डी हैं, मणिबंध ( पहुंचे ) में ८ हड्डी हैं, प्रकोष्ठ ( कलाई ) में २ प्रगंड ( बाजू ) में १ हड्डी है, ऐसे प्रत्येक भुजामें ३० हड्डी हैं, प्रगंडास्थिके ऊपर १ अंसास्थि ( कंधेकी हड्डी ) है अंसास्थिसे लेकर छातीकी हड्डी पर्यंत वक्षस्थलके ऊपर और सन्मुख भागमें एक एक जञ्वस्थि है । ( कंधेकी संधिको जञ्जु कहते हैं ) अंसास्थि और जञ्वस्थिको मिलाकर गणना करनेसे एक एक भुजामें ३२ बत्तीस हड्डी होती हैं ।

उरोस्थ्येकमुभयतो जञ्जुसंयुतंसत्क्रमेणोदराभिमुख  
मागतम् निम्नोऽन्तोऽस्याङ्गुल्यादिभिरनुभूयते ।

अर्थ—उरोस्थि अर्थात् वक्षोस्थि १ है, यह दोनों पसवाडेके दोनों जञ्जु ( कंधे की संधियों ) से मिलेहुये अस्थि क्रमसे उदराभिमुख होकर नीचेको आई है, इन्हींके नीचेकाभाग उंगली आदिद्वारा करके अनुभव होता है । यह उपास्थि अर्थात् उपास्थिसंबंधी हड्डियोंका स्वरूप जानना ।

मध्यभागस्थितहड्डियोंकास्वरूप ।

पृष्ठवंशःपरस्परामिलितैःकशेरुकाभिधैःषड्विंशत्यास्थिखण्डै  
निर्मितानि सहिग्रीवामारभ्य क्रमेण निम्नाभिमुखोगुह्य  
पश्चाद्भागपर्यन्तमागतः । निम्नखण्डंत्रिकनाम्नाभिधीयते ।

अर्थ—पिछाडीका वांस परस्पर २६ अस्थि खंडों से निर्मित तथा ग्रीवा ( नाड ) से लेकर क्रमसे निम्नाभिमुख होकर गुह्य देश ( गुदालिंग ) के पश्चात् भाग पर्यंत आया है । इन २६ हड्डीके टुकड़ोंके प्रत्येकका नाम कशेरुका है । सबसँ नीचेके कशेरुकाका नाम बहुधा त्रिकास्थि है ।

पाशुओंकावर्णन ।

एकैकस्मिन्पार्श्वेद्वादशपर्शुकाःपृष्ठवंशतोधनुर्वद्वक्रादेहस्य स  
न्मुखभागमागतास्तासामूर्द्धस्थाःसप्तउरोऽस्थ्रामिलिताः ।  
शेषाःपंचसांमुख्येनकेनाप्यस्थ्रामिलिताः । प्रथमामारभ्यं  
अष्टमपर्शुकांयावत्क्रमेणदैर्घ्यवृद्धिस्ततःक्रमशोहानिः । एकै

कस्याः पशुकायाअग्रतएकैकंतरुणास्थिविद्यते तत्रोर्ध्वस्था  
नांसप्तानां तरुणास्थीनिउरोऽस्थ्रातन्निम्नगतानांतिमृणां त्री  
णिपरस्परं मिलितानि शेषयोर्द्वयोर्द्वैनकेनापिमिलिते ।

अर्थ—शरीरके प्रत्येक पार्श्वमें १२ पशुका अर्थात् पंजरास्थिहैं, ये प्रत्येक पशुका पीठके वांससैं लेकर धनुषके समान टेढीहो देहके सन्मुखभाग पर्यंत चलीगई है । तिनमें ऊपर की ७ पशुका वक्षस्थलकी हड्डीसैं जायकर मिलगई हैं । और नीचेकी ५ पांशु देहकी सन्मुखवाली किसी हड्डीसैं नहीं मिली, पहलीसैं लेकर अष्टम पर्यंत जो पांशुहै वो क्रमसैं लंबी ( अर्थात् पहलीसैं दूसरी दूसरीसैं तीसरी अधिकलंबीहै. ) और उन आठपशुकाओंके नीचे जो ४ पशुका हैं, वो क्रमसैं छोटी होगई है, प्रत्येक पशुकाके आगे एक एक तरुणास्थीहै, तिनमें ऊपरकी ७ तरुणास्थि वक्षस्थलकी हड्डीसैं मिल रही हैं और उन सातके नीचे जो ३ तरुणास्थी हैं, वो परस्पर मिलरही हैं, बाकी जो २ पशुका है उनकी जो २ तरुणास्थी है वो किसी सैं नहीं मिली किंतु पृथक् है ।

शिरकीहड्डीयोंकावर्णन ।

करोटावष्टास्थीनिसन्तियथा । एकंललाटेद्वयोःपार्श्वयोरूर्ध्वतः  
परस्परमिलितेद्वेऊर्ध्वशिरःपार्श्वास्थिनी । तन्निम्नतोद्वयोःपार्श्व  
योर्द्वैशंखास्थिनी । पश्चादेकंपृष्ठवंशस्योर्ध्वकशेरुकोपरिस्थितम् ।  
करोटिमूलेऽग्रतःसौषिरास्थि । बहुभिः सुषिरैर्व्याप्तत्वादस्यसौ  
षिरसंज्ञता । करोटिमूले पश्चिमाएकम् । एतच्छेषैःसप्तभिर्मिलित  
म् । एवंकरोटावष्टास्थीनिपूर्यतेकरोटिगह्वरंमस्तिष्कस्यस्थानम् ।

अर्थ—करोटि (मस्तक )में आठ हड्डीहैं, जैसे १ ललाटमें, दोनो पार्श्वोंके ऊपर २ ऊर्ध्व शिरःपार्श्वास्थि है, ए ऊपरसैं परस्पर मिल रही हैं, ऊर्ध्वशिरःपार्श्वास्थि दोनोंके नीचे दोनो पार्श्वोंमें २ शंखास्थि ( कनपटीकी हड्डी ) है पिछाडी १ हड्डी है, ऊर्ध्व पृष्ठकशेरुकाके ऊपर स्थित १ हड्डीहै, यह करोटिके मूलमें और आगेहैं इसको सौषिरास्थि कहतेहैं. यह अनेक छिद्रों करके व्याप्त होनेसैं इसको सौषिर संज्ञक कहतेहैं । करोटिके मूल और पिछाडीमें १ हड्डीहै, यह उक्त ७ हड्डीयोंसैं मिली-डूई है. ऐसे मस्तकमें आठ हड्डी गिनी जातीहैं, यह करोटि गह्वर मस्तिष्क ( घृताकारचरबी ) के रहनेका स्थान है ।

## मुख ( चेहरे ) का वर्णन

वदनमण्डलेचतुर्दशास्थीनिसन्ति । तथाद्वेनासास्थिनीवदनमण्डलस्योर्ध्वमध्यतोद्वयोः पार्श्वयोः स्थितेपरस्परमिलितेच । नेत्रविवरस्याभ्यन्तरमभितोद्वेतन्वस्थिनी । नासारन्ध्रव्यवधायिन्याभित्तेः पश्चादेकम् नासिकाधश्छिद्रतउपरिद्वेउष्णीषास्थिनी । तालुनिद्वे । द्वेगण्डयोः । द्वेऊर्ध्वहन्वस्थिनीवदनमण्डलमुभयतोधिष्ठिते । दन्तवेष्टीयबृहद्गृह्वरवतीच । एकमधोहन्वस्थिनिम्नतोवदनस्यावस्थितम् । अत्रैवावाचीदन्तपंक्तिस्तिष्ठति ।

अर्थ—वदनमंडल अर्थात् चेहरेमें १४ हड्डी हैं । जैसे नासिकाकी २ हड्डी वदनमंडलके ऊर्ध्वभागमें और मध्यांशमें दोनों पार्श्वोंमें स्थित तथा परस्पर मिली-हुईहैं । नेत्रोंकेगड्ढोंके भीतर सन्मुखमें २ तन्वस्थि अर्थात् पतली हड्डी है । नासारन्ध्रके व्यवधान कर्ता भित्ती ( भीत ) के पिछाडी १ हड्डी है नासिकाके नीचेके छिद्रोंके ऊपर २ उष्णीषास्थि हैं अर्थात् किरीटके आकार होनेसँ इसको उष्णीषास्थिकहतेहैं, तालुमें २ गालोंमें २ ऊपरकी हन्वस्थि २ है ये मुखमंडलके दोनों पार्श्वोंमें स्थित तथा ऊर्ध्वदंतवेष्टीय बृहत्गृह्वर संयुक्त है । नीचे १ हन्वस्थि है, यह मुखमंडलके अधोभागमें स्थितहै । इसमें नीचेकी दंतपंक्तिहै ।

कर्ण ।

एकैकस्यकर्णस्याभ्यन्तरतस्त्रीणि त्रीणिक्षुद्रास्थीनिसन्ति

अर्थ—एकएककानके भीतर तीन तीन क्षुद्रास्थिहैं ।

जिह्वा ।

जिह्वामूलात्पश्चादेकंक्षुद्रास्थिनकेनाप्यस्थानसंयुतं ।

पेशीभिरेवधृतंतिष्ठति ॥

अर्थ—जिह्वा मूलके पिछाडी १ क्षुद्रास्थिहै । यह किसी हड्डीसँमिलीहुईनहीं है, यह पेशियोंने धारण कररक्खीहै ।

अङ्गुष्ठमूलादिषुकलायपरिमण्डलानिकतिपयान्यणु

मण्डलास्थीनिसन्तिसंख्यातश्चैतानिप्रायशोष्टौ ।

अर्थ—अंगुष्ठमूल आदिस्थानमें कितनी एक अणुमंडलास्थिहैं, इनकी आकृती प्रायः मटरके समान है. इनकी संख्या सब मिलकर ८ है ।

अतःषट्चत्वारिंशदधिकद्विंशतसंख्यास्थिमयोऽयम् ।

नरकङ्कालइतिभगवतऔरभ्रस्यमतम् यथा  
सक्थोर्द्विषष्टिरस्थानिबाह्वोस्तुद्वयधिकानिच ।

उरस्येकंपृष्ठवंशेषड्विंशतिरतः परम् ।

पर्शुकाः पार्श्वयोर्ज्ञेयाश्चतुर्विंशतिसंमिताः ।

अस्थीन्यष्टौकरोटौचवदनेऽथचतुर्दश ।

कर्णयोःषट्त्थैकंचरसनामूलसंश्रितम् ।

अष्टाणुमण्डलानिस्युर्द्वात्रिंशद्दशनामताः ।

एतेभ्योऽतिरिक्ताप्यपिकतिपयानिक्षुप्रास्थीकङ्कालेदृश्यन्ते ।

अर्थ—अतएव २४६ हड्डियोंमें \* निर्मित नरकंकाल अर्थात् मनुष्यका अस्थिपंजर है. यह महर्षि औरभ्रका मत है, अब उसको स्पष्ट दिखाते हैं. जैसें

सक्थि ( पैर ) दोनों में	६२	करोटि में	८
भुजादोनों में	६४	मुखमंडलमें	१४
वक्षस्थल में	१	दोनोंकानोंमें	६
पृष्ठवंश में	२६	जिह्वामूलमें	१
पार्श्वद्वय में	२४	अनुमंडलास्थि	८
		दांत	३२

२४६

८ नम्बरके चित्रोंको देखो ।

अबहड्डिकी संधियोंको कहते हैं.

उभयोर्मीलनंसन्धिरस्थोःसद्विविधोमतःश्रेष्ठावान्स्थिरसंधिश्च  
घावांश्चपुनर्द्विधा । सम्यक्चेष्टोऽल्पचेष्टश्चतरुणास्थिभिरादिमः।

\* किसी आचार्यके मतसें हड्डी ३६० हैं. किसीके मतसें २४८ किसीके मतमें २५३ हड्डीमानी हैं. परंतु सुश्रुतमें जो ३०० हड्डी लिखी हैं, वो असत्य नहीं हैं किंतु बहु-तसी हड्डी अतिनम्र और पतलीनको और आचार्योंने उनकी हड्डीयोंमें नहीं गणना करी. इन सबका मतांतर भेद अर्थात् अंग्रेजी डाक्टर युनानी वैद्य, और अपने संस्कृत-का परस्पर विरोध आगे निबंधमें ( अस्थि ) शब्दकीव्याख्यामें लिखेगे.

संयुतःकलयास्नेहस्त्राविण्याचसमावृतः । तरुणास्थिभिःसंलितैः  
 रज्जुभिर्वासमावृतैः । अस्थिप्रान्तैःवृतोन्त्यश्चस्थिरंतुकेवलास्थि  
 भिः । शाखासुहन्वोःकत्यांचतथाप्यूर्ध्वगयोर्द्वयोः । कशेर्वोर्जत्रुणोश्चै  
 वसम्यक्चेष्टान्तसन्धयः । अल्पचेष्टाःकशेरूणां शेषाणांपरिकीर्ति  
 ताः । इतरेसंधयः सर्वेस्थिरामुनिभिरीरिताः ।

अर्थ—दो हड्डियों के परस्पर मिलने के स्थानको संधि कहते हैं । ये संधि दो प्रकारकी हैं, जैसे एक चेष्टावान् संधि, दुसरी स्थिरसंधि, अब कहतेहैं कि चेष्टावान् संधिके भी दो भेद हैं अर्थात् एक विशेष चेष्टावाली और दूसरी अल्पचेष्टावान् संधि है । तिनमें प्रथम अर्थात् विशेष चेष्टावान् संधि उपास्थि ( तरुणहड्डी ) संयुक्त तथा स्नेहस्त्रवणशील कला ( झिल्ली ) ओंसे सर्वत्र लिपटीहुई है । शेष जो सन्धि अर्थात् अल्पचेष्टावान् जो सन्धिहै वो उपास्थियों से लिप्त तथा रज्जू करके लिपटीहुई है, और अस्थिप्रान्तद्वारानिर्मित है । और स्थिरसंधि जो है वो सब केवल परस्पर अस्थिप्रान्तयोगकरके बनी हुईहै, शाखाचतुष्टय ( हाथपैर ) हनुद्वय ( दोनोंजावडे ) कमरके ऊपर रहनेवाले कशेरुकाद्वय तथा जत्रु इनमें विशेषचेष्टावाली सन्धिहै, और बाकी कशेरुका आदि समस्तोंमें अल्पचेष्टावान् संधिहै, इनसे भिन्न जितनी संधिहैं उनको स्थिरसंधि कहते हैं ।

संधियोंकीसंख्या ।

एकैकस्यां पादाङ्गुल्यांत्रयस्त्रयोद्भावद्गुष्ठे ते चतुर्दश  
 जानुगुल्फवक्षणेष्वेकैक एवं सप्तदशैकस्मिन्सक्थी  
 निभवन्ति एतेनेतरसक्थि बाहूच व्याख्यातौ

अर्थ—एक एक पैरकी उंगली में तीन तीन और अंगूठे में दो ऐसे मिलकर १४ तथा घोटू एडी और पेडू इनमें एकएक ऐसे सब मिलकर एक पैरमें १७ संधी हैं, इसीप्रकार दूसरे पैरमें और दोनों हाथोंमें भी सत्रह सत्रह सन्धी जाननी ।

मध्यभागऔरग्रीवाआदिकीसंधि ।

त्रयःकटीकपालेषुचतुर्विंशतिःपृष्ठवंशेतावन्तएवपार्श्वयोरुरस्य-  
 श्रौतावन्त एवग्रीवायां त्रयःकण्ठेनाडीषु हृदयक्लोमफुफ्फुसेनि  
 बद्धास्वष्टादशदंतपरिमिता दंतमूले एकःकाकलके नासायांच द्वौ

वर्त्ममण्डलौनेत्राश्रयौ गण्ड कर्ण शंखेष्वेकैकाद्रौ हनुसंधी द्रावु  
परिष्ठाद्भ्रुवोः शंखयोश्च पंच शिरःकपालेष्वेकोमृधि ।

अर्थ—कमर और कपालास्थिके बीच ३ संधी हैं, पीठके वांसमें २४ संधीहैं, दोनों कूखोंमें २४ तथा उरमें आठ < ए सब मिलकर मध्यप्रदेश में ५९ संधीहुईं. ग्रीवा में < आठ तथा कंठमें ३ तीन, “ हृदयक्लोमनिबद्धामुनाडीषु” अर्थात् अन्न और जलके वहनेवाली हृदय और क्लोम इनसे बंधीहुई है. इसका स्पष्टार्थ यह है कि, गलनाडी और कंठनाडी इनमें १< अठारह संधीहैं, दंतमूलसंधि ३२ तथा काकलक-में ( गलमणि अर्थात् जिस्को घंटिका कहते हैं ) उसमें १ एक नासिकाकी हड्डी में तथा नेत्रकोशसंबंधी तरुणास्थिमें २ गाल कान और कनपटी ए तीन जोड़ोंको मिलाने से ६ ठोड़ी में २ भौंहके ऊपर अंगमें २ और मस्तकसंबन्धी कपालास्थि में ५ तथा १ मस्तक में मिलकर ५३ सर्व मिलकर २१० संधि होती हैं ।

उक्तसंधियोंकीगणना ।

कथितादेहिनांदेहेसन्धयोद्वेशतेदश ।

शाखासुतेऽष्टषष्टिश्चकोष्ठेत्वेकोनषष्टिकाः ।

ग्रीवाया ऊर्ध्वदेशेतुत्र्यशीतिस्तेप्रकीर्त्तिताः ।

अर्थ—मनुष्योंकी देहमें २१० सन्धिहैं, तिनमें हाथ पैरमें ६< कोष्ठ अर्थात् मध्यभागमें ५९ और ग्रीवाआदि ऊपरके देशमें <३ संधी हैं ।

सन्धियोंके आठ भेद कहते हैं.

कोरोदूखलसामुद्राप्रतरानुन्नसेवनीवायसतुण्डमण्डलशंखावर्त्ता ।  
तेषामंगुलिमणिवन्धजानुगुल्फकूर्परेषुकोराःसंधयः । कक्षवंक्षण  
दशनेषुउदूखलाः । अंसपीठगुदपादनितंबेषुसामुद्राः । ग्रीवापृष्ठ  
वंशयोःप्रतराः । शिरःकटिकपालेषुनुन्नसेवनी हन्वोस्तुवायस-  
तुंडाः । कंठहृदयनेत्रक्लोमनाडीषुमण्डलाः । श्रोत्रशृंगाटकेषुशं  
खावर्त्ताः ।

अर्थ—कोर, उदूखल, सामुद्र, प्रतर, नुन्नसेवनी, वायसतुंड, मंडल और शंखा-वर्त्त ये नामवाली संधी आठ प्रकारकी हैं. तिनमें उंगली, पडुचा, घोदू, एडी और कोहनी इनमें कोर ( गट्टा अथवा कली ) के सदृश संधी हैं । काख, पेडू, दांत, इनमें उदूखल ( ओखली ) के सदृश संधीहैं. तथा कंधा, पीठ, गुदा, पैर और कूले-

न्मे सामुद्र ( संपुट ) के आकार संधिहै । ग्रीवा, पीठकावांस इनमें प्रतर ( नौका ) के सदृश संधिहै । और शिर, कमर, कपाल इनमें नुन्नसेवनी ( वर्तनकी संधिके समान अथवा सिलेहुए ) के सदृश संधिहै । और ठोड़ीके दोनोंतरफ जो संधिहै वो वायसतुंड अर्थात् कौआकी चोंचके समानहैं । कंठ, हृदय, नेत्र, और क्लोमनाडियोंमें मंडलाकृति अर्थात् गोलसंधिहै । कान और शृंगाटक ( कसेरुक ) इनमें शंखके आंटेके समान संधिहैं ।

अस्त्रांतुसंधयोद्येतेकेवलाःपरिकीर्त्तिताः ।

पेशीस्नायुशिराणांतुसंधिसंख्यानविद्यते ॥

अर्थ—ये जो ऊपरसंधिकही हैं सो ये केवल हड्डियोंकी संधियोंका वर्णन करा है, बाकीपेशी, स्नायु और शिरा आदि संधियोंकी संख्या नहीं है अर्थात् इनकी संख्या अनंत है.

अथस्नायवः ।

स्नायवःसूत्रवत्सूक्ष्माःशुभ्रानिखिलदेहगाः ॥ कारणानिचेतना  
नांसदाचैतन्यसाधने ॥ सुखदुःखावबोधेचप्रवृत्तौचनिवर्तने ॥  
रूपगंधरसस्पर्शशब्दज्ञानेचहेतवः॥निखिलास्ताश्चसंजातामस्ति  
ष्कात्पृष्ठमज्जनः ॥ शिरोमंडलमेवाद्याः शेषाः शेषाङ्ग माश्रिताः॥  
तेषुतेषुचभावेषुदेहमाप्तेषुवस्त्रसाः । कम्पमानाः कम्पयन्तेमस्तुलु  
ङ्गञ्चतत्क्षणात् । तस्यविकम्पभेदेनज्ञानभेदोभवेद्बहुः । अतोमस्ति  
ष्कमेवैकोज्ञानहेतुः प्रकीर्त्तितः । करोटिगह्वरान्तस्तद्वसेदाज्यसु  
पेलवम् । सुशुभ्रंचासमतलमाभिन्नंचद्विधोपरि ॥

अर्थ—सर्वस्नायु सूत्रके सदृश सूक्ष्म और सपेद रंगवाली हैं; तथा ये सर्व देहमें व्याप्त हैं और चेतन ( जीवोंके ) चैतन्य करनेकी कारण स्वरूप हैं; सुखदुःखज्ञान, कार्यकी प्रवृत्ति और निवृत्ति, तथा रूप, रस, गंध, स्पर्श, और शब्दज्ञानके होनेमें कारणभूत हैं । ये सर्व स्नायु मस्तिष्क तथा पृष्ठवंशकी मज्जासँ उत्पन्न हुई हैं, मस्तिष्कसँ जो स्नायु प्रगटहुई हैं वो मस्तकमें रहती हैं, और पृष्ठमज्जासँ प्रगटस्नायु हाथ, पैर और उदर आदिमें रहती हैं । अनेक प्रकारके भाव देहमें प्राप्त होनेसँ उसजगे रहनेवाली स्नायुओंके कंपित होनेसँ वो स्नायु तत्क्षण मस्तिष्कको कंपाती हैं, उस मस्तिष्कके कंपनेके भेद करके पृथक् पृथक् ज्ञानकी उत्पत्ति होतीहै । इसी-सँ मस्तिष्कही केवल सर्वज्ञान होनेका हेतुहै । करोटिगह्वरके भीतर मस्तिष्क रहता है,

( सुन्दर शुभ्रवर्ण और घृतकेतुल्य अतीव कोमल पदार्थको मस्तिष्क कहते हैं ) यह मस्तिष्क नीचेके भागमें असमतल और ऊपर दो भागोंमें बटा हुआ है । ९ नंबरका चित्र देखो ।

नेत्रेरूपवताबिम्बपतनान्नेत्रवस्त्रसाः । भावान्तरंमस्तुलुंगंनयन्तेत  
द्विदर्शनम् । पदार्थानांगन्धवतांगन्धाणूनांसमागमात् । नासास्थाः  
कुर्वतेतद्वत्तद्ग्राणंपरिकीर्तितम् । तथारसवतांचाणुसङ्गमाद्रसना  
श्रिताः । क्रियातांकुर्वतेतद्विरसनंचाभिधीयते । शीतोष्णादिगुणव  
तांद्रव्याणांत्वचिसङ्गमात् । तत्रस्थाः कर्मकुर्वंतितादृशंस्पर्शनंहि  
तत् । परस्परभिघातेनद्रव्याणामनिलस्तदा । तरङ्गवानभीहन्यात्  
कर्णातः श्रवणंततः । गत्यादिष्वपिकीर्त्यतेस्नायवोमुख्यहेतवः ।  
अथकिंबहुनोक्तेनजीवत्वंस्नायुसंभवम् । स्नायुनाशोभवेद्यस्मिन्नङ्गे  
तत्स्यान्मृतोपमम् । पक्षाघातादिरोगेषुकारणंतद्विधंमत् ।

अर्थ—नेत्रोंमें रूपवान् पदार्थका प्रतिबिंब पडनेसे सर्व नेत्रकी स्नायु मस्तिष्क-  
को भावांतर प्राप्त करती है; उसीको दर्शन अर्थात् देखना कहते हैं । उसी प्रकार  
गंधवान् पदार्थके गंधपरमाणु नाकमें जानेसे उस जगके रहनेवाली स्नायु मस्ति-  
ष्कको कंपितकरे तब गंधका ज्ञान होवे, इसीको घ्राण अर्थात् सूंघना कहते हैं । रस-  
वान् पदार्थके परमाणु रसना ( जीभ ) संयुक्त होकर उस जगे रहनेवाली स्नायु-  
द्वारा मस्तिष्कको कंपितकरे तब इस प्राणीको रसका ज्ञान होता है, शीत और गरमी  
संयुक्त पदार्थ सर्वत्वचाको स्पर्शकरे तब उस त्वचाके रहनेवाली स्नायु मस्तिष्कको  
कंपितकरे तब इस प्राणीको शीत और उष्णताका ज्ञान होता है । इसीको स्पर्श कहते  
हैं इसी प्रकार द्रव्यगणोंके परस्पर अभिघात करके पवन से तरंगविशेष उठे उस  
तरंगसे कानकी झिल्ली ताडितहो तब उस जगे रहनेवाली स्नायुगण मस्तिष्कको  
कंपितकरे तब इस प्राणीको शब्दज्ञान होता है, अतएव इन्द्रियजन्यज्ञानके होनेका  
मुख्य कारण स्नायु है । और चलने आदिकार्य विषयमेंभी मुख्य स्नायुगणही का-  
रण है । बहुत कहनेसे क्या है मनुष्यका जीवन स्नायुकरके हैं; जिस अंगकी स्नायु  
नष्ट हो जाती है वह अंग मरेके समान हो जाता है । इसीसे पक्ष घातादि ( लकवा-  
आदि ) पीडामेंभी केवल स्नायुनाश कारण जानना । १० नंबरका चित्र देखो ।

स्नायुसंख्या ।

नवस्नायुशतानितेषांशाखासुषट्शतानि

द्वेशतेत्रिंशच्चकोष्ठग्रीवायांप्रत्यूर्ध्वसप्ततिः ।

अर्थ—स्नायु ९०० हैं, तिनमें हाथपैरमें छःसौं ६०० हैं. मध्यप्रांतमें २३० हैं, और ग्रीवासैलेकर ऊपरके प्रदेशमें ७० हैं ।

हाथपैरकीस्नायुकहतेहैं ।

एकैकस्यांपादाद्गुल्यांषट्षट्चिताःतास्त्रिंशत्तावन्त्योनलकूर्पगु  
ल्फेषुतावंत्यएवजंघायांदशजानुनिचत्वारिंशदूरौदशवंक्षणे ।

अर्थ—प्रत्येक पैरकी उंगलीमें ६ हैं, सब मिकलर हुई ३०, नल, कूर्पर, गुल्फ इन-  
में ३० जंघामें ३० जानु ( घोटु ) में १०, ऊरूमें ४०, वंक्षणमें १०, सब मिला-  
नेसे एक पैरमें १५० स्नायु हुई, दोनोंमें ३०० और इसी प्रकार दोनों हाथोंकी  
मिलानेसे ६०० स्नायु होती हैं.

मध्यप्रान्तगतस्नायु ।

षष्टिःकट्यांमध्येअशीतिःपार्श्वयोःषष्टिरुरसित्रिंशत् ।

अर्थ—कमरमें ६० पीठमें ८० कूखमें ६० उरसंबंधी ३० सबमिलकर २३०  
होती हैं ।

ग्रीवासेलेकरऊपरकीस्नायु ।

षट्त्रिंशद्ग्रीवायांमूर्ध्निचतुस्त्रिंशत् ।

अर्थ—ग्रीवा ( नाड ) में ३६ मस्तकमें ३४ मिलकर ७० होती हैं; पूर्वोक्त सर्व-  
स्नायुमिलाने से ९०० स्नायु होती हैं. महास्नायुओंको कंडरा कहते हैं ।

चतुर्विधस्नायु ।

स्नायुश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तंतुसर्वनिबोधमे ।

प्रतानवत्योवृत्ताश्चपृथ्व्यश्चसुषिराःखलु ॥

प्रतानवत्यः शाखासुसर्वसंधिषु चाप्यथ ।

वृतास्तुकंडराः सर्वाविज्ञेयाः कुशलैरिह ॥

आमपक्वाशयात्तेषु बस्तौचसुषिराःखलु ।

पार्श्वोरसितथापृष्ठे पृथुलाश्चाशिरस्यथ ॥

अर्थ—स्नायु, चारप्रकारकीहै । प्रतानवती, वृत्त, पृथु और सुषिर । हाथपैरोंमें  
और संधियोंमें प्रतानवतीस्नायुहै । और जो वृत्तहै उनको कंडरा कहतेहैं । तथा  
आमाशय पक्वाशय और बस्तीमें सुषिर संज्ञकहैं । पसवाडोंमें छातीमें पीठ और  
शिरमें पृथुल संज्ञक स्नायु जाननी, स्नायुओंसे सर्वदेह बंधाहुआहै ।

इसविषयमेंदृष्टांत ।

नौर्यथाफलकास्तीर्णाबंधनैर्बहुभिर्युता ।

भारक्षमाभवेदाशुनृयुक्तासुसमाहिता ॥

एवमेवशरीरेस्मिन्त्यावंतःसंधयःस्मृताः ।

स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेनभारसहानराः ॥

अर्थ—जैसे नौका फलकोंसे व्याप्त और अनेक बँधनोंसे बंधीहुई। बोझाको सहनकरे हैं। और मनुष्य युक्त उत्तम तरनेका साधन होता है। उसीप्रकार इसदेहमें जितनी संधी हैं वो स्नायुओंके बँधी हैं इसीसे मनुष्य भारको सहन करसकताहै।

स्नायुप्रशंसा ।

नह्यस्थीनिनवापेक्ष्योनशिरानचसंधयः । व्यापादितास्तथाहन्यु  
र्यथास्नायुः शरीरिणः । यःस्नायून्प्रविजानातिबाह्यांश्चाभ्यं  
तरांस्तथा । सगूढशल्यमाहर्तुं देहात् शक्रोतिदेहिनाम् ।

अर्थ—जैसा स्नायु विकृत होनेसे मनुष्योंको प्राणोंका भय होता है। ऐसा हड्डी, पेशी, संधी इत्यादिक विकृत होनेसे होवे। तथा जिस मनुष्यको बाहर और भीतर की स्नायुओंका उत्तमरीतिसे भेद मालुम है, वह, देहमेंसे गुप्तशल्य ( कांटाआदि ) काढनेमें समर्थ है ऐसा जानना।

५०० पेशीन्कोकहतेहैं ।

पंचपेशीशतानि तासांचत्वारिशतानिशाखासुकोष्ठे ॥

षट्षष्टिः ग्रीवांप्रत्यूर्ध्वचतुस्त्रिंशत् ॥

अर्थ—परस्पर विभक्त ऐसे मांसावयव समूहोंको पेशीकहते हैं। वो ५०० पांचसौ हैं। तिनमें ४०० हाथ पैरों में, ६५ मध्यप्रदेश में, ३४ कंठसेलेकर ऊपरके भागमें हैं, परन्तु गयीआचार्य कहता है कि मध्यप्रदेश में ५० और ऊपरके भागमें ४०० पेशी हैं। परन्तु किसीआचार्यके मतसे सर्व ४०० पेशी हैं सो आगे लिखेंगे।

पेशियोंका पृथक् २ वर्णन ।

एकैकस्यांपादाद्गुल्यांतिस्रस्ताः पंचदश । दशप्रपदे पादोपरि  
कूर्चसंनिविष्टास्तावन्त्यएव । दशगुल्फतलयोः। गुल्फजान्वन्तरे  
विंशतिः । पंचजानुनि । विंशतिऊरौदशवंक्षणे शतमेवमेकस्मि-  
न्सक्थानिभवांति ।

अर्थ—एक एक पैरकी ऊंगलियोंमें ३ तीन तीन पेशी हैं । सब मिलकर १५ हुई, तथा पैरके अग्रभागमें १० और पैरके पृष्ठ भाग में १० गुल्फ और तल-वेमें १० गुल्फ और घोटूके मध्यमें २० घोटूमें ५ जांघों में २० वंक्षणमें १० ऐसे एक पैरमें कुल १०० पेशी होती हैं । इसीप्रकारदूसरे पैरमें और दोनों हाथोंमें मिलाने से ४०० पेशी होती हैं ।

मध्यप्रदेशकीपेशियोंकोकहते हैं ।

तिस्रःपायौएकामेद्रेसेवन्यांचापरेद्रेवृषणयोःस्फिजोःपंच । द्वेव  
स्तिशिरसि । पंचोदरेनाभ्यामेकापृष्ठोर्ध्वसन्निविष्टाःपंचपंचदीर्घाः  
षट्पार्श्वयोर्दशवक्षसिअक्षकांसौप्रतिसमंतात्सप्तद्रेहृदयामाशय-  
योः षट्यकृत्प्रीहोदुकेषु ।

अर्थ—गुदामें ३ तीन पेशी हैं, उन्हीं को त्रिवली कहते हैं । एक लिंगमें १ और १ एक शीवनीमें, २ अंडकोशों में, १ कमरमें, २ बस्तीके ऊपरले भागमें, उदरमें १ नाभिमें, १० पैरोंमें ऊर्ध्वरचित लंबी है । कूखमें ५, वक्षस्थलमें १० दो-नोंकंधे और अक्षकमें मिलकर ७ हृदय में तथा आमाशय में यकृत, ग्रीह, और उंदुक इन्हीं में ६ पेशी हैं, ऐसे सब मिलकर ६६ पेशी होतीहैं । परन्तु गयीआचार्य वृद्धवाग्भटके मतको आलंबन करके कोष्ठमें ६० पेशी और ऊर्ध्वप्रदेशमें ४० पेशी हैं ऐसे कहता है ।

ऊर्ध्वप्रदेशकी ३४ पेशियोंकोकहतेहैं ।

ग्रीवायांचतस्रः अष्टौहन्वोः एकैकाकाकलकगलयोः द्वेतालुनि  
एकाजिह्वायाद्रेओष्ठयोः द्वेनासायाद्रेनेत्रयोः गण्डयोश्चतस्रोद्रे  
कर्णयोश्चतस्रोऽललाटेएकाशिरसीति एवमेतानिपंचपेशीशतानि ।

अर्थ—नाडमें ४ पेशीहैं, ठोडीमें ८ काकलक ( काक ) में, गलेमें एकएक हैं, तालुएमें २ जिह्वामें १ होठोंमें २ नाकमें २ नेत्रोंमें २ दोनों गालोंमें चार, कानोंमें २ ललाटमें ४ मस्तकमें १ कुलजोडनेसे ३४ होतीहैं । सब मिलकर ५०० हुई-ये पेशी शिरा, स्नायु, अस्थि पर्व, संधी इनको धारण करती हैं । इसीसे शिरादिक बलवान् होकर सर्व देहको बल देती हैं ।

स्त्रियोंकेपेशी अधिककहते हैं ।

स्त्रीणांविंशत्यधिकास्तासांस्तनयोरेकैकस्मिन्पंचांचयौवनेतासां

**परिवृद्धिःअपत्यपथेचतस्रः प्रसृतेरभ्यंतरतोद्वेमुखाश्रितवृत्तेचद्वे  
गर्भच्छिद्रसंश्रितास्तिस्रः शुक्रार्तवप्रवेशिन्योगर्भाशयेचतिस्रएव।**

अर्थ—स्त्रियोंके वीस पेशी अधिकहैं, तिनमें स्तनोंमें पांच पांच मिलकर १० हैं, ये यौवन अवस्था आनेपर बडी हो जातीहै । योनिमें ४ पेशीहैं, तिनमें दो भीतर, और योनिकार्णिकाके पार्श्वोंमें बर्तुल तथा स्पर्श करके सुख देनेवाली २ पेशी हैं, तथा गर्भ मार्गमें गोल आटेके समान ३ तीन, और गर्भाशयमें शुक्र आर्तवके प्रवेश करनेवाली ऐसी तीन ३ पेशी हैं । ऐसे सब मिलकर २० पेशीहुई; गर्भाशय योनीके तीसरे आवर्तमें रोहूमछलीके मुखके समान हैं ।

पेशियोंकेस्थानविशेषकरकेस्वरूप ।

**तासांबहुलपेलवस्थूलाणुपृथुवृत्तद्वस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशा  
भावाः। संधिशिरास्नायुप्रच्छादकायथाप्रदेशस्वभावतएवभवति ।**

अर्थ—तिन पेशियोंमें बहुल कहिये बहुतसी, पेलव कहिये थोडी, सूक्ष्म मोटी विस्तीर्ण, गोल, छोटी लंबी, ऐसी आकृति करके अनेक प्रकारकी है। वह संधी, आस्थि, शिरा, स्नायु इन्होंके आच्छादन करनेवाली अपने २ स्थानमें स्वभाव करके कठिन कोमल, सुखस्पर्शवान् और दुःख स्पर्शवान् ऐसी अनेक प्रकारकी हैं ।

स्त्रियोंके शिश्न औरवृषण नहींहै इसीसे उस जगेकी पेशियोंकी अन्यत्र कल्पना करके कहते हैं।

**पुंसांपेइयः पुरस्ताद्याः प्रोक्तालक्षणमुष्कयोः ।**

**स्त्रीणामावृत्यतिष्ठंतिफलमंतर्गतंहिताः ॥**

अर्थ—प्रथम पुरुषके तीनपेशी अर्थात् एक शिश्नमें, तथा दोवृषणमें जो कही हैं । वो तीनोंपेशी स्त्रीके गर्भाशयमें रहतीहैं । ऐसा कोई आचार्य कहते हैं, परंतु गयीआचार्य इस तंत्रांतरके प्रमाणको नहीं मानताहै । पांचसौं पेशी हैं ऐसे जो वचन कहाहै उसमें ( पुंसां ) इस पदकरके पुरुषोंके ५०० हैं । और स्त्रियोंके तीन पेशीन्यून हैं ऐसा व्याख्यान करताहै ।

इस्मेंभोजवचनप्रमाण ।

**पंचपेशीशतान्येवस्त्रीवर्ज्यविद्धिभूमिप ।**

**अतश्चतस्रोहीयंतेस्त्रीणांशेफसिमुष्कयोः ॥**

अर्थ—भोजकहताहै कि, हेराजन् ! पेशी ५०० हैं; परंतु स्त्रियोंके विना. इसका

कारण यह है कि, शिश्र और वृषण संबंधी पेशी स्त्रियोंके नहीं है, इसीसे स्त्रियोंके तीन पेशी न्यून हैं । गर्भाशयका स्वरूप प्रथम लिखा है, अतएव इसजगे छोड़-दिया है ।

मतांतरेण पेशीसंख्यानम् ।

मानवदेहे चत्वारिपेशीशतानिसन्ति ।

सुश्रुतस्तु पंचशतान्याहतासांकतिचिद्विशेषेणोच्यन्ते ।

अर्थ—मनुष्यके देहमें ४०० चारसौ पेशी है । परंतु सुश्रुतके मतमें ५०० पांचसौ मानी हैं । इनमें कोई पेशीके विषय विशेषको वर्णन करते हैं ।

मूर्धन्युपरितेकातन्वीकरोटेः पश्चादस्थः शंखास्थिभ्यां च  
समुत्थाय मूर्द्धौ ध्वमतिव्याप्य तत्र च कण्डरामयी सती ललाटा  
धः पेशी पर्यंतमागता । एतया भ्रुवावूर्ध्वमाकृष्येते ।

अर्थ—मूर्धदेश अर्थात् मस्तकके ऊपरके भागमें एक पतली पेशी है । यह करो-टिके पिछाडीकी हड्डी तथा दोनों कनपटीकी हड्डीसे उत्पन्न होकर मस्तकके ऊपरके भागमें व्याप्त होकर और इसीस्थानमें कंडरास्वरूप होकर ललाटकी अधस्थ पेशी पर्यंत आयकर प्राप्त हुई है । यह मध्यमें कंडरामय और दोनों प्रान्तोंमें मांसमय हैं । इन दोनों पेशी करके दोनों भ्रू ( भौंह ) ऊपरको खींची हुई हैं ।

कर्णदेशयोस्ति स्त्रिस्तिस्रो यथाक्रमं पश्चादूर्ध्वमाभिमुख्ये च  
स्थिताः आभिः कर्णौ पश्चादूर्ध्वमाभिमुख्ये चाकृष्येते ॥

अर्थ—प्रत्येक कर्ण प्रदेशमें तीन तीन पेशी हैं, इनकी यथाक्रमसे दोनों कानोंके पिछाडी ऊपर और सन्मुखमें स्थिति है; इन्होंने दोनों कान पिछाडी ऊपर और सन्मुखकी तरफ खींचे हुए हैं ।

समंतान्नेत्रवर्त्मपरिवेष्ट्य स्थितैकानेत्रानि मीलयति ।

नयनपुटाधः स्थिता परा भ्रुवौ परस्परान्नेत्रे करोति ।

अन्येकाश्रुनाडीमन्तराकर्षति ॥

अर्थ—नेत्रके पलकोंको वेष्टन करके रहनेवाली एक पेशी है इस करके नेत्र मू-दते हैं, नेत्रपुटके नीचे एक पेशी है उसकरके दोनों भौंह परस्पर मिली रहती हैं, और एक पेशी अश्रुनाडीको भीतरकी तरफ खींचे है । ऐसे दोनों बगलमें इसी प्रकार पेशी हैं ।

नेत्रस्थानापेशीनांकयाचिदूर्ध्ववर्त्मऊर्ध्वमाकृष्यते । कयाचि-  
नेत्रमण्डलमूर्ध्वकयाचिदधःकयाचिदन्तःकयाचिद्बहिराकृष्ये  
ते । कयाचिदन्तरभितःकयाचिद्बहिःपश्चाद्वाघूर्ण्यते ।

अर्थ—नेत्रमें कितनीक पेशीहैं, तिन्होंमें एक पेशीसे नेत्रके ऊपरका पलक  
ऊपरकी तरफ खींचाहुआ है; और एक पेशी द्वारा नेत्रमंडल ऊपरको एकसे नी-  
चेको, एक से भीतरको, तथा एक पेशीद्वारा बाहरको खींचाहुआहै । और दो पे-  
शीमें से एकसे नेत्रमंडल भीतर तथा आगेको और दूसरी पेशी द्वारा पिछाडी और  
बाहरकी तरफ भ्रमण करतेहे ।

नासादेशेतिस्त्रोनसोनमनादिक्रियाःकुर्वति ।

अर्थ—नासिकामें तीन पेशीहैं, इन पेशियोंके द्वारा नासिकाकी नमनादि क्रिया  
निर्वाहित होतीहै ।

ओष्ठस्थानापेशीनांकयाचिन्मुखसंवृतिःकयाचिदोष्ठनसोर्ध्वा  
कर्षणंकयाचिदोष्ठस्योर्ध्वाकर्षणंकयाचिदास्यप्रान्तयोरन्तरा-  
कर्षणंकयाचित्तयोर्ध्वाकर्षणंकयाचिद्बास्यंकयाचित्रासापुट  
संवरणंचसंपाद्यतेइति ।

अर्थ—ओष्ठस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा मुखका आच्छादन, किसीकेद्वारा  
होठ और नासिका ऊपरकी तरफ खींचना, किसीकेद्वारा मुख प्रान्तद्वयका भीत-  
रकी तरफ आकर्षण, किसीके द्वारा मुखप्रान्तोंका ऊपरकी तरफ आकर्षण होना,  
किसीके द्वारा हास्यक्रिया उसीप्रकार किसीके द्वारा नासिकापुटका आच्छादन  
होता है ।

अधरस्थानांकयाचिदधरस्याधस्तादाकर्षणंकयाचिदूर्ध्वाकर्षणं  
कयाचित्सृक्द्रयस्याधस्तादाकर्षणंसंपाद्यते ।

अर्थ—अधरस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा अधरकानीचेकी तरफ खींचना और  
किसीके द्वारा ऊपरको खींचना, उसी प्रकार किसीके द्वारा मुख प्रान्तद्वय  
( दोनोंहोठोंका ) नीचेकी तरफ आकर्षण होताहै ।

हन्वस्थाभिरूर्ध्वहन्वस्थाभिश्चहन्वस्त्रऊर्ध्वाकर्षणंसुखांतर्गृहीत  
तोयादीनांबहिःक्षेपणंहन्वस्थिचालनमित्याद्याःक्रियाःसंपाद्यन्ते ।

अर्थ—ठोड़ीके तथा ऊपर ठोड़ीके रहने वाली पेशियोंमें किसीके द्वारा ठोड़ीकी हड्डीका ऊपरकी तरफ आकर्षण, किसीके द्वारा मुखमें पीये हुए पानी आदिका बाहरको गेरना तथा किसीके द्वारा ठोड़ीकी हड्डीका इधर उधरको चलाना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होताहै ।

ग्रीवास्थिताभिश्चिबुकाधश्चर्मणोधोऽवनमनंमुखमंडलस्येतस्त  
तश्चालनम् ( आभ्यामेवशिरोमंडलस्याभिनमनंसंपाद्यते ) जि  
ह्वामूलस्थितस्याश्रःकंठस्यचाधोनमनंमास्यव्यादानंजिह्वा  
चिबुकयोरधोनमनमभ्यवहरणंताल्वधोनमनंतदूर्ध्वाकर्षणमु  
पजिह्वानमनंपशुकानामूर्ध्वाकर्षणंपृष्ठवंशस्यनमनंशिरोमंड  
लस्यघूर्णनंचेत्याद्याःक्रियाःसंपाद्यन्ते ।

अर्थ—ग्रीवादेशस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा चिबुक ( ठोड़ी ) के नीचेके चर्मका अधोभागमें लटकना होताहै, किसीके द्वारा मुखमंडलका इतस्ततो चालन क्रिया ( इन दो पेशियोंके द्वारा शिरोमंडलका सन्मुखको नवन क्रिया होती है ) किसीके द्वारा जिह्वामूलास्थिका और कंठका नीचेको नवना ( झुकना ) होता है, किसीके द्वारा गलेका नीचेको करना आदिकर्म । किसीकेद्वारा तालुएका लटकना, किसीके द्वारा तालुएका ऊपरको आकर्षण होना, किसीके द्वारा उपजिह्वाका नवना, किसीके द्वारा पांशुओंका ऊपरको आकर्षण होना, किसीके द्वारा पृष्ठवंशका नवना, उसी प्रकार किसी पेशीके द्वारा शिरका फिरना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होता है ।

पृष्ठस्थाभिः स्कंधस्यपश्चादूर्ध्वंचाकर्षणंमध्यकायस्याभितःसमा  
कर्षणंपृष्ठवंशस्यर्जुकरणमित्याद्याः क्रियाःसंपाद्यन्ते ।

अर्थ—पृष्ठस्थ पेशियोंमें से किसीकेद्वारा कंधेका पीछेको और ऊपरको आकर्षण, किसीकेद्वारा मध्यदेहका सन्मुखकी ओर आकर्षण, उसीप्रकार किसी पेशीकेद्वारा पृष्ठवंशका नम्रता होना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होता है ।

वक्षस्येकैकस्मिन्पार्श्वंपशुकानांबहिर्देशमभिव्याप्यैकादशैकादश  
सन्ति । तासामेकैकाद्वेद्वेपशुकेअभिव्याप्यवर्तते । एवमंतरेका  
दशैकादश । उरोऽस्त्रयेकातदस्थनोऽधोभागाश्चतुर्थीपञ्चमषष्ठी  
नांपशुकानांतरुणास्थिपर्यंतमुपस्थिता । वक्षस्थलेएकाउदरवक्ष

सीपृथक्करोति । आभिः श्वसनप्रश्वसनशोणितयंत्रधारणाद्याः क्रियाः सम्पाद्यन्ते ।

अर्थ—वक्षस्थलके एक एक पार्श्व में पांशुओंके बहिर्देशमें व्याप्त ११ ग्यारह पेशीहैं, तिनमें एक एक पेशी दोदो पांशुओं में लिपटी हुई हैं, इसी प्रकार पांशुओंके भीतरभी ११ पेशी प्रत्येक पसवाडे में एक एक, दोदो पांशूनमें व्याप्त होकर रहती हैं । उरोस्थि अर्थात् छातीकी हड्डी उसके अधोभागसे लेकर चौथी, पांचवीं तथा छठवीं पर्शुकाके तरुणास्थिपर्यंत रहनेवाली एक पेशी है, वक्षस्थल में उदरके ऊपर एक पेशी है, इसके द्वारा उदर और वक्षस्थल पृथक् होते हैं, इसी वक्षस्थल में उदरके ऊपरवाली पेशीके द्वारा निःश्वास और रुधिरयंत्र धारण आदि कार्य संपादन होते हैं ।

उदरस्थिताभिर्वमनरेचनमूत्रणप्रसवनाद्याः क्रियाः संपाद्यन्ते । गुह्यस्थिताभिर्मूत्रणरेचनपायुसंकोचनलिंगोत्थापनादीनिकर्माणि ।

अर्थ—उदरस्थ पेशियोंके द्वारा वमन, रेचन, मूत्रण, तथा संतान प्रसवनादि कार्य होते हैं । गुह्यस्थ पेशियोंकेद्वारा मूतना, दस्तहोना, गुदाका संकोचन और लिंगका उठना आदि कार्य होते हैं ।

उरोस्थिजत्रुपर्शुकांशप्रगण्डप्रकोष्ठकराड्डुल्यादिषुबह्वचःपेश्यः सन्ति । ताः श्वसनालिंगनबाहुचालनग्रहणक्षेपणादीनिबहूनि कर्माणिकुर्वन्ति ।

अर्थ—छातीकी हड्डी, जत्रुस्थान, पांशू, कंधे, बाजू, कलाई, हाथ और उंगली आदि इन स्थानों में बहुतसी पेशी हैं । वे श्वसन ( श्वासकालेना ) आलिंगन, भुजाओंका चलाना, तथा द्रव्यकालेना देना इत्यादि बहुतसे कार्यको करे हैं ।

श्रोणिस्थानामेकातिपृथुलाइयंत्रिकश्रोण्यस्थितऊर्ध्वश्च ऊर्ध्वभागपर्यंतमागता । श्रोणिप्रदेशे अपराअपिकतिपयाः सन्ति । आभिः सुखास्याऊर्ध्वश्रोवहिराकर्षणंक्रमणंतथैवंविधान्यन्या निचकर्माणिनिष्पाद्यन्ते ।

अर्थ—श्रीणिस्थ अर्थात् कमरमेंस्थित पेशियोंमें एक अतिस्थूल पेशी है । यहत्रिक तथा श्रोण्यस्थिसँ लेकर ऊरूकी हड्डीके ऊर्ध्वांश पर्यंत आयकर समाप्त हुई है, श्रोणिप्रदेशमें औरभी कितनीएक पेशी हैं । इन्हीं पेशी समूहके द्वारा सुखपूर्वक

बैठना, जांघकी हड्डिका बाहरकी तरफ आकर्षण, तथा पैरोंका उठाना धरना उसी प्रकार और अनेक प्रकारके कार्य निर्वाहित होतेहैं ।

**ऊरुजंघापादाङ्गुलिस्थाभिः सक्थिसंचालनदंडायनगमन  
प्रभृतीनिकर्माणिसम्पाद्यन्ते ।**

अर्थ—ऊरु, जंघा, पैर, तथा पैरकी उंगलीमें रहनेवाली पेशियोंके द्वारा पैरोंका संचालन, तथा पैरोंका सीधा होना और गमन इत्यादि कार्य होते हैं ।

**पादयोस्तलतः पृष्ठेग्रीवायामपिताः स्थिताः ।  
उपर्युपरिभावेन स्वंस्वं कुर्वति कर्मच ॥**

अर्थ—पैरोंकेतलुए, पीठ, ग्रीवादेशमें पेशीगण ऊपरऊपरभावकरके स्थितहोकर अपनेअपने कर्मोंकोकरतीहै ।

पेश्यःकुर्वतिकर्माणिनिखिलानिशरीरिणाम् । गोपयन्तिचकुल्या  
निजनयन्तिसुखानिच । नाभविष्यन्नथैताश्चेद्भूतिस्पन्दविवर्जि  
ताः । काष्ठीभूतामृतप्रायाअभविष्यन्हिदेहिनः । भारवाहोगतिः  
स्पन्दोव्यायामः श्वसनंस्थितिः । आस्योपगृहणंहास्यंगीतिर्नर्तन  
वादेने । विहाराहारनिर्हाराश्वंवनंशयनंरतिः । गर्भोत्पत्तिस्तत्सव  
नंसर्वपेशीकृतंमत्तम् । अथकिंबहुनोक्तेनप्राणिनांप्राणधारणे ।  
कारणानिप्रधानानिपेश्यएवेतिनिश्चितम् ॥

अर्थ—पेशीसमूह मनुष्योंके सर्वकार्यकरेहैं, ये हड्डियोंके समूहकीरक्षा और अनेकप्रकारके सुखोत्पादन करेहैं, यदि कदाचित् पेशी नहोवे तो जीवगण हलनाचलना, आदि शक्तिशून्य लकड़ीकेसमान और मृतप्रायहीजावे-बोझेकोलेचलना, गमन, स्पन्दन, दंडकसरत, श्वासक्रिया, ठहरना, बैठना, आलिंगन, हास्य, नृत्य, गीत, बाजाबजाना, विहार, आहार, मलमूत्रोत्सर्ग, चुम्बन, शयन, शृंगार, गर्भोत्पत्ति और संतानका प्रसव इत्यादि समुदायक्रिया पेशियोंके द्वाराहोतीहै । अथवा बहुतकहनेसें क्याहै; प्राणियोंके प्राणधारणमें पेशीही प्रधान कारणहै यह निश्चितहै ।

मूढगर्भ निकालनेकेलिये गर्भकी स्थिति कहतेहैं ।

**अभुग्नोभिमुखःशैतेगर्भोर्भाशयेस्त्रियः ।**

**सयोनिशिरसायातिस्वभावात्प्रसवंप्रति ॥**

अर्थ—गर्भ गर्भाशयमें सन्मुख तथा अंगोंको संकुचितकरके रहताहै, वह पूर्व-कर्मके आक्षेपकरके प्रसवके समय योनिकेप्रति मस्तककी तरफसे आताहै ॥

अबशल्यतंत्रकी उत्कृष्टतादिखाते हैं ।

त्वक्पर्यंतस्यदेहस्ययोयमङ्गविनिश्चयः । शल्यज्ञानादृते  
नैववर्ण्यतेङ्गेषुकेषुचित् । तस्मान्निःसंशयज्ञानंहर्ताशल्य  
स्यवाञ्छति । धावयित्वामृतंसम्यग्द्रष्टव्योङ्गविनिश्चयः ॥

अर्थ—त्वचा; हड्डीआदिपर्यंत देहके अंगोंका निश्चय ( अर्थात् इसमें इतनी हड्डी, नस, नाडी, कंडरा, पेशी, धमनी, त्वचा, आदिहै, इस्का यथार्थ विश्वास ) विना शल्यतंत्रकेजाने किसी अंगका नहींहोवे । अतएव शरीरमें गुप्तशल्य ( कांटा खोवराआदि ) के काटनेवाले वैद्यको निःसंदेह सर्व अंगोंका ज्ञान होना अति आवश्यक है । इसीसे शल्यचिकित्सक ( जरीह ) को उचितहै कि, मुर्देके देहको अच्छीरी-तिसै पानीसै धोयकर चीरे और चीरकर एकएक अंगके पृथक् २ पुजे करके देखे ।

मृतदेहके देखनेकी विधि ।

तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्षशतकं  
निष्कृष्टांत्रंपुरुषमवहनयापगायांनिबद्धंपंजरस्थं मुंजवल्कल  
कुशादीनामन्यतमेनावोष्टिताङ्गप्रत्यङ्गमप्रकाशेदेशे कोथ  
येत् । सम्यक्प्रकुथितंचोद्धृत्यततोदेहंसप्तरात्रादुशीरवाल  
वेणुवल्कजमूर्वानामन्यतमेनशनैःशनैरवधर्षयंस्त्वगादीन्सर्वा  
नेवबाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्गविशेषान्यथोक्तान्लक्ष्येच्चक्षुषेति ॥

अर्थ—अब शास्त्रदृष्टको प्रत्यक्ष कैसे देखे इसवास्ते कहतेहैं कि,किसी तन्काल मरेहुए मुर्देको लेवे, जिसका कोई अङ्ग खंडित न हुआहो; और जिसका देहलेवे वो मनुष्य विषादिक से न मराहो क्योंकि विषखानेसे या विषैल जानवरके काटने से अथवा विषके स्पर्शसे जो मनुष्य मरता है उसकी त्वचाआदि विखरजाते हैं; उसी प्रकार जो बहुतदिन बीमाररहाहो उसकाभी देह न लेवे, क्योंकि जो बहुतदिन बी-माररहता है उसकी त्वचाआदि सूखजाती है, उसीप्रकार जिसकी सौ १०० वर्षकी अवस्था न हो, क्योंकि सौवर्षकी अवस्थाहोने से मनुष्य अत्यंत बुढ़ा होजाता है, अत्यंत बुढ़ापेसे भीदेहके अङ्ग और प्रत्यंग यथार्थ नहींरहते हैं; इसी से उक्तलक्षणों करकेहीन मुर्देकी देह को लेकर उसकेभीतरसे आंतोंको निकालडाले; पीछे मूंज, या बकल अथवा कुशा-आदिसे अङ्गप्रत्यंगोंको लपेट किसीपेटी अथवा पिंजडे में बन्दकर, जिसमें कोईमनु-

ष्य आते जाते नहो और जिसजगे उजेला न होवे ऐसीनदी में उसपेटीको डालकर किसीरस्सी से बांधदेवे कि जिस्से वो देह सडजावे; इसप्रकार जब अच्छीरीतिसे सडजावे तब उसदेहको निकाल सातरात्रिपर्यंत उसीर, नेत्रवाला, वास, और मूर्वा, इनमेंसे किसीएकसे घिसे और धीरेधीरे शस्त्रादिकसे चीर त्वचा, मांस, पेशी, नस, नाडी, आदिको पृथक् पृथक् करता जाय और देखताजावे इसप्रकार बाहर और भीतरके प्रत्येकअंग और प्रत्यंगोंको पुर्जेपुर्जे करके शास्त्रोक्तोंको अपनेनेत्रोंसे प्रत्यक्षदेखें ( इसजगे मूँजआदिसे जो लपेटनालिखाहै सो इसवास्ते है कि खुलेहुए देहको जल में रखनेसे मछली आदि जीव खाजावें तो फिर संपूर्ण अवयव नहींरहते और पेटीमें रखने से यह प्रयोजन है कि, विनापेटीके रखने से कदाचित् जलके वेगसे छिन्नभिन्न न होजावे, और गृध्रादिक भक्षणके भयसे अंधेरे में रखना कहाहै. )

प्रत्यक्षदेखनेकाफल ।

प्रत्यक्षतोहियदृष्टंशास्त्रदृष्टंचयद्भवेत् ।

समागम्यद्रयं तत्रभूयोज्ञानविनिश्चयः ॥

अर्थ—जो नेत्रादिद्वारा प्रत्यक्षदेखा और शास्त्रदृष्ट अर्थात् शास्त्रपढ़कर अनुभव करागया इनदोनोंको प्राप्तहोने से अंगोंके ज्ञानका निश्चय होता है ।

देहकीचक्षुइंद्रीकरकेप्राप्तहै क्षेत्रज्ञपुरुषनहींहै इसबातकोकहतेहैं ।

नशक्यश्चक्षुषाग्राह्योदेहेसूक्ष्मतमोविभुः ।

दृश्यतेज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुर्भिरैववा ॥

अर्थ—देह में आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है, इसी से नेत्रद्वारा नहींदीखे; वो ज्ञानचक्षु अर्थात् ज्ञानी पुरुषों को और तपश्चक्षु अर्थात् तपस्वियों को ज्ञान और तपके प्रभावसे दीखे है ।

शास्त्रऔरप्रत्यक्षदेखनेकाफल ।

शरीरेचैवशास्त्रेचदृष्टार्थःस्याद्रिशारदः ।

दृष्टश्रुताभ्यांसंदेहमपोद्धारभतेक्रियाम् ॥

सौश्रुतशरीरेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ—शरीर और शास्त्र इन्हीं में सर्वार्थ देखने से मनुष्य कुशल अर्थात् चतुर होताहै इसीसे दृष्ट और श्रुत दोनोंप्रकारसे संदेह निवृत्तिकरके छेदन भेदन आदि क्रियाकरनीचाहिये । इसलिखनेसे यह प्रयोजनहै कि, प्रथमतो शरीरकेग्रंथ गुरुमुखसे पढे पश्चात् गुरुके आगे मुर्देको चीर २ के शास्त्रके लेखानुसार मिलानकरे और

जो हड्डी; पेशीआदि समझमें न आवे उसको उसीसमय गुरूसेपूछकर संदेह निवृत्त करलेवे; इसप्रकार मनुष्य शल्यशास्त्रकी क्रियाओंमें कुशलहोता है । चीरनेफारनेका विशेष विस्तार शारीरकी समाप्तिके पश्चात् कहेंगे ।

इति श्रीमदयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरेनवमस्तरंगः ॥ ९ ॥

## षष्ठोऽध्यायः ।

शरीरसंख्याव्याकरणाध्यायमें मांसशिराआदिका वर्णनहै; और मर्म मांस शिरा आदिके आश्रय हैं, इसीसे मर्मकहना चाहिये सो मर्मोंकोकहते हैं ।

अथातःप्रत्येकमर्मनिर्देशंशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—मांस, शिरा, इत्यादिकोंके वर्णनके अनंतर मांसादिमर्मकथनरूप शारीराध्यायको कहते हैं।

मर्मोंकीसंख्या ।

सप्तोत्तरंमर्मशतम् । तानिमर्माणिपंचात्मकानिभवंति । तद्यथा ।  
मांसमर्माणि शिरामर्माणि स्नायुमर्माणि अस्थिमर्माणि सन्धिमर्माणिचेति ।

अर्थ—मर्म १०७ एकसैंसातहैं, वो पांच प्रकारके होते हैं; उनको कहते हैं. मांसमर्म, शिरामर्म स्नायुमर्म, अस्थिमर्म, और संधिमर्म, ए पांच प्रकारहैं ।

मांसादिभेदकरके मर्मोंकी संख्या ।

तत्रैकादशमांसमर्माणि । एकचत्वारिंशत्शिरामर्माणि । सप्तविंशतिःस्नायुमर्माणि । अष्टावस्थिमर्माणि । विंशतिः संधिमर्माणि ।

अर्थ—मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थिमर्म ८, संधिमर्म २०, सबमिलनेसे १०७ होते हैं ।

मांसमर्मोंको कहते हैं ।

चत्वारितलहृदयानितावंत्येवेन्द्रवस्तीनिगुदमेकंद्वेस्तनरोहिते ।

अर्थ—मांसमर्म ११ है, उनमें तल हृदयमें ४ तथा इन्द्रवस्तिसंज्ञक ४ गुद १ और स्तनरोहितसंज्ञक २ इसप्रकार जानने । वाग्भट मांसमर्म १० कहता है ।

शिरामर्म ।

चतस्रोधमन्यःअष्टौमातृकाःचत्वारिशृंगाटकानिद्वेअपाङ्गेएकास्थप

णीफणौद्रेस्तनमूलद्रावपस्तंबौद्रावपलापौएकंहृदयएकानाभीद्वौपार्श्वसंधीद्वेबृहत्यौचत्वारिलोहिताक्षणिचतस्रऊर्व्यःएवमेकचत्वारिंशत्

अर्थ—शिरामर्म ४१ कहे हैं, तिनमें ग्रीवासंबंधी धमनी ४ मातृका ८ जृंगाटकमें ४, अपांग २, स्थपणी १, फण २, स्तनमूलमें २, अपस्तंब २, अपलाप २, हृदय १, नाभी १ पार्श्वसंधी २, बृहती २, लोहिताक्ष, ४, ऊर्वी ४, ऐसेइकतालीस होतेहैं; वाग्भटमें ३७ सैंतीसशिरामर्मकहेहैं ।

स्नायुमर्म ।

चतस्रआण्येद्रौविटपौद्रौकक्षधरौचत्वारःकूर्चाश्चत्वारिकूर्चशिरांसि एकोवस्तिश्चत्वारिक्षिप्राणिद्रावंसौद्रेविधुरेद्रावुत्क्षेपौएवसंतविंशतिः ।

अर्थ—स्नायुमर्म २७, कहे हैं, उनमें आणिसंज्ञक ४, विटप २, कक्षधर २, कूर्च ४ कूर्चशिर ४, वस्ति १, क्षिप्रसंज्ञक ४, अंश २ विधुर २ उत्क्षेपसंज्ञक २ इस प्रकार स्नायुमर्म २७, कहे हैं. वाग्भट स्नायुमर्म २३ कहते हैं ।

अस्थिमर्म ।

द्वेकटीतरुणेद्रौनितंबौद्रेअंशफलकेद्रौशंखौएवमष्टौ ।

अर्थ—अस्थिमर्म ८ हैं; तिनमें कटितरुण संज्ञक २ नितंब २ अंसफलक २ और शंख २ ऐसे ८ हैं ।

संधिमर्म ।

द्वेजानुनीद्वौकूर्परौपंचसीमंताःएकोधिपतिरितिद्वौगुल्फौद्रौमणिबंधौद्वेककुंदरेद्रावावत्तौद्वेकृकाटिकेएवंविंशतिः ।

अर्थ—संधिमर्म २० हैं, तिनमें जानुसंबंधी २ कूर्पर ( कलाई ) संबंधी २ सीमंत संज्ञक ५ अधिपति संज्ञक १ गुल्फ संबंधी २ मणिबंध ( पटुचा ) संबंधी २ ककुंदरसं० २ आवर्त्त संज्ञक २ कृकाटिका संज्ञक २ इस प्रमाण जानने वाग्भट ९ धमनीमर्म पृथक् कहकर १०७ मर्मोंकी पूर्ण संख्या करीहै । अर्थात् जैसे सुश्रुत मांस, शिरा, स्नायु, हड्डी, और संधि ए पांच प्रकारके मर्म कहता है उसी प्रकार वाग्भट मांस, हड्डी, स्नायु, धमनी, शिरा, और संधि इनके मिलाप होनेवाले स्थानोंको ६ प्रकारके मर्म कहता है ।

मर्मोंकेविशेषज्ञानहोनेकेवास्तेप्रदेशकहतेहैं ।

तेषामेकादशैकस्मिन्सक्थीनिभवंति ।

अर्थ—एकसौ सात मर्मोंमेंसे एक पैरमें ११ मर्महैं; इसी प्रकार दूसरा पैर और दोनों हाथोंके मिलानेसे ४४ मर्म होते हैं; पैरके मर्मोंके नाम-क्षिप्र २ तलहृदय १ कूर्च १ कूर्चशिरस १ गुल्फ १ इन्द्रबस्ति १ जानु १ और ऊर्वी १ लोहिताक्ष १ विटप १ इस जगे तल और हृदय पृथक् २ गणना करनेसे ११ संख्या होतीहै । इन क्षिप्रादिकोंके लक्षण स्वयं आचार्य आगे कहेगा इसीसे यहां व्याख्या नहीं करी । उदर और उरके मिलानेसे बारह १२ मर्म और पीठमें १४ ग्रीवासे लेकर ऊपरके भागमें ३७ मर्म । उदर उर इन्हेंके मर्मोंके नाम-गुद १ बस्ति १ नाभि १ हृदय १ स्तन-मूल २, स्तनरोहित २ अपलाप २ अपस्तंब २ ऐसे बारहहैं । पीठके १४ मर्मोंके नाम-कटितरुण २, ककुंदर २, नितंब २ पार्श्वसंधी २, बृहती २, अंसफलक और अंश २ ये चौदहहुए । पैरके ११ मर्मोंके जो नाम कहे हैं वोही हाथोंके मर्मोंके नाम जानने । परंतु गुल्फ और विटप इनस्थानोंमें मणिबंध और कक्षधर ये पृथक् हैं । जत्रुके ऊपर ३७ मर्म हैं, उनके नाम-धमनी ४ मातृका ८, कृकाटिका २, विधुर २, फण २, अपांग २, आवर्त्त २, उत्क्षेप २, शंख २, स्थपणी १, सीमंत ५, शृंगाटक ४, अधिपति १, इस प्रकारहैं ।

मर्मोंके पांच प्रकार ।

## सद्यःप्राणहराणिकालांतरप्राणहराणि शल्यघ्नानिवैकल्यकराणिरुजाकराणि ।

अर्थ—मर्म पांच प्रकारके हैं ! किसी मर्ममें चोटलगनेसे तत्काल ( आठदिनमें ) मरे, वो सद्यःप्राणहारक, तथा कोईकालांतर प्राणहारक कहिये महिने या पक्षमें मरताहै, कोई विशल्य कहिये शल्य निकलजानेके पश्चात् मरे तथा कोई वैकल्यकर ( जिसमें विकार होनेसे विकलताहोवे ) और एक रुजाकर अर्थात् जिस्में किसी प्रकारका विकार होनेसे अत्यंत पीडा होवे, सद्यःप्राणहरण करनेवाले मर्म १९हैं. कालांतर प्राणहारक मर्म ३३ हैं, विशल्यघ्न ३, वैकल्यकर ४४ और रुजाकर ८ सबमिलकर १०७ हुए ।

सद्यःप्राणहरमर्म ।

## शृङ्गाटकान्यधिपतिःशंखौकण्ठशिरागुदम् । हृदयंबस्तिनाभौच हंतिसद्योहराणितु ॥

अर्थ—शृंगाटक ४ अधिपति १ शंख २ कंठसंबंधी शिरा ८ जिनको मातृका कहते हैं, गुदा १ हृदय १ बस्ति १ और नाभी १ ऐसे १९ मर्म सद्यःप्राणहर हैं । कालांतर प्रा' हारक ३३ मर्म हैं उन्होंकेनाम । वक्षस्थलसंबंधि स्तनमूलमें २

स्तनारोहित २ अपलाप २ अपस्तंब २ सीमंत ५ तलहृदय ४ क्षिप्र ४ इन्द्रवस्ति ४ कटितरुण २ पार्श्वसंबंधी २ बृहती २ नितंब २ ऐसे ३३ हैं ।

विशल्य ३ मर्मोंके नाम । उत्क्षेप २ स्थपणी १ ऐसे ३ मर्म हैं ।

वैकल्यकारक ४४ मर्म उन्होंके नाम । लोहिताक्ष ४ आणी ४ जानु २ ऊर्वा ४ कूर्च ४ विटप २ कूर्पर २ ककुंदर २ कक्षधर २ विधुर २ कृकाटिका २ अंस २ अंसफलक २ अपांग २ नीलधमनी २ मन्या २ फण २ आवर्त २ ऐसे ४४ हुए ।

रुजाकर ८ मर्म उनके नाम । गुल्फ २ मणिबंध २ कूर्चशिरस ४ ऐसे ८ हैं ।

अब प्राणहरादि मर्मोंके कार्य और उसमें युक्ति ।

**मर्माणिमांसशिरास्नायवस्थिसंधिसंनिपाताः ।**

**तेषुस्वभावतएवविशेषेणप्राणास्तिष्ठन्ति ।**

अर्थ—मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इनका सन्निपात कहिये अत्यंत मिलना उसको और उसमें अग्न्यादिक प्राणस्वभाव करके रहते हैं उसको मर्म कहते हैं । उसमें चोटआदि विकार होनेसे भ्रम, प्रलाप, पतन और प्रमेह इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

मर्मोंके भेदका कारण ।

**तत्रसद्यःप्राणहराणिअग्नेयानिकालांतरप्राणहरा**

**णिसौम्यानिविशल्यघ्नानिवायव्यानिवैकल्यरा**

**णिसोमवायव्यानिअग्निवायव्यानिरुजाकराणि ।**

अर्थ—जिस मर्ममें अग्निरूप प्राण रहते हैं वह तत्काल मारे हैं, कारण यह है कि, अग्निमें शीघ्रता बहुतहै । तथा शीतरूप प्राण जिस मर्ममें रहते हैं, वह कालांतरमें मृत्यु करेहै । कारण यहहै, कि सोम( कफ ) स्थिर है । इसीसे विलंबमें प्राणहरण करे हैं; और वायुरूप प्राण जिस मर्ममें रहतेहैं, वह विशल्यघ्न है, क्योंकि शल्यसे वायु रुका रहता है उस शल्यके निकलतेही उसमें वायु निकलकर प्राणीको मारेहैं । तथा जिस मर्ममें कफ वायु दोनों रहतेहैं वह वैकल्यकारक और जिस मर्ममें अग्नि और वायु रहते हैं वो पीड़ाकरता जानना ।

मर्मभेदके दूसरे कारण ।

**केचिदाहुर्मासादीनांपंचानामपिसमृद्धानांसमवायात्सद्यःप्राण**  
**हराणिएकहीनानामल्पानांवाकलांतरप्राणहराणिद्विहीनानांवि**  
**शल्यघ्नानित्रीहीनानांवैकल्यकराणिएकस्मिन्नेवरुजाकराणि ।**

अर्थ—कोई आचार्य ऐसे कहते हैं, कि मांसादिक पांच पदार्थ जिस एक मर्ममें हैं वह सद्यःप्राणहारक और उनमें एकही न होनेसे अथवा आघातादि अल्पहोनेसे कालांतरमें प्राणहरण करेहैं । और जिसमें मांसादि दो पदार्थ न होवे वो मर्म विश-  
ल्यन्न जानना, तथा तीन पदार्थ न्यून होनेसे वैकल्यकारक और मांसादिक एकही होय तो वह मर्म रुजाकर जानना; यद्यपि गुद, बस्ति, नाभि, हृदय ये मर्म सद्य-  
प्राणहारक हैं, इनमें हड्डी प्रगट नहीं दीखे परन्तु अव्यक्त अस्थिकी शक्तिकरके सद्यः  
प्राणहर कहे हैं ।

स्तनमूल, अपलाप, अपस्तंब, सीमंत, कटितरुण, पार्श्वसंधी, बृहती, नितम्ब  
इतने मर्म मांसहीन हैं । स्तनरोहित, तल, हृदय, क्षिप्र, इन्द्रबस्ति इतने मर्म अस्थि-  
हीनहैं । उत्क्षेपमर्म मांस और संधिहीन है । अणवसंज्ञकमर्म मांस, शिरा और स्नायु-  
हीनहैं । गुल्फ मणिबन्ध और कूर्चशिरस, मांस, शिरा, स्नायु और अस्थिहीन है ।  
इसीप्रकार कोई मर्म एकहीन, कोई दो, कोई तीन और कोई चारहीन है, ऐसा जानना ।  
इसजगे हीनशब्द उत्पन्नाभावमें है, न्यूनाभावमें नहीं है अर्थात् जहां जहां ऐसा लि-  
खाहै कि अमुक मर्म मांसहीन है, तो उसजगे ऐसा न समझना, कि उनमर्मोंमें मांस  
नहींहै किंतु उनमर्मोंमें मांसउत्पन्न नहींहो ऐसाजानना ।

मर्मोंमेंमांसादिकपांचहैंइसविषयमेंप्रत्यक्षप्रमाण ।

यतश्चैवमस्थिविद्धेष्वपिशोणितदर्शनंभवत्येतत्प्रत्यक्षप्रमाणात् ।

अर्थ—अस्थिमर्ममें वेधहोनेसे रुधिरनिकालताहै, इसीसे जाननाचाहिये कि सर्व-  
मर्मोंमें सबोंका संयोग है ।

शिराकेप्रकार ।

चतुर्विधास्तुशिराःप्रायेणमर्मसुसन्निविष्टाः

स्नाय्वस्थिसंधिमांसानिसंतर्प्यदेहंपुष्णाति ।

अर्थ—वात, पित्त, कफ और रुधिरके वहनेवाली नाडी बहुधाकरके मर्मोंमें स्थि-  
तहोकर स्नायु, अस्थि, मांस और संधि इनको तृप्तकर देहको पोषणकरे हैं ।

एकदेशमर्माघातकरकेसर्वशरीरकोपीडाअथवाप्राणवियोगकहतेहैं ।

ततःक्षतेमर्मणिताःप्रवृद्धःसमंततोवायुरभिस्तृणाति।प्रवृद्धमानस्तु  
समातरिश्वारुजःसुतीव्राःप्रतनोतिकाये ॥ रुजाभिभूतंतुततः  
शरीरंप्रलीयतेनश्यतिचास्यसंज्ञा । अतोहिशल्यंविनिहर्तुमिच्छ  
न्मर्माणियत्नेनपरीक्ष्यकर्षेत् ।

अर्थ—मर्ममें क्षतहोनेसे वायु बढ़ता है और शिराओंमें प्रवेशकरके सर्वशरीरमें व्याप्तहोताहै, तथा पीडाकरेहै उससमय शरीर मुरझायासा होकर नष्टहोताहै अथवा मरताहै । इसीसे शल्यको यत्रपूर्वक काढनेवाले वैद्यको सर्वमर्मोंका संरक्षणकरके परीक्षापूर्वक यत्रसे शल्यको निकाले ।

मर्मोंमेंशल्यअच्छा न लगनेसेउसकीक्रियाकाविकल्पकहतेहैं ।

तत्रसद्यःप्राणहरमन्तेविद्धंकालांतरेणमारयति । कालां-  
तरमंतेविद्धंविशल्यवद्भवति । विशल्यंप्राणहरंवैकल्यक-  
रंभवति । वैकल्यकरंचकालांतरेक्लेदयतिरुजांचकरोति ॥

अर्थ—सद्यःप्राणहरण करनेवाले मर्मके अंतमें वेधहोनेसे कालांतरमें मारेहैं, कालांतर मारक मर्मके अन्तमें वेधहोनेसे विशल्यके समान होता है, विशल्य अंतविद्ध होनेसे प्राणनाश अथवा वैकल्यकरे, वैकल्यकर मर्मके अंतविद्ध होनेसे आगे कोई दिवसपर्यंत क्लेदकरे और पीडा करे हैं, मर्म अतिशय विद्ध होनेसे पूर्ववत् मर्मोंकेसे कार्य करेहैं, अर्थात् रुजाकर मर्म अतिविद्ध होनेसे वैकल्यकारक होता है, इसी प्रकार और मर्मोंमें भी जानना ।

सद्यः प्राणहरादिमर्मोंकेविषयमें कालावधि कहते हैं ।

तत्रसद्यःप्राणहराणिसप्तरात्रान्मारयति । कालांत-  
रहराणिपक्षान्मासाद्वा । तेष्वपिक्षिप्राणिकदाचि-  
दाशुमारयंति । विशल्यप्राणहराणिचेति ।

अर्थ—सद्यःप्राणहारक मर्म सात दिवसमें मारे हैं, और कालांतर प्राणहारक मर्म पंद्रहदिनमें अथवा एक महीनेमें मारे हैं, तिनमें क्षिप्रसंज्ञकमर्म कदाचित् अतिविद्ध होनेसे तत्काल मारे हैं, उसीप्रकार विशल्यादि मर्म मारते हैं ।

क्षिप्रादिमर्मोंके स्थान ।

तत्रपादस्यांगुष्ठांगुल्योःक्षिप्रमितिमर्मतत्रविद्धस्याक्षे-  
पकेमरणम्,स्नायुमर्मेदमर्धांगुलंकालांतरप्राणहरंच ।

अर्थ—पैरोंके अँगूठा और उसके समीपकी उंगली इनमें अर्धांगुल जगमें स्नायु-  
मर्म है, उसीको क्षिप्रमर्म कहते हैं । उसका वेध होनेसे आक्षेप वायुका रोग होकर प्राणी मरे है, यह कलांतरमें प्राणहरण करेहैं ।

मांसमर्म ।

मध्यमांगुलीमनुक्रमेणमध्येपादंतलहृदयंतत्ररुजा  
भिर्मरणंमांसमर्मेदमर्धांगुलंकालान्तरप्राणहरंच ।

अर्थ—पैरकी मध्यमांगुलीके अनुक्रम करके बीचमें तलहृदय नामक मर्म है, उसके विद्धहोनेसे मरण होताहै, यह अर्धांगुल प्रमाण मांसमर्म कालांतरमें प्राण-हारक है ।

स्नायुमर्म ।

क्षिप्रस्योपरिष्ठादुभयतःकूर्चस्तत्रपादस्यभ्रमणवे-  
पनेभवतः स्नायुमर्मेदंचतुरंगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ—क्षिप्रसंज्ञक मर्मके ऊपर दोनोंतरफ ( ऊपर नीचे ) कूर्चसंज्ञक मर्म है, यह स्नायुमर्म चार अंगुलका वैकल्यकारक है, इसके वेध होनेसे पैर कांपते हैं अथवा पैर फिरे हैं ।

स्नायुमर्मकहतेहैं ।

गुल्फसंधेरधः उभयतः कूर्चशिरस्तत्ररुजाशोफौ  
इदमपिस्नायुमर्मएकांगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ—गुल्फ ( टकना ) संधीके नीचे दोनोंतरफ कूर्चशिरस नामक मर्म है । वो विद्ध होनेसे पीडा और सूजन इत्यादि होतेहैं, यह स्नायुमर्म एकांगुलप्रमाण वैकल्य करनेवाला है ।

संधिमर्म ।

जंघापादयोः संधातेगुल्फस्तत्ररुजास्तद्रचपादखं-  
जतावा । संधिमर्मेदंचगुलप्रमाणंवैकल्यकरम् ।

अर्थ—पीडरी और पैर इनकी संधिकी गुल्फ कहते हैं, यह संधिमर्म दो अंगु-लका वैकल्यकारक है, इसमें विकार होनेसे अत्यंत पीडा होती है, पैरका रुकजाना अथवा लँगड़ाहो जाता है ।

मांसमर्म ।

पार्श्विणप्रतिजंघामध्येइन्द्रवस्तिस्तत्रशोणित  
क्षयेमरणंमांसमर्मेदमर्धांगुलंकालान्तरप्राणहरम् ।

अर्थ—एडीकेपास तेरह अंगुलपर जंघाके मध्यमें इन्द्रबस्तिक नाम मांसमर्म अर्धअंगुलका है, उसमेंसे रक्तस्राव होनेसे कालांतरमें मरण होय. भोज तथा गय-दासके मतसे यह मर्म दो अंगुलका है ।

संधिमर्म ।

जंघोर्वोःसंधातेजानुसंधिमर्मेद्वैकल्यकरम् ।

अर्थ—पीडरी और जंघा इनकी संधिको घोटू कहते हैं, यह संधिमर्म वैकल्यकारक दो अंगुलका है, इसमें विकार होनेसे मनुष्य लँगड़ा होताहै ।

स्नायुमर्म ।

जानुनउभयतरुयंगुलादाणितत्रशोफाभिवृद्धि  
स्तब्धसक्थिताचस्नायुमर्मेदमर्धांगुलम् ।

अर्थ—घोटूके दोनों बगल तीन अंगुलपर आणिसंज्ञक स्नायुमर्म अर्धांगुलप्रमाण है, उसमें विकार होनेसे सूजन होवे और जांघोंमें स्तब्धता होवे ।

शिरामर्म ।

ऊरुमध्येऊर्व्यस्तत्रशोणितक्षयात्सक्थिशोषः  
शिरामर्मेदमर्धांगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ—जांघोंके मध्य देशमें ऊर्वी नामक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारक है, उसजगे रुधिरक्षय होनेसे जांघ सूखजावे ।

शिरामर्म ।

ऊर्ध्वमधोवंक्षणसंघैरुरुमूलेलोहिताक्षंतत्रलोहितक्षयेन  
पक्षाघातःसक्थिसादोवाशिरामर्मेदमर्धांगुलंवैकल्यकरं च ।

अर्थ—वंक्षणसंधिके ऊपर नीचेके अंगमें ऊरुके मूलमें लोहिताक्षसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारक है, उसमें से रुधिरस्राव होनेसे पक्षाघात अथवा पैर रहजावे ।

स्नायुमर्म ।

वंक्षणवृषणयोर्विटपंतत्रषांठचमल्पशुक्रतावास्नायुम  
र्मेदमेकांगुलंवैकल्यकरं च एवमेतानि एकादशसक्थिम  
र्माणिव्याख्यातानि ।

अर्थ—वक्षण और वृषण इनके बंधनरूप स्नायुको विटपसंज्ञक मर्म कहते हैं, इसमें विकार होनेसे षंठपना अथवा अल्पशुक्रता होय. इसप्रकार एकपैरमें ११ मर्मकहे हैं, इसीक्रमसे दूसरे पैरमें और दोनों हाथोंके मिलानेसे ४४ मर्म होते हैं ।

पेटऔरउदरइनकेमर्म ।

अतऊर्ध्वमुदरोरसोमर्माणिव्याख्यास्यामः तत्रवातवर्चो  
विरसनंस्थूलांत्रप्रतिबद्धं गुदं नाम मर्म तत्र सद्यो मरणम् ।

अर्थ—अब उदर और उर इनके मर्मोंको कहते हैं, तिनमें बड़े आंतडोंसे बँधे हुए तथा जिनसे विष्ठा और अपानवायुकी प्रवृत्ति होती है, उसको गुदा कहते हैं, उसका आघात होनेसे तत्काल मरण होय, यह मांसमर्म चार अंगुलका है ।

मूत्राशयवस्तिमर्म ।

अल्पमांसशोणिताभ्यंतरतः कट्यां मूत्राशयोवस्तिः  
तत्रापिसद्यो मरणं मश्मरीव्रणादृते तत्राप्युभयतोभिन्ने  
न जीवति एकतोवाभिन्ने मूत्रस्रावोव्रणोवाभविष्यति ॥

अर्थ—अल्पमांस तथा अल्परुधिरसे प्रगट और कमर, नाभि, पृष्ठ, मुष्क, गुदा, वक्षण, शिभ्र, इन सबके बीचमें अधोमुख एकद्वार तथा मूत्रका आशय ऐसा यह वस्ति संज्ञक मर्म है । इसमर्ममें पथरीकृत व्रणके विना अन्यविकार होनेसे तत्काल मरण होय, इस वस्तीके दोनों तरफ छिद्र पड़नेसे तत्काल मरण होय. एक अङ्गमें छिद्र पड़नेसे उसमें होकर मूत्र निकलनेलगे ऐसा व्रण होय. यह स्नायु-मर्म चार अंगुलका है ।

नाभिमर्म ।

पक्वामाशयोर्मध्ये शिराप्रभवानाभिस्त  
त्रापिसद्यो मरणं शिरामर्मैदंचतुरंगुलम् ॥

अर्थ—पक्वाशय और आमाशय इनके मध्यमें शिरासमुदायसे बनी ऐसी नाभी है, इसमर्ममें विकार होनेसे तत्काल मरण होय, यह शिरामर्म चार अंगुलका है ।

आमाशयमर्म ।

स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरसि आमाशयद्वारं सत्वर  
जस्तमसामधिष्ठानं हृदयं तत्रापिसद्येव मरणं शि  
रामर्मैदं कमलमुकुलाकारं मधोमुखं चतुरंगुलं च ।

अर्थ—दोनों स्तनोंके मध्यदेशमें व्याप्तहोकर उरके अंतमें आमाशयका द्वार और सत्वरज और तमोगुणका अधिष्ठान ऐसा हृदयसंज्ञक शिरामर्महै, यह कमलकीकलीके समान तथा अधोमुख चारअंगुलकाहै, यह सद्यमरणदेनेवालाहै ।

स्तनमूलशिरामर्म ।

स्तनयोरधस्ताद्व्यंगुलमुभयतस्त-  
नमूलेतत्रकफपूर्णकोष्ठतयाप्रियते ॥

अर्थ—दोनों स्तनोंके नीचे दोअंगुलपर स्तनमूलसंज्ञक शिरामर्म दोअंगुलकाहै; यह कालांतरमें मारकहै, इसमें विकारहोनेसे कफकरके पूर्णकोष्ठहोकर मरेहै ।

रोहितसंज्ञकमांसमर्म ।

स्तनचुबुकयोरूर्ध्वस्तनरोहितेतत्रलोहित  
पूर्णकोष्ठतयाश्वासकासाभ्यांप्रियते ।

अर्थ—स्तनचुबुकके ऊपर दोअंगुलदेशमें अर्धांगुलप्रमाण स्तनरोहितसंज्ञक मांसमर्महै, इसमें चौटलगनेसे रुधिरसे कोष्ठ परिपूर्णहोकर श्वास, खांसीके रोगसे कोई दिनमें मरे ।

अपलापशिरामर्म ।

अंशकूटयोरधस्तात्पार्श्वस्योपरिभागेऽपलापस्तत्ररक्तेनपूर्ण  
भावगतेनमरणंशिरामर्मणीअर्धांगुलेकालांतरेणप्राणहरे ॥

अर्थ—अंशकूट ( कंधे ) के नीचे और पसवाडोंके ऊपरके भागमें अपलापसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकर्ताहै, उसमें विकार होनेसे अत्यंत-रुधिरसंचितहोनेसे रोगी मरे ।

अपस्तंबशिरामर्म ।

उभयतोरसेनाडचौवातवहेअपस्तंबौतत्रवा-  
तपूर्णकोष्ठतयाश्वासकासाभ्यांचप्रियते ।

अर्थ—उदरके दोनोंतरफ वातवाहकनाडीहै, उनको अपस्तंबमर्मकहते हैं । उसनाडीमें विकारहोनेसे वायुकरके कोष्ठपरिपूर्णहो श्वास खांसीके रोगसे कोईदिनमें रोगी मरे, यह शिरामर्म अर्धअंगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकर्ताहै, इसप्रकार उदर और उरमें बारह १२ मर्मकहेहैं ।

अब पीठके मर्म कहते हैं ।

अत ऊर्ध्वं पृष्ठमर्माणिव्याख्यास्यामः तत्र पृष्ठवंशमुभयतः  
प्रतिश्रोणीकाण्डमस्थीनिकटितरुणे तत्र शोणितक्षयात्  
पाण्डुविवर्णो हीनश्च भ्रियते ।

अर्थ—अब पृष्ठमर्मोंको कहते हैं । तहां पीठके वांसके दोनोंतरफ आगे कमरकी जो हड्डी हैं उसको कटितरुणसंज्ञक अस्थिमर्म कहते हैं, उसमें आघात होकर रक्तस्राव होनेसे मनुष्य विवर्ण तथा हीनवर्ण होकर कोईदिनोंमें मरे ।

ककुन्दरसन्धि मर्म ।

पार्श्वजघनबहिर्भागे पृष्ठवंशमुभयतः ककुन्द-  
रेतत्र रूपशान्तिमयः काये चेषोपघातश्च ।

अर्थ—पार्श्व और जघनके बाहरके भागमें तथा पृष्ठवंशके दोनोंतरफ ककुन्दर कहते हैं; इसमें विकार होनेसे वह स्थल बधिर होजावे और कमरके पास नीचेका अंग निर्जीव होजावे ।

नितंब अस्थिमर्म ।

श्रोणिकाण्डयोरुपर्यामाशयाच्छादकौ पार्श्वान्तरप्रति-  
बद्धानितम्बौ तत्राधः कायशोषोर्दौर्बल्याच्च मरणम् ।

अर्थ—कटितरुण अस्थिमर्म जो पूर्व कह आए हैं उसके ऊपर आमाशयका आच्छादक तथा पार्श्वसंधीसे बंधा ऐसा नितंबसंज्ञक अस्थिमर्म है, उसमें विकार होनेसे नीचेके आधे अंगका शोष हो निर्बलपनेसे प्राणी मरे हैं ।

पार्श्वसंधिशिराबंधनमर्म ।

जघनमध्यपार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वंच जघनात्पा-  
र्श्वसंधिस्तत्र लोहितपूर्णकोष्ठतया भ्रियते ।

अर्थ—जघनके मध्य अंगसे तिरछा तथा ऊपरके दोनोंपार्श्वोंमें शिराओंका बंधन है । उसको पार्श्वसंधिकहते हैं, उसमें विकार होनेसे रक्तपूर्णकोष्ठ होकर थोड़े दिनमें मरे हैं; इसका प्रमाण अर्धांगुल है ।

बृहतीसंज्ञकशिरामर्म ।

स्तनमूलादुभयतः पृष्ठवंशस्य बृहती तत्र शोणिताति  
प्रवृत्तिनिमित्तरूपद्रवैर्भ्रियते शिरामर्मणी अर्धांगुले ।

अर्थ—स्तनमूलमर्मके अनुमानकरके पृष्ठवंशके दोनोंतरफके अंगमें बृहतीसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाणहै; उसमेंसे रुधिरकीप्रवृत्तिहोकर मनुष्य मरता है ।

अंशफलकमर्म ।

पृष्ठोपरिपृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसंधावंशफलके ।

अर्थ—पीठकेऊपर दोनोंतरफ तथा जिसजगे मन्यानाडी और कंधेका संयोगहुआ उसस्थलकी संधीको त्रिक कहतेहैं, उसकेसमीप अंशफलकमर्म अर्धांगुलप्रमाण वैकल्यकारकहै ।

स्नायुबंधनअंशमर्म ।

बाहुमूर्ध्वग्रीवामध्येशपीठस्कंधबंधनेअंशेतत्रस्तब्ध

बाहुतास्नायुमर्मणीअर्धांगुलेवैकल्यकरे ।

अर्थ—बाहुकाऊपरलाभाग और मन्यानाडी इनकेमध्यमें अंशफलका सहवर्तमान भुजशिरसे बँधीहुई स्नायुबंधनहै, उसको अंशकहतेहैं, यह स्नायुमर्म अर्धांगुलप्रमाण वैकल्यकरताहै ।

जन्तुमूलकेऊपरकेमर्मकहते हैं ।

तत्रकण्ठनाड्यामुभयतश्चतस्रोधमन्योद्वेनीले

द्वे मन्येव्यत्यासेनतत्रमूकतास्वरवैकृतमरसया

हिताचशिरामर्मणीचतुरंगुलेवैकल्यकरे ।

अर्थ—कंठनाडीके दोनोंतरफ चारधमनीहैं । उनके नाममन्या तथा नीला, उनमेंसे एकएक तरफ एकमन्या और नीलाहै । ये शिरामर्म चारअंगुलप्रमाणहैं, इनमें विकारहोनेसे गूंगापना, स्वरभेद, इत्यादि विकार होतेहैं ।

मातृकाशिरामर्म ।

ग्रीवामुभयतश्चतस्रश्चतस्रःशिरामातृकास्तत्रसद्योमरणम् ।

अर्थ—नाडकेदोनोंतरफ चारचारशिराहैं, उनआठोंको मातृकाकहतेहैं, ये शिरामर्म चारअङ्गुलप्रमाण सद्यःप्राणहारक जानने ।

कृकाटिकसंधिमर्म ।

शिरोग्रीवयोःसंधानेकृकाटिके । तत्रचलमूर्धतासंधि

मर्मणीअर्धांगुले ।

अर्थ—मस्तक और नाड इनकेसंयोगमें कृकाटिकसंधिमर्म अर्धांगुलप्रमाण है, इसमें विकारहोनेसे मस्तक कांपे, यह मर्मपीठके ओर मन्यानाडीके जोड़में है ।

विधुरसंज्ञकस्नायुमर्म ।

कर्णपृष्ठयोरधःसंश्रितेविधुरेतत्रबाधिर्यस्नायु  
मर्मणीकिंचिन्निम्नाकारेवैकल्यकारिणीच ।

अर्थ—कानोंकेपिछाडी किंचित्नीचे विधुरसंज्ञक स्नायुमर्महै, इसमेंविकारहोनेसे मनुष्य बहिरा होताहै ।

फणसंज्ञकशिरामर्म ।

घ्राणमार्गमुभयतःस्रोतोमार्गप्रतिबद्धे  
अभ्यन्तरतःफणेतत्रगंधाज्ञानम् ।

अर्थ—नासिकाके भीतर दोनों मार्गके दोनोंतरफ बंधा फणसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारी है, इसमें विकार होनेसे गंधका ज्ञान नहींहोवे ।

अपाङ्गसंज्ञकशिरामर्म ।

भ्रूपुच्छांतयोरधोक्ष्णोर्बाह्यतोपाङ्गौतत्रान्ध्यंदृष्ट्युप  
घातोवाशिरामर्मणीअर्धांगुलेवैकल्यकारिणीच ।

अर्थ—भौंहके अंतमें नीचे नेत्रोंके बाहरकी तरफ अपांगसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकर है, उसमें विकार होनेसे अंधा अथवा नेत्रविकारी होताहै ।

आवर्त्तसंज्ञकसंधिमर्म ।

भ्रुवोरुपरिनिम्नयोरावर्त्तौतत्राप्यान्यंदृष्ट्युपघातोवा ।

अर्थ—भौंहके ऊपरले अङ्गमें किंचित् गट्टेदार प्रदेश है, उसमें आवर्त्तसंज्ञक संधिमर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारी है, उसमें चोटलगनेसे अंधा वा दृष्टीका उपघात होवे ।

शंखनामकअस्थिमर्म ।

भ्रुवोरंतरोपरिकर्णललाटयोर्मध्येशंसौ ।

तत्रसद्योमरणंअस्थिमर्मणीअर्धांगुले ।

अर्थ—भौंहोंके ऊपर कान और ललाट इनमें शंखनामक अस्थिमर्म अर्धांगुल प्रमाण है, उसमें विकार होनेसे तत्काल मरे ।

उत्क्षेपसंज्ञकमर्म ।

शंखयोरुपरिकेशान्तेउत्क्षेपौतत्रसशल्योजीवेत् ।

अर्थ—कनपटीके ऊपर केशपर्यंत उत्क्षेपसंज्ञकमर्म है, उसमें जबतक शल्यरहै तबतक बचे और शल्यनिकालतेही मरजावे ।

स्थपणीशिरामर्म ।

भ्रुवोर्मध्येस्थपणीतत्रोत्क्षेपवत् ।

अर्थ—दोनों भौंहोंके मध्यमें स्थपणीसंज्ञक शिरामर्म है, इसमेंभी जबतक शल्य रहे तबतक जीवे, शल्यनिकलतेही मरे ।

सीमंतसंधिमर्म ।

पंचसन्धयःशिरसिविभक्ताःसीमन्ताः ।

अर्थ—मस्तकमें बर्तनोंकी संधिके सदृश पृथक् २ पांच संधिहैं, उनको सीमंत कहतेहैं. ए मर्म चारअंगुल प्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकरनेवाले जानने ।

शृंगाटकनामकशिरासंयोगमर्म ।

घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासंतर्पणीनांशिराणांमध्यशिरःसन्निपातः ।

शृङ्गाटकानितानिचत्वारिमर्माणितत्रापिसद्योमरणम् ।

अर्थ—नासिका, कान, नेत्र, जिह्वा, इनचारों इन्द्रियोंको तृप्तकरनेवाली जो शिरा उसके मुखका संयोग मस्तकमें जिस स्थलमें हुआहै, उसीजगे शृंगाटकसंज्ञक चार शिरामर्म सद्यःप्राणनाशक हैं ।

अधिपतिशिरामर्म ।

मस्तकाभ्यन्तरतउपरिष्ठाच्छिरासंधिसन्निपातोरोमावत्तौधिपतिः ।

अर्थ—मस्तकके मध्य ऊपरले भागमें जिसजगे सर्वशिरा तथा संधी इनका संयोग हुआहै उसस्थलमें अधिपतिसंज्ञक शिरामर्म अर्धीगुलप्रमाणहै, उसके बाहरकी तरफ केशोंकी भौरी है, ये मर्म सद्यःप्राणहारक जानना ।

मर्मोंकासूत्रोक्तप्रमाणकहतेहैं ।

उर्व्यःशिरांसिविटपेचसकक्षपाश्वैएकैकमंगुलमितास्त

नपूर्वमूलम्।बद्धचंगुलद्वयमितंमणिवंधगुलफंत्रीण्येवजा

नुमपरंचसकूर्पराम्याम्।हृद्वस्तिकूर्चगुदनाभिवदांतिमूक्षि

चत्वारिपंचगलकेदशयानिचद्वे । तानिस्वपाणितलकुञ्चि  
तसंमितानि, शेषाण्यवेहिपरिविस्तरतोंगुलार्धम् ।

अर्थ—उर्वी, शिरस, विटप, कक्षधर, ए चारप्रकारके मर्म विस्तारमें एक एक अंगुल प्रमाणहै, और मणिबंध, गुल्फ, स्तनमूल, ए मर्म दोदोअंगुलके हैं. जानु, कूर्पर, ए तीनतीनअंगुलकेहैं; तथा हृदय, बस्ति, कूर्च, गुद, नाभि सीमंत, अंगाटक, मातृका, मन्या और नीलधमनी ए सब मर्म चारचार अंगुलके हैं और बाकीके मर्म है वो सब अर्धांगुल प्रमाण जानने ।

मर्मोंकाप्रयोजनकहतेहैं ।

एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्यवदन्तितज्ज्ञाःशस्त्रेणकर्मक  
रणंपरिहृत्यकार्यम् । पार्श्वीभिघातितमपीहनिहं  
तिमर्मतस्माच्चमर्मसदनंपरिवर्जनीयम् ।

अर्थ—पूर्वोक्त मर्मोंका प्रमाण देखकर मर्मस्थानको छोड़ वैद्योंको शस्त्रक्रिया ( छेदनभेदनआदि ) करनी चाहिये । क्योंकि मर्मोंमें शस्त्रलगनेसे मरजावे और हाथ तथा पैर इनका छेदनहोनेसे मनुष्य बचेहैं । परंतु तदवयवभूत मर्मका छेद होनेसे मरताहै ।

हाथपैरटूटनेसेबचजावेऔरमर्मभेदककेमरेहैंयहकहतेहैं ।

छिन्नेषुपाणिचरणेषुशिरानराणां संकोचमापुरसृ  
गल्पमतोनिरेति । प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतोमनु  
ष्यः संछिन्नशाखतनुवन्निधननयांति । क्षिप्रेषुतच्च  
सतलेषुहतेपुरक्तं गच्छत्यतविपवनश्चरुजंकरोति ।  
एवंविनाशमुपयांतिहितत्रविद्धा \* वृक्षाइवायुध  
निपातवशंह्यनीशाः ॥

अर्थ—मनुष्योंके हाथ पैर टूटनेसे उसजगेकी शिराओंके मुख सुकडकर रुधिर बहुत नहीं निकले, केवल अत्यंत पीडा होती है, परंतु मरे नहीं है । और हाथपैर टूटते समय क्षिप्रमर्म अथवा तलहृदय इनमें शस्त्रलगनेसे रुधिर अत्यंत निकल कर उसजगे वायु कुपितहोकर अत्यंत पीडाकरेहैं, उस्से मनुष्य मरजाताहै । इसमें

दृष्टांतहै कि जैसे वृक्ष कुठार आदिकरके शाखासंधिके विषे खंडितहोनेसे पत्ते आदि सुखकर मरताहै ।

मर्मकौनसेकार्यकेउपयोगीहोतेहैंसोकहतेहैं ।

मर्माणिशल्यविषयार्थमुदाहरन्ति यस्माच्चमर्मसुहृत्तानभव  
न्तिसद्यः । जीवन्तितत्रयदिवैद्यगुणेनकेचित्तेप्राप्नुवन्तिविक  
लत्वमसंशयंहि ॥

अर्थ-मर्मोंको शल्य ( शस्त्रकंटक ) विषय कहाहै, ऐसे कोई आचार्य कहते हैं, तथा शल्यकंटकादि करके शरीर और मन इनको पीडा देना या मारना इनमें मरण, कारक धर्म तो शल्यविषयक आघातकरके होताहै; परंतु तत्काल मरता नहीं है. सातदिनके अंतरसे मरे है; इसीसे मर्मोंको शल्यविषयोंका अर्थ है ऐसा कहते हैं; और मर्मस्थानमें शल्यलगनेसेभी बचजाताहै, ऐसा देखागयाहै, ऐसे कहनेसे कहते हैं कि वह वैद्यकी कुशलतासे कदाचित् कोई बचनेसे उसी उसी अंगकी विकलता होती है, वह अंगकार्योपयोगी नहीं रहै ।

मर्महतअनेकउपद्रवोंकरके मरताहै सो कहतेहैं ।

तंभिन्नजर्जरितकोष्ठशिरःकपालाजीवंतिशस्त्रविहतैश्चशरीरदेशैः ।  
छिन्नश्चसक्थिभुजपादकरैरशोषैर्येषानमर्मसुकृताविषयप्रहाराः ।

अर्थ-शस्त्रसे हतशरीरमें मर्मकाप्रदेश, उसविकारकर्के जिन्होंके कोष्ठ, मस्तक, कपाल ये जर्जरहुए वो बचे नहीं हैं । और मर्मके विना इतर अवयव जे हस्तपादादिक इनमें विघात होनेसे जर्जरित होकर बचते हैं ।

मर्माभिघातकरकेमनुष्यमरणमेंकारणकहतेहैं ।

सोममारुततेजांसिरजःसत्वतमांसिच । मर्मसुप्रायशःपुंसां  
भूतात्माचावतिष्ठते । मर्मस्वभिहतास्तस्मान्न जीवंतिशरीरिणः ॥

अर्थ-पांचप्रकारका कफ, पांचप्रकारका वायु, पांचप्रकारके पित्त, भूतात्मा, रज, सत्व और तम, ये सर्व प्रायः करके मर्ममें रहतेहैं । इसीसे मर्मका छेद तथा भेद होनेसे मनुष्य मरता है ।

सद्यःप्राणहरादिमर्मपंचककेलक्षण ।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्ययः । रुजश्चविविधास्ती  
ब्राभवन्त्याशुहतेहते । हतेकालान्तरघ्रेतुध्रुवोधातुक्षयोनृणाम् ।

अतोधातुक्षयाज्जन्तुर्वेदनाभिश्चनश्यति । हतेवैकल्यजन  
नेकेवलंवैद्यनैर्गुणात् । शरीरंक्रिययायुक्तं विकलत्वमवाप्नुयात् ।  
विशल्यघ्नेतुविज्ञेयंपूर्वोक्तं यत्तुकारणम् ।

अर्थ—सद्यःप्राणहरणकर्ता मर्ममें किसीप्रकारकी चोट लगनेसे सर्वइन्द्री विक-  
लहो स्वस्वविषयोंके ग्रहणकरनेकी शक्ति नहीं रहे, तथा मन बुद्धि इनका विपरीत  
होना, अनेक प्रकारकी उग्रपीडा होतीहै । और कालांतर प्राणहरणकर्ता मर्मोंके अ-  
भिहत होनेसे शरीरकी धातु नष्ट होतीहै और मनुष्यके वेदना होनेसे मरताहै । और  
वैकल्यकारक मर्मके आघातहोनेसे वैद्यकी कुशलतासे शरीर अच्छा होजावे, परंतु  
विकलहोताहै । और विशल्य मर्ममें जो शल्य है वो जबतक उसमें रहेहै तबतक बच-  
ताहै, यह पूर्वोक्त कारणके लक्षण करके जानने ।

रुजाकरमर्मोंकोकुवैद्यबिगाडेहैं ।

रुजाकराणिमर्माणिक्षतानिविविधारुजः ।

कुर्वन्त्येतानिवैकल्यंकुवैद्यवशगायदि ॥

अर्थ—रुजाकर मर्मोंको विकृति होनेसे नानाप्रकारकी पीडा होतीहै और उत्तम  
वैद्यके न मिलनेसे अर्थात् दुष्टवैद्यके वशहोनेसे शरीर और बलको हीनकरेंहैं ।  
मर्मसमीपचोटकरकेमर्मतुल्यपीडाकहतेहैं ।

छेदभेदाभिघातेभ्योदहनाद्धारणादपि ।

उपघातंविजानीयान्मर्मणांतुल्यलक्षणम् ॥

अर्थ—मर्मसमीपके देशोंमें छेदन, भेदन, आघात, अग्निसे फुकजाना, अथवा  
विदीर्णहोनेसे अथवा उपघात होनेसे, उनके लक्षण पूर्वोक्त मर्मलक्षणोंके सदृश जानने ।

मर्माभिघातविषयमेंवैद्ययत्नकहतेहैं ।

मर्माण्यधिष्ठायचयेविकारामूर्च्छन्तिकायेविविधानराणाम् ।

प्रायेगतेकृच्छ्रतमाभवंतिनरस्ययत्नैरपिसाध्यमानाः ॥

इति सौश्रुतशारीरे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ—मर्मोंमें जो विकार होतेहैं वे सर्व शरीरमें व्याप्त हो अत्यंत क्लेशदायक  
होतेहैं, अतएव वैद्यको बडे यत्न करके साध्यभी कृच्छ्रतम होतेहैं ।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरेदशमस्तरङ्गः ॥ १० ॥

## अथ सप्तमोऽध्यायः ।

( मर्मशिरास्नायुधमनीः परिहरन् ) इत्यादि पदोंमें मर्मके पश्चात् शिरा शब्द-  
के कहनेसें प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीराध्याय कहनेके अनंतर शिरावर्णविभागशारी-  
र कहना उचितहै, अतएव उसीको कहते हैं ।

अथातः शिरावर्णविभक्तिशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—शिरा और उन्होंके शुक्ल लोहितादि ( लाल काले पीले आदि ) वर्ण  
और उन्होंके समुदायसें पृथक्करण जिसमें वर्णन करा, ऐसी शिरावर्णविभक्तिशा-  
रीराध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

सर्वशिराओंकीसंख्या ।

सप्तशिराशतानिभवन्ति ।

अर्थ—शिरा ( नस ) सब ७०० सातसौं हैं ।

शिराओंकेकार्य ।

याभिरिदंशरीरमारामजलमिवजलहारिणीभिः केदारमिवकु  
ल्याभिरुपस्निह्यतेअनुगृह्यतेचाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैः ।

अर्थ—शिरा सर्व शरीरमें आपाद मस्तक पर्यंत रस लेजायकर शरीरको स्नि-  
ग्धकरती है, जैसे बगीचेमें वृक्षोंकी क्यारी वरहाके जलसें वृत्तहोती है, उसीप्रकार नहर-  
के बंबासे जैसे खेत परिपूर्ण होताहै, उसीप्रकार बड़ी और छोटी शिराओंके द्वारा  
देह पुष्ट होता है । और आकुञ्चन, प्रसारण, भाषण, निद्रा, जागने आदि कर्मकरके  
शरीरका पालन पोषण होता है ।

शिराओंकेअतिसूक्ष्मप्रकारदृष्टांतकरकहतेहैं ।

द्रुमपत्रसेवनीनामिवतासांप्रतानाः तासांनाभि

मूलंततश्चप्रसरंत्यूर्ध्वमधश्चतिर्यक्चप्रताना ।

अर्थ—शिराओंके विस्तार, वृक्षोंके पत्तेके शिराप्रमाण असंख्यात है उन सबका  
मूल नाभी है । उसनाभिसे निकल ऊपर नीचे आडे तिरछे सर्वदेहमें फैलरहे हैं ।

प्रमाण ।

यावत्यस्तुशिराकायेसंभवन्तिशरीरिणाम् ।

नाभ्यांसर्वानिबद्धास्ताः प्रतन्वन्तिसमंततः ॥

अर्थ—जितनी शरीरमें शिराहै सब नाभिसे बंधीहै, उसीजगसे चारोंतरफ फैलीहै।  
( कोई आचार्य कहतेहैं कि नाभिमें शिरा गोपुच्छाकृतिहैं । )

शिराओंकाऔरप्राणोंकाआधाराधेयभावसंबंधकहतेहैं ।

नाभिस्थाः प्राणिनांप्राणाः प्राणानाभिव्यपाश्रिताः ।

शिराभिरावृतानाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ।

अर्थ—सर्व प्राणियोंके प्राण नाभिमें नाभीके आवरक शिराओंका आश्रय करके रहते हैं, उन शिराओंसे इसप्रकार नाभि लिपटी हुईहै जैसे गाडीके पहियेकी नाभि लकड़ियों करके चारों तरफसे घिरी हुई होतीहै ।

शिराओंकीगणना ।

तासांमूलशिराश्चत्वारिंशत्तासांवातवाहिन्योदश

पित्तवाहिन्योदशकफवाहिन्योदश रक्तवाहिन्योदश ।

अर्थ—उन नाभिचक्रस्थ शिरासमुदायमें मुख्य ४० चालीस शिराहै, तिनमें १० वातवहने वाली, १० पित्तवहने वाली, १० कफवहने वाली, और १० रुधिरके वहनेवाली सबमिलकर ४० हुई ।

तासांवातवाहिनीनांवातस्थानगतानांपंचसप्तशतंभवति

तिएवं पित्तवाहिन्यः पित्तस्थाने कफवाहिन्यः कफस्थाने

रक्तवाहिन्यः रक्तस्थाने यकृत्प्लीहोरेवमेतानिसप्तशिराश

तानिभवन्ति ।

अर्थ—वातवाहिनी शिराओंकी शाखा जो वातस्थानके प्रतिगई है वो, १७५ एकसौ पिचत्तरहैं । कफवाहिनीकी शाखा जो कफस्थानके प्रति गई है वो १७५ है। पित्तवाहिनी की पित्तस्थानमें जानेवाली १७५ हैं, और रक्तवाहिनी नाडीयोंकी शाखा जो रक्तस्थान ( यकृत्प्लीह ) के प्रति गईहैं वो भी १७५ एकसौ पिचत्तर, इसप्रकार सबमिलकर ७०० हुई ।

अंगविभागकरकेशिरासंख्याकहतेहैं ।

तत्रवातवहाशिराएकस्मिन्सक्थिनिपंचविंशतिः ।

एतेनेतरसक्थिवाहूचव्याख्यातौ ।

अर्थ—वातवाहिनी शिरा एक पैरमें २५ पच्चीस है, उसीप्रकार दूसरे पैरमें और दोनों हाथों में मिलकर १०० सौ होती हैं ।

कोष्ठगतशिराविभाग ।

विशेषतस्तुकोष्ठेचतुर्विंशत् तासांगुदमेद्रश्रिताः श्रो-  
ण्यामष्टौद्विपार्श्वयोः षट्पृष्ठेतावंत्यएवोदरेदेशवक्षसि ।

अर्थ—कोष्ठ ( मध्यप्रदेश ) में ३४ वातवाहिनी, तिनमें भी गुदा और लिंग इनके आश्रयकरके रहने वाली श्रोणीमें ८ दोनों कूखोंमें ४ पीठमें ६ पेटमें ६ उरमें १० सब मिलकर ३४ हुई ।

नाडसेलेकरऊपरकेभागमेंशिराओंकीसंख्या ।

एकचत्वारिंशज्जत्रुणऊर्ध्वतासांचतुर्दशग्रीवायां कर्णयो  
श्चतस्रोनावजिह्वायांषड्नासिकायामष्टौनेत्रयोः एवंपंच  
सप्तशतंवातवहानांव्याख्यातम् ।

अर्थ—जत्रु ( दोनोंकंधे और नाडकी संधि ) से लेकर ऊपरके प्रदेशमें ४१ वा-  
तवाहिनी शिराहैं, तिनमें नाडमें १४ कर्णगत ४ जीभमें ९ नाकमें ६, नेत्रमें ८,  
सब मिलकर ४१ हुई । अब कोष्ठ और नाड दोनोंकी जोड़नेसे १७५ शिरा होती  
हैं । इसीप्रकार पित्तवाहिनी आदि नाडियोंका प्रमाण जानना, परंतु पित्तवाहिनी  
शिरा नेत्रगत १० कर्णगत २ इतना भेद है ।

शिराश्रितवातादिकोंकेप्राकृतऔरवैकृतकार्यकहते हैं ।

क्रियाणामप्रतीघातः प्रमोहोबुद्धिकर्मणाम् ।

करोत्यन्यान्गुणांश्चापिस्वाःशिराःपवनश्चरन् ।

अर्थ—वायु स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृतिपूर्वक संचार करनेसे आकुंचन, प्र-  
सारण, भाषण इत्यादि क्रिया यथास्थित होती हैं । तथा नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिय मन बु-  
द्धि इनकी शक्ती अपने अपने कार्योंमें उत्तम रहती है । और वायु अन्यगुण प्रस्यंद-  
न, उद्ग्रहन, पूरण इत्यादिकोंको करे है ।

वातवाहिनीशिरागतकुपितवातकेविकारकहतेहैं ।

यदातुकुपितोवायुःस्वशिराःप्रतिपद्यते ।

तदास्याविविधारोगाजायन्तेवातसंभवाः ।

अर्थ—जिसकालमें वायु कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें संचार करने लगे है,  
उसकालमें अनेक प्रकारके वातसंभव रोग होते हैं ।

पित्तकेकार्य ।

भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम् ।

संतर्प्यस्वशिराःपित्तंकुर्यादन्यान्गुणानपि ॥

अर्थ—पित्त, स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृतिपूर्वक रहता हुआ उनको तृप्त करने करके शरीरमें कांति तथा अन्नपर रुचि, जठराग्निकी दीप्ति, नैरोग्यता, तेजस्वीपना, रागपंक्ति और ओज इत्यादि कर्मकरे है ।

पित्तवाहिनीशिरागतकुपितपित्तकेविकारकहतेहैं ।

यदातुकुपितंपित्तंसेवतेस्ववहाःशिराः ।

तदास्यविविधारोगाजायन्तेपित्तसंभवाः ॥

अर्थ—जिसकालमें पित्त कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें संचार करनेलगे है उसकालमें इस मनुष्यके अनेक प्रकारके पित्तसंभव रोग होते हैं ।

कफकेकार्यकहतेहैं ॥

स्नेहमद्गेषुसन्धीनांस्थैर्यैबलमुदीर्णताम् ।

करोत्यन्यान्गुणांश्चापिबलासःस्वाःशिराश्चरन् ॥

अर्थ—कफ, स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृति पूर्वक रहनेसे अंगोंमें सच्चिक्लृणता, संधियोंकी स्थिरता, बल, इत्यादि गुण करे है ।

विकृतकफकेकार्य ।

यदातुकुपितःश्लेष्मास्वाःशिराःप्रतिपद्यते ।

तदास्यविविधारोगाजायन्तेश्लेष्मसंभवाः ।

अर्थ—जिसकालमें कफ कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें संचार करने लगेहै उसकालमें इस मनुष्यके अनेक प्रकारके कफसंभव रोग होते हैं । \*

रक्तकेकार्य ।

धातूनापूरणंवर्णंस्पर्शज्ञानमसंशयम् ।

स्वाःशिराःसंचरद्रक्तंकुर्याच्चान्यान्गुणानपि ॥

\* वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंका वर्णन आगे दोषवर्णविज्ञानीयाध्यायमें विस्तारपूर्वक कहेगे.

अर्थ—रक्त, स्ववाहिनी नाडियोंमें निर्दोष वहनेसे धातुओंका पूरण, वर्ण, स्पर्श-ज्ञान, और पित्तके गुणसदृश गुणकरे है । तथा “ रक्तवर्णप्रसादं ” इत्यादि अन्य-गुणोंकोभी करे है ।

कुपितरक्तकेकार्य ।

यदातुकुपितंरक्तंसेवतेस्ववहाःशिराः ।

तदास्यविविधारोगा जायन्तेरक्तसंभवाः ।

अर्थ—जिसकालमें रुधिर कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें विचरे है, उससमय इस मनुष्यके देहमें अनेक रुधिरके विकार होते हैं ।

वातादिशिरासर्वदोषोंकोवहती हैं सो कहतेहैं ।

नहिवातंशिराःकश्चिन्नपित्तंकेवलंतथा ।

श्लेष्माणंवाहयंत्येताअतःसर्ववहाःशिराः ॥

अर्थ—कोईभी शिरा केवल एक वायुको अथवा केवल पित्तको किंवा केवल एक कफको नहीं बहे हैं किंतु सर्वशिरा अंशतः वात पित्त कफादिकोंको वहती हैं अतएव उनको सर्ववहा कहतेहैं ।

सर्वदोषवहनेवालीशिराओंकोहीसर्ववहत्वकहतेहैं ।

प्रदुष्टानांहिदोषाणांमूर्च्छितानांप्रधावताम् ।

ध्रुवमुन्मार्गगमनमतःसर्ववहाःस्मृताः ॥

अर्थ—कुपित वातादिदोषोंकोही सर्वशिरा अंशांश प्रमाण करके वहती हैं, इसीसे उनको सर्ववह कहते हैं ।

शिराओंकावर्णविभागकहते हैं ।

तत्रारुणावातवहाः पूर्यन्तेवायुनाशिराः । पित्तादु-

ष्णाश्चनीलाश्चशीतागौर्यःस्थिराःकफात् ॥ असृग्

हास्तुरोहिण्यः शिरानात्युष्णशीतलाः ।

अर्थ—वातके वहनेवाली शिरा लाल और वायुके पूर्ण है, पित्तके वहनेवाली शिरा उष्ण और नीलवर्णकीहै । और कफवाहिनी शिरा शीतल सपेदरंगवाली और स्थिरहै, और रक्तवाहिनी शिरा न अत्यन्त गरम न बहुत शीतल किंतु मध्यम होती है; और इनका लोहितवर्ण होताहै ।

वर्जितशिराओंको कहते हैं ।

अतर्द्ध्वप्रवक्ष्यामिनविच्छद्येच्छिराभिषक् ।

वैकल्यंमरणं चाशुव्यधात्तासांध्रुवंभवेत् ।

अर्थ—अब उनशिराओंको कहते हैं, कि जो न खोलनी चाहिये, कदाचित् इन अवेध्य शिराओंकी फस्तखोले तो विकलता और मरण होताहै ।

अवेध्यशिरा ।

शिराशतानिचत्वारिविन्द्याच्छाखासुबुद्धिमान् । पट्त्रिंशच्चशतं  
कोष्ठेचतुःषष्टिश्चमूर्धसु । शाखासुषोडशशिराःकोष्ठेद्वात्रिंशदेवतु ।  
पञ्चाशज्जत्रुणश्चोर्ध्वनव्यध्याःपरिकीर्तिताः ।

अर्थ—हाथपैरोंमें पूर्वोक्त प्रकारकरके ४०० शिराहैं, तिनमें १६ शिराओंका खोलना वर्जितहै, तथा मध्यप्रदेशमें १३६ शिराहैं, तिनमें ३२ शिराओंकी फस्त खोलना वर्जितहै, तथा मस्तकमें १६४ तिनमें ५० शिरावेधने योग्य नहीं हैं ।

शाखागत १६ अवेधशिरा ।

जालधराचैकातिस्रश्चाभ्यन्तरास्तत्रोर्वीसंज्ञेद्रे लोहिताख्यसंज्ञैका ।

अर्थ—हाथ और पैरमें १६ नाडी वेधनेयोग्य नहीं हैं, तिनमें १ जालधरा और तीनशिरा भीतरहैं; उनमें दोशिरा उर्वी संज्ञक हैं, और तीसरी लोहितसंज्ञक है, ऐसे एक पैरमें चार और दूसरे पैरमें चार इसीप्रकार दोनों हाथोंमें ८, सब हाथ पैरकी मिलकर सोलह शिराहैं इनको न तोड़े ।

द्वात्रिंशच्छ्रोण्यांतासामष्टौअशस्त्रकृत्याः  
द्वेद्वेविटपयोःकटिकतरुणयोश्च ।

अर्थ—पृष्ठ, उदर और उर इन्में ३२ शिरा अवेध्य हैं, ( इसजगे पृष्ठशब्द करके श्रोणि और पार्श्व इनका ग्रहण होताहै ) सारांश यहहै कि, श्रोणिगत ८ पार्श्वगत ८ पृष्ठगत २ और उदरमें १४ ऐसे मिलकर ३२ शिरा मध्यप्रदेशमें हैं तथा कमरमें ३२ शिराहैं, तिनमें विटपसंज्ञक ४ और कटितरुणास्थि संबंधी ४ ऐसे आठ शिरा अशस्त्रकृत्यहै, अर्थात् इनकी फस्त न खोले । तथा एकएक कूखमें आठ-आठ शिराहैं; तिनमें ऊपरकी गई ऐसी दो शिरा अशस्त्रकृत्य हैं तथा पृष्ठवंशके दोनों अंगोंमें २४ शिराहैं, तिनमें ऊपरकी गई ऐसी बृहतीसंज्ञक ४ शिरा अशस्त्रकृत्यहैं, तथा उरमें ४० शिरा हैं, तिनमें १४ अशस्त्रकृत्य उनको वर्णन करते हैं । हृदय-

गत २ स्तनमूलगत ४, तथा स्तनरोहितगत ४, अपलाप और अपस्तंब मिलकर ४ ऐसे सब १४ उदरगत २४ तिनमें ४ अशस्त्रकृत्यहैं, ऐसे ३२ शिरा मध्यप्रदेशगत जाननी, तथा जत्रुसे लेकर ऊपरके प्रदेशमें १६४ शिराहैं, तिनमें ५८ शिरा नाडमें हैं, तिनमें मातृका ४ मन्या २ नीला २ कृकाटिकगत २ विधुरगत २ सब मिलकर १६ शिरा नाडमें अशस्त्रकृत्यहैं, अर्थात् इनकी फस्त न खोलनी चाहिये ।

ठोडीकीशिरावेध ।

हनोरुभयतोष्ठावष्टौतासांसंधिमन्यौद्वेद्रेपरिहरेत् ।

अर्थ—ठोडीके दोनोंतरफ आठ २ शिरा हैं, तिनमें ठोडीकी संधिके हेतुभूत ऐसी एकएक तरफ २ हैं, येही केवल ४ शिरामात्र अवेधयोग्य हैं, ठोडीके सोलहशिरा नाडके अंतर्भूतहैं, इसीसे पृथक् नहीं कही गई. किसी आचार्यके मतसे ठोडीमें १६ शिरा पृथक् हैं, तिनमें दो संधिवंधन मर्मरूप वर्जित हैं ।

जिह्वाकीशिरा ।

षट्त्रिंशजिह्वायांतासामधःषोडश अशस्त्रकृत्याः

रसवहेवाग्वहेच ।

अर्थ—जिह्वामें ३६ शिरा हैं, तिन जिह्वागत ३६ शिराओंमें १६ शिरा नीचेके भागमें और बीसऊपरके अंगमें, तिनमें दो रसवाहिनी और दो वाणीके वहनेवाली ऐसे चारशिरा मात्रको न तोडनी चाहिये ।

नासिकाकीशिरा ।

द्विर्द्वादशनासायांतासामौपनासिक्यश्चतस्रःपरिहरेत्

तासामेवतालुन्येकामृदाबुद्देश्ये ।

अर्थ—नासिकामें १४ शिरा हैं, तिनमें नासिकाके समीप चार तथा तालुएमें काकके समीपकी १ ऐसे पांच शिरा शस्त्रकर्मोपयोगी नहीं हैं ।

अपाङ्गकीशिरावेध ।

षट्त्रिंशदुभयोनेत्रयोस्तासामेकैकामपाङ्गयोःपरिहरेत् ।

अर्थ—नेत्रमें ३६ शिराहैं, तिनमें अपाङ्गगत ( नेत्रकेअंतकेभागमें ) एकएक त्याज्य है ।

नासानेत्रादिकोंमेंशिरावेध ।

नासानेत्रतालुललाटेषष्टिस्तासांकेशान्तानुगताश्चतस्रः

आवर्तयोरेकैकास्थपण्यांचैकापरिहर्तव्या ।

अर्थ—ललाटमें ६० शिराहैं, तिन्होंमें आवर्त्तमर्मके समीपकी ४ शिरा तथा आवर्त्तमें एकएक और स्थपणीमें १ ऐसे ७ शिरा त्यागने योग्य हैं, ललाटगत ६० शिरा नासिका तथा नेत्रमें जानेवालीहैं, इसीसे नहीं कहीं अर्थात् २४ नाककी और ३६ नेत्रकी येही मिलकर ६० शिरा ललाटमें हैं ।

शंखगतशिरावेध ।

शंखयोर्दशतासामेकैकांपरिहरेत् ।

अर्थ—शंख ( कनपटी ) में १० शिरा हैं, तिनमें एकएक त्यागने योग्य है, शंखगत शिरा येभी नासिका नेत्रगतही हैं ।

मस्तकसीमंतऔरअधिपतिइनमेंशिरावेध ।

द्वादशमूर्धनितासामुत्क्षेपयोर्द्वैपरिहरेत् ।  
सीमन्तेष्वेकैकामधिपतौ ।

अर्थ—मस्तकमें १२ शिराहैं, तिनमें उत्क्षेप मर्मगत एकएक और सीमंतगत ५ अधिपति गत एक ऐसे आठ शिरा त्यागने योग्यहैं, येभी शिरा नेत्रगतही हैं, इसीसे प्रथक् इनके नाम नहीं कहे ।

गिनीहुईशिराओंकीन्यूनाधिकताकहतेहैं ।

व्याप्तुवन्त्यभितोदेहं नाभितः प्रसृताः शिराः ।  
प्रतानाः पद्मिनीकन्दाद्विशादीनां जलयथा ॥

अर्थ—शिरा, नाभिसे निकलकर विस्तृतहो सर्वदेहमें व्याप्त होतीहैं, जैसे कमल-नीकन्दसे मृणालतन्तु निकलकर जलमें फैलते हैं । अतएव उक्त संख्यामें न्यूनाधिक्य मालूम होताहै ।

अथमतान्तरेणविशेषमाह ।

धमन्यइवविज्ञेयाः शिराश्चसर्वदेहगाः । रक्तस्रोतः प्रवाहिण्यो  
देहरक्षणहेतवः । शिरस्युरसिकण्ठेचबाह्वोरपिचयाः स्थिताः ।  
सर्वास्त्राजत्रुणोरारान्मिलित्वैकत्वमागताः । सक्थोरुदर  
वस्त्योर्यावस्तिदेशेचसङ्गताः । भित्त्वावक्षस्थलेपेशीनय  
न्त्यस्रंहृदालयम् । शिराभिर्निखिलाभिश्चशिरासङ्गमजात  
योः। द्रयोर्महत्योः शिरयोरर्प्यतेशोणितंसदा ॥ हृदयाच्छोणितं

शुद्धमाश्रित्यधमनीपथम् । गुणविश्राणनाद्देहंक्षीणंपुष्णाति  
 नित्यशः । एवंत्यक्तगुणंकृष्णंदेहनाशगुणान्वितम् ॥ शिरा  
 भिश्चपुनर्यातिदक्षिणंहृदयालयम् । तत्रनिःश्वासवातेनवीत  
 दोषंगुणान्वितम् । सुरक्तंधमनीभिश्चपुनर्भ्रमतिवर्ष्मतत् । ए  
 कैकस्याधमन्यश्चकुत्रचित्पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ विद्यमानेशिरेद्वेद्रे  
 वहतोदुष्टशोणितम् । नाड्यःसूक्ष्मानयन्त्यस्रंधमनीभ्यःशि  
 राःसदा । शिराभिर्हृदयंयातिततस्तद्धमनींपुनः । एवंपुनः  
 पुनर्देहंभ्रमेदस्रनिरंतरम् । आभूमिस्पर्शनाद्यावन्मृत्युंसर्व  
 स्यदेहिनः । निवृत्तायांगतौरक्तस्रोतसांसद्यएवहि । मृत्युर्भव  
 तिजीवस्यविचिकित्सानविद्यते । सन्तिसूक्ष्माःशिराःकाश्चि  
 त्काश्चिच्चपृथुलास्तथा । काश्चिद्गंभीरदेहस्थाआगम्भीरग  
 तास्तथा । बाह्वोःसक्थोरधःस्थानाअगम्भीरस्थिताहियाः ।  
 अमांसलेषुदेशेषुव्याधिक्षीणस्यदेहिनः । शिराव्यक्ततराः  
 स्युस्तास्तद्वलक्षयलक्षणम् । बृंहणंवातश्मनंतत्रकार्ययथा  
 यथम् । इति श्रीसौश्रुतशारीरेसप्तमोध्मायः ॥ ७ ॥

अर्थ—धमनियोंके सदृश शिरा सर्वदेहगत जाननी, ये रुधिरको स्रोतोद्वारा  
 वहन करके देहके रक्षणकी हेतुभूत हैं. मस्तक, वक्षस्थल, कंठ और बाहू दोनों इन  
 सब स्थानोंमें शिरा स्थित हैं, ये सब जत्रुके निकट आय मिलकर एक होगई है;  
 सक्थिद्वय, उदर और बस्ती इन स्थानोंकी सब शिराहैं वो सब बस्तिदेशमें मि-  
 लकर एकहोकर वक्षस्थलस्थ पेशियोंकी भेदकर हृत्कोष्ठमें प्राप्त हुई हैं. देहमें जि-  
 तनीशिरा हैं वो सब इन दोनों बडी शिराओंमें मिलकर रुधिरको हृदयमें प्राप्त  
 करेहैं, और ओरस्थानके सदृश शोणितयंत्रशिराकी अवस्थिति जाननी. हृदयसे  
 शुद्धशोणित निकलकर धमनीमार्ग होकर समस्त देहमें परिभ्रमण करके क्षीण अंगों-  
 को आत्मगुण देकर नित्य पोषण करेहैं, इसप्रकार गुणहीन कृष्णवर्ण और देहना-  
 शक शक्तिसंपन्न होवे. यह दुष्टशोणित शिरामार्गहो दक्षिण हृत्प्रकोष्ठमें प्राप्त होता  
 है, उसजगे निःश्वासकी पवनके योगसे दोषवर्जित देह पोषणशक्तिसम्पन्न तथा लो-  
 हितवर्ण होकर फिर दूसरीवार धमनीमार्गहो देहमें भ्रमण करेहैं, किसीकिसी स्थल-  
 में एक एक धमनीके दोनों पार्श्वोंमें दोदो शिरा विद्यमानहैं, वे दुष्टशोणितको बहती

है । छोटीछोटी नाडीसमूह धमनी से शिराओंमें रुधिरको लाती है, उन शिराओंमें होकर वह रुधिर हृदयमें प्राप्तहो फिर उसी प्रकार विशुद्धहो पुनर्वा र धमनी नाडियोंमें होकर देहमें घूमैहै, इसीप्रकार देहमें रुधिर निरन्तर घूमा करेहै जबसे बालक गर्भसे निकल पृथ्वीमें गिरेहै और जबतक मृत्यु नहीं हो तावत्कालपर्यंत इसकी देहमें निरन्तर यह रुधिर भ्रमण करेहै कभी डोलनेसे बंद नहींहोता । कदाचित् किसी कारणवश रक्तस्रोतकी गति रुकजावे तो तत्क्षण मृत्युहोवे । इसमें कुछसंदेह नहींहै, और फिर इसका कुछ इलाजभी नहींहै, शिरासमूहके मध्यमें बहुतसी शिरा सूक्ष्म और बहुतसी स्थूल हैं कोई शिरा देहके गंभीर स्थानोंमें स्थितहैं । और कोई अगंभीर अर्थात् बाहरके देशमें निस्नेह विद्यमानहैं । बाहु और सक्थिद्वयके अधोभागस्थ-अगंभीर शिराहै । अमांसल प्रदेशस्थ शिरा तथा व्याधिक्षीण देहवाले मनुष्योंके अंगकी शिरासमूह सुव्यक्त अर्थात् चक्षुद्वारा लक्षित होतीहै । इसप्रकार शिराप्रकाश होनेसे बलक्षीणके लक्षण जानने । ऐसे मनुष्योंको बृंहण और वायुप्रशमक क्रिया कर्त्तव्यहै । १० नंबरका चित्र देखो ।

इतिश्रीमदायुर्वेदोद्दारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेणकादशस्तरङ्गः॥११॥

## अष्टमोऽध्यायः ।

शिरावर्णविभक्तिकहनेकेपश्चात्ज्ञातव्यव्याधिमेंशिरावेधविधिकहनीउचित है सोई कहतेहैं-

अथातःशिराव्यधविधिशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अथेत्यनंतरं अर्थात् शिरावर्णविभक्ति कहनेके पश्चात् अब हम शिरावेध-शारीरको कहेंगे.

फस्तखोलनावर्जित ।

बालस्यरूक्षक्षतक्षीणभीरुपरिश्रान्तमद्याध्वस्त्रीकर्षितवां  
तविरक्तास्थापितानुवासितजागरित क्लीबकृशगर्भिणीनां  
कासश्वासशोषप्रवृद्धज्वराक्षेपकपक्षाघातोपवासपिपासा  
मूर्च्छाप्रपीडितानांशिरांनविध्येत् ।

अर्थ-बालक, रूखादेहवाला, क्षतक्षय करके क्षीण, चोट आदि करके सप्तधातु क्षीणहुआ, डरपोका, थकाहुआ, मद्यपान करके शुष्क, मार्ग अथवा स्त्रीके संयोग-करके थकाहुआ, अत्यंत वमन करचुकाहो, दस्तवाला, निरूहबस्ति तथा अनुवा-सनबस्ति ये उपचार कराहुआ, घंट ( हिजडा ) कृश, गर्भिणी, खांसी, श्वास, क्षय-

रोग, अत्यंत ज्वरवान्, आक्षेपकवायु, पक्षाघात ( लकवा ) उपवास, मूर्च्छा, प्यास इनकरके पीडित मनुष्योंकी शिरावेध अर्थात् फस्त न खोले । इस्का कारण यह है कि, खांसी, श्वास, घोरज्वर, आक्षेपक, पक्षाघात और क्षतक्षीणवाले पुरुषोंके रक्तस्राव होनेसे वायुकोप होनेका भय होताहै । डरपे हुए मनुष्यमें तमोगुण होताहै। इसीसे उसकी रुधिरके देखतेही मूर्च्छा होतीहै । तथा श्रीमंत मनुष्योंके वायु कुपित होताहै । वह रक्तस्रावसे अधिक कुपितहो शरीरका नाश करेहै । मद्यप मनुष्यका रुधिर काढनेसे मदकरके विक्षिप्त चित्तहो अतिमूर्च्छित होताहै, और मार्ग तथा स्त्री इनकरके कृश मनुष्यके रुधिर निकालनेसे वातकोप होताहै । आस्थापित, तथा कुपित इन्होंको रुधिर निकालनेसे वातकुपित होताहै । अनुवासित मनुष्यके जठराग्नि मंद होताहै, यदि ऐसैका रुधिर काढाजाय तो अतिमंदाग्नि होवे, नपुंसकका रुधिर काढनेसे सर्वप्रधान धातुकाक्षय होकर निःसंदेह मरे । कृश और गर्भिणी इनका रुधिर निकालनेसे धातुक्षीण होनेपर देहनाशका भय होताहै, श्वास, खांसी, शोष, इनसे ग्रस्त मनुष्योंका रुधिर निकालनेसे धातुक्षीण होकर देहनाशकी शंका होतीहै ।

रक्तस्रावमेंसाध्यविकार ।

शोणितावसेकसाध्याश्चयेविकारास्तेषुवापक्वेषुअन्येषुचानु  
रक्तेषुयथाभ्यासंयथान्यायंशिरांविध्येत् ।

अर्थ—जे विकार रक्तस्राव साध्यहैं उनको कहतेहैं, त्वग्दोष, ग्रंथी ( गांठ ) सूजन, रक्तविकार ये रक्तस्राव साध्यहैं, ऐसा शोणितवर्णनप्रसंगमें कहाहै । वे विकार पक्व होनेपर रक्तस्राव करना चाहिये और जिनसे पश्चात् दाहादि विकारहोवे ऐसे पूर्वरक्तसेक साध्योंमें नहींकहे, उनमें रोगस्थलके समीप प्रदेशको रक्तके यथान्याय अर्थात् स्नेहस्वेदादि उपचारपूर्वक कढाना चाहिये ।

फस्तखोलनेमेंवर्जितमनुष्योंकीभीफस्तखोलनाकहतेहैं ।

प्रतिषिद्धानामपिविशेषोपसर्गेआत्ययि  
केवाशिराव्यधनमप्रतिषिद्धम् ।

अर्थ—रक्तस्रावके विषयमें जो वर्जित बाल, क्षीण इत्यादि प्रथम कहआएहैं उन्होंके अतिउपद्रव देनेवाली व्याधि अथवा मृत्युकारक विद्रधि आदि रक्तस्राव साध्य व्याधिहोनेसे, रक्तकढाना निषेध नहींहै, अर्थात् ऐसे रोगमें अवश्य रुधिरकढाना चाहिये ।

शिरावेधकेपूर्वकृत्य ।

तत्रस्निग्धस्विन्नमातुरंयथादोषप्रत्यनीकंद्रवप्रायमन्नंभुक्त  
वंतंयवागूंपीतवंतंवायथाकालमुपस्थाययासीनंस्थितंवाप्रा  
णानबाधमानोवस्त्रपटचर्मवल्कलानामन्यतमेनयंत्रयित्वा  
नातिगाठनातिशिथिलंशरीरप्रदेशमासाद्यंप्रातंशस्त्रमादा  
यशिरांविध्येत् ।

अर्थ—फस्त खोलने के पूर्व रोगीके तेल मालिस आदि उपचार कराने चाहिये, और पसीने निकाले; परंतु नैरोग्य पुरुषकी फस्त न खोलनी चाहिये । तथा दोषोंके विरुद्ध न होवे ऐसे द्रवद्रव्य प्रधान अन्न, अथवा यवागू, स्वस्थ होने से भोजनकरके, तथा वर्षा और बहल न होवे ऐसे दिन वैद्य, रोगीको अपने पास खड़ा कर अथवा बिठलाकर धीरज देकर वस्त्र, पटवस्त्र, चर्म, अथवा वल्कल इनमेंसे किसी एकसे लपेटे; परंतु वहवेष्टन ( बांधनेकी पट्टी आदि ) मस्तकमें बांधनेकी आवश्यकता होवे तो मस्तकको बहुत करडा न बांधे, और हाथपैर बांधने होवें तो इनको बहुत ढीले न बांधे, इसप्रकार बांधकर मर्मप्रदेश स्थानको बचायकर जैसा मिले ऐसे शस्त्रको लेकर शिराको वेधे अर्थात् फस्त खोल रुधिर निकाले ।

वेधकालकहतेहैं.

नवातिशीतेनात्युष्णेनप्रवातेनचाभ्रिते ।

शिराणांव्यधनंकार्यमरोगेवाकदाचन ।

अर्थ—अतिशीतदेश, अतिशीतकाल, तथा अत्युष्णदेश और काल, तथा अत्यंत पवन चलता हो ऐसा दिन, तथा बहलहोरहा हो ऐसा दिवस इनमें शिरावेध ( फस्त ) न करे उसीप्रकार रोगहीन पुरुषकी भी फस्त न खोले ।

शिरोत्थापनकाप्रकारकहतेहैं.

तत्रव्याध्यशिरंपुरुषंप्रत्यादित्यमुखंमरत्निमात्रोच्छ्रितंमु  
पवेश्यासनेसक्थोराकुंचितयोर्निवेश्यकूर्परिसंधिद्वयस्यो  
परिहस्तावर्तगूढांगुष्ठकृतमुष्टिमन्ययोःस्थापयित्वायंत्रेण  
शाटकंग्रीवामुष्टचोरुपरिपरिक्षिप्यन्येनपुरुषेणपश्चात्स्थ  
तेनवामहस्तेनोत्तानशाटकांतद्वयंग्राहयित्वाततोवैद्योयाना  
त्शिरोत्थापनार्थंनात्यायितशिथिलंयंत्रमाचरेत्असृक्स्त्राव

णार्थचयंत्रंपृष्ठमध्येपीडयेदितिकर्मपुरुषमुखंवायुनापूरये  
 देषउत्तमाङ्गगतानामन्तर्मुखवर्जानांशिराणांयंत्रेणव्यध  
 नेविधिः ।

अर्थ—जिस पुरुषकी फस्तखोलनी हो उसको सूर्याभिमुखकर एकविलस्त ऊंचा  
 आसनपर बैठाल पैरोंको नीचे लटकायदेवे और यत्किंचित् सुकडकर ऊंकक के स  
 दृश बैठारे और उसपुरुष के दोनों कूर्पर ( कोहनी ) घोटुओंकी संधिके ऊपर धर-  
 वावे और अंगूठेको भीतरकर मुट्टीबंद करवि अथवा हाथमें किसी वस्तुकी पोटी  
 देकर दोनोंको एकत्र करके धरावे, और नाडमें वस्त्रकी पट्टी बांध और यंत्र करके  
 अर्थात् दोनोंबगल कपडे आदिकी दृढपट्टी लेकर उसको कलाईके तीन अंगुलठौर-  
 को छोड दृढबांधे, और दूसरा मनुष्य उस मनुष्यके पिछाडी खडा होकर उस यंत्र-  
 रूप शाडीके दोनोंपरले अर्थात् जो नाडमें पडीहै उसको दोनोंहाथोंसे पकडकर ख-  
 डारहै, अथवा दोनोंपरलोंको बाएहाथसे पकडकर खडारहै; पीछे उसरोगीको वैद्य  
 आज्ञादेवेकि शिराओंके उत्थापन होने चाहिये अतएव बाएहाथसे बहुत करडा न  
 होवे तथा अत्यंत शिथिल न होने पावे, ऐसे यंत्रको कुलउठावे और रक्त अच्छीरी-  
 तिसैं निकले इसलिये पीठमें यंत्रको अच्छी रीतिसैं दावे; जिस्का शिरावेधरूप कर्म  
 करे उसका मुख पवनसे परिपूर्ण करे; अर्थात् उसमनुष्यको मुखद्वारा श्वासका लेना  
 और छोडना न करने देवे । इसप्रकार उत्तमांग गत शिराका बेध यंत्रकरके करे  
 परंतु यह विधि मुखकी शिराओंके सिवाय इतर उत्तमांगगत शिराओंमें जानना ।

पादादिगतशिरावेधनेकाप्रकार.

पादविध्यस्यपादंसमेस्थानेसुस्थितंस्थापयित्वाअन्यपाद  
 मीषत्संकुचितमुच्चैःकृत्वाव्यध्यशिरपादंजानुसंधौशाटके  
 नावेष्ट्यचहस्ताभ्यांवाप्रपीड्यगुल्फंव्यध्यप्रदेशस्योपरिच  
 तुरंगुलेप्रोतादीनामन्यतमेनबद्धाशिरांविध्येत् ।

अर्थ—जिस मनुष्यके पैरकी शिरावेध करनी होवे; उस मनुष्यका पैर समान  
 भूमिमें अच्छी रीतिसैं धराकर दूसरे पैरको कुलसकोड ऊंचाधरे, और जिस पैरकी  
 शिरावेधनीहो उसपैरके घोटुओंकेनीचे दृढकपडेकी पट्टीसैं बांधे, अथवा हाथोंसैंदेबावे,  
 पीछे गुल्फसंधीके विषे व्यध्यस्थल छोड चार अंगुलपर वस्त्र चर्मादिकोसे बांधकर  
 शिरावेधकरे ।

हस्तगतशिरावेधप्रकार.

अथोपरिष्ठाद्धस्तेगूढांगुष्ठकृतमुष्ठीसम्यगा

## सनेस्थापयित्वासुखोपविष्टस्यपूर्ववद्यंत्रंबद्धा हस्तशिखांविध्यात् ।

अर्थ—ऊपरके प्रदेशोंमें हस्तादिकोंका शिरावेध करनेके लिये पूर्ववत् अंगूठेकी भीतरी दबाकर मुट्टी बांध लेवे; और मध्य प्रदेशको त्याग ऊपरकी तरफ चार अंगुलपर पट्टीसे बांध शिरावेध कर रुधिर निकालना चाहिये । इसप्रकार गृध्रसी और विश्वाची इन वातरोगोंमें आसनपर बिठलाकर कुछ घाँटू और कोहनीको संकोचित करके शिरावेधकरे ।

श्रोणीपीठऔरकंधेइनमेंशिरावेध.

## श्रोणीपृष्ठस्कन्धेषुउन्नामितपृष्ठस्यावटुःशि रःस्कन्धस्योपविष्टस्यविस्फूर्जितस्यपृष्ठस्य ।

अर्थ—जिस मनुष्यकी पीठ उन्नामित कहिये नवीहुईहो, तथा जिसका अवटु कहिये नाडके पीछाडीकी शिरा और मस्तक तथा स्कंध इनमें विकार होकर स्तंभित सरीके होनेसे तथा पृष्ठ विस्फूर्जित कहिये चौड़ी होनेसे श्रोणी, पृष्ठ, स्कंध इनमें शिरावेध कर रुधिर कटावे, तथा जिसका मध्यशरीर स्तंभित होजावे उसकी फस्त खोले ।

कौनसीठौरशिरावेधकरेयहकहते.

## बाहुभ्यामवलम्बमानदेहस्यपार्श्वयोरवनामितमेढूस्यमेढू विदष्टजिह्वाग्रस्याधोजिह्वायाः । अतिव्यात्ताननस्यतालुनि दन्तमूलेषुच ।

अर्थ—जिस पुरुषके दोनोंहाथ स्तंभित सरीखे लंबायमान होकर दोनों कूखोंसे चिपटेसे होजावे; उसके पार्श्वसंबंधी शिराका वेध करे, तथा शिश्र स्तब्ध होनेसे शिश्रसंबंधीशिरावेधकरावे, और जिह्वाग्र काटनेसे जैसी हो ऐसी होजावे उसके जीह्वाके नीचेकी शिरा वेधे, तथा मुख फटासा रहजावे उस पुरुषकी तालुसम्बंधी और दंतसंबंधी शिरावेधनी चाहिये ।

अनुक्तयंत्रप्रकारकहतेहैं.

## एवंयंत्रोपायानन्यांश्चशिरोत्थापनहेतून्बुद्ध्यावेक्ष्य शरीरवशेनव्याधिवशेनविदध्यात् ।

अर्थ—इसप्रकार यंत्रोपाय, तथा अन्ययंत्रोपाय शिराओंके उत्थापनके हेतु कहे

है ऐसे उपायोंकरके वैद्य स्वबुद्धिसँ व्याधि और शरीरका बल देख उसके अनुसार उपचारकरे, अर्थात् शरीरप्रदेशविशेष करके शस्त्रविशेषकी योजना करनी चाहिये ।

वेध्यशरीरकेतारतम्यकरकेशस्त्रयोजना.

मांसलेष्ववकाशेषु यवमात्रं शस्त्रं विदध्यादतो न्यथा  
अर्धयवमात्रं व्रीहिमुखेनास्त्रामुपरि ।

अर्थ—मांसल प्रदेश कहिये जठर, कूले ऊरू आदि इनमें शिरावेध करके रक्त काढनेके लिये यवप्रमाण शस्त्र योजना करे । और इतर स्थलके रुधिर निकालनेकी अर्धयवके प्रमाण शस्त्रलेवे, और बहुतहड्डीवाले अंगमें रुधिर निकालनेके वास्ते चावलकी कनीके समान शस्त्रलेवे, शीत, उष्ण, वर्षा, इस भेदसे काल तीन प्रकारका है, उनमें विशेष कहते हैं ।

शिरावेधकाल ।

व्यभ्रेवर्षासुग्रीष्मे शीतलेहेमन्ते उष्णे ।

अर्थ—वर्षाकालमें जिस दिन बहल न हो उसदिन फस्त खोले, और ग्रीष्म ऋतुमें जिसदिन अत्यंत गरमी न हो उसदिन शिरावेध करे, अथवा तीसरे प्रहर जिससमय ठंडक होजावे उससमय रुधिर निकलवावे, हेमन्त ऋतुमें जिसदिन गरमी होवे उससमय रुधिर निकलवाना चाहिये, परन्तु हेमन्त ऋतुमें रोग असाध्य प्राणनाशक दीखे तो कटवावे, अन्यथा न कटाना चाहिये । इसजगे हेमन्तग्रहण सामान्य शीतकालका बोधक है ।

सुविद्धशिराके लक्षण ।

सम्यक्शस्त्रनिपातेन धारया वास्रवेदसृक् ।

मुहूर्तरुद्धातिष्ठेत्सुविद्धांतां विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—उत्तम शस्त्र लगनेसे धारारूप करके क्षणमात्र रक्त निकले और पट्टीबांधनेके पश्चात् निकले नहीं वह शिरा उत्तम विधी जाननी ।

दूषितशिराकेवेधहोनेसे प्रथमदुष्टरुधिरनिकलता है यह  
दृष्टांत देकर कहते हैं ।

यथा कुसुम्भपुष्पेभ्यः पूर्वस्रवति पीतिका ॥

तथा शिरासुदुष्टासुदुष्टमग्रे प्रवर्तते ।

अर्थ—जैसे कसूमके फूल भिजानेसे प्रथम पीला पानी निकलता है, पश्चात् उत्तम

रंग निकले है। उसीप्रकार फस्तखोलनेसे प्रथम विकृत रुधिर निकलकर पीछे उत्तम रुधिर निकलता है ।

उत्तमविद्धहोनेपरभीरुधिरननिकलनेकाकारण ।

मूर्च्छितस्यातिभीतस्यश्रांतस्यतृषितस्यच ।

नवहंतिशिराविद्धास्तथानुत्थितयंत्रिता ॥

अर्थ—फस्त खोलनेके समय जिस मनुष्यको मूर्च्छा आजावे, अथवा अत्यंत डरपे, तथा अत्यंत श्रमयुक्त होजावे, वा अत्यंत प्यासाहो, ऐसे मनुष्यकी शिरासे रुधिर अच्छे प्रकार नहीं स्रवे । कारण यह है कि मूर्च्छादिक करके वायू कौपको प्राप्तहो शिरा ( नसों ) के मुखको बंदकर देताहै । तथा शिराके फूलनेविना यदि वेधी जावे तोभी रुधिर नहीं निकले, कारण यह है कि, ऐसी शिराओंसे रक्तप्रवाह अभिमुख नहीं होवे।

क्षीणमनुष्यके रुधिरकाठनेपर अत्यंत घबडाहट होनेसे क्रम कहतेहैं ।

क्षीणस्यबहुदोषस्यमूर्च्छयाभिहतस्यच ।

भूयोपराह्लेविश्राव्याअपरेद्युर्यहेपिवा ॥

अर्थ—जो मनुष्य अत्यंत क्षीण होगयाहो, तथा जिसकी देहमें वातादि दोष अत्यंत प्रबल होवे, उस मनुष्यका रुधिर एकहीवार न काठे, किंतु दूसरीवार अपराह्लमें अथवा दूसरे तीसरे दिन कढावे । तथा रुधिर काठते समय जिसको मूर्च्छा आयजावे उसकाभी रुधिर एकहीवार न निकाले, धीरेधीरे अपराह्ल कालमें अथवा दूसरे तीसरे दिन काठना चाहिये ।

रक्तस्त्रावकाबहुधानिषेध ।

रक्तंसशेषदोषंतुकुर्यादपिविचक्षणः ।

नचातिनिसृत्तिकुर्यात्शेषंसंशमनैर्जयेत् ॥

अर्थ—विचक्षण वैद्य बहुत रुधिर निकाल एकही दफे दोष दूर न करे, किंतु कुछ शेष रहनेदे अब जो शेष दोष थोड़े रहगएहों उनको संशमन आदि औषधोंकरके जीते ।

रक्तकाठनेकीपरमावधि.

बलिनोबहुदोषस्यवयस्यस्यशरीरिणः ।

परंप्रमाणमिच्छंतिप्रस्थंशोणितमोक्षणे ॥

अर्थ—जो पुरुष बलवान्‌हो तथा जिसके शरीरमें वातादि दोष बलवान्‌हो तथा प्रौढ अवस्था हो, उसमनुष्यका रुधिर १ एकप्रस्थ निकालना चाहिये ( इसजगे १३॥ साढेतेरह पलका एकप्रस्थ होताहै । )

इस्मेंप्रमाण.

वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ।

सार्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥

अर्थ—वमन और विरेचन तथा रक्तस्राव इसविषयमें साढेतेरह पलका प्रस्थ-जानना ।

कौनसेरोगमेंकौनसीशिरावेधनी.

तत्रपाददाहपादहर्षअपबाहुकचिमचिमविसर्प  
वातशोणितवातकंटकविचर्चिकापाददारिप्रभृति  
षुक्षिप्रमर्मापरिष्ठाद्द्रुचडुलेव्रीहिमुखेनशिरांविध्येत् ।

अर्थ—पाददाह, पादहर्ष, अपबाहुक, चिमचिम, विसर्प, वातरक्त, वातकंटक, विचर्चिका, और पाददारी आदिरोगोंमें तथा तत्सदृश अन्यरोगोंमें तथा तत्संबंधी अन्यरोगोंमें क्षिप्रसंज्ञक मर्मके ऊपर दो अंगुल जगे छोड उसजगे शिरा व्रीह्यप्रमाण शस्त्रकरके वेधनी, श्लीपदरोगमें उसके चिकित्सा प्रकरणमें जिस प्रमाण वेधना लिखा है, उसीप्रमाण शिरा वेधनी चाहिये, क्रोष्ठशीर्ष, खंज, पंगू इत्यादिक वातरोगोंमें, जंघामें, इन्द्रमर्मके नीचेकी शिरावेधनी चाहिये ।

अपचीरोगमेंशिरावेध.

अपच्यामिन्द्रवस्तेरधस्ताद्द्रुचंगुले ।

अर्थ—अपची रोगमें, इन्द्रवस्ती मर्ममें अधोभागमें, दो अंगुल जगेमें शिरावेधनी चाहिये । परंतु अपची उत्पन्नहोतेही वेधनी चाहिये ।

गृध्रसीमेंशिरावेध.

जानुसन्धेरुपर्यधोवाचतुरंगुलेगृध्रस्याम्

जानुमूलसंश्रितायांगलगंडे ।

अर्थ—गृध्रसी नामक वातरोगमें, घोंटुओंके ऊपर अथवा नीचे चार अंगुल के बीच शिरावेधे । जानुमूलाश्रित शिरा गलगंडमें वेधे इसकरके दूसरा पैर और हाथ इनकी शिराका वर्णन हुआ कारण यह है कि, हाथमें ये दाहादि रोग है, और उसी प्रकार शिरा भी है ।

हस्तपादादिकोंमेंविशेषकहते हैं ।  
ग्रीहमेंशिरावेध.

**विशेषतस्तुबाहौकूर्परसंधेरभ्यन्तरतोबाहु  
मध्येग्रीहिकनिष्ठिकानामिकयोर्मध्येवा ।**

अर्थ-पैरोंकी अपेक्षा हाथोंमें विशेषकर्के ग्रीहसंबंधी रोगोंके दमनार्थ कूर्पर ( कोहनी ) की संधीको संधीके समीप भुजाके मध्यकी शिरा अथवा कनिष्ठिका उंगली और अनामिका इन दोनोंके मध्यकी शिरा वेधे, उसीप्रकार यकृद्वालयुदर तथा कफोदर, कफजन्यक श्वासयुक्त, कफावृत वायुजन्य खांसी और श्वास इनमें दहनी हाथकी शिरावेधनी चाहिये । परंतु यकृद्वालयुदरके पूर्वावस्थामें वेधनी चाहिये; कोयी आचार्य कहता है कि, श्वास खांसी अल्प होने से इनके मार्ग शुद्धकरने मात्रको शिरावेध करना लिखा है । किंतु आतिरिक्त होनेसे शिरावेध न करे क्योंकि श्वास खांसी में शिरावेध लिख आए है । इसी से गृध्रसीमें जो शिरावेधनी कही है वही विश्वाचीमें जाननी ।

प्रवाहिकामेंशिरावेध.

**श्रोणींप्रतिसमंताद्द्व्यंगुलेप्रवाहिकायांशूलिन्याम् ।**

अर्थ-जो रक्तकृत वातशूल करके युक्त तथा बहुत दिनोंकी प्रवाहिका उसके शांत्यर्थ श्रोणीके आसमंतात् भागकी द्व्यंगुलदेशमें शिरावेधे, और परिकर्त्तिका, उपदंश, शुक्रदोष, शुक्रव्यापत् इनरोगोंमें लिंगकी शिरावेधे ।

मूत्रवृद्धीमेंशिरावेध ।

**वृषणयोः पार्श्वमूत्रवृद्ध्याम् ।**

अर्थ-मूत्रवृद्धिरोग पूर्णदशामें पहुचनेसे वृषणोंके दोनों बाजू की शिरा वेधनी और नाभीके अधोभागमें सेवनीके वामभागमें ऊपरकी शिरावेधे.

विद्रधितथापार्श्वशूलमेंशिरावेध.

**वामपार्श्वकक्षास्तनयोरन्तरेविद्रधौपार्श्वशूलेच ।**

अर्थ-इसजगे वामपार्श्व करके दोनों पार्श्व जानने, इनमें विद्रधि अथवा पार्श्वशूलहोने से दोनों कूखोंमें और स्तन इनके मध्यमें शिरावेधनी चाहिये । उदाहरण, जैसे बाएँ अंगमें होनेसे वामस्तन और वामकूख इन दोनोंके मध्यकी शिरा वेधनी, उसीप्रकार दहनी बाजू जाननी, कोई ऐसे कहतेहैं कि कफोदरमेंही ये शिरा वेधनी, परंतु यहबात ठीक नहीं है । क्योंकि पहले यकृद्वालयुदर, और कफोदर इनमें दक्षिणबाहुसंबंधी शिरा वेधनेके लिये कह आएहैं ।

बाहुशोषतथाअपबाहुकइनमेंशिरावेध ।

बाहुशोषापबाहुकयोरप्येकेवदन्त्यंसयोरंतरे ।

अर्थ—शोणितावृत वातजन्य जो बाहुशोष और अपबाहुक तिनमें कंधेके मध्य-दंशकी शिरावेध करे, केवल एकवातसे प्रगटमें न करे, ऐसे कोई आचार्य कहते हैं । परंतु अपबाहुकको स्नेहन-स्वेदनादि उपचारोंका निषेध है । सामान्यशिरावेधका निषेध नहीं है । बाहुशोषमें केवल वायुका निषेध है परंतु अवस्थाभेदकरके शिरा-वेध करावे । तथा जिस कालमें उष्णाम्ललवणादिको करके पित्तकुपित होकर उसमें वायु मिलकर पीडादेता है उस कालमें शिरावेध करावे ।

तृतीयकज्वरपरशिरावेध ।

त्रिकसंधिमध्यगतांतृतीयके ।

अर्थ—तृतीयक ज्वरमें कंधेके मध्यगत त्रिकसंधी कहिये नाडकीसंधी उसकी शिरावेध करे ।

चातुर्थिकज्वरमेंशिरावेध ।

अधःस्कंधगतामन्यतरपार्श्वस्थितांचतुर्थके ।

अर्थ—चातुर्थक अर्थात् चौथैया ज्वरमें कंधेके नीचे वाईतरफ अथवा दहनी तरफकी शिरावेधे ।

अपस्मारमेंशिरावेध ।

हनुसंधिगतामपस्मारे ।

अर्थ—अपस्मार कहिये मृगी इसरोगमें हनुसंधिके समीपस्थ शिरावेधनी चाहिये.

उन्मादरोगमेंशिरावेध ।

शंककेशान्तसन्धितामुरोपाङ्गललाटेषून्मादे ।

केचिदत्रउन्मादेअपस्मारेचेतिपठन्ति ।

अर्थ—उन्मादरोगमें शंखगत, केशांतसंधिगत, उर, अपांग और ललाट इनमें शिरा वेधकरे । तथा कोई अपस्मारमें यह शिरावेधे ऐसा कहतेहैं, परंतु वाग्भटादि \*ग्रंथोंके विरुद्धहोनेसे यह पाठ उत्तम नहीं है ।

\* तथाचवाग्भटः॥उरोपाङ्गललाटस्थामुन्मादेह्यस्मृतौपुनः । हनुसंधौसमस्ते वाशिराभ्रूम-ध्यगामिनी ॥

जिह्वारोगतथादंतव्याधिमेंशिरावेध ।

जिह्वारोगेअधोजिह्वायादन्तव्याधिषुच ।

अर्थ—कंटकादि जिह्वारोग तथा कृमिदंतादि दंतरोग इनमें जिह्वके अधोभा-  
गकी शिरा वेधे ।

तालुरोगमेंशिरावेध ।

तालुनितालव्येषु ।

अर्थ—तालुसंबंधी रोगोंमें तालुसंबंधी शिरा वेधनी चाहिये ।

कर्णशूल और कर्णरोगमें शिरावेध ।

कर्णयोरुपरिसमंतात्कर्णशूलेतद्रोगेच ।

अर्थ—कर्णशूल और इतर कर्णरोग इनमें कानके ऊपर आसमंतात् भागकी शिरा वेधे।

गंधाग्रहणादिनासारोगमें ।

गंधाग्रहणेनासारोगेषुचनासाग्रे ।

अर्थ—नाकमें गंधका ज्ञान जाता रहे अथवा इतर नासिकाके रोगोंमें नासाग्र-  
संबंधी शिरा वेधे, कर्णशूल और गंधाग्रहण इन दोनों रोगोंके कर्णरोग और नासा-  
रोगके कहनेसेही ग्रहण होगया तथापि विशेषता दिखानेको दूसरे कहाहै ।

तिमिरपाकादिनेत्ररोगोंमें ।

तिमिरपाकप्रभृतिषुअक्ष्यामयेषु ।

उपनासिकाललाटस्थाअपांग्यावा ।

अर्थ—तिमिर और नेत्रपाक इत्यादि नेत्ररोगोंमें नासिकाके समीपकी अथवा  
ललाटस्थ अथवा अपांगस्थ शिरा वेधनी । अधिमंथ आदि मस्तकरोगोंमें यही शि-  
रा वेधे, इसजगे प्रभृतिग्रहण जो करा है उससे क्षुद्ररोगोंमें जो अरुंधिका आदि म-  
स्तकरोग लिखेहैं उनका ग्रहण है ।

दुष्टशिरावेधकेलक्षण ।

अतऊर्ध्वदुष्टव्यध्याःशिराव्याख्यास्यामः । तत्रदुर्विद्धा  
ऽभिविद्धासंकुचितापिचिताकुट्टिताप्रस्तुताऽत्युदीर्णान्तेवि-  
द्धापरिशुष्काकणितवेपिताऽनुत्थिता अविद्धशस्त्रहतातिर्य  
ग्विद्धापविद्धाअव्यध्याविद्रुताधेनुकापुनःपुनर्विद्धाशि  
राम्नायवस्थिसंधिमर्मसुचेतिविंशतिर्दुष्टव्यध्याः ।

अर्थ—अब दुष्ट विद्ध शिराओंको कहतेहैं, जैसे कि दुर्विद्धा १ अभिविद्धा २ संकुचिता ३ पिचिता ४ कुट्टिता ५ अप्रस्तुता ६ अत्युदीर्णा ७ अन्तेविद्धा ८ परिशुष्का ९ कणिता १० वेपिता ११ अनुत्थिता १२ अविद्धशस्त्रहता १३ तिर्यग्विद्धा १४ अपविद्धा १५ अव्यध्या १६ विद्रुता १७ धेनुका १८ पुनःपुनर्विद्धा १९ शिरास्त्रायुअस्थिसंधिमर्मसुविद्धा २० इसप्रकार दुर्विद्ध शिरा वीसप्रकारकी जाननी-

दुर्विद्धशिराओंकापृथक् २ वर्णन ।

तत्रयासूक्ष्मविद्धाऽव्यक्तमसृक्स्त्रवतिरुजाशोफवतीसादुर्विद्धाप्रमाणातिरिक्तविद्धायामन्तःप्रविशतिशोणितमितिप्रवृत्तशोणितावासाऽतिविद्धा । कुञ्चितायामप्येवम् । कुण्ठशस्त्रमथितापृथुलीभावमापन्नापिचिता । अनासादितापुनःपुनरंतरयोश्चबहुशस्त्राक्षिहताकुट्टिता । शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्तशोणिताप्रस्तुता । तीक्ष्णमहामुखशस्त्रविद्धात्युदीर्णा।अल्परक्तस्त्राविण्यन्तेविद्धा । क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णापरिशुष्का । चतुर्भागासादितार्किंचित्प्रवृत्तशोणिताकणिता । दुःस्थानबन्धनाद्वेपमानायाःशोणितसंमोहोभवतिसावेपिता । अनुत्थितविद्धायामप्येवम् । छिन्नातिप्रवृत्तशोणिताक्रियासङ्गकरीशस्त्रहता । तिर्यक्प्रणिहितशस्त्रार्किंचिच्छेषातिर्यग्विद्धा । बहुशतावधिशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा । अशस्त्रकृत्याअव्यध्या । अनवस्थितविद्धाविद्रुता । प्रदेशस्यबहुशोघटनादारोहव्यधाद्मुहुर्मुहुःशोणितास्त्रावाधेनुका । सूक्ष्मशस्त्रव्यधनाद्बहुशोभिन्नापुनःपुनर्विद्धा ॥

अर्थ—यदि शिरा सूक्ष्मविद्ध होनेसे अत्यंत थोडा रुधिर निकले और जिस्में पीडा तथा सूजन हो उसको दुर्विद्ध शिरा कहते हैं । तथा जो प्रमाणसे अधिक वेधी गईहो, उसमें रक्त भीतर प्रवेश होकर अच्छे प्रकार न निकले उसको अभिविद्धा शिरा कहतेहैं, तथा संकुचिता शिराकेभी येही चिह्नहैं. और भौतरे शस्त्रद्वारा वेध करनेसे जो शिरा मथीसी होकर मोटी होजावे उसको पिचिताशिरा कहतेहैं, जो शिरा अच्छी रीतिसे शुद्ध न हुईहो वह वारंवार अनेक शस्त्रोंसे वेधी गईहो उसको कुट्टिता कहतेहैं, तथा शीत भय मूर्च्छा इत्यादि कारणोंकरके जो खवे नहीं उसको अप्रस्तुता

कहतेहैं, तथा तीक्ष्ण और बडेमुखवाले शस्त्रसे जो शिरा विद्ध हुईहो उसको अत्यु-  
दीर्णा कहतेहैं, जिसमें थोडा रुधिर निकले उसको अंतेविद्धा कहते हैं, जो रक्तक्षीण  
होनेके अनन्तर वायुकरके परिपूर्ण होजावे उसे परिशुष्का कहतेहैं, जो चारोंतरफसे  
वेधी जावे और जिसमेंसे थोडा रुधिर निकले उसे कृणिता कहतेहैं, जो दुष्टस्थानमें  
बांधनेसे कंपयुक्त होवे और रुधिर निकले नहीं उसे वेपिता कहतेहैं; और जो अच्छी  
रीतिसे फुली न हो उसे वेधे इसीसे उसमेंसे रुधिर निकले नहीं उसे अनुत्थिता क-  
हतेहैं, जो शस्त्रसे टूटकर उसमेंसे अत्यंत रुधिर निकले इसीकारण अवयवोंके चलन-  
वलनादि व्यापार बंद होजावे उस शिराको अविद्ध शस्त्रहता कहते हैं, तथा तिरछा  
शस्त्र लगनेसे यथार्थ विधी नहो और कुछ अंश विधनेसे रहगया हो उसे तिर्यग्विद्धा  
कहते हैं. तथा सैकड़ों शस्त्रोंके लगनेसे यथार्थ न विधे उसे अपविद्धा कहते हैं; और  
जो शस्त्रोंके लगनेसे न विधे उसे अव्यध्या कहते हैं. तथा जगेजगे पर वेधीर्गई हो  
उसे विद्वुता कहते हैं; जो अत्यंत वेधनेसे वारंवार स्रवे उसे धेनुका कहते हैं. बहुत  
सूक्ष्म शस्त्र करके वेधनेसे रक्त स्रवे नहीं अर्थात् वारंवार वेधनेसे जगेजगे छिद्र पड-  
जावे उसे पुनःपुनर्विद्धा कहते हैं; और जो अस्थिशिरा संधीमर्मोंमें विद्ध हुई है उ-  
ससे वही वही अवयव पीडा करे उसे मर्मविद्ध शिरा जाननी ।

शिरावेधनेमें अत्यंतसावधानीचाहिये ।

शिरासुशिक्षितोनास्तिचलाह्येताःस्वभावतः ।

मत्स्यवत्परिवर्ततेतस्माद्यत्नेनताडयेत् ॥

अर्थ—शिराओंके विषयमें अभ्यास करके निपुण ऐसा कोई नहीं होवे. इसका  
यह कारण है कि वे शिरा स्वभाव करके मछलीके सदृश अतिचंचल है, अतएव  
बहुत सावधानीके साथ वेधनी चाहिये । शस्त्रकर्ममें निपुण वैद्य उससेभी कभीर  
विपर्यय होजाता है यह कहते हैं.

अयोग्यशस्त्रद्वारावेधनेकेअवगुण ।

अजानतागृहीतेतुशस्त्रेकायनिपातिते ।

भवन्तिव्यापदश्चैतावहवश्चाप्युपद्रवाः ॥

अर्थ—वैद्य विनाजाने दुष्टशस्त्रको लेकर शिरावेधकरे अर्थात् फस्त खोले तो  
अनेक प्रकारके उपद्रव तथा व्याधि होती है.

इतरउपचारोंकीअपेक्षाशिरावेधकोअधिकताकहते हैं ।

स्नेहादिभिःक्रियायोगैर्नतथालेपनैरपि ।

यान्त्याशुव्याधयः शान्तियथाशान्तिशिराव्यधात् ॥

अर्थ—जैसी शिरावेध करके व्याधि शीघ्रशांति होती है; ऐसी स्नेहन लेपन आदि उपचारोंसे शीघ्र शांति नहीं हो ।

शिरावेध चिकित्साकाअर्धांगहै ।

शिराव्यधश्चिकित्सार्धशल्यतंत्रेप्रकीर्तितम् ।

यथाप्रणिहितंसम्यग्बस्तिःकायचिकित्सिते ।

अर्थ—चिकित्सा कहिये रोगकी प्रतिक्रिया ( इलाज ) उसमें फस्त खोलना प्रधान अंग है, जैसे कौष्ठशोधनके विषे बस्तिप्रयोगप्रधानहै, इसी प्रकार चिकित्सामें शिरावेधको प्रधानता है । कोई ( अर्ध ) शब्दको संख्यावाचक कहते हैं; अर्थात् शिरावेध आधी चिकित्सा है, और वमन, विरेचन, शमनादि सर्व आधीचिकित्सा हैं ।

अबस्निग्धादिपुरुषोंकोक्रोधादिकसामान्यकरके  
त्यागनेयोग्यहैयहकहतेहैं ।

तत्रस्निग्धस्विन्नवांतविरक्तास्थापितानुवासितशिराविद्धैःपरि  
हर्तव्यानिक्रोधोपवासमैथुनदिवास्वप्नवाग्व्यायामाध्ययनस्था  
नासनचंक्रमणशीतवातातपविरुद्धासात्म्याजीर्णात्राबलला  
भान्मासमेकेमन्यन्ते ।

अर्थ—स्निग्ध, स्विन्न, वांत, विरक्त, ( जिसने दस्ताकी औषधलीनीहो ) आस्था-  
पित, अनुवासित और शिराविद्ध; इतने पुरुषोंको क्रोधकरना, उपवास, मैथुन,  
दिनमें सोना, बहुतबोलना, पढ़ाना, पढ़ना, स्थान और आसन, इनकी उलटपलट और  
शीत, पवन, गरमी और विरुद्ध, असात्म्य अजीर्ण, ऐसे अन्न इत्यादिक वर्जित हैं ।

रक्तस्त्रावकरनेकेसाधन ।

शिराविषाणतुंबैस्तुजलौकाभिःपदैस्तथा ।

अवगाढयथापूर्वनिर्हरेद्दुष्टशोणितम् ॥

अर्थ—अभ्यंतराश्रित रुधिरके दूषित होनेसे उसको शिरा, विषाण, तुंबी और  
जोख इत्यादिकों करके पूर्वोका अतिक्रम न करके कटावे, स्पष्टार्थ यह है कि,  
अभ्यंतराश्रित रुधिर अत्यंत गाढा न होवे तो जोख लगाकर निकालना; यदि  
अत्यंतभीतरहो उसको तुंबडीसे निकाले और उससे भीतरी रुधिरको सिंगीसे कटा-  
वे और सर्व देहगत हो उसको शिरावेध अर्थात् फस्त खोलकर निकालना चाहिये.

स्थानभेदकरकेउपायविशेषकहतेहैं ।

अवगाढेजलौकास्यात्प्रच्छन्नंपिण्डितेहितम् ।

शिराङ्गव्यापकेरक्तेशृङ्गालाबूत्वचिस्थिते ॥

इतिसौश्रुतेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ—अभ्यंतराश्रित रुधिर दुष्टहोनेसे जोक लगवे और जमकर गांठदार होग-  
याहो उसका फासणिद्वारा निकाले और सर्वांग दुष्टहुएरुधिरको शिरावेधकर निकाले.  
त्वचागत दूषित रुधिरको तूंबी अथवा सिंगी लगाकर निकाले.

इति श्रीमदायुर्वेदोद्दारेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेद्वादशस्तरंगः ॥ १२ ॥

नवमोऽध्यायः ।

शिराव्यधविधिशारीराध्यायके अनंतर शिरा, धमनी और स्रोतस् ए सब समान  
होनेसे धमनीव्याकरण अर्थात् धमनीका वर्णन करतेहैं ।

अथातोधमनीव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—धमनीके वर्णनरूप शारीराध्यायकी व्याख्या करतेहैं ।

धमनीशब्दकीव्युत्पत्ति ।

ध्मानादनिलपूरणाद्धमन्यः ।

अर्थ—वायुकरके पूरितहोकर जिन्होंका स्फुरणहोवे उनको धमनी कहते हैं ।

धमनियोंकीसंख्या ।

चतुर्विंशतिर्धमन्योनाभिप्रभवाभिहिताः ।

अर्थ—नाभिसे २४ धमनी उत्पन्न हुईहैं, ऐसे शोणितवर्णनप्रकरणमें कहीहै ।

शिराधमनीस्रोतसोंकाएक्यकहतेहैं ।

तत्रकेचिदाहुःशिराधमनीस्रोतसामविभागः

शिराविकाराएवधमन्यःस्रोतांसिच ।

अर्थ—कोई कहतेहैं कि शिरा, धमनी और स्रोतस् ए भिन्न नहीं हैं, किंतु कर्म-  
भेद करके नाममात्र पृथक् २ है ।

शिरादिकोंकाभेदकहतेहैं ।

शरणात्शिरास्ताएवध्मानाद्धमन्यःस्रवणात्स्रोतांसि ।

अर्थ— ( शरणात् ) कहिये सर्वरस, शरीरमें जगेजगे पहुँचानेसे शरीरको पोषण करेहैं, इसीसे शिराकहतेहैं । तिनमें कोई पवनपूरितहोकर स्फुरणयुक्त होतीहै, वो धमनीनामसे विख्यात है । तथा कोई प्रकारकी शिरा मलमूत्रादिकोंको स्रवतीहै, अतएव उन्हींको स्रोतस् कहतेहैं, जैसे गेहूँका चून, मेंदा और दूधके दही, मक्खन आदि प्रकारांतर होजाते हैं, उसीप्रकार शिरा, धमनी और स्रोतसोंमें भेदहै ।

मतान्तर ।

आकाशीयावकाशानां देहेनामानि देहिनाम् ।

शिराः स्रोतांसि भागाः खंधमन्योनाञ्च आशया इत्यादि ।।

अर्थ—देहधारी पुरुषोंके देहमें आकाशसंबंधी जो अवकाशहै, उसीके शिरा, धमनी, स्रोतस्, ख, नाडी और आशय इत्यादि नामहैं ।

उक्तमतका खण्डन ।

तत्तुनसम्यगन्याएव धमन्यः स्रोतांसि च शिराभ्यः कस्मा

दव्यं जनान्यत्वान्मूलजात्रियमात्कर्मवैशेष्यादागमाच्च ।

अर्थ—ऊपर कहा हुआ मत उत्तम नहींहै क्योंकि शिरासे धमनी, स्रोतस् ये जुदेर हैं। इनका कारण यहहै, कि इन्होंके पृथक् होनेमें चार हेतुहैं, उनको कहतेहैं ( व्यञ्जनान्यत्वात् ) कहिये, इनके लक्षण और वर्ण नील, अरुण, शुक्ल, लोहित, इत्यादिकहें। और शब्दादि वह धमनियोंका वर्ण नहीं कहा इसीसे ( स्वधातुसमवर्णत्वम् ) अर्थात् धमनी जिस २ धातुओंको वहतीहैं उसी २ धातुके वर्णसमान वर्ण जानना चाहिये। इसी प्रकार स्रोतसोंकेभी लक्षण जानने सो चरकमेंभी लिखाहै।

स्वधातुसमवर्णत्वकहते हैं ।

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणुनिच ।

स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्येत्यादिकम् ।

अर्थ—स्रोतस् जिस जिस धातुओंको वहतेहैं; उसीउसी धातुके समान उन्हांका वर्ण जानना, स्रोतस्, आकृति करके गोल, तथा कोई २ मोटी, कोई बारीक, लंबी लंबी, ऐसीहै । इसप्रकार शिरा और धमनीयोंमें भेद जानना चाहिये ।

मूलनियमकहतेहैं ।

मूलजात्रियमात् । तासांमूलशिराश्चतु

श्चत्वारिंशदित्यारभ्ययावदेतानिसप्तशि-

राशतानिभवंतिधमनीनांचतुर्विंशतिधमन्यः  
स्रोतसांपुनर्द्वाविंशतिः ।

अर्थ—मूलशिरा ४४ तिनमें से ७०० शिरा निकली हैं, तथा मूलभूत धमनी २४ हैं, और स्रोतस् २२ हैं. इसप्रकार मूलभूत शिरा, धमनी और स्रोतस् इनमें भेद जानना ।

कर्मभेदकहतेहैं ।

शिराणांकर्मवैशेष्यंधमनीनांशब्दरूपरसगंधवहत्वा  
दिकंप्राणान्नरसशोणितमांसवहत्वादिकंस्रोतसाम् ।

अर्थ—शिराओंके कर्म अतिघातादिक, धमनीके कर्म शब्दादि वहत्वादिक और स्रोतसोंके कर्म प्राण, अन्नरस, रुधिर मांस, मेद, इनका वहनरूप जानना । इसप्रकार कर्मभेदरूप तृतीयहेतु जानना ।

आगमरूपचतुर्थहेतुकहतेहैं.

आगमोत्रायुर्वेदः सचतुर्थोभेदहेतुस्तद्यथा  
शिराधमन्योयोगवहानिस्रोतांसीति ।

अर्थ—आगमके कहनेसे इसजगे आयुर्वेदका ग्रहणहै । वह आयुर्वेद धमनी शिरा आदिके पृथक् होनेमें चतुर्थहेतुहै, जैसे इसी आयुर्वेदशास्त्रमें शिरा, स्रोतस्, धमनी ऐसा पृथक् निर्देशकिया है, यथा [ मर्मशिरास्त्रायुसंध्यस्थिधमनीः परिहरन् ] इत्यादि वाक्योंमें शिरासे धमनी निर्दोष पृथक् करके कहीहैं । इससे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि, शिरा धमनी और स्रोतस् ए पृथक् २ हैं ।

अब शिरास्रोतसादि परस्पर भिन्नहैं तथापि उनके कर्म मिलेहुएसे दीखतेहैं ऐसेकहतेहैं ।

केवलंतुपरस्परसन्निकर्पात्सदृशागमकर्मकत्वात्तिसौक्ष्म्याच्च ।  
विभक्तकर्मणामपिअविभागइवकर्मसुभवतिअतिसंनिकृष्टत्वादि  
हेतुचतुष्टयेनकर्मसुअपृथक्त्वमिवभवति ।

अर्थ—शिरा, धमनी, स्रोतस्, ये परस्पर मिले हुएहैं, तथा सबका आगम और कर्म ये समान हैं तथा ए सब अतिसूक्ष्म हैं । अतएव कर्मकरके विभक्त अर्थात् पृथक् २ होनेपरभी कर्मकेविषे अविभक्तसे ( मिलेहुएसे ) प्रतीत होतेहैं. इस विषयमें दृष्टांतहै । जैसे पांच सात प्रकारके पदार्थ एकत्रकर वरानेसे सबकी ज्वलनक्रिया

वस्तुतः भिन्नभी होनेपर एकही दीखेहै । इसप्रकार इसजगे समझना । उसीप्रकार दूसराहेतु कहतेहैं [ सदृशागमकत्वात् ] अर्थात् शिरादिकोंके आप्त वाक्य [ आकाशीयावकाशानां ] इत्यादि सबोंके समानहै । तीसरा हेतुकहतेहैं [ सदृशकर्मकत्वात् ] अर्थात् शिरा धमनी स्रोतसू इनके रसादि वहनरूपकर्म समानहै तथा अतिसूक्ष्महै, चारोंहेतुओंसे शिरादिकर्मविषयमें एकसे दीखतेहैं ।

नाड्यादिकोंकीगतिकहतेहैं ।

## तासांखलुनाभिप्रभवानांधमनीनामूर्ध्वगा दशदशचाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यगाः ।

अर्थ—नाभिसे प्रगट हुई जो २४ धमनी, तिनमें ऊपरके भागमें जानेवाली १० और अधोभागमें जानेवाली १० तथा आडी तिरछी जानेवाली ४ धमनीहैं ऐसे २४ हुई ।

धमनीनाडियोंकेकर्म ।

## ऊर्ध्वगाःशब्दरूपरसगंधप्रश्वासोच्छ्वासजृम्भितक्षुधितहसित कथितरुदितादीन्विशेषानभिवहन्त्यःशरीरंधारयन्ति ।

अर्थ—ऊर्ध्वगत धमनी शब्दादि क्रियाविशेषोंको वहतीहुई देहको धारण करती है शब्द, रूप, रस, गंध, एप्रसिद्धहैं, प्रश्वासोच्छ्वास कहिये पवनका भीतरलेना और छोड़ना, स्वप्रकृत धमनीका धर्म, रोदनादिअश्रुवाहिनीके धर्म आदिशब्दकरके रूपादिवाहिनीसंबन्धी प्रेक्षणादि कर्मोंका ग्रहण जानना ।

धमनीकेकार्यकहतेहैं ।

## तास्तुहृदयमभिपन्नास्त्रिधाजायन्ते ।

अर्थ—ऊर्ध्वगत धमनी नाभिसे हृदयकेप्रति आयकर तीनप्रकारकी होतीहैं । तिनमें दो धमनी करके भाषण, दोसे घोषण, दोसे निद्रा, दोसे जागना, और दो अश्रुवाहिनी, तथा दो स्तनाश्रितहोकर स्त्रियोंके स्तनसंबन्धी दूधको वहतीहैं, तथा वेही स्तनाश्रित होनेपर पुरुषोंके शुक्रको वहतीहै, इसप्रकार ऊर्ध्वगत धमनी तीनप्रकारके ३० विभागकहेहैं । ये उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर, स्कंध, ग्रीवा बाहु इनकी धारण करतीहै । तथा शब्द, घोष, निद्रा, प्रबोध, इनको प्रत्येक दोदो धमनी वहती हैं । ऐसे ये आठधमनी रजप्रवर्तित आत्मप्रयत्न प्रबोध मनोनुगत धमनीकरके ग्रहणकराजायहै । परंतु मन परमाणुरूपहै, इसीसे एककालमें उस धमनीकेविषे प्रवृत्त नहीं होता । तात्पर्य यहहैकि, उन धमनियोंमें जो धमनी मनसहवर्तमान युक्तहोती है उसके योगकरके शब्दादिकोंका ग्रहणहोताहै । एकही कालमें सर्व शब्दस्पर्शादि

कोंका धमनीकरके ग्रहण नहींहोवे । स्पर्शादिक तिर्घ्यगत धमनीके कर्म आगे इसी अध्यायमें कहेंगे । भाषण ( ताल्वादि स्थान व्यापार निष्पादित अकारादि वर्णयुक्त शब्द ) और घोष ( एतद्विपरीत अव्यक्तशब्द ) तथा ( द्वाभ्यांस्वपिति अर्थात् त-मोगुण युक्त दो धमनी करके निद्रा लेना ) सतोगुण युक्त दो धमनीकरके जाग्रत होना, तथा ऊर्ध्वगत धमनी उदरादिकोंको धारण करेहैं ।

अधोगतधमनीकेकार्य ।

ऊर्ध्वगमास्तु कुर्वन्तिकर्माण्येतानिसर्वशः ।

अधोगमास्तु वक्ष्यामि कर्मचासां यथायथम् ॥

अर्थ—इसप्रकार ऊपर जानेवाली धमनियोंके कर्म कहकर अब अधोगत धमनियोंके कर्म कहतेहैं।

अधोगमास्तु वातमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तवादीनधोवहन्ति  
तास्तु पित्ताशयमभिप्रपन्नास्तत्रस्थमेवान्नपानरसंवि  
पक्वमौष्ण्याद्विवेचयन्त्योऽभिवहन्त्यः शरीरं तर्पयन्ति ।

अर्थ—अधोभागमें जानेवाली धमनी वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्त्तव, इत्यादिकोंको अधोभागमें वहतीहैं, और वे धमनी पित्ताशयमें प्राप्तहो उसजगे अन्न, पान-संबंधी रस जठराग्निकी ऊष्मा करके पक्वहुए उनको यथास्थित योजना करके जितना पक्वहुआ उतनेको जहां तहां पहुंचाकर सर्वशरीरको पोषण करेहैं ।

अधोगतधमनीसैं ऊर्ध्वशरीरपोषणकैसैंहोताहै सोकहतेहैं:

ऊर्ध्वगानां रसस्थानंचाभिपूरयन्ति मूत्रपुरी  
षस्वेदांश्च विवेचयन्ति ।

अर्थ—अधोगत धमनी, ऊर्ध्वदेशगत धमनीके रसस्थानको पूर्ण करती है स्पष्टार्थ यह है कि, वे धमनी आमाशय और पकाशयमें प्राप्तहो अन्नरसको वर्तुलीकृत करके रसस्थानको पूर्ण करे है, और ऊर्ध्वगामिनी धमनी उसजगैसैं रस जगेजगे पहुंचाकर सर्व शरीरको तृप्त करे हैं, अतएव अधोगत धमनीही सर्व शरीरको पोषण करती है, ऐसैं फलित होता है । और आम पकाशयमें अधोगत धमनी विपक्वहुए अन्नसैं मूत्र, पुरीष, इत्यादिकोंको प्रथक् २ करे है, तथा उसजगे तीनप्रकार होते हैं अतएव ३० धमनी जाननी ।

अधोगत ३० धमनियोंकेकर्म.

तासां वातपित्तकफशोणितरसान्द्रे द्वे द्वे वहत-

स्तादशद्वेअन्नवाहिन्यौअंत्राश्रितेतोयवहेद्वेमूत्रवस्तिमभिप्रप  
न्नमूत्रवहेद्वेशुकप्रादुर्भावायद्वेविसर्गायद्वेतेएवरक्तमभिवहतो  
विसृजतश्चनारीणामार्त्तवसंज्ञेद्वेवर्चोनिरसिन्यौस्थूलांत्रप्रतिबद्धे ।

अर्थ—तिनमें वात, पित्त, कफ, रस, रक्त, इनके वहनेवाली प्रत्येककी दोदो हैं ।  
सर्व मिलकर १० हुई, तथा अंत्राश्रित होकर अन्नके वहनेवाली २ और उदकवहने-  
वाली २ मूत्राश्रित मूत्रवहनेवाली २ तथा शुक्र उत्पन्न करनेवाली २ और शुक्रका विसर्ग  
करनेवाली २ वेही स्त्रियोंके आर्त्तवसंज्ञक रक्त वहनेवाली २ तथा विसर्ग करनेवाली  
जाननी, और २ स्थूलांत्रोंसे बंधीहुई पुरीषको वहती है ।

अष्टावन्यास्तिर्यग्गामिनीनांधमनीनांस्वेदमपतर्पयन्तिता  
स्त्वेतास्त्रिंशत्सविभागाव्याख्याताएताभिरधोनाभेःपक्वा  
शयकटीमूत्रपुरीषगुदवस्तिमेढ्रसक्थानिधार्यतेयाप्यंतेच ।

अर्थ—दूसरी आठ धमनी और हैं, वे तिर्यग्गत धमनीके मुखप्रति स्वेदको प्राप्तकर  
उनको तृप्त करेहैं, इसप्रकार अधोगत धमनीके विभाग कहेहैं । वेनाभिके अधोभाग-  
के पदार्थ पक्वाशय, कटि, मूत्र, पुरीष, गुदा, बस्ती, शिश्न, ऊरु, इनको भलेप्रकार  
धारण करेहैं । वातादिकोंका वहन इनका सामान्य कर्म जानना ।

तिर्यग्गतधमनी कहतेहैं ।

अधोगमास्तुकुर्वन्तिकर्माण्येतानिसर्वशः ।

तिर्यग्गाःसंप्रवक्ष्यामिकर्मचासांयथायथम् ॥

अर्थ—नाभीके अधोभागमें जानेवाली धमनी पूर्वोक्त प्रकार कर्म करती है; अब  
तिर्यग्गत धमनीके जैसेजैसे कर्महैं, तैसे तैसे कहतेहैं ।

तिर्यग्गानांचतसृणांधमनीनामैकैकाशतथासहस्रधाचोत्तरो  
त्तरंविभज्यन्ते तास्त्वसंख्येयास्ताभिरिदंशरीरंगवाक्षितंवि  
बद्धमाततंच । तासांतुमुखानिरोमकूपप्रतिबद्धानियैःस्वेदम  
भिवहंतिरसंचाभिसंतर्पयंत्यंतर्बहिश्चतैरेवाभ्यङ्गपरिषेकाव  
गाहालेपनवीर्याणिअन्तःशरीरमभिप्रतिपद्यत्वचिविपक्वानि  
तैरेवरुपर्शसुखमसुखंवागृह्णीते ।

अर्थ—शरीरमें बाँकी, तिरछी जानेवाली ऐसी चार धमनी हैं, वो एक एक सौंसों

हजारहजार ऐसे उत्तरोत्तर विभागोंमें बढ़कर असंख्य होगई है । उनसे यह सर्वशरीर व्याप्तहो जालके सदृश बनाहुआ है । तथा उन धमनियोंके मुख रोमकूपोंसे प्रतिबद्धहैं, उनसे पसीना निकलताहै, तथा उस मुखकरके सर्वशरीरके बाहरभीतर त्वचादिकोंके प्रति रसको प्राप्त करतीहै । तथा उन्हींकरके अभ्यङ्ग, परिषेक और जलादिकोंके बीच स्नान तथा लेपन, इत्यादिकोंका वीर्य शरीरमें पहुँचता है । तथा मनोनुगत उसी धमनी करके त्वचामें सुखदुःख, स्पर्श, आत्माको अनुभव होताहै । इसप्रकार तिर्यग्गत चारधमनी सर्वांगगत विभागपूर्वक कहीहैं, अब शब्दादिकोंको ग्रहण करनेवाली और सर्ग, स्थिति, प्रलय इनमें प्रकृतिभूत ऐसी जो धमनी हैं उन्होंकी प्रक्रिया कहतेहैं ।

शब्दादिग्राहिणीतथासर्गादिकारकधमनीइनकीप्रक्रियाकहतेहैं

पञ्चाऽभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयन्ति ।

पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ॥

पञ्चाभिभूताः पञ्चेन्द्रियं पञ्चकृत्वः पञ्चसुभावयन्तिच परं विनाशकाले

पञ्चत्वमायान्ति । किंकृत्वा पञ्चाद्रयं पञ्चसु भावयित्वा इत्यन्वयः ।

अर्थ-पंचभूतोंकरके व्याप्त, अथवा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, करके व्याप्त, अथवा आकाश, पवन, दहन, जल, और पृथ्वी, इनकरके व्याप्त ऐसी धमनी उस [ पंचेन्द्रियं ] कहिये कर्मपुरुष जो है ताय [ पञ्चधा कृत्वा ] कहिये पांचजगे विभक्तकर पंचेन्द्रियोंके विषे [ भावयन्ति ] कहिये योजना करे है, और विनाशकाल प्राप्तहोनेपर [ पञ्चसु ] कहिये श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके अधिष्ठानोंके विषे अर्थात् आकाशादिकोंके विषे पृथक् पृथक् योजनाकर आप विनाशको प्राप्त होता है । इसका खुलासा अर्थ यह है कि, आकाशादि पञ्चमहाभूतोंसे प्रगट जो धमनी वे कर्म पुरुषको इन्द्रियोंके अधिष्ठानोंमें पांचवार भावनाकर तदनंतर इन्द्रीपंचकको आकाशादिभूतोंमें संयोजनाकर विनाशकालमें वे धमनी नाशको प्राप्त होती हैं ।

अन्य आचार्य [ पञ्चाभिभूतान्यथपंचकृत्वः इतिपठन्ति व्याख्यानयन्तिच ] इस प्रकार पाठको लिखकर उसकी व्याख्या करते हैं कि, आकाशादि पञ्च महाभूत कर्मपुरुषको श्रोत्रादि इन्द्रियाधिष्ठानोंके विषे योजनाकर आप विनाशकाल प्राप्त होनेसे पंचत्वको प्राप्त होते हैं ।

अन्य आचार्य [ पञ्चाभिभूतास्त्वथपंचधा चेति पठन्ति व्याख्यानयन्ति च ] इसप्रकार लिखकर उसकी व्याख्या करते हैं कि, पञ्चाभिभूत जो धमनी है सो, पंचेन्द्रिय कहिये बुद्धीन्द्रियपंचकोंको शब्दादिकोंके जो वचनादिपंचक अर्थोंमें पांचवार योजनाकर विनाशकालमेंआप नाशको प्राप्त होती है ।

अब मतान्तरसे धमनियोंकेकर्म आदि कहते हैं ।  
 सव्यप्रकोष्ठाद्धृदयस्यनाडी द्वितीयपर्शोस्तरुणास्थियावत् ।  
 ऊर्द्धगतात्र्यंगुलसंमितासा शाखेचतस्याहृदयंप्रयाते ।  
 ततश्चपश्चात्प्रसृतातृतीयं कशेरुभित्तंनुसव्यपार्श्वे ।  
 समागतास्यावपुषोमहत्यः शाखाश्चितिस्रोविसृताःसमन्तात् ।  
 अवाङ्मुखीसाथकशेरुखण्डं तृतीयमाप्ताखलुनिम्नदेशे ।  
 भागत्रयंवर्णितमेतदेवस्मृतांहिमूलंधमनीगणस्य । धमन्यथोर  
 स्थलगांविभिद्यपेशीप्रविष्टोदरगह्वरान्तः । इयंचमूलंधमनी  
 गणस्यस्कंधोऽथवोक्तोऽपियथाद्रुमस्य । अतःशाखाःप्रशाखा  
 श्चक्रमात्सूक्ष्मतराश्चताः । व्याप्तुवन्निखिलंदेहंशोणितौघप्रवा  
 हिकाः । कलास्वस्थिषुपेशीषुमस्तुलुङ्गेचमज्जसु । सर्वत्रैवथि  
 ताएताधमन्योधमनष्वपि । नास्तिवर्ष्माणितच्चाङ्गंधमन्यो  
 यत्रनस्थिताः । केशादिष्वेवनाभ्यस्तानदृश्यन्तेकदाचन ।  
 हृदयाच्छोणितंशुद्धंनिर्मलंप्राणधारणम् । सुलोहितंसुखोष्णं  
 चवाहयन्तिसमंततः । मुहुर्मुहुःक्षयंयान्तिसर्वाण्यङ्गानिदेहि  
 नाम् । श्वासभाषगतिरूपन्दरतिर्चिंतादिकारणात् । क्षपयि  
 त्वाक्षयंतेषामङ्गानारक्तयोगतः । कुर्युःसंवर्द्धनंनान्द्योजनये  
 रन्बलंतथा । सर्वाण्येवोपदानानिशारीराणिचशोणिते । यतः  
 सन्तिततस्तत्स्यात्कारणंदेहरक्षणे।शोणिताज्जायतेपेशीकला  
 मज्जास्थिरेतसी । बलौजसीमस्तुलुङ्गःसर्वंशोणितसम्भवम् ।  
 कुल्याभिःसलिलंयद्द्रवौद्यानिकमहीरुहान् । जीवयेत्तर्पयेत्तद्  
 द्धमनीभिश्चशोणितम् । सर्वाण्यङ्गानिजिवानामितिधन्वन्तरे  
 र्मतम् । अतोधमन्योविज्ञेयाःप्रीणनेचापिहेतवः । शोणितस्रो  
 तसांवेगात्स्पंदन्तेचधरामुहुः । तासांस्पन्दनतोज्ञेयंसुखंदुः  
 खंचदेहिनाम् । अंगुष्ठमूलेधमनीसततंयापरीक्ष्यते । भागो  
 द्वितीयोमूलस्यतदादिःकीर्तिताबुधैः । कक्षेचापिप्रगण्डेचप्रको

ष्टेऽथकरेतथा । अंगुल्याह्यनुभूयेतबाह्वोरेषाद्वयोरपि । मणि  
बन्धेयथानाडीतथागुल्फेऽनुभूयते । कण्ठेपार्श्वकपालेचवंक्षणे  
योनिशिश्नयोः । तनुत्वगावृतेष्वेवतथाङ्गेष्वपरेषुच । शोणि  
तौहाञ्चसूक्ष्माणामनुभावोगतेर्भवेत् । यंयंहेतुंसमाश्रित्ययाति  
यांयांगतिंधरा । ययाययासुखंगत्यादुःखं वापिययायया ।  
ययाययाचजीवोऽयंयातिमृत्युवशंध्रुवम् । मयासावर्ण्यतेव-  
त्सदर्पणेनाडिकाभिधे ।

अर्थ—हृदयके वामप्रकोष्ठसे मूलधमनीकी उत्पत्ति है, यह इसस्थानसे उत्पन्न होकर ऊर्ध्वाभिमुखहो दूसरी पांशुकी तरुणास्थिपर्यंत उपस्थित है । यह ऊर्ध्वगामी अंशप्राय ३ अंगुलके प्रमाणहै, इसजगसे दो शाखा निकलकर हृदययंत्रमें गमनकरे हैं । अनन्तर ये पश्चान्मुखी होकर तीसरे कशेरुकाके वामपार्श्वमें उपस्थित हुईहै । इसीजगसे तीसरी बड़ीशाखा निकलकर देहके अनेक स्थानोंमें फैल गईहै, इसके उपरांत यह अधोमुखी होकर चतुर्थ कशेरुकाके निम्नदेशमें उपस्थित हुईहै, यह कहे हुए भागत्रय समुदायको धमनीका मूलकहतेहैं, अनन्तर यह धमनी कुछ थोड़ी दूर निम्नमुखहो वक्षस्थलकी पेशीको भेदकर उदरमें प्रवेश करतीहै, इसको धमनीगणका मूल अथवा स्कंध कहतेहैं । जैसे वृक्षकी जड़मेंसे एकशाखा निकल ऊपर उसीमेंसे डाली गुदेनके समूह प्रगट होतेहैं, उसीप्रकार कहेहुए धमनीके भागत्रयमेंसे बहुतसी शाखा प्रशाखा रूप नाडी उत्पन्नहो क्रमसे अतिसूक्ष्म होकर सर्वदेहमें फैलीहुईहै । कला-समूह, अस्थिगण, सबपेशी, मस्तिष्क और मज्जा इन सबमें धमनी विद्यमानहै, धमनीसमूहमेंभी अतिसूक्ष्मतर धमनी देखनेमें आतीहैं, शरीरमें ऐसा कोईसा अंग नहींहै कि जिसमें धमनी नहींहै, केवल केशादिकोंमें धमनी नहीं दीखती । धमनीगण हृदयसे शुद्ध, निर्मल, सुलोहित, सुखोष्ण और प्राणरक्षण शक्तिसम्पन्न रुधिरको शरीरके सर्वस्थानोंमें वहन करतीहै, श्वासक्रिया, शब्दोच्चारण, गमन, स्पंदन, मैथुन और चिंता आदि कारणमें जीवगणके समस्त अंग निरन्तर क्षयहोतेहैं, संपूर्ण धमनी विशुद्ध रुधिरके योगसे उसी क्षीण अंशोंको परिपूर्णकर अंगसमूहको संवर्धित तथा बलोत्पादन करतीहै, रुधिर सर्व प्रकार शारीरिक उपादानकारणरूपसे विद्यमानहै इसहेतुसे रुधिर देहरक्षाका मुख्य कारणहै, पेशी, कला, मज्जा, हड्डी, शुक्र, बल, ओज और मस्तिष्क समुदाय इसीरुधिरसे बनतेहैं, जैसे पानीके बरहासे खेत वा बगीचेकी क्यारीके वृक्षसमूह तृप्त होतेहैं और उसजलसे उनवृक्षोंको जीवन और रक्षा होतीहै, उसीप्रकार धमनी नाडियोंके द्वारा शुद्धरुधिर श्रोतोंमें वहकर सर्व अं-

गोंको तर्पितकर जीवितरक्खेहैं । अतएव धमनीसमूहको जीवनके रक्षाका मुख्यहेतु समझना चाहिये ।

श्रोणित स्रोतोंके वेगसे धमनीगण वारंवार स्पंदित होती है, अर्थात् रुधिरका संचार होनेसे धमनी नाडी वारंवार फडकतीहै, इसी स्पंदनद्वारा जीवोंके सुखदुःखका निर्णय होताहै, ( इसीसे वैद्य नाडीको देखाकरे हैं ) अंगूठेकी जडमें जो सर्वदा नाडीपरीक्षा करतेहैं उसका मूल, धमनीका द्वितीयअंश ( अर्थात् यह द्वितीयपर्शुकाके उपास्थिसे लेकर पश्चान्मुखवाले तीसरे केशरुकाके वामपार्श्वपर्यंत विद्यमान है ) यह नाडी कांख, बाजू, पहुँचा और दोनोंहाथोंमें उंगलियोंकरके अनुभूत अर्थात् प्रतीतहोती है। जैसे मणिबन्ध ( पहुँचे ) में नाडीजानी जाती है उसीप्रकार गुल्फ ( ऐडी ) कण्ठ, पसवाडे, कपाल, वंक्षण, योनि और लिंग इनमें जानी जाती है। इसीप्रकार और सूक्ष्मत्वगाच्छादित अंगकी धमनियोंका स्पन्दन ( फडकना)अंगुली आदिद्वारा अनुभव होताहै।

जिस २ कारणसे नाडीकी जैसी २ गति होय और जिस २ गतिद्वारा शुभ और अशुभ प्रतीतहो, तथा जिस २ गतिद्वारा इसमनुष्यकी मृत्युघटना होय इत्यादि संपूर्ण नाडीके भेद आगे हम नाडीदर्पणमें लिखेंगे । १२ नंबरका चित्र देखो ।

स्रोतस्कहतेहैं ।

### अत ऊर्ध्वस्रोतसामूलविधिलक्षणमूपदेक्ष्यामः

अर्थ—धमनीके सविस्तर वर्णनानन्तर स्रोतसोंके मूलविधिलक्षणोंको कहतेहैं ।

### तानितुप्राणात्रोदकरक्तानांसमेदोमू त्रपुरीषशुक्रार्त्तववहानियेष्वधिकारः ।

अर्थ—जिनके मूलविधिलक्षण कहनेके विषयमें अधिकार वो स्रोतस्, प्राण, अन्न, जल, रस, रुधिर, मांस, मेद, मूत्र, पुरीष, शुक्र, आर्त्तव, इनको वहतेहैं । यह स्रोतसोंकी मूलविधिलक्षण जाननी ।

स्वरूपकहतेहैं ।

### स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिस्त्रो तांसिदीर्घाण्याकृत्याप्रतानसदृशानिचेति ।

अर्थ—स्रोतस् जिसजिस धातुओंको वहतेहैं, उसी २ धातुके सदृश स्रोतसोंका वर्ण जानना, स्रोतस्गोल, मोटी, लंबीलंबी, तथा कोई बारीक ऐसीहो सर्वदेहमें कमलतंतु मंडलके समान फैलीहुईहै, तथा प्राणसे लेकर आर्त्तव पर्यंत जो ग्यारह पदार्थ

हैं उनके वहनेवाली स्रोतस् प्रत्येक दोदोहैं. और हड्डी मज्जादि स्रोतस् यद्यपि हैं तथापि उनका अधिकार नहींहैं; इसका यह कारणहै कि, अस्थिवह स्रोतसोंका भेद मूलहै. और मज्जावहोंका सर्वअस्थि मूल वे सर्वदेहगतहै, इसीसे उनकी विधिलक्षण ये साध्यासाध्य आदि ज्ञानविषयमें नियामक नहीं है, उसीप्रकार स्वेदवह स्रोतसोंका भेदमूलहै अतएव शल्यतंत्रमें उसकी विधिलक्षणका अधिकार नहीं करा । इसी अर्थको मनमें रखकर ( येष्वधिकार ) ऐसे आचार्य कहतेहुए, चिकित्सा विषयमें स्रोतो दुष्टलक्षण कहना चाहिये । इसका यह तात्पर्यहै कि, चिकित्साविषयमें सर्वशरीरगत स्रोतसोंका अधिकार और शल्यतंत्रमें नियतदेश स्थित स्रोतस् विद्धहोनेसे वेदना विशेष तथा साध्यासाध्य ज्ञानविषयमें नियामक अधिकारहै । तथा देहचिकित्साधिकार सर्वशरीरगतत्व करके साध्यादि ज्ञाननियामक होता है, इसीसे अस्थिमज्जादिवह स्रोतसोंका अधिकार नहींहै ऐसे उक्त ग्रन्थका तात्पर्य जानना ।

अन्यमतकहतेहैं ।

### एकेषांबहूनि ।

अर्थ—किसी आचार्योंका यह मतहै कि, स्रोतस् बहुतसे हैं, परंतु उनका अधिकार इसजगे नहीं है ।

स्रोतसोंके भेद कहते हैं ।

### एतेषांविशेषावहवः ।

अर्थ—स्वतंत्रोक्त प्राणादि वह २२ स्रोतस् हैं उनके अनेक भेद हैं ।

प्राणवहस्रोतसोंकामूलकहते हैं ।

तत्रप्राणवहेद्वेतयोर्मूलंहृदयरसवाहिन्यश्चधमन्यः ।

तत्रविद्धेस्यक्रोशनंविनमनंभ्रमणंवेपनंनिःसरणंवाभवति ।

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकरणमें प्राणवह स्रोतस् दोकहे हैं, उनका मूल हृदय और रसवाहिनी धमनी जाननी, उस मूलके विद्धहोनेसे आर्त्तस्वरयुक्त रोदन, वक्रता, भ्रमण, कंपन, इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

अन्नवहस्रोतसोंकेमूलको कहते हैं.

अन्नवहेद्वेतयोर्मूलमन्नाशयोन्नवाहिन्यश्चधमन्यः ।

तत्रविद्धस्याध्मानंशूलान्नद्वेषोमरणम् ।

अर्थ—अन्नवह स्रोतस् दो हैं, उनका मूल अन्नाशय और अन्नवाहिनी धमनीहै, उनके मूलवेध होनेसे अफरा होवे, तथा शूल, अन्नद्वेष हो, तथा मरणभी कभी होजावे ।

उदकवहस्रोतसोंकामूल.

उदकवहेद्वेतयोर्मूलंतालुक्लोमच । तत्रविद्धस्यपिपासा  
श्यावास्यतामरणञ्च

अर्थ—उदकवह स्रोतस् दो हैं; उनका मूल तालु और पिपासास्थान है । उसका वेधहोनेसे प्यास, मुखपर कालौच आयकर मरणहोय ।

रसवहस्रोतसोंकामूलकहते हैं ।

रसवहेद्वेतयोर्मूलंहृदयरसवाविन्यश्चधमन्यस्तत्रविद्धस्यशोषः  
प्राणवहविद्धवच्चमरणं तत्रहविद्धवल्लिङ्गानि ।

अर्थ—रसवह स्रोतस् २, उनका मूल हृदय और रसवाहिनी धमनी उनका वेध होनेसे शरीरशोष तथा प्राणवह स्रोतस् विद्धहोनेसे जो लक्षण होतेहैं वो लक्षण रसवाहिनी धमनी विद्धहोनेसे होते हैं ।

रक्तवहस्रोतसोंका मूलकहते हैं ।

रक्तवहेद्वेतयोर्मूलंयकृत्प्लीहानौरक्तवाहिन्यश्च धमन्यः  
तत्रविद्धस्यश्यावाङ्गताज्वरदाहपाण्डुताशोणितागमनञ्च ।

अर्थ—रक्तवह स्रोतस् २ हैं, उनका मूल यकृत् प्लीहा और रक्तवाहिनी धमनी है, उनका वेध होनेसे अंगमें कालौच हो; तथा ज्वर, दाह, पीलिया, तथा ऊपरनीचेके मार्गहोकर रक्तस्राव, तथा नेत्रोंमें लाली इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

मांसवहस्रोतसोंकामूलकहतेहैं ।

मांसवहेद्वेतयोर्मूलंस्नायुत्वचेरक्तवाहिन्यश्चधमन्यस्तत्र  
विद्धस्यश्चयथ्रुर्मांसशोषःशिराग्रंथयोमरणञ्च ।

अर्थ—मांसवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल स्नायु और त्वगादिक रसरक्तवह धमनी है । उनका वेधहोनेसे सूजन होय, तथा मांसशोष होय, और शिराओंमें गांठ-होजावे, तथा मरणभी होवे । इस जगे त्वक्शब्द करके तदाश्रित रसका ग्रहण हैं ।

मेदोवहस्रोतोंकामूलकहते हैं ।

मेदोवहेद्वेतयोर्मूलंकटिवृक्कौतत्रविद्धस्यस्वेदागमनं  
स्निग्धाङ्गतातालुशोषस्थूलशोफपिपासाच ।

अर्थ—मेदोवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल कटि तथा वृक्क है । ए वेध होनेसे अत्यंत पसीनें अंगचिकना, तथा तालुशुष्क हो; स्थूलता और अंगमें सूजनहो तथा प्यास लगे ।

मूत्रवहस्रोतसोंकामूल ।

मूत्रवहेद्वेतयोर्मूलंबस्तिमेद्रं तत्रविद्धस्यानद्धबस्तिता  
मूत्रनिरोधस्तब्धमेद्रताच ।

अर्थ—मूत्रवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल बस्ती और शिश्र ( लिंग ) है; उनका वेध होनेसे मूत्राशय तनेके समान होजावे, तथा मूत्रका रुकना और शिश्र स्तंभित होजावे ।

पुरीषवहस्रोतसोंकामूल ।

पुरीषवहेद्वेतयोर्मूलंपक्वाशयोगुदंचतत्रविद्ध स्यानाहो  
दुर्गंधताग्रन्थितांत्रताच ।

अर्थ—पुरीषवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल पक्वाशय और गुदा है इन्में आयातहो-  
नेसे अनाह कहिये ( वातकारोग ) और दुर्गंध आवे तथा आँतडोंमें गांठ पडजावे ।  
शुक्रवहस्रोतस् ।

शुक्रवहेद्वेतयोर्मूलंस्तनवृषणौचतत्र  
विद्धस्यक्कीबताचिरात्प्रसेकोरक्तशुक्रताच ।

अर्थ—शुक्रके वहनेवाले २ स्रोतसूँहैं, उनके मूल स्तन और वृषण हैं उन्में किसी प्रकारकी चोटलगनेसे नपुंसकता, अथवा चिरकालकरके वीर्यका स्राव होता है, तथा शुक्रका लाल रंग होता है ।

आर्त्तववहस्रोतस् ।

आर्त्तववहेद्वेतयोर्मूलंगर्भाशयार्त्तववहधमन्यश्च  
तत्रविद्धायांवंध्यात्वमैथुनासहिष्णुत्वमार्त्तवनाशश्च ।

अर्थ—आर्त्तववह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल गर्भाशय और आर्त्तववह धमनी है ।  
उन्का वेधहोनेसे वंध्यापना होय तथा मैथुनकरना अच्छा न मालूमहो, तथा आर्त्त-  
वका नाशहोय. शुक्रवहस्रोतसोंके समीपकी सेवनी विद्धहोनेसे उसके लक्षण अश्मरी  
चिकित्सित बस्तिप्रसंग करके कहीहैं. अब चिकित्सासूत्र कहते हैं ।

चिकित्सा ।

स्रोतोविद्धंतुप्रत्याख्यायोपाचरेदिति ।

अर्थ—उक्तस्रोतसोंके विषे विद्धहोनेसे असाध्यत्व कहा है उसको शल्योद्धरण  
प्रकार करके चिकित्सा करे ।

उद्धृतशल्यचिकित्सा ।

उद्धृतशल्यंतुक्षतविधानेनोपाचरेत् ।

अर्थ—जिस पुरुषका शल्य निकलगयाही उसकी क्षतविधान करके चिकित्सा करे ।

स्रोतोलक्षण ।

मूलात्खादन्तरेदेहेप्रसृतत्वाभिवाहियत् ।

स्रोतस्तदिति विज्ञेयं शिराधमनिवर्जितम् ॥

इति सौश्रुतशारीरेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ— ( मूलात्खात् ) कहिये हृदयछिद्रसे लेकर जो अन्तरछिद्र प्रवहनशील है उसको स्रोतस् जानना परंतु धमनी और शिरा इनको छोड़कर जानना ।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धरेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेत्रयोदशस्तरङ्गः ॥१३॥

दशमोऽध्यायः ।

धमनीव्याख्यानंतर शुक्रार्तवस्रोतसोंका वर्णन होनेसे अब शुक्रार्तवमूलक पूर्वकहेहुए गर्भकी आश्रयभूत गर्भिणी उसका वर्णन करना उचितहै अतएव उसीको कहतेहैं ।

अथातो गर्भिणीव्याकरणं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—धमनीव्याख्यानंतर अब हम गर्भिणीका वर्णन जिसमेंहैं ऐसी शारीराध्यायीकी व्याख्या करेंगे ।

गर्भिणीकेनियम ।

गर्भिणीप्रथमदिवसात्प्रभृतिनित्यंप्रहृष्टाशुचिरलंकृताशुक्ल  
वसनाशांतिमङ्गलदेवताब्राह्मणगुरुपराभवेत् । मलिनवि  
कृतहीनगात्राणिनस्पृशेदुद्वेजनीयाश्चकथाः । शुष्कंपर्युषि  
तंक्वथितंक्लिन्नंचान्नोपभुञ्जीत । बहिर्निष्क्रमणंशून्यागा  
रचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान्क्रोधामयसंस्करांश्चभावान्उच्चै  
र्भाष्यादिकंचपरिहरेत् ।

अर्थ—गर्भिणीको गर्भधारणदिवससे लेकर सर्वकाल आनन्दयुक्त रहना चाहिये, तथा उसके प्रियमनुष्य उसको प्रियपदार्थदेकर सदैव संतुष्टराखे और वह स्त्री स्वयं

यवित्र रहे; अलंकारोंको धारण सुपेदवस्त्रोंको पहिराकरे, शांतिपूर्वक मंगलाचरण करे । देवता, ब्राह्मण, गुरु, इन्से प्रीतिकरे । मलिन, विकृत, हीनगात्र, इनका स्पर्श न करे । तथा शुष्क, मलिनवासा, दुर्गंधवान्, गीला और कच्चाअन्नभोजन न करे । तथा बाहर बहुत न जावे, सूनेघरमें, जिस वृक्षपर अथवा नीचे उसके देवताका स्थानहो ऐसे वृक्षके नीचे अथवा बौद्धोंके मंदिरमें, इमशान वृक्ष इनका आश्रय न लेवे. जिससे क्रोध आवे ऐसे कर्मोंको न करे. बहुतजोरसे न बोले. और उद्वेग कर्त्ता वार्त्ताको भी नसुने ।

भोज्यंतुमधुरप्रायंस्निग्धं हृद्यं द्रवं लघु । संस्कृतं दीपनीयंतु  
नित्यमेवोपयोजयेत् । गुर्विणी न तु कुर्वीत व्यायाममपतर्पणम् ।  
रात्रौ जागरणं शोकं यानस्यारोहणं तथा । रक्तमोक्षवेगरोधं न कु-  
र्यादुत्कटासनम् । न जिघ्रेदपि दुर्गंधं न पश्येन्नयनाप्रियम् । व-  
चांसिनापिशृणुयात्कर्णयोरप्रियाणि च । तैलाभ्यङ्गोद्धर्तन-  
ञ्च भावाश्चाप्ययशस्करात् । नामृद्रास्तरणं कुर्यान्नात्युच्चं श-  
यनासनम् । अन्यांश्चापिनतत्कुर्याद्येन गर्भो विनश्यति ।  
एतांस्तु नियमान्सर्वान्यत्नात् कुर्वीत गुर्विणी ।

अर्थ—गर्भिणी मधुरप्राय, सचिक्कण, हृदयको हितकारी, पतले हलके तथा उत्तम पाककर्ताने विधिपूर्वक बनाएहो और जो दीपनहो ऐसे पदार्थोंको नित्य सेवनकरे, तथा गर्भिणी व्यायाम, अपतर्पण रात्रिमें जागना, मैथुन, शोक, सवारीमें बैठना, रुधिर निकालना मलमूत्रआदि वेगोंका रोकना, ऊंचे और दुष्टआसनपर बैठे नहीं, दुर्गंधको न सूंघे और नेत्रोंको अप्रियपदार्थको न देखे, कानोंको अप्रिय ऐसे वाक्योंको न सुने, अत्यन्त तैलका लगाना, और उवटना त्यागदेवे और जो अपयश कर्त्ता कर्महै उन्को नकरे, कठोर बिछैया नबिछावे, अत्यंत ऊंचेपर शयन और आसन नकरे, और भी जो दुष्टकर्म है, कि जिनसे गर्भ नष्टहोवे उन्को कदाचित् नकरे, इन कहेहुए नियमोंको गर्भवती यत्नपूर्वकसाधनकरे ।

गर्भिणीका अन्नकहते हैं ।

गर्भिणीं प्रथमद्वितीयमासेषु षष्टिकां पयसा भोजयेत् ।

अर्थ—गर्भिणीको प्रथम तथा दूसरे महिनेमें साठी चावलोंका भात दूधके साथ भोजनको देवे ।

अन्यमत ।

## चतुर्थेदध्रापञ्चमेपयसाषष्ठेसर्पिषेत्येके ।

अर्थ—कोई आचार्य कहतेहैंकि, चौथे महिनेमें दही मिश्रित, पांचवे महिनेमें दूधमिश्रित, छठवे महिनेमें घृतमिश्रित भोजन अधिक देवे. वाग्भटकहताहै कि \* गर्भकरके पीडित दोष सातवे महिने हृदयमें प्राप्त होतेहैं इसीसे गर्भिणीके खुजली और दाह तथा खीखस करेहैं ।

स्वमतकहते हैं।

## चतुर्थेपयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेत् ।

अर्थ—चौथे महिनेमें दूध और मक्खन मिला जंगली जीदोंका मांस भोजनमें देवे. पांचवे महिनेमें दूध और घृत मिला भोजन देवे. छठे महिनेमें गोखरू करके सिद्ध घृतकी मात्रा यवागू सहित देवे. सातवे महिनेमें विदारीकंद करके सिद्धकरा घृत पिवावे. आठवे महिनेमें चंदनके जलमें बला अतिबला, सौंफ, मांस, दूध, दही, छाछ, तेल, नोन, मैनफल, सहत, घृत, इनको मिश्रितकर निरूहबस्ती देवे । इस-प्रकार करनेसे पुराने पुरीष ( मल ) की शुद्धि तथा वायुकी अनुलोमगति होती है । अनंतर दूध और मधुर पदार्थ इनके कषाय करके सिद्धकरेहुये तैलसे अनुवासन बस्ति-करे । इस करके वायुकी अनुलोमगति होतीहै. उस अनुलोमगति होनेसे स्त्री सुख-पूर्वक प्रसव करतीहै और उपद्रवरहित होतीहै. आठवे महिनेके अनंतर प्रसवकाल-पर्यंत स्निग्धादिकों करके तथा यवागू जांगलरस इन करके उपचार करावे । इस-प्रकार उपचार करनेसे गर्भिणी स्निग्ध तथा बलवती होकर सुखपूर्वक उपद्रवरहित प्रसूत होती है ।

## प्राक्चैवनवमान्मासात्सूतिकागृहमाश्रयेत् ।

## देशेप्रशस्तेसंभारैःसम्पन्नंसाधकेऽहनि ॥

अर्थ—गर्भिणी नवमहिनेके पूर्वही उत्तमदेशमें वास्तुविद्याके जाननेवालोंने परीक्षा करके बनाया और संपूर्णसामग्री करके युक्त तथा शुभ तिथि नक्षत्र मुहूर्त्तमें सूतिकाग्रहका आश्रयलेवे ।

सूतिकागारकीविधि ।

## तत्रारिष्टंब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणांश्वेतपीतरक्तकृष्णेष्वप-

\* गर्भेणोत्पीडिता दोषास्तस्मिन्हृदयमाश्रिताः । कण्डूविदाहं कुर्वन्ति गर्भिण्याः कि-  
किसानिच ॥

हृतास्थिशर्कराकालेदेशंप्रशस्तरूपरसगंधायांभूमौप्राग्द्वार  
मुद्गद्वारंवाविल्वन्यग्रोधतिन्दुकैंगुदभल्लातकनिर्मितसर्वांगा  
रंवायानिचान्यान्यपित्राह्लाणाःशंसेयुरथर्ववेदविदः तन्मयप-  
र्यंकंसमुपलिप्तभित्तिषुसुविभक्तपरिच्छदंचाष्टहस्तायतंचतुर्ह-  
स्तविस्तृतंरक्षामंगलसम्पन्नंविधेयंतद्वसनालेपनाच्छादनापि  
धानसम्पदुपेतमग्निसलिलोलूखलवर्चःस्थानस्नानभूमिमहा-  
नसमृतसुखम् ।

अर्थ—सूतिकागारकी भूमि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्रको क्रमसे सपेद, पीली, लाल और काली होनी चाहिये. दूर हुई है अस्थि और धूल जिस्में तथा शुभकाल सुन्दर देश और उत्तमरूप, रस तथा गंधवान् पृथ्वीमें सूतिकागार बनावे कि, जिस्का द्वार पूर्वकी तरफ अथवा उत्तरकी तरफ होवे ( कोई दक्षिण द्वार होनाभी लिखतेहैं ) बेल, वड, तेंदू, गोदी और भिलाया इनकाष्ठोंसे उसगृहकी सर्वभीत छत आदि बनीहो और भी जो अथर्ववेदके जानने वाले ब्राह्मण कहे उस काष्ठकी शय्या बनावे, उस मकानकी भीतोंको लीप पोतकर उज्ज्वलकरे और प्रत्येक कार्यकेवास्ते पृथक् २ परिच्छद ( सामग्री ) हो तथा उस घरकी ८ आठ हाथकी लंबाई और ४ चार हाथकी चौड़ाई तथा रक्षा और मंगलकरके संपन्न ऐसा होना चाहिये, तथा वस्त्र, लेपन, आच्छादन और पिधान अर्थात् ओढने बिछानेकी सामग्री आदिसे युक्तहो, अग्नि, जल, ओखली, मल-मूत्र त्यागनेकी जगे, स्नान की भूमि, रसोई करनेकीठौर, और जाडे, गरमी, वर्षाऋतुमें सुखकारक इत्यादि स्थानों करके युक्त घर होना चाहिये ( उस सूतिकाके स्थानमें इतनी वस्तु औरभी उपस्थित रखनी चाहिये । घृत, तेल, मधुरक, संधानिमक, सौं-चरनोन, राल, गुड, कूठ, तेलीया, देवदारु, सौंठ, पीपलामूल, गजपीपल, मंडूक-पीपल, इलायची, कल्यारी, वच, चित्रक, चिरबिल्व, हींग, सरसों, लहसन, धतूरा, कदंब, बावची, भोजपत्र, कुलथी, मैरेय मद्यविशेष, आसव और सुरा ( दारु ) दोपत्थरके टुकड़े, दो अंडकीजड, ओखली मूसल, गधा, बैल, दो लोहके टूक, दो पिप्पलक, सुवर्ण, चांदी, दो शखलोंदिके, दो बेलके पलंग, तेंदू, इंगुदीकी लकड़ी, अग्निके वरानेको पंखा इत्यादि सामग्री सूतिका घरमें उपस्थित रहनी चाहिये. जो अनेकवार प्रसूति होचुकी हो, मोहार्धयुक्त, निरंतर अनुरागवती, आचार विचारमें कुशल, तथा निर्णयमें और उपचारकरनेमें कुशल, वात्सल्य प्रकृतिवाली, खेद-रहित, क्लेशको सहनेवाली, ऐसी स्त्री उस प्रसूति घरमें उपस्थित रहे । तथा अथर्ववेदके ज्ञाता ब्राह्मण स्थित रहे और जो वृद्धस्त्री और ब्राह्मण बतावे वोभी उपस्थित रखने चाहिये ) ।

## तत्रोदीक्षेतसासूतिसूतिकापरिवारिता ।

अर्थ—गर्भिणी उस सूतिका घरमें अनेकवार प्रसूतीहो चुकीहो ऐसी स्त्रियोंके साथ स्थितहो प्रसूत समयकी वाट देखे अर्थात् इस घरमें मैं प्रसूती होऊंगी ।

तथाचचरके ।

ततःप्रवृत्तेनवमेमासेपुण्येऽहनिनक्षत्रमुपगते प्रशस्तेभगवतिशशि  
निकल्याणेकरणेमैत्रेमुहूर्तेशान्तिहुत्वागोब्राह्मणमग्निमुदकञ्चादौ  
प्रवेश्यगोभ्यः तृणोदकमधुलाजांश्चप्रदायब्राह्मणेभ्योऽक्षताःसुम  
नसोनान्दीमुखानिचफलानीष्टानिदत्त्वाउदकपूर्वमासनस्थेभ्योऽ  
भिवाद्यपुनराचम्यस्वस्तिवाचयेत्ततःपुण्याहशब्देनगोब्राह्मणम  
न्वावर्त्तमानाप्रदक्षिणंप्रविशेत्सूतिकागारम् तत्रस्थाचप्रसवकालं  
प्रतीक्षेत ।

अर्थ—तदनंतर नवम महिने लगतेही शुभ दिवस नक्षत्र और चन्द्रमा तथा कल्याणकारी करण, मैत्रमुहूर्तमें शान्ति हवन करके गौ ब्राह्मण, अग्नि जल को, प्रथम उस घरमें प्रवेशकर गौओंको तृण जल मिली खील देकर और ब्राह्मणोंको अक्षतादि द्वारा पूजनकर इष्टफल दक्षिणा देकर उत्तर वा पूर्वाभिमुख स्थित ब्राह्मणोंको प्रणामकर फिर आचमनकर स्वस्तिवाचन पढाकर पुण्याहशब्दकरके गौ ब्राह्मणोंको संगले प्रदक्षिणापूर्वक प्रथम दहना पैर\* धरकै गर्भवती स्त्री सूतिका-गारमें प्रवेश करे उस प्रसूतघरमें स्थित होकर प्रसवकालकी वाट देखे.

आसन्नप्रसवाके लक्षण ।

अद्यःश्वःप्रसवेग्लानिःकुक्ष्यक्षिश्च्यताक्लमः ।

अधोगुरुत्वमरुचिःप्रसेकोबहुमूत्रता ।

वेदनोरुदरकटीपृष्ठद्वस्तिवंक्षणे ।

योनिभेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानिच ।

अर्थ—आज या दूसरे दिन ऐसी आसन्नप्रसवा स्त्रीके ग्लानि ( हर्ष जातारहे ) कुक्ष और नेत्र ए शिथिल होवे, उपताप और नीचेका भाग भारी, अरुचि मुखसे

\* प्रयाणकाले स्वग्रहप्रवेशे विवाहकालेपिच दक्षिणाग्निम् । कृत्वाग्रतः शत्रुपुरप्रवेशे वा-  
मानिदध्याच्चरणं नृपालये ॥ १ ॥

पानीका गिरना, वारंवार अधिक मूत्रका उत्तरना, जांघ, उदर, कमर, पीट, हृदय, बस्ति और वंक्षण इनमें पीडा होवे । योनिका फटना, पीडा और चक्काओंका चलना तथा स्फुरण और कफके सदृश पदार्थ निकले इत्यादि लक्षणोंसे जाने कि इसके अब बालक होनेवाला है ।

**ततोऽनन्तरमावीनांप्रादुर्भावःप्रसेकश्चगर्भो  
दकस्यावीप्रादुर्भावेतुभूमौशयनंविदध्यात् ।**

अर्थ—तदनन्तर गर्भिणीक्रमण कालमें जो शूलहोते हैं उनका प्रादुर्भाव होता है, मुखसे पानी गिरता है । जब शूल और भगमेंसे गर्भोदक अर्थात् गर्भका पानी निकलने लगे उसी समय उसस्त्रीको पृथ्वीमें शयन करावे ।

**अथोपस्थितगर्भात्कृतकौतुकमङ्गलाम् । हस्तस्थपुत्रा-  
मफलांस्वभ्यक्तोष्णाम्बुसेचिताम् । पाययेत्सघृतांपेयाम्**

अर्थ—इस प्रकार उपस्थितगर्भा अर्थात् तत्काल होनेवाला बालक जान उस गर्भिणीका रक्षा बंधनरूप मंगल करके और पुरुष नामके फल ( अनार आम्र आदि ) हैं हाथमें जिसके तथा तैल आदिका मालिस कर गरम जलसे स्नान कराय उसको घृतसहित पेया ( यवागू ) कंठपर्यंत पिवावे ।

**तनौभुशयनेस्थिताम् ।**

**आभुग्रसक्थिमुत्तानामभ्यक्ताङ्गीपुनःपुनः ।**

**अधोनाभेर्विमृन्दीयात्कारयेज्जृम्भचंकृमम् ॥**

अर्थ—पृथ्वीमें मखमल आदिके नरमविछैयेपर सीधी सुलावे और पैरोंको सकोड वारंवार तैलका मालिसकरे, नाभिसे नीचे धीरेधीरे सुतवावे तथा जँभाई और इधर उधरको डोलना उससे करावे । इसप्रकार करनेसे क्या होताहै सो कहतेहैं ।

**गर्भः प्रयात्यवागेवंतल्लिङ्गं हृद्विमोक्षतः ।**

**आविश्यजठरंगर्भोवस्तेरुपरितिष्ठति ।**

अर्थ—इस प्रकार करनेसे गर्भ हृदयस्थानको त्यागकर नीचे आताहै उस गर्भ, के येलक्षण होतेहैं कि, वह हृदय छोड़कर पेटमें आनकर बस्तीके ऊपर ठहरे है ।

**दद्यात्कुष्ठलाङ्गुली वचाचव्यचित्रकचिरविल्वचूर्णमुपात्रातुमुहु-  
मुहुयोजयेत्तथाभूर्जपत्रंशिशपासर्जरसानामन्यतमंधूममन्तरान्तराच ।**

पार्श्वपृष्ठकटीसक्थिदेशान्कोष्णेनतैलेनाभ्यज्यानुसुख  
मस्याविमृन्दीयादेवमवाक्परिवर्ततेगर्भः ।

अर्थ—कूठ, कलयारी, वच, चघ्य, चित्रक, कंजा, इनका चूर्णकर वारंवार गर्भ-वतीके सूंघनेको देवे । तथा भोजपत्र, सीसो, राल, इनसे आदिले औरभी औषधोंकी धूनी ठहर २ के देता जावे । पसवाड़े, पीठ, कमर, पैर, इत्यादि अंगोंको गुनगुने तैलसे मालिस कर सुहाता सुहाता मर्दन नीचेको करावे इस प्रकार करनेसे गर्भ नीचेको उतरता है ।

ताःसमन्ततः परिवार्ययथोक्तगुणाः स्त्रियःपर्युपासरिन्नाश्वास  
यन्त्योवावागभिसंग्राहिणीभिःसान्त्वनीयाभिः । साचेदा  
वीभिः संक्लिश्यमानानप्रजायेताथैनांब्रूयात्उत्तिष्ठमुसलम  
न्यतरद्गृहीष्वानेनतदुलूखलंधान्यपूर्णमुहुर्मुहुरभिजहिमुहु  
र्मुहुरवजृम्भस्वचक्रमस्वचान्तरान्तरातत्रेत्याहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—उस गर्भिणीके समीप दो चार स्त्री यथोक्त गुणसंपन्न होनी चाहिये और जबजब पीडासे गर्भिणी घबडावे तभीतभीउसको धीरज बँधाती रहै, और मिष्टवचनोंसे उसको शांतिकरतीरहे । जब देखेकि अब अत्यंत पीडा होनेलगी और गर्भ नहीं निकले उससमय उसगर्भिणीसे कहे कि, हे सुभगे ! तू खडी होजा और मूशलको लेकर ये जो ओखलीमें धान है इनको वारंवार कूट और वारंवार जँभाईले. तथा धीरे २ ठहरकर इधर उधर डोल. परन्तु इस कर्म करनेको भगवान् आत्रेय वर्जित करते हैं, क्योंकि गर्भवतीको व्यायाम (मेहनत) करना वर्जित कहाहै । दूसरे विशेष करके प्रसवकालमें प्रचलित सर्वधातु दोषादिक जिस्के ऐसी सुकुमार आशयवाली स्त्रीको मूशलके उठाने धरने रूपमेहनतसे वायु कुपितहोकर उस गर्भिणीके प्राणहर्ता होतीहै, अतएव धानोंका कूटना गर्भिणीको निषेधहै ।

आव्योहित्वरयन्त्येनांखट्वामारोपयेत्ततः ।  
अथसंपीडितेगर्भेयोनिमस्याःप्रसाधयेत् ।

अर्थ—जब प्रसवकालकी अधिक पीडा दुःखदे तब इसको शय्यापर आरोपण करे, तदनन्तर गर्भ अत्यंत पीडा करे तब इस गर्भिणीकी योनिको तैल आदिसे विकाशित करे ।

मृदुपूर्वप्रवाहेतवाढमाप्रसवाच्चसा ।

अर्थ—वह गर्भिणी गर्भको नम्र करके प्रथम वहनकरे जबतक गर्भ योनिके मुखतक न आवे और जब योनिके मुखपर आयजावे तब अत्यंत जोरसँ वहे अर्थात् धक्का देवे ।

**हर्षयेत्तामुहुःपुत्रजन्मशब्दजलानिलैः ।**

अर्थ—उस समय समीप रहनेवाली स्त्री वारंवार पुत्रजन्मशब्दकरके इस गर्भिणीको प्रसन्नकरे अर्थात् ( हे सुभगे! तू परम सुंदर पुत्रको जनेगी ) तथा शीतल गुलाबजल छिड़के और शीतल पवन करके उस गर्भिणीको प्रसन्न करे ।

**एनांब्रूयाच्चसुभगेशनैःशनैःप्रवाहयस्वशोभनस्तेमुखवर्णःपुत्रं जनयिष्यासि । तथाअन्यातुवामकर्णेऽस्यामंत्रमिमंजपेत् ।**

अर्थ—इस गर्भवतीसँ समीपकी स्त्री कहे कि, हे सुभगे ! तू धीरेधीरे गर्भको ढकेल देख कैसा सुन्दरतरे मुखका वर्ण है तू पुत्रको प्रगट करेगी तथा दूसरी स्त्री इसके वामकर्णमें इन मंत्रोको पढ़े ।

मन्त्राः

क्षितिर्जलं वियत्तेजोवायुर्विष्णुः प्रजापतिः ॥ सगर्भात्वांसदापातु वैशल्यं वादधातुते ॥ १ ॥ प्रसुष्वत्वमविक्रिष्टमाविक्रिष्टाशुभानने । कार्तिकेयद्युतिपुत्रं कार्तिकेयाभिरक्षितम् ॥ २ ॥ इहामृतंचसोमश्च चित्रभानुश्चभामिनि । उच्चैःश्रवाश्चतुरगोमन्दिरेनिवसंतुते ॥ ३ ॥ इदममृतमपांसमुद्धृतं वैतलघुगर्भमिमंप्रमुंचतुस्त्री । तदनलपवनाकं वासवास्तेसहलवणाम्बुधरैर्दिशन्तुशांतिम् ॥ ४ ॥

यदि बहुत कष्टी होवेतो ये नीचे लिखे अर्जुनके दशनाम हैं इनको पढता जावे और क्रूरमेंसँ एकही हाथ करके जलखींचे उसजलके पीतिही गर्भिणी कष्टसँ छूट जावे ।

**अर्जुनःफाल्गुनोजिष्णुःकिरीटीश्वेतवाहनः ।**

**बीभत्सुर्विजयःकृष्णःसव्यसाचिर्धनंजयः ॥**

अथवा चकावूका यंत्र अष्टगंधसँ लिखकै उस गर्भिणीको दिखावे पीछे उस यंत्रको धोयकर उस गर्भिणीको पिवाय देवे तो गर्भिणी कष्टसँ छूट जावे ।

हर्षोत्पादनकाप्रयोजन

**प्रत्यायांतितथाप्राणाःसूतिक्लेशावसादिताः ।**

अर्थ—गर्भिणीको पुत्रजन्मादि कारणोंसे प्रसन्नकरनेका यह प्रयोजनहै कि प्रसूतिके दुःखसँ ग्लानिको प्राप्तहुए प्राण हर्षोत्पादनसे फिर नवीन होतेहैं ।

### गर्भकेरुकनेमेंउपचार

धूपयेद्गर्भसङ्गैतुयोनिंकृष्णाहिकञ्चुकैः।हिरण्यपुष्पीमूलञ्च पाणिपादेनधारयेत् । सुवर्चलांविशल्यांवाजराय्वपतनेऽपिच । कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्यबाहोरेनाविकम्पयेत् । कटीमाकोटयेत्पाण्यर्थाफिजौगाढनिपीडयेत् । तालुकण्ठंस्पृशेद्रेण्यामूर्ध्निदद्यात्स्नुहीपयः । भूर्जलाङ्गलिकीतुम्बीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः । पृथग्द्राभ्यांसमस्तैर्वायोनिलेपनधूपनम् । कुष्ठतालीसकल्कंवासुरामण्डेनपाययेत् । यूषेणवाकुलत्थानांबिल्वजेनासवेनवा ।

अर्थ—गर्भके रुकनेमें ये उपचार करे कि, कालेसर्पकी कांचलीकी योनिको धूनी देवे, हिरण्यपुष्पी ( छोटी खजूरी वा मूसली ) की जडको हाथपैरोमें धारणकरे. अथवा सुवर्चला और विशल्या रूखडी को हाथपैरोमें धारणकरे, यह यत्न जरायु ( आमरवेबर ) के न निकलने में भी करे, तथा जबतक जरायु न गिरे तबतक इसगर्भिणीके हाथोंको कंपितकरे ( चरकमें लिखाहै कि, यदि जरायु न निकले तो उसस्त्रीके नाभिके ऊपर दहनेहाथसे खूब दबावे और दूसरेहाथसे उसकी पीठको पकडकर कंपावे ) तथा पीठ और कमरको पीडितकरे, और कूलेन्को पीडित करे, माथेकी वेणीसँ उसके तालु और कंठको स्पर्शकरे तथा मस्तकमें थूहरका दूधडाले एवं भोजपत्र कलयारी, तूंबी, सांपकी कांचली, कूठ, और सरसों प्रत्येककी पृथक् २ अथवा सबको मिलाके योनिको धूनीदेवे, अथवा लेपकरे । तथा कूठ और तालीस पत्रका कल्क अथवा सुरा और मंडको मिलाके पिवावे । अथवा कुलथीका काढा वा वेलकी दारू पिवावे, ( चरक में लिखाहै कि भोजपत्रकाचमणि, और सर्पकी कांचली इनकी योनिको धूनी देवे ) अथवा भोजपत्र और गूगलकी धूनी दे, अथवा चावल्लोंकी जडसे सिद्धकरे हुए घृतसे योनिको लेपनकर, कडुई तूंबी, तोरई, नीम, और सर्पकी कांचली इन सबकी कूख, आदिको धूनीदेवे अथवा गुड साँठके कल्कका भगमें लेपकरे और इसीकल्कको पीवे, अथवा कलयारीकी जडके कल्कको हाथ पैर और उदरमें लेपकरे, कूठ इलायचीका कल्क मद्यमें मिलायकर पीवे. आक थूहरके काढे में मद्य मिलाकर पीवे. अथवा कूठ कलयारीकी जडके कल्कमें मद्य अथवा गोमूत्र मिलायकर पिवावे. अथवा सौंफ, कूठ, मैनफल, हिंग, इनसे सिद्धकरेहुए तैलमें कपड़ा भिगोकर योनिमें धरे ।

शताह्वासर्षपाजाजीशिशुतीक्ष्णकचित्रकैः । सहिंयुकुष्ठमदनै  
मूत्रेक्षीरेचसार्षपम् । तैलंसिद्धंहितंपायौयोन्यांवाप्यनुवासनम् ।  
शतपुष्पावचाकुष्ठकणासर्षपकल्पितः । निरूहःपातयत्याशुस  
स्नेहलवणोऽपराम् । तत्सङ्गेह्यनिलोहेतुःसानिर्यात्याशुतज्जयात् ।

अर्थ—सौंफ, सरसों, जीरा; सहजना; चव्य, चीतेकी छाल, हींग, कूठ, मैनफल, इन सबको एकत्र करे पीछे गोमूत्रमें और गौके दूधमें ए सब औषध मिलाय सरसोंका तेल मिलावे, उसको तैलपाकविधिसे सिद्धकर इस तैलसे गुदा और योनिमें अनुवासन करना हित होताहै । तथा सौंफ, बच, कूठ पीपल, और सरसों इनका कल्क कर उसमें तैल और नोन मिलायकर निरूहवस्ती करे तो तत्काल पेटमेंसे जरायुको निकालकर पटकदेवे, उस जरायु के रुकनेका कारण वायु है, उसवायुके पराजय होनेसे वह जरायु कूखसे बाहर निकल आताहै, अतएव पवनके जीतने को बस्तिप्रधान है, ( चरकमें लिखाहै कि, गर्भिणीको कुबडीकर उसके निरूहन और अनुवासवन बस्तिकरे. इसप्रकार विवृतमार्ग होनेसे औषधी भलेप्रकार प्रवेश करतीहै)

**कुशलापाणिनाऽत्तेनहरेत्कृत्तनखेनवा ।**

अर्थ—गर्भ निकालने में कुशल ऐसीस्त्री शस्त्रसे नखोंको दूरकर और हाथों में घृतचुपड़ नालके अनुसार उसको वाहर खींचे ।

**मुक्तगर्भापरांयोनिं तैलेनाङ्गश्चमर्दयेत् ।**

अर्थ—जब स्त्रीके गर्भ और जरायु योनिसे बाहर आयजावे तब उसकी योनिको तथा सब अंगोंको तैलसे मर्दन करे.

**मकल्लाख्येशिरोवस्तिकोष्ठशूलेतुपाययेत् । सुचूर्णितंयवक्षारंघृते  
नोष्णजलेनवा । धान्याम्बुवागुडव्योषत्रिजातकरजोन्वितम् ।**

अर्थ—प्रसूतहोनेके पश्चात् स्त्रीके मकल्लाख्यरोग प्रगटहोनेसे तथा उसमें, शिर, वस्ति, और कौठा इनमें शूलहोनेसे जवाखारको पीस घृतके साथ अथवा गरम जलके साथ पीनेकोदेवे अथवा पुरानागुड सोंठ, मिरच, पीपल, इलायची, दालचीनी, और पत्रज, इनका चूर्णमिलायके देवे.

**बालकजन्मकेपश्चात्कर्म**

**अथबालेसमुत्पन्नेविदधीतविधिततः ।**

**यथैवकुलवृद्धास्त्रीव्यवहारपरम्परा ।**

अर्थ—बालक उत्पन्न होनेके उपरांत, जैसी अपने कुलमें वृद्धस्त्रियोंकी रीति भांत होवे, उसके अनुसार बालकजन्मविधि करे.

## अथजातस्योल्बंमुखंचसैन्धवसर्पिषा विशोध्यघृताक्तंमूर्ध्निपिचुंदद्यात् ।

अर्थ—बालकके उत्पन्नहोतेही उसके अङ्गके ऊपरकी जरायु उतारकर दूरकरे, तथा सैन्धानोन घीमें मिलाय मुख में डाल कण्ठमें जमेहुए कफको निकालकर मुख निर्मलकरे; और घीमें कपड़ेको अच्छीतरह भिजाय उसको चोलडकरके बालकके तालुए ऊपर धरे.

## नाभिनाडीमष्टाङ्गुलमायम्यसूत्रेणबद्धाच्छेदयेत् । तत्सूत्रैकदेशञ्च ग्रीवायांसम्यग्बध्नीयात् । अश्मनोः संघट्टनंकर्णमूलेकार्यम् ।

अर्थ—तदनंतर नाभिनाल आठ अंगुल खीच उसमें सूतबांधकें छेदनकरे और उस सूतमें नालको लपेट बालककी नाडमेंबांधे. और उसबालककेकानोंपर पत्थरोको बजावे परंतु इसमध्यदेशमें कांसेकी थाली वजानेकी बहुधाचालहै, और शीतल-जल अथवा गरमजलको इसके मुखपर छिडके कि जिस्सैं गर्भके क्लेशसैं घबहाया हुआ बालक स्वस्थ होवे जबतक बालक को होस नहोवे तबतक इसको कृष्णकपालि सूर्यकरके धारणकरे. जब होसमें आयजावे तब स्नान आदि कर्मकरे चरक लिखताहै कि बालककी नालको तीखेधारवाले सोनें, चांदी, और लोहेके टूकसैं छेदनकरे. यदि नाडी वेडौंल टूटजावेतो लोध, महुआ, फूल. प्रियंगु, दारहलदी, इन्केकल्कसैंसिद्धहुएतेलसैंसेककरे, और तैलकी औषध उसजगे लगावे, अविधिपूर्वक नाडीके काटनेसैं आयमत्तण्डी, पिपीलिका, विनामिका, विजृम्भिका; आदिरोगोंसैं बालकको भय होताहैं. । यदि पूर्वोक्तरोग होवे तो वातपित्त प्रशमक अविदाही ऐसे अभ्यंग आछादन और परिषेक आदिसैं दूरकरे. ।

## ततोन्तरंजातकर्मकार्यम् ।

अर्थ—तदनंतर जातकर्मकरे जातकर्ममें घृत, और सहत मिलाय उसमें थोडा सोना डाल अनामिकासैं चटावे, परंतु आजकल कहींकहीं नालच्छेदनके पूर्व मधुघृत चटातेहै, जातकर्म होनेके अनंतर बलाके तेलसैं अथवा वटादि क्षीर वृक्षोंके काटेसैं अथवा सर्व प्रकारके गंधोदकोंसैं शरीर चुपड सुवर्ण अथवा चांदी तपाय पानीमें बुझाय उस पानीको कुछ गरम कर उस मंदोष्ण पानीसैं उस बालकको न्हावे, इस कर्ममें कालका अतिक्रम न होनेदेवे, तथा वातादि दोषोंमें जिसका प्राबल्य होवे

उसी उसी दोषकी नाशक औषधोंके काटे मिलायकर न्हिलावे, जैसा अपना वैभव होवे तत्सदृश सर्व सुगंधोदक करके न्हिलावे ।

वृद्धवाग्भटमें और ही प्रकारसैं भ्राशनविधिकही है.

ऐन्द्रीशङ्खपुष्पीवचाकल्कंमधुघृतोपेतं हरेणुमात्रं कुशेना  
भिमन्त्रितं सौवर्णेनाश्वत्थपत्रेण मेधायुर्बलजननं प्राशयेत्  
तद्वत्ब्राह्मीवचानन्ताशतावर्यन्यतमचूर्णचेति ।

अर्थ—ऐंद्री, संखाहूली, वच इनके कल्कमें सहत घृत मिलाय गुंजा प्रमाण लेकर कुशासैं अभिमंत्रितकर सुवर्ण मिलाय पीपलके पत्ते पर धरके चटावे. यह मेधा आयुष्य, बल, इनको देयहै उसीप्रकार ब्राह्मी, वच, दूध, और शतावर, इनमेंसैं किसी एकका चूर्णमें घृतसहत मिलाय चटावे ।

इसकाफल.

धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम् ।  
चतुरात्रात्रिरात्राद्ब्राह्मीणांस्तन्यंप्रवर्तते ॥

अर्थ—स्त्री प्रसूत होनेके पश्चात् उसके हृदय संबंधी धमनियोंके मुखविकसित होकर तीन चार दिवसके अनंतर स्तनोमें दूध उतरताहै । इसीसैं प्रथम दिन सहत और घृतमें १ रत्तीभर सोना उवाळकर मंत्रोंसैं अभिमंत्रितकर तीनवार चटावे, इसी प्रकार दूसरे दिन लक्ष्मणा डालकर सिद्धकरा हुआ घृत पिवावे और पूर्वोक्त औषध देवे; तथा रक्षोन्न औषध हातपैरमें ग्रीवा, मस्तक, इनमें बांधे जलके पूर्णपात्र मंत्रोंसैं अभिमंत्रित इसके समीप स्थापितकरे, आरी, खैर, वेर, पीलू फालसे, इन वृक्षांकी शाखासैं प्रसूताके सब घरको रक्षित करे, और प्रसूताके घरके चारों तरफ सरसों, अलसी, तिल, जौं, तथा अन्य धान्य विखेर देवे । तथा रक्षोन्न औषधोंकी पोटली बांध प्रसूताके घरके उत्तर देहलीमें स्थापित करे तथा प्रसूताके घरमें सदैव अग्नि जलती हुई रक्खे । और इसकी शय्याका शिर पूर्वकी ओर रक्खे । और निरंतर दीपक समीप रक्खे तथा सकल गुण चतुरा स्त्री और इसके सुहृद दशदिन वा बारहदिन बराबर जगाकरे । तथा दान, मंगल, आशीर्वाद, स्तुति, गीतगाना, बाजेबजाना, अन्न, पान, और बहुतसे प्रहृष्ट मनुष्यों करके प्रसूताके घरको परिपूर्ण रक्खे । अथर्वणवेदके जाननेवाले ब्राह्मण सायंकाल और प्रातःकालमें शांति हवन कराकरे । कि जिस्से प्रसूता और बालककी रक्षारहे तथा फूलमाला आदि जो व्रणवाले पुरुषके पास रखना लिखाहै वो सब प्रसूताके पास रखने चाहियें ।

प्रसूताको भूखलगे तब घृतपिवावे । यदि केवल घृत न भावे तो अन्य पदार्थोंमें मिलायकर देवे तथा पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, और सोंठका चूर्णमें घृत गुड मिलाकर देवे, घृत तैलका देहमें मालिस करे; और बडे वस्त्रमें इसके पेटको बांध देवे कि, जैसे वायु कुपित होकर विकारोंको न प्रगट करे, जब घृत, तैल आदि पीयेहुए पचजावे तब पूर्वाक्त पीपल आदि औषध डालकर सिद्धकरी यवागू पिवावे. उसमेंभी घी डालदेवे और यह पतली होवे यदि कुछ दोष बाकी रहगयाहो तो उस स्त्रीको पीपल, पीपरामूल, गजपीपल, चित्रक, अदरख, और चव्यके चूर्णको गुडके जलमें अथवा गरम जलमें पीवे, ऐसे दो तीन रात्रिपर्यंत करे जबतक दुष्टरुधिर रहे जब रुधिर शुद्ध हो जावे तब विदारीकंद, और असगंध आदिसैं सिद्ध स्नेहयवागू अथवा क्षीरयवागू तीन रात्रिपीवे । और जो कुलथी, कंकोल, करके सिद्ध जांगल रसकेसाथ साठी चावलोंका भात भोजनकरे इसप्रकार डेढमहिने करनेसैं प्रसूताविधानसैं छूटे. धन्वभूमि ( मारवाडआदि ) की प्रसूतास्त्रीको घृततैलमेंसैं एककीमात्रापिवावे. और पिप्पल्यादि कषायका अनुपान देवे । और नित्य चिकनाई देवे जांगल देशकी प्रसूतास्त्री को उसकी आत्माके अनुकूल घृततैलकी मात्रादेवे । ये सब उपाय बलवान् प्रसूताकेहै और निर्बल प्रसूतास्त्रीको सब औषधोंसैं सिद्धकरी घृतमिली यवागू पिवावे । प्रसूतास्त्री क्रोध, परिश्रम, मैथुन, आदि कर्मकी न करे।

प्रसूतास्त्रीकोनियमनपालनेकेदोष

मिथ्याचारात्सूतिकायायोव्याधिरुपजायते ।

सकृच्छ्रसाध्योऽसाध्योवाभवेदत्यर्थतर्पणात् ।

अर्थ—प्रसूताके मिथ्या आहार विहारादिकसे जो व्याधी होतीहै वह कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होतीहै । अतएव उस प्रसूताको देश, कालके उचित व्याधिसात्म्य कर्मकरके परीक्षा पूर्वक नित्य उपचार कर्त्तव्यहै । प्रसूताको व्याधि कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होनेमें क्या कारणहै सो कहतेहै ( गर्भके बढनेसे क्षीण और सिथिल हुईहै सब शरीरकी धातु तथा प्रवहन वेदना पूर्वक रुधिरके निकलजानेसे सर्वदेह शून्य होजाताहै, इसीसे प्रसूताके जो रोगहोतेहै वो कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होतेहै।)

ततोदशमेत्वहनि सपुत्रास्त्रीसर्वगंधौषधैर्गौरसर्षपैश्चस्राता  
लघ्वहनवस्त्रपरिहितापवित्रेष्टलघुविचित्रभूषणवती संस्पृ  
श्यमङ्गलान्युचितामर्चयित्वा देवतां शिखिनः शुक्लवाससो  
ऽव्यङ्गान्ब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वा कुमारमहतानाञ्च वा  
ससांच प्राक्शिरसमुदक्शिरसं वासंवेश्य देवतापूर्वद्विजाति

## भ्यःप्रणमतीत्युक्त्वाकुमारस्यपिताद्रेनामनीकुर्यान्नाक्षत्रि कंनामाभिप्रायिकञ्च

अर्थ—तदनन्तर दशमे दिन सपुत्रास्त्री सर्वगंधौषध और सपेदसरसों करके स्नानकर हलके और विनाफटे वस्त्रोंको धारणकर तथा पवित्र और प्रिय हलके विचित्र भूषणोंसे भूषितहो मंगली गौ आदिका स्पर्शकर उचितदेवता और अग्रिका पूजनकर सपेदवस्त्र धारणकरनेवाले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढाय कुमारकोभी दिव्यनवीन वस्त्र पहनायकर पूर्वशिर अथवा उत्तरशिर स्थितकर देवतापूर्व ब्राह्मणोंको प्रणामकर पिता बालकके दो नामकरे । एकतो नाक्षत्रिक अर्थात् जो नक्षत्रसे संबंध रखताहो और दूसरा नाम आभिप्रायिक, परंतु इनमें भी ब्राह्मण अपने बालकका नाम देवशब्द-पूर्वक शर्माशब्द रक्खे ( जैसे रामचन्द्रदेवशर्मा ) और क्षत्री अपनेबालककानाम वर्मा त्रातांत रक्खे ( जैसे रामसिंहवर्मा ) तथावैश्य गुप्त और भूति रक्खे. और शूद्र अंतमें दासशब्दरक्खे और नामके प्रथम घोषवान् अक्षररक्खे और नामके अंत्यअक्षर दीर्घ. विसर्जनीयरहित होने चाहिये ।

इस जगे यह भी जानलेनाचाहिये कि बालकका अशोभित और अर्थहीन नाम न रक्खे जैसे कि हमारे बहुतसे माथुर आदि प्यारके वस चिरैया, कुत्ती, लुच्ची, दोन्टा, आदि अनर्थ और दुष्ट नाम रखतेहैं । परंतु वंगवासी कैसे सुशोभित और सार्थक रक्खतेहैं ( जैसे तारानाथतर्कवागीश, सुरेन्द्रमोहन, तारानाथ तर्कवाचस्पति और शरच्चन्द्रचक्रवर्तीविद्योपाध्याय आदि ) परंतु नाम दो या चार अक्षरका होना चाहिये और स्त्रियोंकेनाम मनोहर स्पष्टार्थ तथा मंगली होने चाहिये. ( जैसे यशोदा, वसुदा, चन्द्रभागा आदि ) विशेष विधि धर्मशास्त्रके ग्रंथोंसे देखलेना. नामकरणके अंतमें बालककी आयुका निर्णय करे कि यह दीर्घायु होगा वा मध्यायु वा अल्पायु, यह प्रकार हम आगे लिखेगे ।

### अथधात्रीपरीक्षा

अथब्रूयात् धात्रीमानयेति समानवर्णा यौवनस्थां त्रिवृ  
त्तामनातुरामव्यंगामव्यसनामविरूपामविजुगुप्सामजु  
गुप्सितदेशजातेयामक्षुद्रामक्षुद्रकर्मणांकुलेजातांवत्सलां  
जीवद्वत्सां पुंवत्सां दोग्ध्रीमप्रमत्तामशायिनीकुंशलोपचा  
रांशुचिमशुचिद्वेषणीं स्तनस्तन्यसम्पदुपेतामिति

अर्थ—तदनंतर कहेकि धायको लाओ, जो समानवर्णकी ( अर्थात्ब्राह्मणकी ब्राह्मणी क्षत्रीकी क्षत्राणी वैश्यकी वैश्यजातिकी और शूद्रको शूद्रास्त्री ) हो तथा जवान,

सौशील्य गुणयुक्त, रोगरहित, सर्वांगवाली, व्यसनरहित, रूपवान्, अनिद्य देशमें प्रगटहोनेवाली, क्षुद्रताररहित, अक्षुद्रकर्म करनेवालीके कुलमें प्रगट, वात्सल्ययुक्त, जीवितसंतानवाली, तथा पुत्रसंतान वाली, अत्यंत दूधवाली, अप्रमत्त, अल्पनिद्रावाली, सर्वोपचारोंमें कुशल, पवित्र, अपवित्रतासे द्वेषकरनेवाली स्तन और स्तन्यसंपत्वालीहो, आज कल जाटगूजरआदि हीनजातिही सर्वत्र धाय होतीहै ।

अथस्तनसम्पत्

तत्रेयंस्तनसम्पत्नात्यूर्ध्वानातिलम्बौअनतिकृशावनति  
पीनौयुक्तिपिप्पलकौ सुखप्रपानौचेतिस्तनसम्पत् ।

अर्थ—तहां स्तनसम्पत् कहतेहै कि, न बहुत ऊंचेहो न बहुत लम्बेहो न बहुत कृशहो न बहुत मोटेहो पीपलके पत्ते सदृश सुदारहो, सुखपूर्वक बालकके पीनेमें आवे । ऐसे धायके स्तनहोवे ।

स्तन्यसम्पत् ।

स्तन्यसम्पत् प्रकृतवर्णगन्धरसरुपर्शमुदपात्रेवदुह्यमा  
नमुदकं व्येतिप्रकृतिभूतत्वात्तत्पुष्टिकरमारोग्यकरं  
चेतिस्तन्यसम्पत् । अतोऽन्यथाव्यापन्नज्ञेयम्

अर्थ—स्तन्य ( दूध ) संपत्कहतेहैं कि, जिस धायका दूध प्रकृत वर्ण गंध रस और स्पर्शवालाहो. तथा जलकेपात्रमें दुहनेसे जलमें मिलजावे कारण यह है कि, जलप्रकृतिभूतहोनेसे उत्तमहोताहै इससे ऐसा दूध बालकको पुष्टिकरे । और आरोग्य कर्ता जानना इससेविपरीत दूषित दूध जानना ।

अथनिषिद्धधायकेलक्षण ।

शोकाकुलाक्षुधात्तांचश्रान्ताव्याधिमतीसदा । अत्युच्चानि  
तरांनीचास्थूलातीवभृशंकृशा॥गर्भिणीज्वरिणीचापिलम्बो  
न्नतपयोधरा । अजीर्णभोजनीचापितथापथ्यविवर्जिता ।  
आसक्ताक्षुद्रकार्यैतुदुःखार्तांचञ्चलापिच । एतासांस्तन्यपा  
नेनशिशुर्भवतिसामयः ।

अर्थ—शोकाकुल, क्षुधासे व्याकुल, थकीहुई, सदैवरोगिणी, अत्यंत ऊंची, अत्यंत नीची, अतिस्थूल, अतीवकृश, गर्भिणी, ज्वरवाली, लंबे और ऊंचे स्तनवाली, अजीर्णमें भोजनकरनेवाली, तथा पथ्यवर्जिता, तुच्छकर्मोंमें फँसीरहे, दुःखसे आर्त्त, चञ्चल, ऐसी धायके स्तनपीनेसे बालक रोगग्रस्त होजाताहै.

अथस्तनपानविधि ।

ततःशिरस्नाताहतवसनोदङ्मुखीउपविश्यधात्रीप्राङ्मुखीचो-  
पविश्यदक्षिणंस्तनंधौतमीषत्परिष्कृतमभिमंत्र्यमन्त्रेणानेन ।

अर्थ—तदनंतर बालककी माता शिरसहित स्नानकर धुएहुए नवीन वस्त्रोंको पहनकर उत्तरमुख बैठे और धायकोभी स्नानकराय पूर्वाभिमुख बैठालकर उसका दहनास्तन अच्छीरीतिसे धोय कुछ दूधको प्रथम पृथ्वीमें टपकाय पीछे इस मंत्रसे अभिमंत्रित करे. ( चरकमें लिखाहै कि जब धायका स्वादु और बहुतसा शुद्ध दुग्धहोवे, तब वामरिष्टा, वाद्यपुष्पी, विष्वक्सेनकांता इनरुखडीन्को धारणकर पूर्वमुखवाले बालकको प्रथम दहना स्तन पिवावे )

अस्त्रावितदुग्धकेअवगुण ।

अस्त्रावितंस्तनंबालःपिबन्स्तन्येनभूयसा ।  
पूर्णस्रोतावमीकासश्वासैर्भवतिपीडितः ॥

अर्थ—प्रथम स्तनोंसे दूधके विनाटपकाए जो बालक उसदूधको पीताहै, वह पूर्णस्रोतका दूध बहुधा वमन, खांसी और श्वाससे पीडित होताहै ।

अभिमंत्रणकेमंत्र ।

क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तुस्तनयोःक्षीरपूरकः । सदैवसुभगोबा-  
लोभवत्येषमहाबलः । पयोमृतसमंपीत्वाकुमारस्तेशुभा-  
नने । दीर्घमायुरवाप्तोतुदेवाःप्राप्यामृतंतथा ।

अर्थ—इन मंत्रोंको पिताके स्थानमें ब्राह्मणको पढ़ने चाहिये जबतक मंत्रपाठ होवे तबतक माता वा धाय दहनेहाथसे स्तनका स्पर्शकरे रहे पश्चात् पिवावे ।

अनेकउपमाताहोनेकेदोष ।

अतोऽन्यथानानास्तन्योपयोगश्चासात्म्यवातादिजन्माभवति ।

अर्थ—अनेक उपमाता ( धाय ) होनेसे उन्हेंके दूध बालककी प्रकृतिमें न आनेसे वह वातादि रोगोंसे पीडित होताहै ।

दूधसूखनेकेकारण ।

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्चस्त्रियःस्तन्यनाशोभवति ।

अर्थ—क्रोध, शोक, अवात्सल्य आदि कारणोंसे स्त्रीका दूध नष्ट होताहै ।

क्षीरउत्पन्नकारकप्रयोग ।

अथास्याःक्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्यवगोधूमशालीष-  
ष्टिकां मांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशुं  
गाटकविषविदारीकंदमधुकशतावरीनालीकालाबूकालशा-  
कप्रभृतीनिविदध्यात् ।

अर्थ—इस स्त्रीके दूध प्रगटकरनेको मन संतुष्टकरके जो गेहूंकासत्व ( निशास्ता )  
शाल्योदन, सांठीचावल, मांसरस, मद्य, कांजी, खल, लहसन, मछली, कसेरू,  
सिंघाडे, विष, विदारीकन्द, मूलहठी, सतावर, नाडीकासाग और कालशाक इत्यादि  
सुसंस्कृतकरके भोजनको देवे ।

सप्तरात्रात्परंचास्यैक्रमशो बृंहणं हितम् ।

द्वादशाहेऽनतिक्रान्तेपिशितं नोपयोजयेत् ॥

अर्थ—प्रसूता स्त्रीको सातरात्रि व्यतीत होनेपर क्रमसे बृंहण ( जिनसे देह पुष्ट हो-  
वे ) देवे और बारहदिन व्यतीत नहो तबतक मांस खानेको न देवे ।

दूधकी परीक्षा ।

अथास्यस्तन्यमप्सु परीक्षेत । तच्चेच्छीतलममलंतनुशंखा-  
वभासमप्सुस्तन्यमेकीभावं गच्छति अफेनिलमतन्तुमन्नो-  
त्प्लवते वसीदति च तच्छुद्धमिति विद्यात् ।

अर्थ—तदनन्तर स्त्रीके दूधकी परीक्षा जलमें इसप्रकार करे कि, बालककी माता-  
का दूध अथवा धायका दूध निकलवावे, यदि वह शीतलहो और स्वच्छ, पतला, शंख-  
के समान सपेद, तथा जलमें गेरनेसे एकत्र होजावे, तथा ज्ञागरहित और तंतुरहित होकर  
तैरे नहीं और जलमें बूढ़े नहीं उसको शुद्धजाने ऐसे दूधके पीनेसे बालकको आरोग्य,  
बल और पुष्टी होती है ।

दुष्टस्तन्यके विकार ।

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा । दोषाद्देहे प्रकुप्यं  
तिततः स्तन्यं प्रदुष्यति । मिथ्याहारविहारिण्यादुष्टावाता  
दयःस्त्रियाः । दूषयन्ति पयस्तेन शरीराव्याधयः शिशोः । भ-  
वन्ति कुशलास्ताश्च भिषक्सम्यग्बुविभावयेत् ।

अर्थ-धायके गुरु, विषम, दोषकारक, ऐसे रोगोत्पत्ति करनेवाले पदार्थ खानेसे तथा मिथ्या आहार विहार करनेसे उसके शरीरके वातादिदोष कुपितहोकर स्तन्य ( दूध ) को दूषितकरके बालकके शरीरमें अनेकप्रकारके रोग उत्पन्नकरे हैं । अतएव कुशल वैद्यको विचारकरके उनरोगोंको दूरकरने चाहिये ।

कुमारकेरहनेकास्थान ।

### अतोऽनन्तरंकुमारागारविधिमनुव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-इसके अनंतर कुमारके गृह ( घर ) की विधि कहतेहैं । जैसे कि, वास्तु-विद्यामें कुशल कारीगरोंने बनायाहो, प्रशस्त और रमणीय, अंधकाररहित, जिस्में बहुत पवन न आतीहो, और ऐसा भी न हो कि बिलकुल हवा न आवे, मजबूत, और जिस्में पशु डाढावालेजीव, मूसे, पतंग, ( मच्छर, मक्खीआदि, नहो ) जल, ओखली, मलमूत्रत्योगनेकेस्थान, स्नानकी पृथ्वी, रसोईकाघर, ऋतुसुखकारीघर, तथा ऋतु २ के शयनकरनेकास्थान, बैठक, परदा इनकरके युक्तहोना चाहिये । तथा यथाविहित रक्षाविधान, बलि, होम, मंगल, प्रायश्चित्त, युक्तहो । पवित्र वृद्धवैद्यके अनुरक्त और अनेक मनुष्योंकरके युक्त ऐसा बालकका घर होना चाहिये ।

बालकके ओढने बिछाने और पहरनेके दस्त्र, मृदु, हलके, पवित्र और सुगंध-वाले होने चाहिये । तथा पसीना, मल, मूत्र, खटमल, आदि जीव और मैले वस्त्रोंको त्यागदेवे । और त्यागनेकी शक्ति न होवे तो उन्हीं मल मूत्र और मैलेवस्त्रोंको अच्छेप्रकार जलसे धोय पवन और धूपसे शुद्ध और सूखे कर कार्यमें लेने चाहिये ।

सूतिकाकेकपडेआदिमेंधूनीदेनेकीऔषध ।

वस्त्र, शैया, ओढना, बिछैया, और पडदे आदिमें जों, सरसो, अलसों, हींग, गूगल, वच, गठोना, हरड, गोलोमी, जटामांसी, लाख शोकरोहिणी, स्यापकीकांचली, इन सबको कूट घी मिलाकर धूनीदेवे ।

बालक मणीन्को धारणकरे, जैंडा, रूरू, हाथी, रोज, बैल, इन जीवतेहुए पशु-ओंके दहने सींगके अग्रभागको धारणकरे । ऐंद्यादि औषधोंको और जीवक ऋषभसे आदिले और जो रूखडी ब्राह्मण बतावे उन्को धारणकरे । बालकके खेलनेके खिलोने विचित्र और वजने दिखनौट और हलकेहो तथा तीखे न होवे और जो मुखमें न जानेपावे, तथा प्राणहारक न हो, तथा जिनके देखनेसे भय न लगे, ऐसे होनेचाहिये ।

बालकको त्रासदेना अच्छा नहींहै । अतएव रोनेसे अथवा भोजन न करनेसे दुःख होताहै । तथा और कार्योंसे उद्विग्न न करे । तथा राक्षस, पिशाच, पूतना आदिका नाम लेकर बालकको न डरपावे ।

पुनःस्तन्यस्वरूप ।

रसप्रसादोमधुरःपक्वाहारनिमित्तजः । कृत्स्ना  
देहात्स्तनौप्राप्तःस्तन्यमित्यभिधीयते ॥

अर्थ—पक्वाहारसे प्रगट हुए रसका मधुर र सार संपूर्णदेहमेंसे स्तनमें प्राप्तहो  
दुग्धरूप होताहै, ऐसे विद्वान् कहतेहैं ।

स्तन्यकीप्रवृत्ति ।

पयःपुत्रस्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि । ग्रहणादप्युरोजस्य  
शुक्रवत्संप्रवर्तते । स्नेहो निरंतरस्तस्यप्रवाहेहेतुरुच्यते ॥

अर्थ—पुत्रके स्पर्शसे, देखनेसे, स्मरणसे, तथा बालकके स्तनपकडनेसे वीर्यके  
सदृश दूध उतरताहै । पुत्रके ऊपर निरंतर स्नेह रहना यही दूधके प्रवाहमें कारण कहाहै ।

स्तन्यकेअल्पहोनेमेंकारण ।

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात्क्रोधादत्यपतर्पणात् ।  
स्त्रीणांस्तन्यंभवेत्स्वलपंगर्भान्तरविधारणात् ॥

अर्थ—पुत्रके ऊपर प्रीति न होनेसे, भयसे, शोकसे, क्रोधसे, भूखेरहनेसे, अथवा  
दूसरे गर्भके रहनेसे स्त्रियोंके दूध थोडाहोताहै ।

स्तन्यवृद्धिकेउपायान्तर ।

कलमस्यतण्डुलानांकलकंवाक्षीरपेशितंपिबति ।  
साभवतिभृशंतरुणीक्षीरभरेणैवतुङ्गकुचयुगला ॥

अर्थ—कलमके चामलोंको दूधमें पीसकर पीवे तो उसके दोनों स्तन दूधकी अ-  
धिकतासे निरंतर ऊंचे रहतेहैं ।

कलमधान्यकेलक्षण ।

कलमःकिलविख्यातोजायतेसबृहद्दने ।  
काश्मीरदेशएवोक्तोमहातण्डुलसंज्ञकः ॥

अर्थ—कलमनामका धान्य बृहद्दनमें उत्पन्नहोताहै । उसीको काश्मीरमें महा-  
तण्डुल कहतेहैं ।

विदारिकन्दस्यरसंपिबेत्स्तन्यस्यवृद्धये ।  
तच्चूर्णितस्यवृद्धयर्थंपिबेद्वाक्षीरसंयुतम् ॥

अर्थ—विदारीकंदका रस स्त्री, दूधबढनेको पीवे अथवा विदारीकंदका चूर्ण दूधकें साथ स्तन्यवृद्धिके अर्थ पीवे ।

दुष्टस्तन्यकेलक्षण ।

कषायंसलिलप्लाविस्तन्यमारुतदूषितम् । पित्तादम्लञ्च  
कटुकंराज्योऽम्भसितुपीतिकाः ॥ कफदुष्टंतुयत्तोयेनिम  
जतिचपिच्छलम् । द्वन्द्वजंतुद्विलिङ्गस्यात्रिलिङ्गसा-  
न्निपतिकम् ।

अर्थ—स्त्रीका दूध जो जलमें डालनेसे ऊपरही तेरा करे, तथा स्वादमें कपेला होवे, वह वातदूषित जानना और पानीमें डालनेसे जिसमेंसे पीलीपीली कलीसी होजावे, तथा स्वादमें खट्टा और तीखाहोय उसे पित्तदूषित जानना । और पानीमें गेरनेसे जो डूब जावे और चिकना होवे उस दूधको कफसे दूषित जानना । और जिसमें दोदोषके लक्षण मिले वो द्विदोषसे दूषित जानना और तीनदोषोंके लक्षण मिलनेसे त्रिदोषसे दूषित दूध जानना । दुष्टस्तन्यकी शुद्धि प्रथम लिखआएहैं, अब औरभी लिखतेहैं,

दुष्टस्तन्यकाशोधन ।

पटोलनिम्बासनदारुपाठामूर्वागुडूचीकटुरोहिणीच ।

सनागरञ्चकथितंतुतोयेधात्रीपिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः ॥

अर्थ—पटोलपत्र, नीमकीछाल, खेरसार, देवदारु, पाठ, मूर्वा, गिलोय, कुटकी और सोंठ इन सबको पानीमें काढा करके पीवे तो दूधकी शुद्धि होवे ।

बालककेरोगज्ञानकाउपाय ।

अङ्गप्रत्यङ्गदेशेतुरुजायस्यात्रजायते।मुहुर्मुहुःस्पृशतितं  
स्पृश्यमानेचरोदिति । निमीलिताक्षोमूर्धन्येशिरोरोगेण  
धारयेत् । बस्तिस्थोमूत्रसंसर्गोरोदिष्यतिचमूर्च्छति । वि  
ण्मूत्रसङ्गवैवर्ण्यंछर्द्याध्मानात्रकूजनैः । कोष्ठेरोगान्विजा  
नीयात्सर्वत्रस्थांश्चरोदिति । तेषुयथाविहितंमृद्धच्छेदनी  
यौषधमात्रयाक्षीरपस्यक्षीरसर्पिषाधात्र्यास्तुकेवलमेववि-  
दध्यात् । क्षीरान्नादस्यात्मनिधात्र्याश्चअन्नादस्यकषाया  
दीन्यात्मन्येवनधात्र्याः ।

अर्थ—अंग और प्रत्यंग इनमें जिस २ अंग प्रत्यंगोंमें पीडाहोवे उसीउसी अंगको वारंवार बालक स्पर्शकरताहै और स्पर्शकरके रोवे, मस्तकपीडा होनेसे नेत्रमूंद वारंवार मस्तकपटके, बस्तिस्थानमें रोगहोनेसे मूत्रबंद होवे और रोवे तथा मूर्च्छाकी प्राप्तहोवे, सर्व कोष्ठगत रोगहोनेसे विष्टामूत्र बंदहोवे, शरीरमें विवर्णता तथा वमनहोवे, पेट फूलजावे, आंतडेनमें विलक्षण शब्द होवे और रुदनकरे, इत्यादि लक्षणोंसे रोग अच्छीरीतिसे जान उसी २ रोगमें यथायोग्य अर्थात् जो जो औषध जिसजिस रोगमें लिखीहै उसीउसी रोगमें देवे, परंतु इसमेंभी यह बात याद रहे कि, तीखी और छेदन कर्त्ता औषध न देवे, तथा कफमेदको दूर करने वाली औषध देनी चाहिये, इनकी मात्रा आगे कहेंगे उसको दूध और घृतमें मिलायकर देवे— बालक केवल दूधही पीताहो उसको घृत दूधमें मिलाय न देवे किंतु दूधमें घोलकर औषधदेवें । और दूध अन्न दोनों सेवनकरनेवाले बालकको देवे तो उसकी धायकी भी देनी चाहिये और केवल अन्न खानेवाले बालकको काथआदि औषध उसीको, देवे उसकी माताको न देनी चाहिये ।

बालककीमात्राकाप्रमाणकहतेहैं ।

तत्रमासादूर्ध्वक्षीरपस्यांगुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौषधमात्राविदध्यात् । कोलास्थिसंमितांकलकमात्राक्षीरात्रादायकोलसंमितामन्नादायोति ।

अर्थ—एक महिनेके अनंतर दूध पीनेवाले बालकको बीचकी ऊंगली और अनामिका एकत्र करके उन दोनोंके आगेके पोरुओंमें अँगूठा धरके पोरुओंके गड्ढेमें जितना कल्क आवे इतनी मात्रा देवे । परंतु वह कल्क सहत, घी, अथवा दूध मिलायकर देवे, तथा दूध और अन्न खानेवालेको अथवा केवल अन्न खानेवाले बालकको कोलप्रमाण मात्रा देनी चाहिये ।

अन्यग्रंथमेंदूसराप्रकारकहाहै, यथा,

प्रथमेमासिजातस्यशिशोर्भेषजरक्तिका । अवलेह्यातुकर्तव्यामधुक्षीरसिताघृतैः॥एकैकावर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् । ततोर्ध्वमाषवृद्धिःस्याद्यावत्षोडशकाब्दिकेति ॥

अर्थ—एक महिनेके बालकको औषधोंमें दूध और घी मिलाय चाटने योग्यकरके उसकी मात्रा एकरत्तीकी जाननी । तदनंतर १ वर्षपर्यंत प्रतिमास एक २ रत्ती बटावे । और एक वर्षके पश्चात् सोलहवर्षपर्यंत एक २ मासे मात्रा बढानी चाहिये ।

प्रकारान्तरकरके औषधोपायकहते हैं ।

येषांगदानायेयोगाः प्रवक्ष्यन्ते गदङ्कराः ।

तेषु तत्कल्कसंलितौ पाययेत शिशुं स्तनौ ।

अर्थ—जिस रोगका जो जो परिहारक औषधोपाय कहा है उसीउसी औषधका कल्ककरके स्तनोंमें लपेट बालकको पिवाना चाहिये ।

ज्वरविषयमें विशेषकहते हैं.

एकं द्वित्रीणि वाहानि वातपित्तकफज्वरे ।

स्तन्यं पयोहितं सर्पिरितराभ्यां यथार्थतः ॥

अर्थ—जो बालक केवल दूध पीनेवाला है, उसको वातपित्तकफज्वरमें स्तन्य ( स्तनसंबंधी दूध ) दूध, घी, एक, दो, तीनदिनके अंतरकरके पिवावे । तथा क्षीर और अन्नखानेवाला, तथा केवल अन्नखानेवाले बालकको जैसा प्रयोजन हो उतना घी हितावह होता है । तथा ज्वरमें तृषाके भयसे बालकको स्तनपान देवे, परंतु विरेक, बस्ति, वमनरूप नाशकारक विकार न होनेसे स्तनपान देवे. \*

बालकके तालुवाका कलटक आनेका उपाय ।

मस्तुलुङ्गक्षयाद्यस्य वायुस्ताल्वस्थिनामयेत् । तस्य तृड्दैन्ययुक्तस्य  
सर्पिर्मधुरकैः शृतम् । पानालेपनयोर्योज्यं सीताम्बुव्यञ्जनं तथा ।

अर्थ—मस्तककी वायु अभ्यन्तर स्नेहका किसी कारणसे क्षय करके तालुएकी हड्डीको नवाय उग्र पीडा उत्पन्न करे, इससे बालक तृषा और दीनता इनकरके युक्त होता है । अतएव उसको सहत, घीमें मिलाय भले प्रकार तपाय कर पिवावे तथा देहमें लगावे, तथा शीतल जल और पंखासे पवन करनी चाहिये ।

बालककी नाभिफूल आवे तथा गुदपाक होजावे उसका उपाय ।

वातेनाध्मापितां नाभिसरुजांतुण्डसंज्ञिताम् । मारुतघ्नैः प्र-  
शमयेत्स्नेहस्वेदोपनाहनैः । गुदपाके तुवालानां पित्तघ्नां का-  
रयेत्क्रियाम् । रसाञ्जनं विशेषेण पानलेपनयोर्हितम् ।

अर्थ—बालककी नाभि वायुसे वेदनायुक्त फूलकर अत्यन्त बड़ी होजावे, उसमें वायुनाशक स्नेहादिक उपचार करावे, तथा गुदपाक होनेसे पित्तनाशक उपचार करावे तथा पान लेपन इस विषयमें रसांजन हितकारक होता है ।

घृतबालककोसदैवहितकारीहोताहैयहकहतेहैं ।  
क्षीराहारायसार्पिःसिद्धार्थकवचामांसीपयस्यपामार्गशता  
वरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठसैन्धवसिद्धम् । क्षीरा  
न्नादायमधुकवचापिप्पलीमूलकत्रिफलासिद्धम् । अन्ना-  
दायद्विपञ्चमूलीक्षीरभद्रदारुमरीचमधुकविडङ्गद्राक्षाद्वि  
ब्राह्मीसिद्धं तेनारोग्यबलमेधायुषिशिशोर्भवति ।

अर्थ—जो बालक केवल स्तनपानही करताहो उसको सरसों, वच जटामांसी, अर्कपुष्पी, आंगा, सतावर, सारिवा, ब्राह्मी, पीपल, हलदी, कूठ, सेंधानोन, इन औषधोंका कल्क तथा काढाकरके सिद्धकराहुआ घृत पिवावे । और दूध अन्न खाने-वालेको मुलहठी, वच, पीपरामूल और त्रिफला इनका कल्क अथवा काढा आदि कर उससे सिद्धकराहुआ घृत पिवावे तथा अङ्गमें लगवावे । और केवल अन्न खाने वाले बालकको द्विपंचमूल ( लघुपंचमूल और बृहपंचमूल ) दूध, तगर, देवदारु, कालीमिरच, मुलहठी, वायविडंग, दास, ब्राह्मी और मंडूकपर्णी इनसे सिद्धकरा घृत पिवावे । तथा अंगोंमें मालिस करावे, इसकरके बालकके आरोग्य, बल, मेधा और आयुष्यकी वृद्धि होवे ।

अथबालककीपरिचर्याकीविधि ।

बालंपुनर्गात्रसमंश्लियान्नचैनंभर्त्सयेत्सहसावानप्रतिबोधये-  
त्तद्वित्रासभयात् । सहसानापहरेदुत्क्षिपेद्वावातभयात् । नो  
पवेशयेत्कौब्ज्यभयात् नित्यंचैनमनुवर्त्तेतप्रियशतैर्नजिघांसुः ।

अर्थ—परिचारक ( नोकर ) मनुष्य बालकको धीरे धीरे फूलके समान जैसे उसके शरीरको सुखहोवे ऐसे उठावे, तथा इसको धमकावे नहीं। और अकस्मात् जगावे नहीं क्योंकि अकस्मात् जगानेसे बालक भयभीत होजाताहै, वातादिदोषोंके कुपित होनेके भयते बालकको स्वींचे नहीं तथा जल्दी शय्यापर गेरेभी नहीं। कुबड़े होनेके भयसे बालकको बहुत देरतक बैठारेभी नहीं और सर्वकाल उसके इच्छा-नुसार वर्त्ते, तथा बालकके खेलनेके खिलौने आदि पदार्थ देकर संतोषयुक्त रक्खे, कभी इसको मारे नहीं, तथा औषधका पिवाना, तेल, काजर, उबटना आदि आव-श्यक विधिके बिना बालकको कभी न रुलावे ।

उक्तपरिचर्याकाफलकहतेहैं ।

एवमव्याहतमापोह्यभिवर्द्धतेनित्यमुदग्र  
सत्वसम्पन्नोनीरोगःसुप्रसन्नमनाश्चभवति ।

अर्थ—इसप्रकार निरन्तर उपचार करनेसे उत्तम वृद्धिहोय, उन्नतसत्वसम्पन्न, निरोगी, तथा सुप्रसन्न अंतःकरण ऐसा होवे ।

बालककीरक्षाकाप्रकार ।

वातातपविद्युत्प्रभापादपलतानानागारनिम्न  
स्थानगृहच्छायादिभ्योग्रहोपसर्गतश्चबालंरक्षेत् ।

अर्थ—बालकको, अत्यंत हवा, गरमी, बिजली, वृक्ष, बेल, अनेकघर, नीचीजगह, गृहोंकी तथा ग्रहसंबंधी अनेक प्रकारके उपसर्ग इनसे रक्षा करनी चाहिये ।

नाशुचौविसृजेद्बालमाकाशविषमेपिच ।  
नोष्णमारुतवर्षेपुरजोधूमोदकेषुच ॥

अर्थ—बालकको अपवित्रस्थान, आकाश, तथा ऊंचेनाचे प्रदेशमें न बैठारे । गरमी, वायु, वर्षा, धूँआ, धूर और जल इनमेंभी बालकको न बैठारे ।

बालककोस्वाभाविकहितवस्तूकहतेहैं ।

अभ्यङ्गोद्धर्तनंस्नानंनेत्रयोरञ्जनन्तथा । वसनंमृदुयत्तच्चत  
थामृद्वनुलेपनम् । जन्मप्रभृतिपथ्यानिबालस्यैतानिसर्वथा ॥

अर्थ—तेलका लगाना, उवटनाकरना, स्नान, नेत्रोंमें अंजन लगाना, नरम २ वस्त्रोंको धारण करना, तथा नरमपदार्थोंका लेपन करना, इतनी वस्तु बालककी जन्म सेही सर्वथा हितकारी है, कोई वसनकी जगे ( वसन ) ऐसा कहतेहैं अर्थात् नरम वसन करना चाहिये ।

माताकेदूधनहोवेऔरधायमिलेनहींउससमयकी विधिकहतेहैं ।

क्षीरसात्म्यतयाक्षीरमाजङ्गव्यमथापिवा ।  
दद्यादास्तन्यपर्याप्तिर्बालानांवीक्ष्यमात्रया ॥

अर्थ—बालकको माताका दूध न मिलनेसे गौ, अथवा बकरी इनमेंसे जिसका आत्मोपयोगी जानपडे उसका दूध आहार देखके देवे, वह दूध यावत्कालपर्यंत स्तनपान योग्यता होवे तबतक देना चाहिये । अंग्रेजी डॉक्टरोंकी रायहै कि, बालकको गधीका दूध अतिहितावह होताहै ।

बालककाअन्नप्राशनकासमय ।

यथोक्तविधिनाबालंमासिषष्ठेऽष्टमेऽपिच ।  
अन्नंसंप्राशयेत्किञ्चित्ततस्तद्दृश्येत्क्रमात् ।

अर्थ—छटे महिने अथवा आठमें महिने शास्त्रोक्त विधिसे बालकको कुछ अन्न देवे और पीछे अनुक्रमसे बढावे ।

बालककेकवलादिककासमय ।

कवलःपञ्चमाद्रर्षादष्टमात्रस्यकर्मच  
विरेकःषोडशाद्रर्षाद्रिंशतेश्वैवमैथुनम् ।

अर्थ—बालकको पंचमवर्षसे कवलादि विधिकरे, और आठवर्षका होवे तब नस्य ( नास ) देवे तथा विरेक ( जुल्लाव ) सोलह वर्षके होनेपर देना चाहिये और बीसवर्षकी अवस्था होनेपर मैथुनकरना चाहिये । अर्थात् इस समयसे प्रथम ए उक्त कोई क्रिया न करे ।

ग्रहोपसर्गकेलक्षण ।

अथकुमारउद्विजतेत्रस्यतिरोदितिनष्टसंज्ञोभवतिनखदशनै  
र्धात्रीमात्मानञ्चपरिदुह्यतिदन्तान्खादतिकूजतिजृम्भतेभ्रुवौ  
विक्षिपत्यूर्ध्वनिरीक्षतेफेनमुद्रमतिसंदष्टौष्ठःक्रूरोभिन्नामवर्चा  
दीनार्त्तस्वरोनिशिजागर्त्तिदुर्बलोम्लानाङ्गोमत्स्यच्छुंन्दरीम  
त्कुणगन्धायथापुरास्तनमभिलषतितथानाभिलषतीतिसा  
मान्येनग्रहोपसर्गलक्षणमुक्तंविस्तरेणोत्तरेवक्ष्यामः ।

अर्थ—बालक मातृकादि ग्रहोंसे पीडितहोनेसे उद्विग्र होकर क्षण २ में वचके, त्रासको प्राप्तहोवे, रोवे, निश्चेष्टहोवे और नख, तथा दांतोंसे माताको और आपको छेदनकरे, दांतोंकी चबावे, कीकमारे अत्यंत जंभाई लेवे, भौहोंकी चलावे, ऊपरकी तरफ देखे, मुखसे झागगरे, होठोंको डसे, क्रूरमालूमहो, वारंवार दस्तजावे, आर्त्तस्वर करे, रात्रिमें जगे, दुर्बल और कुमलायासा होजावे, देहमें मछली, छछूदर और खटमलकीसी दुर्गन्धआवे, पूर्ववत् स्तनपान करे नहीं ये सामान्यग्रहग्रस्त बालकके लक्षण कहेहैं । विस्तारपूर्वक आगे बालककी चिकित्सामें लिखेंगे ।

कुमारकीपुरुषार्थसाधनहेतुभूतक्रियाकहेतेहैं ।

शक्तिमन्तञ्चैनंविज्ञाययथावर्णविद्यांग्राहयेत् ।

अर्थ—जब बालक विद्यार्जनकेश सहने योग्य होजावे तब ब्राह्मणका बालक होवे तो वेदविद्या शास्त्रविद्या पढावे, क्षत्रीहोवेतो दंडनीति, वैश्य होवे तो उसको हिसाब किताब इसप्रकार विद्याग्रहणकरावे । और पञ्चीसवर्षकी अवस्थावालेको बारहवर्षकी स्त्रीसे विवाहकरे यह प्रथमही गर्भाधानके प्रकरणमें लिखआएहैं ।

सहेतुकसप्रतीकारगर्भस्त्रावकेलक्षण ।

तत्रपूर्वोक्तैःकारणैःपतिष्यतिगर्भेगर्भांश

यकटिवंक्षणवस्तिशूलानिरक्तदर्शनञ्च ।

अर्थ—पूर्वोक्त कारण मूढगर्भनिदानमें कहेहै जैसे ग्राम्यधर्म ( मैथुन ) तथा यानवाहनादि इनकरके गर्भपातहोते समय गर्भांशय, कमर, वंक्षण, और वस्ति इनमें शूलहोवे, तथा योनिके मुखसैं रुधिर निकले उसमें शीतलजलका तरडा स्नान आदिशीतोपचार करावे, विशेषविधि वाग्भटसैं लिखतेहैं ।

गर्भस्त्रावकाउपचार ।

गर्भिण्याःपरिहार्याणांसेवयारोगतोऽपिवा । पुष्पेदृष्टेऽथ  
वाशूलेबाह्यतःस्निग्धशीतलम् । सेव्याम्भोजहिमक्षीरीव  
ल्ककल्काज्यलेपितान् । धारयेद्योनिवस्तिभ्यामाद्रां  
द्रान्पिचुनक्तकान् ।

अर्थ—गर्भिणीको त्याज्यआहार विहार जो प्रथम कहआएहैं, उन्होंके सेवनकरनेसे अथवा रोगकरके यदि पुष्प ( रजोदर्शनकररुधिर ) दीखे, अथवा शूलहोवे तोस्निग्धशीतल ऐसे अन्नपान और परिषेकादि कर्म करने चाहिये, तथा स्त्रीके योनि और वस्तिमें, उसीर, कमलगट्टा, चंदन, और पीपलसैं आदिले क्षीरवालवृक्षोंका वक्कल इनसैं बनाहुआ कल्कका लेपकर पिचु ( रुईके नामे ) और नक्तक ( कपडेकाटुक ) गीले करके रखने चाहिये, सुश्रुतमें लिखाहै कि “ जीवनीयादिशृतशीतक्षीरपानैश्च ” अर्थात् जीवनीय कहिये कांकोली क्षीरकांकोली आदिका कल्क दूधमें मिलाय अच्छीरीतिसैं तत्तकर शीतलकरके पिवावे ।

शतधौतघृताक्तांस्त्रीतदम्भस्यवगाहयेत् । ससिताक्षौद्रकु  
मुदकमलोत्पलकेसरम् । लिह्यात्क्षीरघृतंखादेच्छृङ्गाटक  
कसेरुकम् । पिबेत्कान्ताब्जशालूकबालोदुम्बरवत्पयः । शृते  
नशालिकाकोलीद्विबलामधुकेक्षुभिः । पयसारक्तशाल्यन्न  
मद्यात्समधुशर्करम् । रसैर्वाजाङ्गलैःशुद्धिवर्जचास्रोक्तमा  
चरेत् ।

अर्थ—हजारवार जलसैं धुलेहुए घृतको नाभीसैं नीचे मालिसकर उस स्त्रीको उसजलमें बैठारे, और कमोदनी, कमल, नीलाकमल, इनकी केशर मिश्री और

सहत इन सबको घृत और दूधमें मिलायकर पीवे, सिंघाडे और कसेरूओंको खावे, तथा गंधप्रियंगु, कमल, नीलकमल, और कच्चा गूलरका फल, इनको दूधमें ओटाकर पीवे, तथा सांठीचावल, कांकोली, बला, अतिबला, मूलहटी, और ईस इनको दूधमें ओटायकर उस दूधके साथ लालचावल और सांठीचावलोंमें सहत और खांड मिलायकर खावे, अथवा देश और आत्माके अनुकूल जंगलीजीवोंके रसके साथ सांठीचावलोंका भात खावे, क्षीरपाककी विधि ग्रंथान्तरोंमें लिखीहै\* । तथा शुद्धिको त्याग रक्तपित्तोक्तक्रिया इसजगे करनी चाहिये ।

### असंपूर्णत्रिमासायाःप्रत्याख्या यप्रसाधयेत् । आमान्वयेच ।

अर्थ—जिसगर्भिणीको पूरेतीनमहिने न हुएहो । और उसके कदाचित् रक्तदर्शन होवेतो उसका निश्चयकर यत्नपूर्वक साधनकरे । उसीप्रकार आमानुगत रक्तदर्शन होनेसँ उसको विरुद्धोपक्रमहोनेसँ यत्नपूर्वक साधनकरे ।

अबआमरक्तकेअविरुद्धक्रियाकहतेहै ।

तत्रेष्टंशीतंरूक्षोपसंहितम् । उपवासोघनोशीरगुडुच्यरलुधान्यकाः ।  
दुरालभापर्पटकचन्दनातिविषाबलाः । क्वथिताःसलिलेपानंतृणधान्यादिभोजनम् । मुद्गादियूपैरामेतुजितेस्त्रिगधादिपूर्ववत् ।

अर्थ—आमानुगत रक्तदर्शनमें शीतल अन्नपानादिकोंको बाहर और भीतर योजना करना हितहै । परंतु शीतलवस्तु रुधिरको हितकारीहै और आमको बढानेवाली है, इसै कहतेहैं कि ( रूक्षोपसंहितम् ) अर्थात् तित्तकषायआदि करके पूर्वोक्त शीतलपदार्थ युक्त होने चाहिये । तथा उपवासकरना हितहै, तथा नागरमोथा, उशीर, गिलोय, श्योनाक, धनिया, जवासा, पित्तपापडा, चन्दन, अतीस, और बला इन्का काढा करके पीना हितहै, तथा तृणधान्य ( सामखिया, कोदो ) आदिका भोजन हितहै, मूंगकायूष, और आदिशब्दकरके अरहर मसूर आदिशिबीधान्य हितहोतेहै- इसप्रकार आमको जीते- जब आमको जीतचुके तब पूर्ववत् स्निग्धादि हितहोतेहैं ।

### एवमुपक्रांतायाउपावर्तन्तेरुजोगर्भश्चाप्यायते ।

अर्थ—इसप्रकार उपचार करनेसँ संपूर्ण गर्भपातसंबंधी उपद्रव शांतहोतेहै- और गर्भ बढताहै ।

\* द्रव्यादष्टगुणंक्षीरंक्षीरात्तोयंचतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाकेत्वयंविधिः ।

गर्भपातमेंउपचार ।

गर्भेनिपतितेतीक्ष्णमद्यंसामर्थ्यतःपिबेत् । गर्भकोष्ठविशुद्ध्यर्थमर्त्तिविस्मरणायचालघुनापञ्चमूलेनरूक्षपिपां ततःपिबेत् । पेयाममद्यपाकलकेसाधितांपाञ्चकौलिके । बिल्वादिपञ्चकक्वाथेतिलोद्दालकतण्डुलैः । मासतुल्यदिनान्येवंपेयादिःपतितेक्रमः । लघुरस्नेहलवणोदीपनीययुतोहितः ।

अर्थ—गर्भिणीका इसप्रकार सेवनकरने परभी अदृष्टवशसे गर्भनिःशेष गिरजावे तो तीक्ष्णमद्य बहुतसापीवे । कारण यहहै कि, मद्यपीनेसे गर्भकी शुद्धि और पीडाका विस्मरण होताहै । तदनंतर मद्यपीनेके लघुपंचमूलसे बना ऐसा रूक्षपेयाको पीवे । और जो स्त्री मद्य न पीतीहो वह गर्भगिरनेके पश्चात् पंचकोलसे बना पेयाको पीवे मद्यको न पीवे । तथा बृहत्पंचमूलके काठसे बने पेयाको पीवे । और तिल, उद्दालक ( चावलविशेष ) और चावलसे जो बनाहुआहो वह पेया जितने महिनेका गर्भगिराहो उतने दिन पीना चाहिये । फिर कैसा पेयाहोकि जिसमें चिकनाई और नोन न होवे, तथा दीपनकर्त्ता ( मरिच चित्रक आदि ) द्रव्यजिस्में मिलीहोवे ।

यहविधिकिसलियेकरनीचाहियेसोकहतेहैं.

दोषधातुपरिक्लेदशोषार्थविधिरित्ययम् ।

अर्थ—दोष ( पित्तकफ. ) और धातुओंके क्लेदसुखानेके अर्थ यहविधि करनी चाहिये. ( दोषशब्दकरके इसजगे पित्तकफकाही ग्रहणहै ) ।

स्नेहान्नवस्तयश्चोर्ध्वबल्यजीवनदीपनाः ।

अर्थ—दोष धातुके परिक्लेद सुखनेके अनंतर चतुर्विध स्नेहपीनेमेंहितहै. और चिकना अन्नहितहै । तथा चिकनी बस्ती हितहै । अर्थात् चिकनाई बादीको दूरकरतीहै । स्नेहपान बलकेअर्थहितहै, अन्न जीवनके अर्थ और बस्ती ओजवृद्धि करताहै ।

उपविष्टकगर्भकेलक्षण ।

सञ्जातसारेमहातिगर्भेयोनिपरिस्रवात् । वृद्धिमप्राप्नुवन्गर्भः

कोष्ठेतिष्ठतिसस्फुरः । उपविष्टकमाहुस्तंवर्द्धतेतेनोदरम् ॥

अर्थ—प्राप्तहुआहै बलजिस्मेंऐसामर्भ, गर्भिणीके पथ्यापथ्य आदिसे जो स्रावहोवे, अर्थात् कमी रुधिर और कमी अन्य प्रकार स्रवे, इसी कारण गर्भवृद्धीको न पाता फडकताहुआ कोष्ठ ( उदर ) में ही रहे, उस गर्भको उपविष्टक कहते हैं । इस उपविष्टकसे गर्भिणीका उदर नहीं बढताहै ।

नागोदरगर्भकेलक्षण ।

शोकोपवासरूक्षाद्यैरथवायोन्यतिस्रवात् । वातेकुद्धेकृशः  
शुष्येद्गर्भोनागोदरंतुतत् । उदरंवृद्धमप्यत्रहीयतेस्फुरणंचिरात् ॥

अर्थ—शोक, उपवास, रूक्षादि गर्भ और गर्भिणीके अपुष्टकारके और पवनके कोपकारक हेतुओंसे तथा योनिके अत्यंतस्रवनेसे वातकुपितहोकर गर्भको कृशकरदेवे तथा सुखायदेवे, उस गर्भको नागोदरसंज्ञक कहतेहैं, और कोई आचार्य उपशुष्कक कहतेहैं, इस नागोदरसंज्ञक गर्भमें बढाहुआभी उदर घटजाताहै । तथा देरीमें फडकताहै । उपविष्टकगर्भकी तो वृद्धि नहींहोती जैसा का तैसा रहताहै और इस नागोदरमें गर्भ नष्टहोजाताहै ।

उपविष्टकनागोदरगर्भकीचिकित्सा ।

तयोर्बृंहणवातघ्नमधुरद्रव्यसंस्कृतैः । घृतक्षीररसैस्तृप्तिराम  
गर्भांश्चखादयेत् । तैरेवचसुतृप्तायाःक्षोभणंयानवाहनैः ॥

अर्थ—उनदोनों उपविष्टक और नागोदर गर्भवती स्त्रीकी द्रव्य ( घृत दूध ) ककें संस्कृत ऐसे बृंहण वातघ्न और मधुरद्रव्योंसे तृप्तिकरे, तथा आमगर्भवालीको वैद्य खवावे जब बृंहणादि द्रव्योंसे सिद्धकरे घृत दूधसे गर्भिणी तृप्त होजावे तब उसके रथ हाथी घोडा आदि सवारीमें बैठार वेगसे चलावे इस प्रकार करनेसे गर्भवतीकें क्षोभण करना चाहिये ।

वृद्धकाश्यपकेमतसेशुष्कगर्भकेलक्षण ।

गर्भनाड्याह्यवहनादल्पत्वाद्धारसस्यच । चिरेणाप्यायतेगर्भ  
स्तथैवांकालभोजनात् । आकुक्षिपूरणंगर्भोमन्दस्पन्दनएवच ।

अर्थ—गर्भपोषण करनेवाली शिराओंके न वहनेसे, और माताके शरीरमें रस अल्प होनेसे कुसमय भोजनके करनेसे गर्भ बहुत कालमें पुष्ट होता है, वह गर्भ माताकी कूखको पूर्ण नहीं करे तथा धीरेधीरे पेटमें फिरता है ।

लीनाख्यागर्भकीचिकित्सा ।

लीनाख्येनिस्फुरेऽयेनगोमत्स्योत्क्रोशबर्हिजाः । रसाबहु  
घृतादेयामाषमूलकजाअपि । बालबिल्वंतिलान्माषान्सक्तूं  
श्चपयसापिबेत् । समद्यमांसमधुवाकव्यभ्यङ्गश्शीलयेत् ।

अर्थ—लीनाख्य गर्भमें गर्भिणीको, शिकरा, गौ, मछली, उत्क्रोश ( टटाटीहरी) मोर, इनके मांसका रस तथा उडद, मूलीका रस, इनमें बहुतसा घृत मिलायकर देवे, तथा कच्चेबेल, तिल, उरद और सत्तु इनमेंसे किसी एकको दूधमें मिलायकर पीवे अथवा स्निग्धमांसके साथ दाखका आसवपीवे, तथा कपूरमें तेलकी मालिसकरे, लीनाख्य \* गर्भके लक्षण संग्रहमें लिखेहैं ।

उपायांतर ।

हर्षयेत्सततंचैनामेवंगर्भःप्रवर्द्धते । पुष्टो  
ऽन्यथावर्षगणैःकृच्छ्राज्जायेतनैववा ।

अर्थ—लीनाख्य गर्भवती स्त्रीको बारंबार प्रसन्नकरे, कोई कहताहै कि उपविष्टक, नागोदर और लीनाख्य इनतीनों गर्भवाली स्त्रियोंको प्रसन्नकरे क्योंकि प्रसन्न करनेसे गर्भ बढे है ।

अन्यप्रकारसे अर्थात् रूक्षपदार्थोंके सेवनसे जो गर्भ पुष्टहुआ वह वर्षोंमेंभी बढेकठिनतासे प्रगट होय अथवा न भी होवे ।

गर्भिणीके उदावर्त्तकायत्न ।

उदावर्त्तन्तु गर्भिण्याः स्नेहैराशुतरांजयेत् । योग्यै  
श्वस्तिभिर्हन्यात्स गर्भासहिर्गर्भिणीम् ॥

अर्थ—गर्भिणी के उदावर्त्त रोगको चतुर्विध स्नेहकरके शीघ्रजीते, तथा योग्य कहिये तत्कालोचित बस्ती करके जीते, क्योंकि, वह उदावर्त्त गर्भके साथ गर्भिणी को भी नष्ट करे है ।

मृतगर्भास्त्रीके लक्षण.

गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोपिवा । मृतेऽन्तरुदरंशीतं  
स्तब्धं ध्मातंभृशव्यथम् । गर्भास्पन्दोभ्रमस्तृष्णाकृच्छ्रा  
दुच्छ्वसनंकुमः । अरतिःस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः ।

अर्थ—वातादि दोषों के सञ्चय होनेसे, अपथ्य करनेसे, दैव ( पूर्व जन्मके शुभाऽशुभसे ) उदरमें गर्भ मरजावे उस गर्भके मरनेसे गर्भिणीका उदर शीतलहो, तथा निश्चलहो, धोकनीके समान फूलाहुआ हो और अत्यंत वेदनायुक्त होता है । तथा गर्भ फडके नहीं. भ्रम, प्यास, और बड़ी कठिनतासे गर्भिणीको ऊर्ध्वश्वास

\* यस्याः पुनर्वातोपसृष्टस्रोतसोलीनो गर्भः । प्रसुप्तो न स्पन्दते तंलीनमित्याहुः ।

लिया जावे. कृम, ग्लानि, अरति, नेत्र गिरे पड़े, और आसन्न प्रसवके शूलहोवे नहीं ए मृतगर्भास्त्रीके लक्षण हैं ।

मृतगर्भास्त्रीकायत्न.

तस्याःकोष्णाम्बुसिक्तायाःपिङ्गायोनिंप्रलेपयेत् । गुडंकि  
प्वंसलवणंतथान्तःपूरयेन्मुहुः । घृतेनकल्कीकृतयाशाल्म  
ल्यतसिपिच्छया । मंत्रैर्योग्यैर्जरायुक्तैर्मूढगर्भानचेत्पतेत् ।  
अथापृच्छचेश्वरं वैद्यो यत्नेनाशुतमाहरेत् । हस्तमभ्यज्ययो  
निंचसाज्यशाल्मलिपिच्छया । हस्तेनशक्यंतेनैव-

अर्थ-उस अन्तरगर्भ मृतास्त्री की योनिको तत्ते गरम जलसे सुहाता २ सेक-  
करे, पीछे गुड, चामलकी दारू, और नोन इनको पीसके लेपकरे तथा इसमें सेमर  
अलसी ए गाढी २ घृतमें कल्ककर पूर्वोक्त औषधमें मिलाय लेपकरे और योनिके  
भीतर भरे तथा जरायुमें कहेहुये मंत्रोंसे ( क्षितिर्जलमित्यादि ) अथवा जरायुपातन-  
के अर्थ अथर्वण वेदमें कहेहुए मंत्रोंका अनुष्ठान करे । यदि इस प्रकार अनुष्ठान  
करने परभी मराहुआ बालक पेटसे न निकले तो राजाकी आज्ञालेकर वैद्य उसमूढ-  
गर्भको शीघ्रही गर्भमेंसे निकाले. इसप्रकार कि प्रथम घृतको हाथोंमें चुपड तथाघृत  
और सेमरके गोंदसे योनिको लेपनकर उस मरेहुए बालकको निकाले ।

—गात्रञ्चविषमंस्थितम् ।

आञ्छनोत्पीडसम्पीडविक्षेपोत्क्षेपणादिभिः ।

अनुलोम्यसमाकर्षेद्योनिंप्रत्यार्जवागतम् ।

अर्थ-विषमस्थित गर्भके देहको लंबाकरके ऊपरको चढायकर तथा चारों ओर  
घुमायकर विशेष ऊपरकी तरफ करके और उत्क्षेपण करके आदिशब्दसैं इसी प्र-  
कार अपनी बुद्धिसैं अन्य प्रकार कल्पना कर सीधाकरे और योनिके मुख प्रतिला-  
यकर निकाले. १८ नम्बरके चित्रोंको देखो ।

मूढगर्भकीशस्त्रचिकित्साकहतेहैं ।

हस्तपादशिरोभिर्योनिंभुग्नःप्रपद्यते । पादेनयोनिमेकेनभु  
ग्नोऽन्येनगुदंचयः । विष्कम्भौनामतौमूढौशस्त्रदारणमर्हतः ।

अर्थ-कभी हाथकरके, कभी पैरकरके, कभी शिरकरके योनिके प्रति टेढ़ाहोकर  
मूढगर्भ प्राप्तहोताहै । उसमें एकको विष्कम्भनाम कहते हैं. तथा एकपैरकरके योनिके

प्रति आवे. और दूसरेपैरसे गुदाकेप्रति टेढाहोकर जो मूढगर्भ आवे वो दूसरा विष्कंभना-  
मक मूढगर्भकहाताहै. ए दोनों मूढगर्भ शस्त्रसे विदीर्णकरनेयोग्यहैं अर्थात् हाथसे न-  
हीं निकलसक्ते इसीसे शस्त्रद्वारा काटने चाहिये ।

शस्त्रकर्म ।

मण्डलाङ्गुलिशस्त्राभ्यां तत्र कर्मप्रशस्यते ।

वृद्धिपत्रंहिति क्षिणाग्रं न योनाववचारयेत् ॥

अर्थ-मण्डलाग्र और अंगुलिशस्त्र जो आगे शस्त्राध्यायमें कहेंगे इनसे मूढ-  
गर्भोंका छेदन आदि कर्मकरे और वृद्धिपत्र तथा तीक्ष्णाग्रशस्त्र इनको योनिमें  
कदाचित् न करे ।

मूढगर्भके छेदनेकीविधि ।

पूर्वशिरःकपालानिदारयित्वा विशोधयेत् । कक्षोरस्तालु  
चिबुकप्रदेशेऽन्यतमेततः ॥ समालम्ब्य दृढं कर्षेत् कुश्लोग-  
भंशंकुना । अभिन्नशिरसं त्वक्षिकूटयोर्गण्डयोरपि ॥

अर्थ-पहले शिरसंबंधी कपालको शस्त्रसे शोधनकर गर्भिणीके पेटसे निकाललेवे.  
तदनंतर कूख, छाती, तालु, ठोडी इनमेंसे किसीएकदेशको पकड उसे वैद्य गर्भशं-  
कू ( गर्भकाटनेके ) शस्त्रसे बाहरकी तरफ जोरसे खींचे, तथा जिसका मस्तक न छे-  
दन कराहो उस मूढगर्भका कभी नेत्रोंकाभाग, कभी गालोंको पकडकर गर्भ-  
शंकुसे खींचे ।

बाहुंछित्त्वांससक्तस्य वाताध्मातोदरस्य तु ।

विदार्य कोष्ठमन्त्राणि बहिर्वासंनिरस्य च ॥

कटिसक्तस्य तद्ब्रह्म तत्कपालानिदारयेत् ।

अर्थ-जो मूढगर्भकेकंधे अटकतेहोवे तो उसको दोनोंभुजाओंका छेदनकरके नि-  
काले और जिसमूढगर्भका बादीसे पेटफूलरहाहो, उसके आमपकाश्रितकोठेको वि-  
दीर्णकर पेटमेंसे आँतोंको निकाल पीछे उसको खींचे और जो मूढगर्भ कमरकरके  
अटकरहाहो उसकी कमरके टूकटूक कर गर्भको निकाले ।

मूढगर्भास्त्रीकीसामान्यचिकित्सा ।

यद्यद्वायुवशादङ्गं सज्जेद्गर्भस्य खण्डशः ।

तत्तच्छित्त्वाहरेत्सम्यग्रक्षेत्रारिचयत्नतः ॥

अर्थ—वातवश मूढगर्भका जो २ अङ्ग अटके उसी २ अंगके खंड २ कर निकाले. संपूर्णशरीरको एकहीसाथ न काटे क्योंकि जोरसे शस्त्रके चलानेसे गर्भिणीके अंगमें न लगजावे इसीसे कहाहै कि ( रक्षेत्रारीचयत्नतः ) अर्थात् गर्भिणीकी यत्नसे रक्षाकरे, जिस्से उसका थोडाभी अंग नकटनेपावे ।

गर्भस्यहिगतिंचित्रांकरोतिविद्युणोऽनिलः ।

तत्राऽनल्पमतिस्तस्मादवस्थापेक्षमाचरेत् ॥

अर्थ—कुपितपवन गर्भकी अनेकप्रकारकी गति ( अवस्था ) करेंहैं, अतएव महा-बुद्धिमान्‌वैद्य उसगर्भकी अवस्थाको विचार उस अवस्थाके अनुसार अपनीबुद्धिसे जो कर्म नहींभी कहा उसको करे ।

जीवितगर्भच्छेदनकेअवगुण ।

छिंद्याद्गर्भंनजीवंतंमातरंसहिमारयेत् ।

सहात्मनानचोपेक्ष्यःक्षणमप्यस्तजीवितः ॥

अर्थ—मरे गर्भके लक्षणोंको न जानने वाला वैद्याभिमानी पुरुष, जीविते गर्भका छेदन न करे । क्योंकि जीवितगर्भ माताको और अपने आपे दोनोंको मारेंहैं, परंतु मरेहुए बालकको एक क्षणमात्रभी उपेक्षा न करे ।

त्याज्यमूढगर्भास्त्री ।

योनिस्वरणभ्रंशमक्कलश्वासपीडिताम् ।

प्रत्युद्गारांहिमाद्ग्रीचमूढमर्भापरित्यजेत् ॥

अर्थ—योनिका आच्छादन, तथा योनिभ्रंश, मक्कलक और श्वास इन रोगोंसे पीडित, वारंवार डकार आवे और शीतल देहहो ऐसी मूढगर्भास्त्री वैद्यको त्यागने योग्य कहीहै ।

मूढगर्भहरणकेपश्चात्कर्त्तव्यकर्म ।

अथापतंतीमपरांपातयेपूर्ववद्भिषक् । एवंनिर्हृतशल्यां  
तुसिंचेदुष्णेनवारिणा ॥ वद्यादभ्यक्तदेहायैयोनौस्नेह  
पिचुंततः । योनिर्मृदुर्भवेत्तेनशूलंचास्याःप्रशाम्यति ॥

अर्थ—मूढगर्भहरणके अनंतर, जिसका जरायु न निकलाहो उसको पूर्वोक्त विधि ( हिरण्यपुष्पीमूल इत्यादि ) से निकाले। जब जरायुभी निकलचुके तब उस-स्त्रीको गरमजलसे सेके, इसप्रकार स्नानकर तैलकी मालिसकरे और इसकी योनिमें तेलका पिचु (फोहा) धरे इसतेलपिचुके देनेसे स्त्रीकी योनि नरमहोवे और पीडा नष्ट होय ।

दीप्यकातिविषारास्नाहिंवेलापंचकोलकान् । चूर्णस्नेहेनक  
ल्कंवाक्काथंवापाययेत्ततः । कटुकातिविषापाठाशाकत्वर्गिघ  
गुतेजनाः । तद्वच्चदोषस्यन्दार्थंवेदनोपशमायच । त्रिरात्रमे  
वंसप्ताहंस्नेहमेवततःपिबेत् ॥ सायंपिबेदरिष्टंवातथासुकृत  
मासवम् । शिरीषककुभक्काथपिचून्योनौविनिक्षिपेत् । उप  
द्रवाश्रयेऽन्येस्युस्तान्यथास्वमुपाचरेत् ।

अर्थ—स्नान और अभ्यंग करनेके अनन्तर अजमायन, अतीस, रास्ना, हींग, इ-  
लायची और पंचकोल इन सबके चूर्णको घृतकेसाथ यथायोग्य स्त्रीको प्रकृतिके अ-  
नुसार पिवावे, अथवा अजमायन आदि औषधोंको जलमें पीस कल्ककर घृतकेसाथ  
पिवावे, अथवा, काथकरके पिवावे, उसीप्रकार कुटकी, अतीस, पाठ, खरच्छद,  
दालचीनी, हींग और मालकांगनी इनको चूर्णकर घृतसे कल्ककरे अथवा काथकर-  
के उसस्त्रीके रक्तादि स्वावकेअर्थ और पीडादूरकरनेको तीनरात्रि पिवावे । तीनरात्रि-  
के अनन्तर उसस्त्रीको सातरात्रिपर्यंत घृतही पिवावे और कोई रूक्षादि औषध न  
पिवावे और सायंकालमें अरिष्ट \* पिवावे तथा उत्तमरीतिसे बना ऐसा मद्यपिवावे-  
और सिरस तथा कोहवृक्षकीछाल इनसे बना काथ उसमें भीगेहुए रुईके गाले  
योनिमें धरे और उस स्त्रीके जो ज्वरादि उपद्रव होवे उनको उनकी चिकित्सा-  
द्वारा दूर करे ।

पयोवातहरैःस्निग्धंदशाहंभोजनेहितम् । रसोदशाहंचपरं  
लघुपथ्याल्पभोजना । स्वेदाभ्यङ्गपरास्नेहान्बलातैलादि  
कान्भजेत् । ऊर्ध्वंचतुर्भ्योमासेभ्यःसाक्रमेणसुखानिच ।

अर्थ—पूर्वोक्तविधि आचरणके पश्चात् वातहरणकर्ता औषधोंसे सिद्ध ऐसा दूध  
दशादिन पिवावे, दशादिन पीछे दूसरे दशाहमें भोजनमें रसका देना हितहै इसके उप-  
रांत अर्थात् बीसदिनकेपश्चात् वहस्त्री हलका, पथ्य और थोड़ा भोजनकरे । और  
स्वेद, अभ्यंगको करतीहुई बलाआदि तैलोंका सेवनकरे. इसप्रकार आचरण चार  
महिनेपर्यंत करे पीछे निष्क्रांतमूढगर्भास्त्री पांचवे महिनेमें क्रमसे सुखकारी अन्न-  
पान आहारविहारादिकोंका सेवनकरे ।

## बलातैलकीविधि ।

बलामूलकषायस्यभागाःषट्पयसस्तथा । यवकोलकुलत्थानां  
दशमूलस्यचैकतः १ निष्काथभागोभागश्चतैलस्यचचतुर्दशा ।  
द्विमेदादारुमंजिष्ठाकांकोलीशुभ्रचन्दनैः २ सारिवाकुष्ठतगरजी  
वकर्षभसैध्वैः । कालानुसार्याशैलेयवचागुरुपुनर्नवैः ३ अश्व  
गन्धावरीक्षीरशुक्लायष्टिवरारसैः । शताह्वाशूर्पपर्ण्यैलात्वक्प  
त्रैःश्लक्ष्णकलिकतैः ४ पक्कमृद्ग्रिनातैलंसर्ववातविकारजित् । सू  
तिकावालमर्मास्थिक्षतक्षीणेषुपूजितम् ५ ज्वरगुल्मग्रहोन्मा  
दमूत्राघातांत्रवृद्धिजित् । धन्वन्तरेरभिमतंयोनिरोगक्षयापहः ६

अर्थ—बलाकी जडका काथ ६ भाग, दूधके ५ भाग, इन्द्रजो, बेरकीछाल, कु-  
लत्थी, दशमूल, इनके काठिका १ भाग, तैल १४ मां भाग, मेदा महामेदा, देवदारु,  
मजीठ, कांकोली, सपेदचंदन, लालचंदन, सारिवा ( सारिवन् ) कूठ, तगर, जीवक,  
ऋषभ, सेंधानोन, उत्पलसारिवा, शिलार्जीत, वच, अगर, सांठ, असगंध, शतावर,  
क्षीरविदारी, मुलहठी, त्रिफला, बोल, सौंफ, शूर्पपर्णी, इलायची, तज और पत्रज  
ए प्रत्येक औषध दोदो मासे लेवे; सबको कूट चूर्णकर कल्कबनावे इसकल्कको तथा  
पूर्वोक्त बलाआदिके काठिको तैलमें मिलाय अग्रिपर चढावे। नीचे मंद २ अग्रिदेवे  
जब सबरस जलजावे केवल तैलमात्र शेषरहजावे तब उतारलेवे। यह तैल सर्ववात-  
केविकार प्रसूतकेरोग, बालककेरोग, मर्म, हड्डी, क्षत ( घाव ) इनरोगोंसे क्षीण,  
ज्वर, गुल्म, ग्रहोन्माद, मूत्राघात, अंत्रवृद्धि, इन सबरोगोंको यह दूरकरे। यह धन्व-  
न्तरिके अभिमतहै और सर्वयोनिके रोगोंको दूरकरनेवालाहै।

वस्तिद्वारेविपत्रायाःकुक्षिःप्रस्यन्दतेयदि ।

जन्मकालेततःशीघ्रंपाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ।

अर्थ—यदि गर्भिणीस्त्री प्रसूतकालमें मरजावे और उसका गर्भ जन्मकालमें वस्ति-  
द्वारमें आनेसे कूखफडके उससमय कुशलवैद्य शीघ्र कूखको चीर बालकको निकाल-  
लेवे। विशेषचिकित्सा आगे चिकित्सास्थानमें गर्भिणीके प्रकर्णमें कहैं।

प्रसंगवशाअन्नविपाकक्रियाकहतेहैं।

अथान्नविपाकक्रिया ।

हस्तविंशतिसम्माना कलापेशी विनिर्मिता । अन्नपाकक्रि

यार्थाच्च पाकनाडी प्रकीर्त्तिता १ ऊर्ध्वांशोमुखनामास्य अ  
धोऽशोगुदनामकः । कण्ठादामाशयंयावदन्ननाडीतिकथ्य  
ते २ ततश्चामाशयस्तस्मात्क्षुद्रान्त्रंस्थूलमन्त्रकम् । आमा  
शयात्समारभ्यभागप्रथमआन्त्रिकः ३ ग्रहणीचाग्न्यधिष्ठा  
नंबुधैराद्यैःप्रकीर्त्तिता । ततःपक्वाशयःप्रोक्तःपक्वान्नपरिधार  
णात् ४ स्थूलान्त्रस्याप्यधोभागः सरलोगुदसंज्ञकः । अन्न  
किट्टंमलंसर्वं बहिर्निःसारयत्ययम् ५ श्वासनाड्याःस्थिता  
पश्चादन्ननाड्यन्नवाहिनी । अधस्तात्कुण्डलीभूतानाडीचो  
दरमध्यगाद्कण्ठादधोगतिर्नाडीभित्त्वावक्षस्थलाश्रयाम् ।  
पेशीमुखद्वयवतीप्रविष्टेयमधोगुहाम् ७

अर्थ—अन्नपरिपाकार्य वीस हाथकी कला और पेशीद्वारानिर्मित एक एक परि-  
पाकनाडी इसमनुष्यकी देहमें वर्त्तमानहै, इसके ऊपरके भागको मुख और नीचेके  
भागको गुदाकहतेहैं । इसके भिन्नभिन्न अंश, रूप और क्रियासाधकता भेद, भिन्न-  
भिन्ननामोंसे प्रचलितहैं । सबके ऊपरका भाग मुख, उस्सेपरे कंठसे लेकर आमाश-  
यपर्यंत अन्ननाडी, उसकेआगे आमाशय, उस्सेपरे क्षुद्रान्त्र और पश्चात् स्थूलान्त्रहै ।  
आमाशयसे लेकर क्षुद्रान्त्रके आद्यभागको ग्रहणी अथवा अग्न्यधिष्ठाननाडी कहतेहैं ।  
उस्सेपरे पक्वाशय, अर्थात् आमाशय और ग्रहणी यहां अन्नपरिपाकहोकर इसीस्या-  
नमें उपस्थितहोताहै । स्थूलान्त्रके अधःस्थित संपूर्ण अंशको गुदाकहतेहैं । यह गु-  
ह्यद्वार अंतमेंहै । इसीकेद्वारा समस्तमल बाहरको गिरताहै ।

श्वासनाडीके पिछाडी अन्ननाडी है । चर्वितअन्न ग्रासादि इसीस्थानमें उपस्थित  
होतेही इसी नाडीके अधीन पेशियोंके द्वारा तत्क्षण आमाशयमें प्रेरित होता है ।  
पाकनाडीका उदरस्थभाग अतिशय कुण्डलाकृति है । यह मुखद्वयविशिष्ट पाकनाडी  
कंठदेशसे लेकर नीचेको आनकर वक्षस्थलस्थ पेशीकी भेदकर उदरमें प्रवेश करेहैं ।

अन्नंमुखार्पितंदन्तैश्चर्वितंमृणिकायुतम् । पिण्डीभूतंचान्न  
नाडीं प्रापितंपततिक्षणात् ८ आमाशययकृद्रक्षस्थलपेश्यो  
रधःस्थिते । तत्रप्रकृतितोऽत्यम्लंघूर्णितंप्रकृतेर्बलात् ९ क्षु-  
द्रान्तान्तमुहूर्त्तैर्नविशेत्सजलपङ्कवत् । आमाशयाद्दक्षिणतः  
क्षुद्रान्त्रंकुण्डलाकृति १० अस्यैवप्रथमोभागोग्रहणीतिनिगद्य

ते । असम्यग्जीर्णमन्नंतत्प्रविश्यग्रहणीकलाम् ११ आन्त्र  
केणरसेनात्रमिलितंपरिपच्यते । तदैवयकृतोनाड्यापित्तको  
शात्तदङ्गजात् १२ पीतस्तित्तःपित्तरसोग्रहणीमुपतिष्ठति ।  
अन्नपाकेरसोऽप्येषप्रधानंकारणंमतम् १३ पित्तमेवाग्निना  
अतन्मुनिभिःपरिकीर्तितम् । नकेवलंकालखण्डमन्नपाकप्र  
योजनम् १४ यतःशोणितसंशुद्धिविदधातिनिरन्तरम् ।  
औदरेदक्षिणेपार्श्वतदास्तेपर्शुकावृतम् १५ ऊर्ध्ववक्षस्थल  
स्थास्यापेक्ष्योधस्ताच्चवृक्कः । यकृद्भ्रतकारणंक्लोमविज्ञेयंपा  
ककर्मणि १६ प्लीहक्षुद्रान्त्रयोर्मध्ये मध्यास्तेदीर्घवर्षमतत् ।  
आमाशयोऽस्यपुरतोवर्ततेऽस्माद्दिनिःसृतः १७ रसोनाडी  
विशेषेणक्षुद्रान्त्रमुपतिष्ठति । प्लीहाप्यन्नस्यपचनेहेतुमुनि-  
भिरीरितः १८ वामतोऽधोगुहायांसवर्ततेपर्शुकावृतः । अरु  
णाभोऽग्रतश्छिद्रैर्बहुभिश्चसमाततः १९ ऊर्ध्ववक्षस्थलस्था  
स्यपेक्ष्यधोवामवृक्कः । स्रोतोयंत्रादधोपक्वंशेताभंसमन्न  
जम् २० शिरामार्गेण निखिलंप्रेरयन्तिहृदालयम् । आमा  
शयकलाचारिधमनीभिरपोऽखिलाः २१ गृह्णन्तेप्रायशःशेषा  
अन्त्रस्थाभिरनन्तरम् । आकृष्टद्रवमन्नंतत्किट्टशेषन्तुपङ्कव  
त् २२ स्थूलान्त्रंप्रविशेत्पश्चात्पुरीषंतन्निगद्यते । ततःप्राप्यगु  
दंकाले सर्वथासारवर्जितम् । तद्बहिर्निःसरेद्देहान्नित्यंकल्या  
णहेतवे ॥ २३ ॥

अर्थ—मुखमें दियाहुआ अन्नका ग्रास दातोंसे चर्वित और लाल ( लार ) से  
मिलकर तथा पिंडके समानहो अन्ननाडीमें प्राप्तहो तरक्षण आमाशयमें जाता है ।  
आमाशययंत्र उदरगद्दरमें यकृत् और वक्षस्थलस्थ पेशियोंके अधोभागमें स्थित है ।  
इसयंत्रमें भुक्त ( भोजनकराहुआ ) द्रव्यप्राप्तहोनेपर इसजगसे एकप्रकारका अति-  
तीव्रअम्लरस निकल भुक्तपदार्थके साथ मिलकर उसपदार्थको जीर्ण करता है अर्थात्  
पचाता है । आमाशयगतअन्न इसयंत्रकी स्वाभाविकशक्तिद्वारा क्रमागत चलायमान  
हो आमाशयिक आम्लरसके योगसे और इतस्ततो भ्रमणकरनेसे संपूर्ण भुक्तद्रव्य

कीचकेसदृश होजाता है, अर्थात् इसका कोईअंश पतला और कोईअंश गाढा रहता है । भुक्तान्न ऐसी अवस्थासे क्षुद्रांत्रोंमें प्रवेशकरे हैं । आमाशयके दक्षिणस्थ कुण्ड-लाकृति नाडीका नाम क्षुद्रांत्र है । यह आमाशयके दक्षिणसे लेकर कुछ दूर तिरछे-भावमें बाँईतरफ और अधोमुख आयकर अतिशय कुंडलीभूतहोगया है । इसका प्रमाण न्यूनाधिक १३॥ हाथहोवेगा इसका प्रथमभाग अर्थात् तिरछा और अधो-गामी अंशको ग्रहणी अथवा अग्र्यधिष्ठान कला कहते हैं, इससे आगेके अंशकों पकाशय कहते हैं । भुक्तद्रव्य, कुछ द्रवअवस्थाहोकर ग्रहणीमें उपस्थितहो आँतोंसे निकलेहुए एकप्रकारके रसकेसाथ मिलता है । इसीस्थानमें यकृत जो है सो नाडीविशेष-द्वारा तदंगस्थित पित्तकोशसे पित्तरसको लायकर भुक्तान्नकेसाथ मिलता है । पित्तरस पीलरंगका और तिक्त (कडुआ) स्वादवाला है । यही अन्नपरिपाक विषयमें मुख्यप्रधान कारण है । इसी पित्तरसको अग्रिकहते हैं । यकृत केवल अन्नपरिपाककाही साहाय्यकरता नहीं है किंतु यह रुधिरशोधनका एक प्रधानयंत्र है । यह यंत्र उदरके दक्षिणपार्श्वमें वक्षस्थल पेशिकेनीचे तथा दक्षिण वृक्कके ऊपर पर्शुकाओंसे आवृत होकर स्थित है । क्लोमनाक और एकयंत्र है वह नाडीविशेषद्वारा तदीयरस क्षुद्रांत्रोंमें प्राप्तहोकर अन्न-परिपाककार्यका निर्वाह करे हैं । यह यंत्र दीर्घाकृति प्लीहा और क्षुद्रांत्रोंके मध्यमें अवस्थित है । इसके सन्मुख आमाशय है । उक्तयंत्रोंके समान प्लीहाभी अन्नपचनेका कारण मुनीश्वरोंने कहा है । यह अरुणवर्ण तथा सन्मुखकी तरफ अनेक छिद्रोंसे व्याप्त है । यह उदरगह्वरके बाँईतरफ वक्षस्थलपेशिके नीचे और वामवृक्ककेऊपर पर्शुकाओंसे व्याप्तहोकर स्थित है । जलविशिष्ट पतले पदार्थ पानिसे आमाशयिक कलास्थित धमनीगणका जलप्राय समुदायभाग तत्क्षण खींचकर रुधिरकेसाथ मिल-ता है और अवशिष्टअंश यंत्रस्थधमनीगणोंसे खींचकर इसीजगे रहता है । २० के नंबरका चित्र देखो ।

भोजनकरा अन्न इसप्रकार पकहोकर श्वेतवर्ण द्रवपदार्थरूप परिणामको प्राप्तहो-ताहै इसद्रवका देहरक्षणोपयोगी सारांश स्रोतोनाडी समूहद्वारा खींचकर शिरामार्गही क्रमसे हृत्कोष्ठमें प्राप्तहो रुधिरके स्वरूपको धारणकर देहको रक्षा और पोषण कर-ताहै । अन्नद्रवकासारहीन कीचके समान जो अंश बचे उसको किट्ट और मल कहते हैं; वह स्थूलांत्रोंमें प्रवेश होता है फिर वही मल यथासमयमें गुदाकेद्वारा पुरीष-रूप हो देहके कल्याणार्थ नित्य बाहर निकलता है ।

अहोकुशलिनोधातुर्महिमाकोऽयमुल्बणः । विचित्रविधिनापक्व  
मन्नंसत्वानिजीवयेत् । अन्नप्रासोरदैःपिष्टोलालाक्लिन्नोन्ननाडि  
काम् । श्वासरंभ्रंनसोरन्भ्रंचातिक्रम्यमुखंविशेत् । निरुणद्धयु

पजिह्वासा सर्वथाश्वासनाडिकाम् । जिह्वाप्रयातिपश्चाच्च  
 पाकनाडीततोऽभितः । किञ्चिदूर्ध्वमुखीभूत्वापिंडंग्रसतियत्न  
 तः। आद्यरन्ध्रंप्रविष्टंचेदन्नंकासैर्विनिःसरेत् । द्वितीयगंक्षवथुना  
 क्षणेनप्रकृतेर्बलात् । अतो नैवातित्वरणंश्रेयःपानान्नकर्मणि ।  
 अन्नं वैप्राणिनां प्राणा इति श्रुतिनिदेशतः । तदन्नं विधिनासे  
 व्यमदोषंप्राणवर्धनम् । अन्नं रसोऽन्नमस्रञ्चमांसमन्नमपि स्मृतं  
 मेदोऽन्नमस्थ्यमन्नं मज्जा न्नं शुक्रमेव च । अन्नं बलमथौजोऽन्नमनोऽ  
 न्नमपि चोच्यते । चराचरेषु निखिलाः प्रजाश्चान्नसमुद्भवाः ।  
 अन्नपानविधिर्यश्च तत्काले चोचिता क्रिया । क्रियते विकृति  
 र्वत्ससंकीर्णैर्वर्गसंग्रहे ।

अर्थ—कैसी अद्भुत विधाताकी महिमा है कि, विचित्र विधिसे अन्नका परिपाक कर जीवोंको जीवाता है । अन्नका ग्रास दांतोंसे पीसकर और लाला ( लार ) से आर्द्र होकर पिंडरूप होकर श्वासके छिद्रको और नाकके पिछाडीके छिद्रको त्यागकर अन्ननाडीमें जायकर गिरता है । यह कार्य अतिकौशल्यतासे होता है । अन्नादिक जिससमय गलेसे नीचेको जाता है उससमय पूर्वोक्त श्वास आने जानेका छिद्र उपजिह्वा अर्थात् दूसरी छोटी जो जीभ है उससे टकजाता है, उसीप्रकार जिह्वा किञ्चित् पीछेको जाय और अन्ननाडी कुछ ऊपरको तथा आगेको आती है इससे नासिकाका पिछाडीका छिद्र रुकजाता है अतएव निर्विघ्न गलाधःकरण कार्य सिद्ध होता है । अन्नादिकका कणिका यदि देववश प्रथम छिद्रमें चलाजावे तो उसीसमय खासीसे बाहर निकलजाता है, इसीको धांसगई कहते हैं, यदि इस श्वासछिद्रमें गयाहुआ ग्रासादिक अटकजावे तो अवश्य प्राणनाशकी संभावना जाननी । और दूसरे छिद्रमें ग्रासादिक चलाजावे तो छींक आनेसे उसको निकालदेवे, इसीसे जल आदि पीनेमें और भोजनकरनेमें बहुत जल्दी न करना चाहिये । अन्नही प्राणियोंके प्राण है ऐसा वेदमें लिखा है अतएव उस अन्नको विधिपूर्वक सेवनकरे । दोषवर्जित और बलवर्द्धक अन्न भोजनकरना उचित है, अन्नही रस, अन्नही रुधिर, अन्नहीमांस, अन्नही मेद, अन्नहीहड्डी, अन्नहीमज्जा, इसीप्रकार अन्नही शुक्रको प्रगटकरे है । अन्नही बल, अन्नतेज उसीप्रकार अन्नही मन कहाता है, चराचर-जितनी प्रजा हैं सब अन्नसेही प्रगटहोती हैं । अन्नपानविषयक विधि और तात्कालिक कर्त्तव्य क्रिया इत्यादि समुदायका विषय आगे संकीर्ण वर्गमें कहेंगे ।

भ्रूणजन्मक्रम ।

पुंवीर्यं स्वलितंनार्याधरांविशतिरंहसा । ततोडिम्बाशयंयातित  
त्ररूपान्तरं व्रजेत् । एकीभूयसमायातो जरायुंडिम्बरेतसी । आ  
वरण्यवृतेतत्रवृद्धिंचेतोनिरन्तरम् । आदौबिन्दुनिभोजीवःशैतेग  
र्भाशयेस्त्रियाः । बदर्यास्थिनिभोमासाच्चतुरस्रस्ततोभवेत् । त्रि  
पक्षात्परतःस्याच्चद्विधाभिन्नकलायवत् । मासद्वयाच्चगर्भस्य  
भवेत्सर्वांगसंस्थितिः । ततःषण्मासपर्यंतंपुष्टिर्भवतिसंतत  
म् । सप्तमेमासिनयनंभवेत्प्रमुदितंध्रुवम् । मासाष्टमेभवेद्गर्भो  
ननुतिर्यगवस्थितः । अधोमूर्द्धोर्ध्वचरणोनवमेमासिजायते । कु  
क्षाबुषित्वाचनवमासान्नवदिनाधिकान् । भूमौततःपतेद्गर्भो द  
शमेप्रकृतेर्वशः ॥

अर्थ-रतिक्रियाद्वारा पुरुषकास्वलितवीर्य अतिवेगसे प्रथमस्त्रीके जरायुमें प्रवे-  
शकरे पीछे डिम्बाशयमें जायकर रूपान्तरको प्राप्तहोताहै । तदनंतर डिम्ब और  
शुक्र मिलकर जरायुमें प्रवेशकरेहै उसजगे एक आवरनीद्वारा आच्छादितहो निरंतर  
वृद्धिको प्राप्तहोताहै, जीव प्रथम स्त्रीके जरायुमें बिंदुतुल्य होकर रहताहै, एकमहिनेके  
अनंतर बेरकी गुठलीकेसमान और चोंकोन होताहै. तीनपक्ष (४५ दिन) के उपरांत  
दोखंडवाले मटरके सदृशहोकर रहताहै. दोमहिनेके पश्चात् गर्भकेमुख उत्पन्नहोय,  
किंतु नेत्रमुँदे रहतेहैं. तीनमहिनेमें भ्रूणके सर्वअंग प्रत्यंग स्फुटतरहोय, इसैउपरांत  
छःमहिनेपर्यंतक्रमसे उसकी वृद्धिहोतीहै. और इसीसमय यह बालकपेटमें फडक-  
ताहै, छःमहिनेके उपरांत बालकके केशोत्पत्तिहोतीहै । तथा सातवेंमहिनेमें बालकके  
नेत्र खुलतेहैं, और आठवेंमहिनेमें भ्रूण पेटमें तिरछाहोकर रहताहै, नवममहिनेमें  
बालकका नीचेको मस्तक और ऊपरको दोनों पैरकरके निस्सरणोन्मुख होताहै ।  
इसप्रकार बालक नोमहिने और नोदिन गर्भवासकरकेदशवे महिनेमें प्रकृतिवश पृ-  
थ्वीमें गिरताहै । २१ नम्बरका चित्रदेखो ।

गर्भणीकेप्रतिमासमेंउपचार ।

मधुकंशाकबीजंचपयस्यासुरदारुच । अश्मंतकस्तिलाः  
कृष्णास्ताम्रवल्लीशतावरी । वृक्षादनीपयस्याचलताचो

त्पलसारिवा । अनन्तासारिवारास्नापद्माचमधुयष्टिका ।  
 बृहतीद्वयकाश्मर्यः क्षीरिशृंगत्वचोघृतम् । पृश्निपर्णीबला  
 शिशुःस्वदंष्ट्रामधुपर्णिका । शृंगाटकं विसंद्राक्षाकसेरुमधुकं  
 सिता । सप्तैतान्पयसायोगानर्द्धश्लोकसमापनान् । क्रमा  
 त्सप्तसुमासेषुगर्भैस्त्रवतियोजयेत् ।

अर्थ—मधुकादि द्रव्योपलक्षित आधे २ श्लोकमें समाप्ति होनेवाले सातयोगोंको गर्भस्त्रावमें क्रमसे दूधके साथ देनेचाहिये । १ मुलहटी, शाकम्बीज जीवक और देवदारु । २ अश्मंतक, कालेतिल, ताम्रबल्ली, शतावर । ३ वृक्षादनी पयस्या, लता, कमलगट्टा, और सारिवा । ४ अनन्ता, सारिवा, रास्ना, पद्मा, मुलहटी । ५ दोनोकटेरी, कंभारी, वटादिक्षीरवृक्षोंकीडाली, और छाल, तथा घृत । ६ पृष्ठिपर्णी, वरिआरा, सहंजना, गोखरू, मधुपर्णिका । ७ सिंघाडे, विस, दाख, कसेरू, मूलहटी, और मिश्री, इसप्रकार ए सात योग कहें ।

दूसरेउपचार ।

कपित्थविल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदग्धजैः।मलैःशृतं प्रयुंजीतक्षी  
 रंमासेतथाष्टमे । नवमेमधुकानन्तापयस्यासारिवापिबेत् । यो  
 जयेद्दशमेमासिसिद्धंक्षीरंपयस्यया । अथवायष्टिमधुकनागरा  
 मरदारुभिः ।

अर्थ—कैथ, वेल, कटेरी, पटोलपत्र, इक्षु, निदग्धिका, इनकी जडको दूधमें औटाय उस दूधको आठवे महिने पिवावे । मुलहटी, अनन्ता, कांकोली, सारिवा इनको दूधमें, औटायकरनोमेमहिनेमें पिवावे । और दसवे महिनेमें कांकोलीको दूधमें औटायकर पिवावे । अथवा मुलहटी, सौंठ, और देवदारु इनको दूधमें औटायकर उसदूधको दशमें महिने पिलाना चाहिये ।

मर्यादासेउपरांतगर्भधारणकेदोष ।

निवृत्तप्रसवायास्तुपुनःषड्भ्योवर्षेभ्यञ्ज  
 ध्वं प्रसवमानायाःकुमारोल्पायुर्भवति ।

अर्थ—निवृत्तगर्भास्त्री फिर छःवर्षके अनंतर प्रसवहानेसे उसकी संतान अल्पायु होतीहै । इसीसे छःवर्षके अनंतर स्त्रीको निवृत्तगर्भा कहतेहैं । इसजगे वमनादिक्रिया

गर्भव्याघातकहै अतएव उसका निषेधहै परंतु प्राणघातक व्याधीकेविषे मृदुद्रव्य बराबर प्रतिप्रसवमें देनीचाहिये सोकहतेहैं ॥

रोगविशेषकरकेगर्भिणीकोवमनक्रियाकहतेहैं.

अथगर्भिणीव्याध्युत्पत्तावत्ययेच्छर्दयेत् ।

अर्थ—गर्भिणीके प्राणनाशक रोगहोनेसैं वमनकरावे और मधुर, अम्लअन्नकरके अनुलोमक्रियाकरे, तथा संशमनीय मृदु औषध देनी चाहिये, तथा मृदुवीर्य, मधुरप्राय और गर्भकेअनुकूल ऐसे अन्नपान गर्भिणीको देने चाहिये तथा गर्भकेविरुद्ध भी क्रिया मृदुप्राय यथायोग करनीचाहिये ।

गर्भिणीके आहारकानियम ।

सौवर्णसुकृतंचूर्णं कुष्ठमधुघृतं वचा । मत्स्याक्षिकाशंखपुष्पी  
मधुसर्पिश्चकाञ्चनम् । अर्कपुष्पीघृतंशौद्रंचूर्णितंकनकंवचा ।  
हेमचूर्णानिकैट्यः श्वेतदूर्वाघृतंमधु । चत्वारोभिहिताः प्रा  
श्याःश्लोकार्धेषुचतुर्ष्वपि । कुमाराणां वपुर्मैधाबलपुष्टिवि ।  
वर्धनाः ।

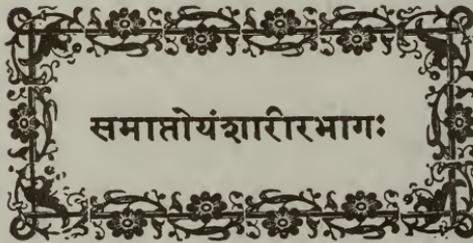
अर्थ—सोनेकाचूर्ण, कूठ, मुलहठी, वच इन सब औषधोंको घृतमें उवालेके चटावे, यह १ प्रयोग हुआ । ब्राह्मी, शंखपुष्पी, घृत, सहत और सुवर्णकेवर्क यह दूसराप्रयोग । अर्कपुष्पी, घृत, सहत, सुवर्णचूर्ण, और वच, यह तिसरा प्रयोग है । तथा सुवर्णचूर्ण, कटुनिंब, सपेददूब घृत और सहत यह चतुर्थ प्रयोगहै । ए आधेआधे श्लोकमें चारप्रयोग कहेहैं । ये प्रयोग १ वर्षपर्यंत देने चाहिये । इसकरके गर्भकी देह, बुद्धि, बल, पुष्टि, इनकी वृद्धि होवे । किसीकिमतमें १२ वर्षपर्यंत देना ऐसा लिखाहै । परंतु ये औषध बालकको चटाना चाहिये ऐसा कोई कहतेहैं ।

बालकोंकोऔषधप्रमाणविश्वामित्रोक्तकहतेहैं.

विडङ्गफलमात्रन्तुजातमात्रस्यभेषजम् । एतेनैवप्रमाणेनमा  
सिमासिप्रवर्धितः । कोलास्थिमात्रंक्षिरादेर्दद्याद्भैषज्यकोविदः ।  
इति श्रीसौश्रुतशारीरेदशमोऽध्यायः १० ॥ समाप्तोऽयं शारीरभागः

अर्थ—तत्काल हुए बालकको १ वायविडंग प्रमाण औषधी देनीचाहिये, तदनंतर यह मात्रा प्रतिमास एकएक वायविडंगके समान बढ़ानी चाहिये तथा जब-तक बालक दूध पीतारहे उसको बेरकी गुठलीके समान औषधिदेवे । और जब अन्न खाने लगे तब गूलरकेसमानमात्रा देनीचाहिये ।

इति श्रीमाथुरकन्हैयालालतनयदत्तरामनिर्मिते बृहन्निघण्टुरत्नाकरे भाषाटीका-  
विभूषिते शारीरस्थानं प्रथमं पूर्णतामियात् ।



## अथ शस्त्रचिकित्साप्रारम्भः ।

अब शस्त्रचिकित्सा लिखनेका यह प्रयोजन है कि, मूढगर्भके निकालनेमें मंडलां-गुलिशस्त्रोंको लिखा है; दूसरे शिरामोक्ष तथा शारीरकमें विशेषकरके शस्त्रचिकित्साकी प्रत्येक समय आवश्यकता रहतीहैं इसीसे विनाशस्त्रचिकित्साके जाने वैद्यको शस्त्रकर्म करना सर्वथा वर्जितहै. अतएव शस्त्रचिकित्साका प्रारंभ करतेहैं ।

### अथातोअग्रोपहरणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब अग्रोपहरणीयाध्यायकी व्याख्याकरेंगे. ( छेद्यादि कर्मके प्रथम यंत्रादि उपस्करको प्रधानकरके जो अध्याय कहीजावे उसको अग्रोपहरणीय कहतेहैं ) ।

#### त्रिविधकर्म.

त्रिविधं कर्म पूर्वकर्म प्रधानकर्म पश्चात्कर्मैतितद्व्याधिप्रतिप्रत्युपदेक्ष्यामः ॥

अर्थ—कर्म तीन प्रकारका है. १ पूर्वकर्म ( लंघन विरेचनादि. ) २ प्रधानकर्म ( पाटनरोपणादि. ) ३ पश्चात्कर्म ( बलवर्णाग्निजननादि. ) ए तीनों प्रकारके कर्म रोगके प्रति यथास्थलमें लिखेंगे ( इसजगे ग्रंथबढनेके भयसे नहींकहे. )

अस्मिच्छास्त्रेशस्त्रकर्मप्राधान्याच्छस्त्रकर्मैवतावत्पूर्वमुपदेक्ष्यामस्तत्सम्भारांश्च ।

अर्थ—इसशास्त्रमें शस्त्रकर्मको प्रधान होनेसे प्रथम शस्त्रकर्मकोही कहेंगे, और शस्त्रकर्मके उपस्कर ( सामग्री ) कोभी कहेंगे ।

शस्त्रकर्मकोअष्टविधत्व ।

तच्चशस्त्रकर्माष्टविधम् । तद्यथा । छेद्यं भेद्यं लेख्यं वेध्यमेष्यमाहार्यं विस्त्राव्यं सीव्यमिति ॥

अर्थ—वह शस्त्रकर्म आठप्रकारका है. छेद्य, भेद्य, लेख्य, वेध्य, एष्य, आहार्य, विस्त्राव्य, और सीव्य । तहां बवासीरआदि छेद्य, विद्रधिआदिभेद्य, रोहिणीआदि लेखनीय, शिरा ( नस ) आदि छोटेशस्त्रसे वेध्य, नाडीआदि एषणीय, शर्करादि रोग आहरणीय, विद्रधिआदि रोग विस्त्रावणीय, और भेद समुत्थादि रोग सीव्यकर्म करने योग्यहै ।

## शस्त्रकर्मके पूर्वकर्त्तव्य

अतोऽन्यतमं कर्म चिकीर्षतावैद्येन पूर्वमेवोपकल्पयित  
व्यानि । तद्यथा । यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निशलाकाशृङ्गजलौका  
लाबूजाम्बवोष्ठपिचुप्तोतसूत्रपट्टमधुघृतवसापयस्तैलतर्प  
णकषायलेपनकल्कव्यजनशीतोष्णोदककटाहादीनिप  
रिकर्मिणश्च स्निग्धाः स्थिराबलवन्तः ।

अर्थ—छेद्य भेद्यादि कर्ममें किसीकर्मके करनेवाले वैद्यको प्रथम इतनीविस्त  
अपनेपास रखलेनी चाहिये । सर्वप्रकारके यंत्र, शस्त्र, खार, अग्नि, सलाई, सिंगी,  
जोख, तुंबी, जाम्बवोष्ठ ( जामनके फलसदृश मुखका अग्रभागहो ऐसी कालेपत्थर-  
की लंबीसलाई, ) रूईकेगाले, खीपड़ा, सूत, पत्ते, बांधनेको कपड़ेकी पट्टी, शहत,  
घृत, चर्बी, दूध, तेल, तर्पण ( जलसंयुक्तसत्तूदूधआदि ) कषाय ( औषधसंयुक्त  
औटायजल ) लेप, कल्क, पंखा, शीतल और गरम जल, लोहका कटाव, आदिश-  
ब्दसे [ मट्टीके कलश, थाली, सोनेकेवास्ते शय्या और आसनआदि जानने ]  
केवल यंत्रादिकही पास न रखे किंतु प्रीतवान्, स्थिर और बली परिचारक  
( सेवक ) भी रखने चाहिये ।

शस्त्रकर्म ( चीराआदि ) लगानेकीविधि ।

ततःप्रशस्तेषुतिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषुदध्यक्षतान्नपानरत्नै  
ग्निविप्रान्भिषजश्चार्चयित्वाकृतबलिमङ्गलस्वस्तिवाचनंल  
घुभुक्तवन्तंप्राङ्मुखमातुरमुपवेश्ययन्त्रयित्वाप्रत्यङ्मुखो  
वैद्योमर्मशिरास्नायुसन्ध्यस्थिधमनीः परिहरन्ननुलोमश  
स्त्रनिदध्यादापूयदर्शनात् सकृदेवापहरेच्छस्त्रमाशुच ।

अर्थ—शुभ तिथि करण मुहूर्त्त नक्षत्रमें दही, चावल, अन्न, पान और रत्नोंसे  
अग्नि, ब्राह्मण, वैद्य इनका पूजनकर बलि ( भेट ) मङ्गल ( नृत्यगीत आदि ) स्व-  
स्तिवाचन ( पुण्याहवाचनआदि ) को करके अल्पभोजनकरा ऐसे रोगीको पूर्वमुख  
बैठाल छेद्यादि कर्मकरे, और वैद्यआप पश्चिममुख बैठे । पीछे मर्मस्थान, नस, नाडी,  
संधी, हड्डी, और धमनी इनको बचायकर तथा जिधरके बाल पड़ेहो उसी तरफ  
नस्तर लगावे [ क्योंकि विपरीतलगानेसे शस्त्रकी धार मारीजातीहै, और शस्त्रभौं-  
तरा होजाताहै तथा पीडाहोतीहै । ] चीराआदिदेनेमें वैद्य अत्यंतसावधानीके साथ  
जबतक राध न निकले तहांतक शस्त्रको भीतर प्रवेशकरे, तथा इसरीतिसे चीरादेवे कि

एकहीवार शस्त्रलगानेसे सब राध निकलजावे और बहुतजल्दी चीरादेके शस्त्रको हटायलेवे । \* किसीकी यह संमतैहैकि शस्त्रकर्मके पूर्व मिष्टान्न भोजन करावे. यद्यपि मिष्टान्न व्रणवाले रोगीको अपध्यहै तथापि बलवान् होनेके निमित्त देना चाहिये । जो मद्यपानके अधिकारीहै उनको शस्त्रकी पीडा सहनेकेलिये तीक्ष्णमद्य पिलाना चाहिये । अन्नकेसंयोगसे रोगी मूर्च्छित नहीं होता ।

महत्स्वपिचपाकेषुद्रचगुलं त्र्यंगुलं वा शस्त्रपदमुक्तम्  
तत्रायतो विशालः समः सुविभक्त इति व्रणगुणाः ।

अर्थ—अत्यंत पाकवालेभी फोडा फुंसीआदिमें दोअंगुल अथवा तीन अंगुल चीरा-देना कहाहै । अब उसके गुण कहतेहैं कि, जो व्रण ( चीरा ) लंबा, विस्तृत और समान तथा पृथक् २ हो ए उत्तमव्रणके गुणहैं ।

आयतश्च विशालश्च सुविभक्तो निराश्रयः ॥

प्रातःकालकृतश्चापि व्रणः कर्मणि शस्यते ॥ १ ॥

शौर्यमाशुक्रियाशस्त्रतैक्ष्ण्यमस्वेदवेपथु ॥

असंमोहश्च वैद्यस्य शस्त्रकर्मणि शस्यते ॥ २ ॥

अर्थ—लंबा विशाल और जिसके अवयव पृथक् २ हों और जो व्रण मर्मोंके आश्रित नहो अर्थात् मर्मोंसे पृथक्हो, तथा प्रातःकालमें शस्त्रकर्म करा गयाहो ऐसा व्रण शस्त्रकर्ममें प्रसंशनीयहै, [ प्रातःकालके कहनेसे बालवृद्धका परित्यागहै, अर्थात् बालवृद्धोंके शस्त्रकर्म न करे. अथवा प्रातःकालसे समय लेना चाहिये, जैसे शीतकालमें अग्निसाध्यव्रणका प्रातःकालहै, और ग्रीष्मऋतुमें उसका अप्रातःकालहै. कोई आचार्य प्रातःकालके स्थानमें ( युक्ताकालकृति ) ऐसा पाठ कहतेहैं तहां भलेप्रकार पाक होगयाहो ऐसा अर्थ जानना ]

अब वैद्यके शस्त्रकर्ममें कौन २ गुणहोने चाहिये सो कहतेहैं कि, निर्भयहो शीघ्रक्रिया ( चीरनेफाडनेमें शीघ्रकारी ) जिसके शस्त्र तीक्ष्ण ( पैने ) हो शस्त्रकर्म करनेके समय पसीने, कंप और मोहजिस्को न होवे । तथा पक्क अपक्क व्रणके जाननेमें और उसकी क्रियाकरनेमें कुशलहो इत्यादि गुणसंपन्न वैद्य शस्त्रकर्मकरनेमें प्रसंशनीयहै ।

\* प्राक्शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदन्नमातुरम् । पानपंपाययेन्मद्यं तीक्ष्णं यो वेदनाक्षमः ॥ १ ॥ नमूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते । अन्यन्नमूढगर्भाश्मसुखरोगोदरातुरात् ॥ २ ॥

## एकेनवाव्रणेनाशुध्यमानेनान्त राबुद्ध्यावेक्ष्यापरानव्रणान्कुर्यात् ।

अर्थ—कुशलवैद्य एकव्रणकेशुद्धहोनेसे अपनी बुद्धिसे उसको देख उसीप्रकार और व्रणोंको शुद्धकरे, अर्थात् जिसरीतिसे एकफोडामें चीरादेकर शुद्ध और अच्छाकरा उसीप्रकार और भी व्रणोंको शुद्ध और अच्छाकरे ।

यतोयतोगतिविद्यादुत्सङ्गोयत्रयत्रच ।  
तत्रतत्रव्रणंकुर्याद्यथादोषो न तिष्ठति ॥

अर्थ—जिस २ स्थानमें गति ( नाडी आदिकी गतिहो ) और जिस २ स्थानमें दुष्टरुधिरका समूहहो उसी २ स्थानमें चीरादेना उचितहै । जैसे दोष ( राध ) अथवा दोषशब्दसे वातादिक शुद्धहोवे ऐसा जानना ।

तत्रभ्रूगण्डशंखललाटाक्षिपुटौष्ठदन्तवे  
षट्कक्षाकुक्षिवङ्क्षणेषुतिर्य्यक्छेदउक्तः ।

अर्थ—तहां, भौंह, कपोल, कनपटी, ललाट, पलक, होठ, मसूढे, कूख, वंक्षण, ( ऊरुकीसंधी ) इनमें तिरछा चीरा लगना चाहिये ।

चन्द्रमण्डलवच्छेदान्पाणिपादेषुकारयेत् ।  
अर्द्धचन्द्राकृतींश्चापिगुदेमेढ्रेचबुद्धिमान् ।

अर्थ—हाथपैरोंमें चन्द्रमण्डलके सदृश गोल चीरादेवे; और गुदा, मेढू (भगलिंग) में बुद्धिमानवैद्यको अर्द्धचंद्रके समान चीरादेना उचितहै ।

विपरीतचीरादेनेकेउपद्रव ।

अन्यथातुशिरास्नायुच्छेदनादतिमात्रवेदना  
चिराद्घ्नसंरोहोमांसकन्दीप्रादुर्भावश्चेति ।

अर्थ—विपरीत शिरास्नायुके छेदनेसे घोरपीडा और बहुकालमें व्रण ( घाव ) का संरोह कहिये भरना होताहै । तथा मांसकंदी कहिये कंदके सदृश मांसांकुर प्रगटहोतेहैं ।

मूढगर्भोदराशौऽश्मरीभगन्दरमुखरोगेष्वभुक्तवतः  
कर्मकुर्वीत । ततःशस्त्रमवचार्यशीताभिरद्भिरातुर  
माश्वस्यसमन्तात्परिपीड्यांगुल्याव्रणमभिमृज्य

## प्रक्षाल्यकषायेणप्लोतेनोदकमादायतिलकल्कमधु- सर्पिःप्रगाढमौषधयुक्तांवर्तिप्रणिदध्यात् ।

अर्थ—पूर्व यह कहआएहैं कि, भोजनोत्तर शस्त्रकर्मकरे परंतु अब कहतेहैं कि, इतनेरोगोंमें भोजनके पूर्व शस्त्रकर्म करे । मूढगर्भ, उदररोग, वषासीर, पथरी, भगंदर और मुखरोग, इनमें भोजनके प्रथम शस्त्रकर्म कर्त्तव्यहै । ) कदाचित् उत्तररोगोंमें अज्ञानवश ही भोजनोत्तर शस्त्रकर्म करेतो कष्टहो । वातकोप और मरणहोवे । और मुखरोगमें आहारकी उंगली डारकर जो वमनकरनाहै सो, घातकारकहै । ) शस्त्रकर्मके पश्चात् रोगीको शीतलजलसे सावधान करके राध निकालनेके अर्थ व्रणकी चारोंओरसे दबावे जैसे उसके भीतरकी निःशेष राध निकलजावे. तदनंतर उसको काथके जलमें भीगेहुए वस्त्रखंडसे धोयडाले पीछे तिलकल्क, सहत, घृत और औषधसंयुक्त बत्ती उसव्रणमें प्रवेशकरे ।

ततःकल्केनाच्छाद्यनातिस्निग्धानातिरूक्षांघनां  
कवलिकांदत्त्वावस्त्रपट्टेनबध्नीयाद्वेदनारक्षोघ्नैर्धूपै  
र्धूपयेद्रक्षोघ्नैश्चमन्त्रैरक्षांकुर्वीत । ततोयुग्गुल्बगु  
रुसर्जरसवचागौरसर्षपचूर्णैर्लवणानिम्बपत्रव्यामि  
श्रैराज्ययुक्तैर्धूपैर्धूपयेत् ।

अर्थ—तदनंतर तिलकल्कसे उसको आच्छादनकर उसके ऊपर न अत्यंत चिकनी और न बहुतरूखी ऐसी मोटी कवलिका ( जो भग्नेरोगमें टाक और गूलरकी छालपत्ते आदिसे बनतीहै ) देकर कपडेकी पट्टीसे बांधदेवे, पश्चात् पीडाकी नाशक ( हींग और लवणादि ) तथा राक्षसादिकोंके नाशक ( यवसरसोआदि ) धूपकी धूनीदेवे- और राक्षसादिकके नाशक मंत्रोंसे रक्षाकरे; तदनंतर गूगल, अगर, राल, वच, सपेदसरसों इनका चूर्णकर नीमकेपत्ते, नोन और घृतमिली ऐसे धूपसे धूनीदेवे, ( व्रणमेंही इस धूनीको न देवे किंतु जिसपर रोगी शयनकरे उस शैत्याकी दुर्गंध दूरकरनेको तथा नीलेरंगकी मखियोंके दूरकरनेको धूनीदेवे, क्योंकि व्रणपर मक्खी बैठनेसे उसमें कृमी पडजातीहैं । अतएव घरमेंभी धूनीदेवे इसधूनीसे मच्छरभी नष्टहोतेहैं । )

आज्यशेषेणचास्यप्राणान्समालभेत । उदकु-  
म्भाच्चापोगृहीत्वाप्रोक्षयन्रक्षाकर्मकुर्यात्तद्वक्ष्यामः ।

अर्थ—धूनीदेनेके अनंतर धूनीदेनेसे बचेहुए घृतसे हृदयादिकोंको तर्पणकरे । तदनंतर वैद्य जलके कलशसे प्रोक्षण कर्त्ताहुआ रक्षाकर्म करे ।

अथरक्षाविधानमन्त्राः ।

कृत्यानांप्रतिघातार्थंतथारक्षोभयस्यच । रक्षाकर्मकरिष्यामिब्रह्मातदनुमन्यताम् १ नागाःपिशाचागन्धर्वाःपितरोयक्षराक्षसाः अभिद्रवन्तियेयेत्वांब्रह्माद्याघ्नन्तुतान्सदा २ पृथिव्यामन्तरिक्षेचयेचरन्तिनिशाचराः । दिक्षुवास्तुनिवासाश्चपान्तुत्वांतेनमस्कृताः ३ पान्तुत्वांमुनयोब्राह्म्यादिव्याराजर्षयस्तथा । पर्वताश्चैव नद्यश्च सर्वाः सर्वेऽपिसागराः ४ अग्नीरक्षतुत्वज्जिह्वांप्राणान् वायुस्तथैवच । सोमोव्यानमपानन्तेपर्जन्यःपरिरक्षतु ५ उदानं विद्युतःपान्तुसमानंस्तनयित्त्वः । बलमिन्द्रोबलपतिर्मनुर्मन्ये मर्तितथा ६ कामांस्तेपांतुगंधर्वाःसत्वमिन्द्रोऽभिरक्षतु । प्रज्ञांतेवरुणोराजासमुद्रोनाभिमण्डलम् ७ चक्षुःसूर्योदिशःश्रोत्रेचन्द्रमाःपातुतेमनः । नक्षत्राणिसदारूपंछायांपान्तुनिशास्तव ८ रेतस्त्वाप्याययन्त्वापोरोमाण्यौषधयस्तथा । आकाशंखानितेपातुविष्णुस्तवपराक्रमम् । पौरुषंपुरुषश्रेष्ठोब्रह्मात्मानंध्रुवौध्रुवौ । एतादेहेविशेषेणतवनित्याहिदेवताः १० एतास्त्वांसततंपान्तुदीर्घमायुरवाप्नुहि । स्वस्तितेभगवान्ब्रह्मास्वस्तिदेवाश्चकुर्वताम् ११ स्वस्तितेचन्द्रसूर्यौचस्वस्तिनारदपर्वतौ । स्वस्त्यग्निश्चैववायुश्चस्वस्तिदेवामहेन्द्रगाः १२ पितामहकृतारक्षास्वस्त्यायुर्वर्द्धतांतव । ईतयस्तेप्रशाम्यन्तुसदाभवगतव्यथः । इतिस्वाहा १३ एतैर्वेदात्मकैर्मन्त्रैःकृत्याव्याधिविनाशनैः । मयैवंकृतरक्षस्त्वंदीर्घमायुरवाप्नुहि ।

अर्थ—ए वेदात्मक १४ श्लोकसे वैद्य रोगीकी रक्षाकरे ।

रक्षाकेअनंतरकृत्य ।

ततःकृतरक्षमातुरमागारंप्रवेश्याचारिकमादिशेत् । ततस्तृ

तीयेऽहनि विमुच्यैवबध्नीयाद्रस्रपट्टेन । नचैनन्तरमाणोऽप  
रेद्युमौक्षयेत् द्वितीयदिवसेपरिमोक्षणाद्विग्रथितोव्रणश्चिरा  
दुपसंरोहतितीव्ररुजश्चभवतिततऊर्ध्वदोषकालबलादीनवे  
क्ष्यकषायालेपनबन्धाहाराचारान्विदध्यात् । नचैनन्तरमा  
णः सान्तदोषरोपयेत्सचारान्विदध्यात्सह्यल्पेनाप्यपचा  
रेणाभ्यन्तरमुत्सङ्गकृत्वाभूयोऽपिविकरोति ।

अर्थ—इसप्रकार रोगीकी रक्षाकर उसको घरके भीतर प्रवेशकरके आचारिक  
( आहार विहार जो व्रणितोपासनीयाध्यायमें कहेहैं ) उनको कहे अर्थात् बहुतडो-  
लना दुष्टभोजनआदि जो अहितहैं उनको तथा जो रोगीको हितकारी आहारविहारहै  
उनको कहिदेवे, तदनंतर तीसरे दिन आहारविहारसे निवृत्त करके और व्रणकी औ-  
षधोंके काटेसे घोंयकर कपडेकी पट्टीसे फिर बांधदेवे, परंतु जल्दीसे दूसरेदिनही  
इसव्रणको न खोलडाले । कारण यहहै कि, दूसरे दिन व्रण खोलनेसे इसमें गांठरह-  
जातीहै. और घाव बहुतदिनोंमें पुरताहै, तथा तीव्रपीडा होतीहै । पीछे चौथेदिन  
दोष, काल और रोगीके बलका विचार करके बुद्धिमान्पुरुष काढा, लेपन, बंधन  
आहार, विहार आचार आदिकरे परंतु जिसके भीतर दोष होवे उसव्रणको कदाचित्  
रोपण न करे । कारण कि, वह थोडेसेभी अपथ्य करनेसे वह भीतरसे बढकर फिरभी  
विकारकरे है ।

तस्मादन्तर्बहिश्चैवसुशुद्धंरोपयेद्व्रणम् । रूढेप्यजीर्णव्यायाम  
व्यवायादीन्विवर्जयेत्।हर्षक्रोधंभयश्चापियावदास्थैर्यसम्भ  
वात् ॥ हेमन्तेशिशिरेचैववसन्तेचापिमोक्षयेत् । त्र्यहाद्य  
हाच्छरद्रीष्मवर्षास्वपिचबुद्धिमान्।अतिपातिषुरोगेषुनेच्छे  
द्विधिमिमंभिषक्।प्रदीप्तागारवच्छीघ्रंतत्रकुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।

अर्थ—पूर्वोक्त कारणोंसे वैद्य अर्भ्यंतर और बाह्य शुद्ध ( रस, स्थान, वर्ण गंध ए  
चारों जिस्के शुद्ध होवे ऐसे ) व्रणका रोपण करे और व्रण भरभीजावे तथापि जबतक वो  
स्थिर न होवे तावत्कालपर्यंत अजीर्ण, दंडकसरत, स्त्रीसंग इत्यादि कर्मोंको तथा  
हर्ष, क्रोध, भय, इन्को त्याग देवे, कोई शंकाकरे कि, सदैव तीसरे २ दिन फस्तखो-

१ अंतरशुद्धिलक्षणं यातादिवेदनापगमः ।

२ बहिःशुद्धिलक्षणं विशुद्धवर्णस्त्रावसंस्थानगंधाश्चत्वार इति ।

ले कि कभी बीचमें भी खोले, इसवास्ते कहतेहैं कि, हेमंत, शिशिर और वसंत इन ऋतुओंमें तीसरे २ दिन शिरामोक्ष ( फस्त ) खोले ( कारण यहहै कि इन ऋतुओंमें अधिक शीतपडनेसे शीघ्रपाकका भय नहीं है ) और शरद, ग्रीष्म, तथा वर्षा ऋतुमें दूसरे २ दिन फस्त खोले कारण यह है कि इनऋतुओंमें गरमी अधिक पडनेसे शीघ्रपाकका भय रहता है । ( वर्षास्वपिच ) इसपदमें चकार धरनेका यह प्रयोजन है कि यह नियम पैत्तिक व्रणमें नहीं है अर्थात् पैत्तिकव्रणको हेमंत शिशिर ऋतुमें यथानियम मोक्षणकरे; अपिशब्दसे वैशाखको गरम होनेसे दूसरे दिनभी मोक्षणकरे । अथवा पैत्तिक व्रणको ग्रीष्मऋतुमें दोवार खोले और बंदकरे, परंतु इसका नियम नहीं है, बुद्धिमान् वैद्य अपनी बुद्धिके अनुसार रक्तमोक्षणकरे ।

अब कहते हैं कि यह पूर्वोक्तविधि वैद्यको शीघ्र बढनेवाले रोगोंमें मंतव्य नहीं है क्योंकि जैसे जलतेहुए घरको अनेकउपायोंसे शीघ्रशांति करते हैं उसीप्रकार शीघ्र-बढनेवाले रोगोंकी शीघ्र चिकित्सा करे ।

शस्त्रजनितपीडामेंचिकित्सा ।

यावेदनाशस्त्रनिपातजाता तीव्राशरीरंप्रदुनोतिजन्तोः ।

घृतेनसाशांतिमुपैतिसिक्ता कोष्णेनयष्टीमधुकान्वितेन ॥

अर्थ—जो तीव्रपीडा शस्त्रके लगनेसे होती है वो इसप्राणिके देहको अत्यंत दुःख-देती है, वह मुलहटी, महुआ, युक्त गरम घृतके सेकनेसे शांति होती है ।

इति श्रीमदयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेपंचदशस्तरंगः ॥ २५ ॥

यंत्राध्यायः ।

अथातोयन्त्रविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः ॥

अब यंत्रकल्पनाध्याय अथवा यंत्रभेदाध्यायकोकहेंगे ॥

यंत्रोंकीसंख्या ।

यंत्रशतमेकोत्तरं । तत्रहस्तमेवप्रधानतमंयन्त्रा

णामवगच्छ । किंकारणं? तस्माद्धस्ताहृतेयं

त्राणामप्रवृत्तिरेवतदधीनत्वाद्यन्त्रकर्मणाम् ।

अर्थ—एकसौएक यंत्रहैं उनयंत्रोंमें हस्त ( हाथ ) को प्रधानता है, कारणकि, हाथके विना सब यंत्रोंकी अप्रवृत्ति है; अर्थात् विनाहाथके यंत्रोंसे कोई कार्य नहीं होता है । अतएव यंत्रकर्मोंको तदधीनत्व है ।

यंत्रव्यापिलक्षणपरिभाषाको कहते हैं ।

तत्रमनःशरीराबाधकराणिशल्यानि, तेषामाहरणो  
पायोनत्राणि । तानिषट्प्रकाराणि । तद्यथा—स्व  
स्तिकयन्त्राणिसन्दंशयन्त्राणितालयन्त्राणिनाडीयं  
त्राणिशलाकायन्त्राणियन्त्राणिचेति ।

अर्थ—तहां मन और शरीरको पीडाकरनेवाले शल्य ( कांटेखोबरेआदि ) हैं।  
उनके दूरकरनेका उपाय यन्त्र है । वो यंत्र छःप्रकारके हैं, जैसे १ स्वस्तिकयंत्र,  
२ संदंशयंत्र ३ तालयंत्र ४ नाडीयंत्र ५ शलाकायंत्र और ६ उपयंत्र। इनमें स्व-  
स्तिकयंत्र सांथियेके, समान चार अवयववाले होते हैं। संदंशयंत्र संडासीके आकार  
होते हैं; इसीप्रकार औरोंकीभी उनके नामसे आकृति जाननी चाहिये ।

स्वस्तिकादियंत्रोंकीसंख्या ।

तत्रचतुर्विंशतिःस्वस्तिकयन्त्राणिद्वेसंदंशयंत्रेद्वेएवतालयन्त्रेर्विं  
शतिर्नाड्यःअष्टाविंशतिःशलाकाःपञ्चविंशतिरुपयन्त्राणि ।

अर्थ—पूर्वोक्त १०१ यंत्रसंख्याको दिखाते हैं तहां २४ स्वस्तिकयंत्र हैं, २ सं-  
दंशयंत्रहैं, २ तालयंत्र है २० नाडीयंत्रहैं, २८ शलाकायंत्रहैं और २५ उपयंत्रहैं,  
सबके जोडनेसे १०१ यंत्रहोतेहैं । [ द्वेएवतालयंत्रे ] इसमें एवशब्दके धरनेसे यह  
प्रयोजनहै कि शल्यकी आकृति देखकर स्वस्तिकादि यंत्र अधिकभी बनाने चाहिये ।

तानिप्रायशोलौहानिभवन्तितत्प्रतिरूपकाणिवातदला  
भे । तत्रनानाप्रकाराणांव्यालानांमृगपक्षिणांमुखैर्मुखा  
नियन्त्राणांप्रायशःसदृशानि । तस्मात्तत्सारूप्यादागमा  
दुपदेशादन्ययन्त्रदर्शनाद्युक्तितश्चकारयेत् ।

अर्थ—वे यंत्र प्रायः लोह (सुवर्ण, चांदी, तामा, लोहा, पित्तल) के होतेहैं, तथा  
सुवर्णादि पंचलोह न मिलनेपर उनको ( तत्प्रतिरूपकं ) अर्थात् हाथीदांत, सींग,  
काष्ठ, आदिके बनावे। और इनयंत्रोंके मुखका स्वरूप अनेकप्रकारके व्याल ( सिंह-

१ गेहूँके चूनसे मंगलकायोंमें स्त्री कुछचौकौन चार लकीर खींचती है उसका नाम  
साथिया है।

व्याघ्रादिहिंसकजीव ) मृग ( हरिण, ससे, आदि ) और काक, गीध आदि पक्षियों-के मुखके समान होना चाहिये । अतएव इनयंत्रोंका स्वरूप शास्त्रसे और वृद्धवैद्यके उपदेशसे तथा अन्ययंत्रोंके देखनेसे वा युक्ति ( अकल ) से करने चाहिये । तहां शास्त्रमें लिखाहैकि स्वस्तिकयंत्र १८ अंगुलके बनाने चाहिये । और उपदेशके कहनेसे केवल वृद्धवैद्यकाही ग्रहण नहीं है किंतु जो इसकर्मको करते रहतेहैं, ऐसे शिल्पकारोंके कहनेसे बनावे । अन्ययंत्र ( चीमटा, संडाघ्नी, कैची, चीमटी, नेहनी, आदि प्रत्येकदेशोंमें पृथक् २ आकृतिकी होतीहैं, उनको देखकर बनावे जैसे आजकल यूरोपिअन आदि विलायती मनुष्य बनातेहैं । और युक्तिके कहनेसे यथाप्रयोजन बनानी चाहिये अर्थात् पुरुषके हाथपैरआदि अवयवोंके विचारसे बनावे, जैसे, जो छोटेबालकहै उनकेलिये यंत्रभी छोटे और बड़ोंको बड़ेयंत्र बनाने चाहिये ।

## समाहितानियन्त्राणिखरश्लक्ष्णमुखानिच । सुदृढानिसुरूपाणिसुग्रहाणिचकारयेत् ।

अर्थ—न्यूनाधिक ( छोटेबड़े ) दोषकरके रहित तीक्ष्ण और चिकने मुखके तथा दृढ और सुन्दररूपवाले सुघाट ऐसे यन्त्र बनाने चाहिये । कोईआचार्य कहतेहैंकि कार्यभेदसे किसीयंत्रका मुख तीखाबनावे और किसीका मृदुबनावे तिनमें कंकमुखादिवालेयंत्र खरमुखकहातेहैं । और सिंहास्यादियंत्र श्लक्ष्णमुखकहातेहैं ।

स्तस्विकयंत्राणि ।

तत्रस्वस्तिकयन्त्राप्यष्टादशांगुलप्रमाणानिसिंहव्याघ्रतर  
क्ष्वक्ष्वकद्रीपिमार्जारशृगालमृगैर्वारुककाककङ्कुररचा  
सभासशशघात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रकौञ्चभृङ्गराजाञ्जलि  
कर्णावभञ्जननन्दिमुखमुखानिमसूराकृतिभिःकीलैरवव  
द्धानिमूलैकुशवदावृत्तवाराङ्गाण्यस्थिविनष्टशल्योद्धरणा  
र्थमुपदिश्यन्ते ।

अर्थ—स्वस्तिकयंत्र १८ अंगुललंबे, और सिंह, बघेरा, जरख, रीछ, भेडहा, चीता, बिलाव, स्यारिया ( लोमडी ) हरिण एर्वारुक ( हरिणकाभेद होताहै ) ए ९ पशू, तथा काक ( कौआ ) कंक ( लंबीचौचकाबडापक्षीजोमुर्दोंकोभक्षणकर्ताहै अथवा कोई सपेदचीलको कंक कहतेहैं, ) कुरर ( टटीहरी, ) चास ( पपैया वा चा- तक कोई नीलकंठको चास कहतेहैं, ) भास ( गौओंके झुंडमें रहनेवाला गीधविशेष परंतु कोई घरमें रहनेवाले मुर्गेको भास कहतेहैं, ) शशघाती ( शशारीनामसे प्रसिद्ध

कोई वाङ्गको शशारी कहतेहैं ) उलूक ( वागल—वा चमगिहड ) चिल्ल ( चील-  
नामसेप्रसिद्ध ) श्येन ( शिकरा वा कुई ) गीध, क्रौंच ( कोची कोचरी नामसे प्र-  
सिद्ध और कोई कुंजनाम पक्षीको क्रौंच कहतेहैं, ) भृंगराज ( कालीचिडिया ) अंज-  
ली और कर्णावभंजन ( ए दोनामोंका पर्यायवाचीशब्द लोकप्रसिद्धीसे जानना, )  
और नंदीमुख ( पत्राटी ) ए १५ पक्षी कहेहैं, इन दोनों पशुपक्षियोंके मुखके समान  
स्वस्तिक यंत्रोंका मुखबनाना चाहिये और उनयंत्रोंके स्कंध ( अर्थात् कंठदेश )  
मसूरके समानगोल और छोटीकीलोंसे जटित करने चाहिये; ( परंतु कोई कहेतेहैंकि  
यंत्रके तीसरे भागमें कील लगावे ) और उनयंत्रोंका मूल अर्थात् पकडनेका स्थान अंकु-  
शके समान कुछ नीचा और मुडाहुआ बनावे, ये स्वस्तिकयंत्र टूटीहड्डी जो देहके  
भीतर छिपीहुई रहतीहैं उसके निकालनेके लिये. कहेहैं !

स्वस्तिकयंत्रोंकी तसबीरदेखो

अथसन्दंशयंत्राणि ।

सनियग्रहोनिग्रहश्च सन्दंशौषोडशांगुलौ भवत

स्त्वङ्मांसशिरास्त्रायुगतशल्योद्धरणार्थमुपदिश्यते ।

अर्थ—संदंशयंत्र दोप्रकारकेहैं, एक सनियग्रह ( अर्थात् जिसकामुखबंद रहे ) और  
दूसरा अनियग्रह ( जिसकामुख खुलारहे ) ए दोनों यंत्र १६ अंगुल लंबे होने चा-  
हिये. ये त्वचा, मांस, नस, स्त्रायुगत, शल्यके निकालनेके वास्ते कहेहैं । संदंशनाम  
संडासीका है \* ।

२२ नंबरकेचित्रदेखो ।

तालयंत्रम् ।

तालयन्त्रेद्रादशांगुले मत्स्यतालवदेकतालद्वि

तालकेकर्णनासानाडीशल्यानामाहरणार्थम् ।

अर्थ—तालयंत्र दोनोंका विस्तार १२ अंगुलका होताहै, इन्होंका स्वरूप मछली-  
के तालके आकार एकताल तथा द्वितालक होताहै, तालक लोहेकी पत्तीका नाम है,  
जिनसे किवाँडकी संधी आपसमें जोडीजातीहै ।

१ जिसओरसे कांटेआदिको पकडकर खींचतेहै, उस भागको यंत्रका मुख कहतेहैं ।

\* वाग्भट ६ अंगुलका दूसरा संदंशयंत्र नासिकाके बालआदि निकालनेको तथा  
पलकोंके परवाल तोडनेको कहताहै, उसकानाम मुचुंडीहै । इसके मुखमें छोटे २ दाँत  
होतेहैं, और पकडनेकाजगे छल्लासाहोताहै, इसछल्लेके दाबनेसे काम होताहै । यह गंभीरव्रणों  
मेंसे जो अधिमांसहोताहै उसके निकालनेको कहाहै ।

मछलीके तालकहनेसे इसजगे मछलीका कांटालेना अर्थात् जैसा वो पतला होता है ऐसे तालयंत्रोंके मुखजानने ।

### नाडीयंत्राणि ।

नाडीयन्त्राण्यनेकप्रकाराण्यनेकप्रयोजनान्येकतोमुखान्युभयतोमुखानिच, तानिस्रोतोगतशल्योद्धरणार्थरोगदर्शनार्थमाचूषणार्थं क्रियासौकर्यार्थञ्चेतितानिस्रोतोद्धारपरिणाहानि यथायोगपरिणाहदीर्घाणिच।भगन्दराशौऽर्बुद्व्रणवस्त्युत्तरवस्तिमूत्रवृद्धिदकोदरधूमनिरुद्धप्रकाशसंनिरुद्धगुदयन्त्राण्यलावृशृङ्गयन्त्राणिचोपरिष्ठाद्वक्ष्यामः ।

अर्थ—नाडीयंत्र अनेकप्रकारके और अनेक प्रयोजनवाले होतेहैं, कोई एकमुखवाले ( जैसे रुधिरके निकालनेको अलाबूयंत्र, भगंदरयंत्र और अर्श यंत्रादि ) कोई उभयतोमुख होतेहैं, ( जैसे बस्ती, उत्तरवस्ती, और धूमयंत्रादि ) ये सब नाडीयंत्र स्रोतोगत शल्यके निकालनेके लिये बवासीर आदि रोगोंके देखनेकेलिये और अस्थिगतवायु रुधिर और स्तनसंबंधी दूधके आचूषण ( र्खांचने ) के लिये तथा क्रिया ( शस्त्रक्षाराग्निआदिक्रिया ) ओंके सुखकरणार्थ कहेंहैं । इन नाडीयंत्रोंके मुख स्रोतोंके द्वारसदृश छोटेबड़े और गोलहोनेचाहिये । अब उनकेनाम कहतेहैं । भगंदरयंत्र २, एकएकछिद्रका दूसरा दोछिद्रवाला इसीप्रकार अर्शयंत्र २, अर्बुदयंत्र २, व्रणयंत्र १, यह व्रणकी चौड़ाई लंबाईके समान होनाचाहिये, बस्तियंत्र ४ हैं, कोई ३ प्रकारके कहतेहैं. उत्तरवस्ती २, मूत्रवृद्धियंत्र १, दकोदरयंत्र १, धूमयंत्र ३, निरुद्धप्रकाशयंत्र १, संनिरुद्धगुदयंत्र १, और अलाबूयंत्र १, इन सब यंत्रोंको यथाप्रयोजन यथास्थान में कहेंगे ।

### शलाकायंत्राणि ।

शलाकायन्त्राण्यपि नानाप्रकाराणि नानाप्रयोजनानियथायोगपरिणाहदीर्घाणिच।तेषांगण्डूपदशरपुंखसर्पफणबडिशमुखेद्वेद्वे एषणव्यूहनचालनाहरणार्थमुपदिश्येते।

अर्थ—शलाकायंत्रभी अनेकप्रकारके अनेक प्रयोजनवाले होतेहैं, इनको यथायोग गोल और लम्बे बनाने चाहिये, तिनमें गंडूपद ( केंचुआ ) के मुखवाले यंत्र २, बाणकीपुंखके आकार मुखवाले यंत्र २, सर्पफणकेतुल्य मुखवाले यंत्र २, बडिश ( मच्छीपकडनेकी लोहवंशीके ) मुखवाले यंत्र दो बनावे । ये आठयंत्र, एषण (गं-

भीरपाकी व्रणोंसे राघरुधिरआदिका निकालना, ) व्यूहन ( निर्माणकरना ) चालन, और आहरण ( निकालने ) के अर्थ कहेहैं ।

मसूरदलमात्रमुखेद्रे किञ्चिदानताग्रेस्रोतोगतशल्योद्धर  
गार्थम् षट्कार्पासकृतोष्णीषाणि प्रमार्जनक्रियासु । त्री  
प्यन्यानिजाम्बवद्दनानि । त्रीण्यङ्कुशवदनानि ।

अर्थ—मसूरकीदालके समानमुखवाले दीयंत्र बनावे वो अग्रभागमें कुछ नवेहुए-  
होवे, ये स्रोतोगत शल्योंके निकालनेके अर्थहै\* छः यंत्रोंके अग्रभाग रूईसे लिपटे-  
हुए झाडने पोछनेआदि क्रियाके अर्थ कहेहैं, तीनयंत्र कलछीके आकार मुख और  
नीचेमुखवाले क्षार औषधोंके प्रयोगार्थ कहेहैं, तीनयंत्र जामनफलके सदृश मुखवा-  
ले तीनयंत्र अंकुशके मुखसमान मुखवाले ।

षडैवाग्निकर्मस्वभिप्रेतानि । नासारुदहरणार्थमेकंकोला  
स्थिदलमात्रमुखंखल्लतीक्ष्णोग्रम् । अञ्जनार्थमेकंकला  
यपरिमण्डलमुभयतोमुकुलाग्रम् । मूत्रमार्गविशोधनार्थमे  
कंमालतीपुष्पवृंताग्रप्रमाणपरिमण्डलमिति ।

अर्थ—ये छःयंत्र अग्निकर्म ( दाग्ने ) में अभीष्टहैं । नासारुदहरणार्थ एक  
बेरकीगुठलीके अर्धदलप्रमाणमुख बीचमें नीचा और अंतमेंतीखा ऐसा यंत्र होताहै,  
नेत्रोंमें अंजनआँजनेकेअर्थ १ यंत्र मटरकेसमानगोल और दोनों प्रान्त फूलकी  
कलीके समान होतेहैं । मूत्रमार्ग विशोधनार्थ एकयंत्र मालतीपुष्पकेवृन्त ( जिस्में  
फूललटकाकरहै उसडांठरेको वृंतकहतेहैं ) उसके समान बनावे । इन शलाकायंत्रोंका  
विस्तार आठ अंगुलका होनाचाहिये; शलाकानाम सलाईकाहै ।

उपयंत्राणि ।

उपयन्त्राण्यपिरज्जुवेणिकापट्टचर्मान्तबल्कललतावस्त्रा  
ष्ठीलाश्ममुद्गरपाणिपादतलाङ्गुलिजिह्वादन्तनखमाला  
श्वकटकशाखाष्ठीवनप्रवाहणहर्षायस्कान्तमयानिक्षारा  
ग्निभेषजानिचेति ।

\*स्रोतोगत शल्यकानिकालनादिखातेहैं, जैसे नासाशल्य कंठमें जायकर अटकजावे उस-  
समय वैद्य मुखमें नाडीयंत्रडाल तत्तीलोहकी सलाईसे शल्यको खींचलेवे। वाग्भट लिख-  
ताहैकि कंठशल्यके देखनेको १० अंगुललंबा और ५ अंगुल चौडा नाडीयंत्रहोताहै और  
कमलककडीके सदृश ऊपरके भागमें होवे और १२ अंगुललंबा होनाचाहिये ।

अर्थ-अब उपयंत्रोंको कहतेहैं। मूँजकी रस्सी-वेणीका ( तिवलीरस्सी ) पट्ट ( पट्टी ) चामके टुकड़े, ( पट्टेआदि ) ढाक, और गूलरकीछाल ( यह टूटेहुए हाड आदिके ऊपरबांधनेको कामआतीहै ) लता, कपडा, लंबा और गोल ऐसा पत्यर, मुद्गर, ( काष्ठआदिकाबनागुरज ) हथेली, पैरकेतलुए, उंगली, जीभ, दांत, नख, ( नाखून ) बाल, घोडा, वृक्षकीशाखा, थूकना, प्रवाहन ( वमन, विरेचन, आंसू, ए क्रमसे कफपित्त और नेत्रमें रजआदि शल्यदूरकरनेको ) हर्ष ( प्रसन्नता ) अय-स्कांत ( आकर्षक, द्रावक, चुम्बक, भ्रामक, आदिभेदवाला पाषाणविशेष ) के ब-नेहुएपदार्थ, क्षार, अग्नि और अनेकप्रकारकी औषध ए सब उपयंत्रकहातेहैं ॥

एतानिदेहेसर्वस्मिन्देहस्यावयवेतथा ।

सन्धौकोष्ठेधमन्याश्चयथायोगंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ-ए पूर्वोक्त यंत्र सर्वदेहमें तथा देहके संपूर्णअवयवों ( हाथपैरों ) में तथा सांधिकोष्ठ, धमनीआदिमें यथायोग वरतने चाहिये ।

अथयन्त्रकर्माणि ।

यन्त्रकर्माणिनिर्घातनपूरणबन्धनव्यूहनप्रवर्तनचालन  
विवर्तनविवरणपीडनमार्गविशोधनविकर्षणाहरणाञ्छ  
नोन्नमनविनमनभञ्जनोन्मथनाचूषणैषणदारणजुकरण  
प्रक्षालनप्रधमनप्रमार्जनानिचतुर्विंशतिः ।

अर्थ-अब यंत्रोंकेकार्यकहतेहैं । निर्घातन ( इतस्ततश्चलायमानकरके निकाल-ना ) पूरण ( तेल, आदिसे बस्तिनेत्रादिकोंको पूरणकरना ) बांधना, व्यूहन ( उठे-हुएकोकाटकरनिकालना ) विवर्तन ( कमतीबढतीकोगोलकरना ) चालन, विवर्तन ( कानकी पवनके निकालनेको यंत्रको कानमें फिराना ) विवरण ( मांसरुधिरआ-दिमेंछिपेशल्यको प्रकाशितकरना ) पीडन ( दाबना ) मार्गविशोधन ( मूत्र, पुरीष, आदि रुकेहुएमार्गोंका शोधनकरना ) विकर्षण ( गडेहुएशल्यको पकडकर खींचना ) आहरण ( निकालना ) आञ्छन ( कुलव्रणकेमुखपर शल्यको लाना ) उन्नमन ( अ-धःस्थितोंको ऊपरलाना ) विनमन ( नीचेकोकरना ) भञ्जन ( शिर, कान, आदिका मीडना ) उन्मथन ( प्रनष्टशल्य के मार्ग में शलाई डालकर मथनकरना ) आचूषण ( विषदुष्टस्तनसंबंधी दूध और रुधिरमें सींगी, तूवीआदि लगाकरचूसना ) एषण ( जोखआदिसे खींचना ) दारण ( शिरकर्णआदिके दो टूककरना ) ऋजुकरण ( टेढ़ोंको सीधा करना ) प्रक्षालन ( धोना ) प्रधमन ( नासिकामें नाडीयंत्रद्वारा चूर्णका डालना ) और प्रमार्जन ( पौछना ) ए २४ यंत्रोंके कर्म हैं।

अब अनेक शल्याकारकर्मोंको बाहुल्यहोनेसे पूर्वोक्तसंख्याका अनियमदिखाते हैं ।

स्वबुद्ध्याचायिविभजेद्यन्त्रकर्माणि बुद्धिमान् ।  
असंख्येयविकल्पत्वाच्छल्यानामितिनिश्चयः ॥

अर्थ—बुद्धिमान् पुरुष अपनी बुद्धिसे भी यंत्रकर्मोंको करे क्योंकि शल्योंको असंख्येयविकल्पत्व है, अर्थात् अनेकप्रकारके शल्य हैं, उनके निकालनेके उपाय भी अनेक हैं, अतएव केवल लिखेहुए पर ही न रहे, किंतु कुछ स्वबुद्धि चातुरीसे भी कर्मकर्तव्य हैं यह निश्चित है ।

अथ यंत्रोंके दोष ।

तत्रातिस्थूलमसारमतिदीर्घमतिद्वस्वमग्रा  
हि विषमग्राहिवक्रं शिथिलमत्युन्नतं मृदुकीलं  
मृदुमुखं मृदुपाशमिति द्वादशयन्त्रदोषाः ।

अर्थ—जो यंत्र अत्यंत स्थूल हो, और अशुद्ध लोहसे बना हो, जो अत्यंत लंबा हो, बहुत छोटा हो, जिसका मुख विकृत हो, और जो एकजगसे न पकड़े, तथा टेढा हो, शिथिल हो, अर्थात् जो ठीक दाबे नहीं, जिसकी कील आदि ऊपरको ऊठरही हो, तथा जिसमें मृदुकील लगी हो, अथवा ढीलीकील हो, और जिसका मुख नरम हो, तथा विकृत पाश कहिये जिस यंत्रके मुखसे शल्य न पडनेमें आवे, ये यंत्रोंके १२ दोष हैं ॥

एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तं यन्त्रमष्टादशांगुलम् ।  
प्रशस्तं भिषजाज्ञेयं तद्धिकर्मसु योजयेत् ॥

अर्थ—उक्तदोषरहित, अठारैअंगुललंबा यंत्र, वैद्यउत्तम कहते हैं, उनको चीरने फाडने आदिकर्ममें योजनाकरे अर्थात् कार्यमें लावे ।

स्वस्तिकयंत्रोंका विषयभेददिखाते हैं ।

दृश्यं सिंहमुखाद्यैस्तु गूढकंकमुखादिभिः ।  
निर्हरेत्तुशनैः शल्यं शस्त्रयुक्तिव्यपेक्षया ॥

अर्थ—जो शल्य दृश्य ( दीखते ) हैं उनको सिंहमुखादि यंत्रोंसे निकाले, और जो छिपेहुए हैं, उनको कंकमुखादि यंत्रोंसे धीरे २ निकाले, तथा शस्त्रयुक्तिके अनुसार निकाले ।

कंकमुखयंत्रको प्रधानता कहते हैं ।

निवर्त्ततेसाध्ववगाहतेचशल्यनिगृह्योद्धरतेचयस्मात् ।

यन्त्रेष्वतःकङ्कमुखंप्रधानंस्थानेषुसर्वेष्वविकारिचैव ॥

अर्थ—भले प्रकार प्रवेश होता है और निकलता है तथा शल्यको पकडकर खींचे है अतएव सर्वयंत्रोंमें कंकमुखनामक यंत्र प्रधान ( श्रेष्ठ ) है, और ये सर्वसन्धि धमनी आदिमें अविकारी है अर्थात् विकार नहींकरे है ।

इतिश्रीबृहन्निघण्टुरत्नाकरेपंचदशस्तरङ्गः ।

अथातःशस्त्रावचारणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब शस्त्रावचारणीय अर्थात् जिसमें शस्त्रोंके बनाने और वर्त्तनेकी विधि है उस अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

शस्त्रोंकीसंख्या ।

विंशतिः शस्त्राणि । तद्यथा मण्डलाग्र करपत्र वृद्धिपत्र  
नखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधारसूचीकुशपत्राटीमु  
खशरारीमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चककुठारिकात्रीहिमुखारावे  
तसपत्रकबडिशदन्तशङ्क्रेषण्यइति ।

अर्थ—शस्त्र बीसप्रकारकेहैं, जैसे १ मण्डलाग्र\* २ करपत्र, ( करोत ) ३ वृद्धिपत्र, ४ नखशस्त्र, ५ मुद्रिका, ६ उत्पलपत्रक, ७ अर्द्धधार, ८ सूची, ९ कुशपत्र, १० आटीमुख, ११ शरारिमुख, १२ अन्तरमुख, १३ त्रिकूर्चक, १४ कुठारिका, १५ त्रीहिमुख, १६ आरा, १७ वेतसपत्र, १८ बडिश, १९ दन्तशंकू, और २० एषणी ।

शस्त्रोंकेअष्टविधकर्म ।

तत्रमण्डलाग्रकरपत्रेस्यातांछेदनेलेखनेच । वृद्धिपत्रन  
खशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधाराणि छेदनेभेदनेच । सू  
चीकुशपत्राटीमुखशरारीमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चकानिविस्रा  
वणे। कुठारिकात्रीहिमुखारावेतसपत्रकाणिव्यधने।सूची

\* मंडलाग्रशस्त्र छुराके आकारहोताहै, करपत्रको भाषामें करोत कहतेहैं । वृद्धिपत्रको छुराकहतेहैं । नखशस्त्रको नहन्नी, वा नाखूनतरास कहतेहैं । शरारी शस्त्रको कतरनी अथवा कैची कहतेहैं ।

चबडिशोदन्तशंकुश्चाहरणे । एषण्येषणे अनुलोम्येच ।  
सूच्यः सेवने । इत्यष्टविधेकर्मण्युपयोगः शस्त्राणांव्या  
ख्यातः ।

अर्थ—तहां मण्डलाग्र और करपत्र इनदोनों शस्त्रोंको छेदन और लेखन कर्ममें लेने चाहिये । वृद्धिपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पलपत्र, और अर्द्धधारा ए शस्त्र छेदन भेदनमें ग्रहणकरनेचाहिये । सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अंतरमुख, और त्रिकूर्चक, ए शस्त्र स्त्रावकरानेमें लेने, कुठारिका, ग्रीहिमुख, आरा, वेतसपत्रक, और सूचीशस्त्र, ए वेधनेमें लेनेउचितहैं । बडिश, दंतशंकु, ए शस्त्र निकालनेमें लेनेचाहिये । एषणीशस्त्र चूसनेमें और अनुलोमन कर्ममें लेने चाहिये और सूचीशस्त्र सीनेमें लेना. इसप्रकार शस्त्रोंके अष्टविध कर्मकी विधिकहीहै ।

तेषामथ यथायोगं ग्रहणसमासोपायः कर्मसुवक्ष्यते ।  
तत्रवृद्धिपत्रंवृन्तफलसाधारणेभागेगृह्णीयात् भेदनान्येवं  
सर्वाणिवृद्धिपत्रमण्डलाग्रञ्चकिंचिदुत्तानपाणिनालेखने  
बहुशोवचार्यवृन्ताग्रेविस्रावणानि । विशेषेणवालवृद्धसु  
कुमारतरुणनारीणांराज्ञाराजपुत्राणाञ्चत्रिकूर्चकेनविस्रा  
वयेत् । तलप्रच्छादितवृन्तमंगुष्ठप्रदेशिनीभ्यांग्रीहिमुख  
म्।कुठारिकांवामहस्तन्यस्तामितरहस्तमध्यमांगुल्यांगु  
ष्ठविष्टधयाभिहन्यात्।आराकरपत्रैषण्योमूलशेषाणितुय  
थायोगंगृह्णीयात् ।

अर्थ—शस्त्रकर्ममें इनशस्त्रोंके योग ग्रहण ( पकडने ) का उपाय कहतेहैं । तहां वृद्धिपत्रको डंडीके और फलकके बीचमें पकडना चाहिये । इसीप्रकार भेदनेके सर्व-शस्त्रोंमें जानलेना । वृद्धिपत्र और मण्डलाग्र इनको ऊपरकी तरफसे पकड लेखन-कर्ममें बहुधा इसको कार्यमेंलावे । और इन्ही वृद्धिपत्र और मण्डलाग्रोंको डंडीके अग्रभागमें पकड राध रुधिरआदि के स्त्रावकर्मकर्तव्यहैं । विशेषकरके बाल वृद्ध सुकुमार तरुण स्त्री राजा महाराजा तथा राजपुत्रोंको त्रिकूर्चक शस्त्रद्वारा स्त्रावकर्तव्यहै । हथेलीसे वृन्त ( वैटा वा डंडी ) को दाब अंगूठा और तर्जनीउंगलीसे ग्रीहिमुखशस्त्रको पकडे । कुठारिके डंडेको बाँएहाथसे पकड दहनेहाथकी मध्यमांगुली और अंगूठेसे दाबके चलावे । आरा करोत और एषणी इन शस्त्रोंको जडमेंसे

पकडने चाहिये । और बाकीके शस्त्रोंको यथायोग्य अर्थात् किसीको बैठेकी जडमें किसीको बैठेके मध्यमें किसीको बैठेके अग्रभागमें ग्रहण करने चाहिये ।

शस्त्रोंकीआकृति ।

तेषांनामभिरेवाकृतयःप्रायेणव्याख्याताः ।

अर्थ—मंडलाग्रआदि शस्त्रोंका स्वरूप उनकेनामसेही प्रायः कहाहै, विशेषकहतेहैं.

तत्रनखशस्त्रैषण्यावष्टांगुले । सूच्योवक्ष्यन्ते । बडिशो  
दन्तशंकुश्चानताग्नेतीक्ष्णकण्टकप्रथमयवपत्रमुखे । एष  
णीगण्डूपदाकारमुखी । प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रदेशप्रमाणमुद्रि  
का । दशांगुलाशरारीमुखीसाकर्त्तरीतिकथ्यते । शेषाणि  
तुषडंगुलानि ।

अर्थ—नखशस्त्र ( नेहत्री ) और एषणीशस्त्र ए आठअंगुल लंबे होतेहैं । और सूचीशस्त्र ( सुई ) का प्रमाण आगे ( अष्टविधकर्मीयाध्यायमें ) कहेंगे. बडिशशस्त्र और दन्तशंकू इन दोनोंका अग्रभाग कुछ नवाहुआ और तक्ष्णकंटक ( जिसकाकाँटापैनाहो ) तथा प्रथमोत्पन्नयवपत्रके समान होना चाहिये । एषणी शस्त्र कैचु-एके सदृश मुखवालाहोता है । मुद्रिकाशस्त्र प्रदेशिनी ( अगलीउंगली ) के आगेके पोरुआके समान होनाचाहिये । शरारीमुख शस्त्रको कैचीकहतेहैं । वो दशअंगुल लंबी होनीचाहिये । बाकीके शस्त्र छः २ अंगुललंबे होनेचाहिये ।

अब शस्त्रोंका प्रमाण औरभी ग्रंथांतरोंसे लिखतेहैं । मंडलकेसमान गोल जिसका अग्रभागहो उसको मंडलाग्रशस्त्रकहतेहैं । वो दोप्रकारकाहै. एकतो वहहै कि जिसकी गुलाई उसके छटेभागपर्यंतहो और दूसरा छुराके आकारहो इन दोनोंका प्रमाण ( लंबाव ) छःअंगुलका होताहै । करपत्र ( यह कांटेदार होतीहै इसको करोत वा आरी कहतेहैं ) परंतु कोई १२ अंगुलका करपत्र कहतेहैं । वृद्धिपत्र दो-प्रकारकाहै । एक अंचिताग्र दूसरा प्रयताग्र. इनमें अंचिताग्र वृद्धिपत्रको छुरा कहतेहैं । दोनों सातअंगुल लंबे पंचांगुलवृत्त और ढाईअंगुलका अग्रभागहोना चाहिये । नख-शस्त्रको नेहत्री कहतेहैं । इसका अग्रभाग २ अंगुल लंबा १ अंगुल विस्तृत और अर्ध-अंगुलकीधार होनी चाहिये । अर्द्धधाराशस्त्र < अंगुल लंबा १ अंगुल विस्तृत और चक्रके समान धारवाला होना चाहिये । कुंशपत्रकेसमान कुशपत्रशस्त्रहोताहै । ३ अंगुल

१ षड्भागे मण्डलं वृत्तं क्षुरसंस्थानमेव वा । मण्डलाग्रस्य जानीयात्प्रमाणन्तु षडंगुलम् ।  
२ अंगुलै रुचकं विद्यादंगुलं फलमुच्यते । वृत्तं स्याद्द्व्यंगुलं मध्ये कुशपत्रस्य लक्षणम् ।

डंडी १ अंगुलका अग्रभाग और २ अंगुलबीचमें कुछ गोल होती है । आंटीमुख शस्त्रकी डंडी ७ अंगुल और अंगूठेके समान उसका अग्रभाग होना चाहिये । आंटी-नाम आड़ीपक्षीको कहते हैं, उसके मुखसमान जिसका मुखहो उसको आंटीमुख शस्त्र जानना । शरारीनाम लंबीचोंचके पक्षीको कहते हैं. वो दोप्रकारका होता है एकतो जिसके कंधे सपेदहो दूसरा लालमस्तकवाला होता है. धवल ( सपेद ) कंधे वालेको शरारी कहते हैं । उसके मुखके सदृश मुखजिसका उसको शरारीशस्त्र कहते हैं । इसीको भाषामें कैंची कहते हैं । यह १२ अंगुलकी और दोनोंपल्ले चलायमान होनी चाहिये । शरारीको भाषामें बगलाकहते हैं अंतर्मुखशस्त्रका मुख भीतरहोता है । वह ८ अंगुल लंबा और अर्द्धचंद्राकारहोना चाहिये ।

त्रिकूर्चकशस्त्र ८ अंगुलका तिधारा और ३ अंगुलका अग्रभाग होना चाहिये, और तीनों कांटोंमें चामल २ भरका फरक रहना चाहिये । इसकी डंडी ५ अंगुलकीकरे और इसके ऊपर छल्ला २ से आकारसे भूषितकरे । ४ कुंठारिकायंत्र काबैंटा ७ अंगुललंबा उसका अग्रभाग आधेअंगुलका होना चाहिये, उसको गोदंतसदृश बनावे, व्रीहिमुखशस्त्रका प्रमाण, भोज इसप्रकार लिखता है कि, ६ अंगुललंबा और दोअंगुलकी उसकी डंडी और ४ अंगुलका अग्रभागहोना चाहिये, और इसकामुख चावलके समानहो, यह अटकेहुए कांटेके निकालनेके अर्थ कहा है, आरा यह चमारोंका शस्त्रहै । इसको १६ अंगुल लंबा और तिलकेसमान अग्रभाग तथा पूर्वअंकुर विस्तृत इसका बैंटा गोपुच्छकेसदृश होना चाहिये, वेतसंपत्रयंत्रका विस्तार १ अंगुलका तीक्ष्णहोना चाहिये, और ४ अंगुललंबा तथा ४ अंगुलका बैंटा होना चाहिये । यहभी भोजका प्रमाण है । बडिशयत्र ६ अंगुलकेलंबे दोनोंका एकमुख इन दोनोंका बैंटा ५ अंगु-

१ वृत्तं सप्तांगुलं विद्यान्तस्याग्रे फलमिष्यते । आंटीमुखप्रकारो हि फलमंगुष्ठमायतम् ।  
 २ अष्टांगुल प्रमाणेन जिह्वा धामविधारकं । शस्त्रमन्तर्मुखं नाम चन्द्रार्द्धमिवचोद्धृतम् ।  
 ३ अंगुलानि तथाष्टौच शस्त्रं कार्यं त्रिकूर्चकम् । फलैरन्तर्मुखाकारैरंगुलैरन्वितं त्रिभिः ।  
 एकैकस्यफलस्यैषामन्तरं व्रीहिसम्मितम् ॥ वृत्तं पचांगुलायामं कार्यं रुचकभूषितम् । ४ कुंठारिकाया वृत्तस्यात् सार्द्धसप्तांगुलायतम् । फलमर्धांगुलायामं गोदन्तसदृशं समम् ५ शस्त्रं व्रीहिमुखकार्यं मंगुलानि षडायतम् । ह्रचगुलं तस्य वृत्तेष्टांस्यात् तत्फलं चतुरंगुलमम् । तन्मुखं व्रीहिविस्तारं तत्तुसंमूढकंटकम् ६ आराद्व्यष्टांगुलायामा कर्तव्या तु विशाम्पते । तिलप्रमाणन्तु फलंतस्याः कार्यसमाहितं । पूर्वांकुरपर्यानां वृत्तंगोपुच्छसन्निभम् ७ तीक्ष्णमंगुलविस्तारं चतुरंगुलमायतम् । अंगुलानि तु चत्वारि वृत्तकार्यं विजानता । ८ बडिशौचापिकर्तव्यौ प्रमाणेन षडंगुलैः । स्थानतस्तुतयोरेक एको नात्ययितो भवेत् । अर्द्धपंचांगुलं वृत्तं शेषकार्यं मुखंतयोः । अर्धचन्द्राकृतिं वक्रं कार्यं नात्यानतस्य तु । स्वाननस्यानन्तं तस्मात् बडिशस्यभिषगवैः । वृत्ताग्रयोरन्तरस्यात् यावदार्द्धांगुलमतम् । एवं हिक्रियते एतौदशशंकुर्विजानता । शंकुवच्चमुखंतस्य कार्यमर्धांगुलायतम् । चतुरस्रं समञ्चैव ।

लका आर शेषइसका मुखहोनाचाहिये, एकबडिशयंत्र अर्धचन्द्राकृति और नवाहुआ होताहै । इसका विस्तार नीचेके श्लोकसे देखो एषणीयंत्र व्रणके विस्तार माफिक होताहै । उसका मुख केंचुएके समान होनाचाहिये ।

उत्तमशस्त्रकेलक्षण ।

तानिसुग्रहाणिसुलोहानिसुधाराणिसुरूपाणिसुस  
माहितमुखाग्राण्यकरालानिचेतिशस्त्रसम्पत् ।

अर्थ—इन शस्त्रोंको सुघाट, श्रेष्ठलोहके, उत्तमधारवाले, सुहामने, सुंदरमुख-वाले और अकराल, अर्थात् उन्में कोई फांस नहो, अथवा विकरालरूपवाले न होय, ए उत्तमशस्त्रके गुणहैं ।

शस्त्रोंकेदोष ।

तत्रवक्रंकुण्डंखण्डंखरधारमतिस्थूलमत्यल्पमतिदीर्घमति  
ह्रस्वमित्यष्टौशस्त्रदोषाः । अतोविपरीतगुणमाददीतान्य  
त्रकरपत्रात् । तद्धिखरधारमस्थिच्छेदनार्थम् ।

अर्थ—टेढा, भौतरा, खंडित, कठोरधार, अत्यंतमोटा, अतिपतला, अत्यंत लंबा, अत्यंत छोटा, ए शस्त्रके आठ दोषहैं । इसीसे एक करपत्र ( करोत ) को छोडकर अन्य इस्से विपरीत गुणवान् शस्त्र लेने उचितहैं । खरधारावाला शस्त्र हड्डी काट-नेको कहाहै । इसीसे करोत खरधारावाली लेनी ।

शस्त्रोंकीधार ।

तत्रधाराभेदनानामासूरी, लेखनानामर्द्धमासूरी, व्यधनानां  
विस्त्रावणानाञ्चकैशिकी, छेदनानामर्धकैशिकीति ।

अर्थ—भेदनेके निमित्त वृद्धिपत्र और नखशस्त्र आदिकी धार मसूरकी दालके समान पतली करनी चाहिये, लेखनके अर्थ मंडलाग्र आदि शस्त्रोंकी धार मसूरदा-लकी आधी होनी चाहिये । वेधनेकेलिये कुठारी आदिकी धार और विस्त्रावणके निमित्त सूची, कुशपत्र आदिकी धारा केश ( बालकेसमान ) पतली होनी चाहिये । यदि उक्त वृद्धिपत्रादिकोंको छेदनेके अर्थ प्रयोगकरे तो उनकी धार आधेबालके समान होनी चाहिये ।

शस्त्रोंकीपायना ।

तेषांपायनात्रिविधाक्षारोदकतैलेषु । तत्रक्षारपायितंशरश

ल्यास्थिच्छेदनेषु । उदकपायितमांसच्छेदनपाटनेषु । तैल  
पायितंशिराव्यधनस्नायुच्छेदनेषु । तेषानिज्ञानार्थंश्लक्ष्ण  
शिलामाषवर्णाधारासंस्थापनार्थंशाल्मलीफलकमिति ।

अर्थ—उन शस्त्रोंकी पायना ( पानीचढाना ) तीनप्रकारकीहै, यह लुहारोंमें प्रसिद्ध है । एक क्षारपायना, दूसरीजलपायना और तीसरी तैलपायना, तहां क्षारपायना अर्थात् क्षारोंमें बुझायकर जो वाड धरीजातीहै, वो बाण, शल्य और हड्डीके काटनेमें कहीहै । और जलपायना मांसकेछेदन पाटनमें जाननी । और तीसरी तैलपायना शिरावेध स्नायुच्छेदनेमें कहीहै । अब कहतेहैं कि, यदि बीचमें धार भौंतरी होजावे उसके घिसनेके लिये साफ चिकनी उडदके रंगकी ऐसी पाषाण ( पत्थर ) की शिल्ली लेनी चाहिये । और धारके संस्थापनार्थ ( ठीककरनेको ) सेमरफा पट्टा ( अथवा चामकापट्टा ) होता है । ये शिल्ली और पट्टा बहुधा नाऊ ( हज्जामों ) के पास होते हैं ।

शस्त्रकोश ।

स्यान्नवांगुलविस्तारःसुघनोद्वादशांगुलः ।  
क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः । विन्य  
स्तपाशःसुस्यूतःसांतरोर्णार्थंशस्त्रकः । शला  
कापिहितास्यश्चशस्त्रकोशःसुसंचयः ।

अर्थ—शस्त्रोंके रखनेका कोश ९ अंगुल चौड़ा और १२ अंगुल लंबा तथा सुघन और क्षौम ( जोवक्कलसे बनता है ) पत्ता, ऊन, रेशम, वस्त्र, और नर्मचमडेका बनाहुआ होनाचाहिये, जिसमें पृथक् फांसेके सदृश खनहो तथा शस्त्रोंके बीच २ में उनका कपडा लगरहाहो, उस कोशका मुख शलाईसे ढकाहुआ और अनेक शस्त्रोंका संग्रहजिसमें ऐसा सुंदरकोश नाईकी पेटीके समान होना चाहिये ।

धारकी परीक्षा ।

यदासुनिशितंशस्त्रंरोमच्छेदिसुसंस्थितम् ।  
सुगृहीतंप्रमाणेनतदाकर्मसुयोजयेत् ।

अर्थ—जब शस्त्रबालोंको कांटडाले और देखनेमेंभी उत्तम दीखे तब जाने कि धार चढगई । और उन पूर्वोक्त शस्त्रोंके पकडनेका स्थानभी उत्तमहो तथा यथाप्रमाणहो, ऐसे शस्त्रोंको छेदन भेदनादि कर्मोंमें योजना करना चाहिये ।

अनुशस्त्र ।

अनुशस्त्राणितुत्वक्सारस्फटिकाकाचकुरुविन्दजलौकाग्नि  
क्षारनखगोजीशेफालिकाशाकपत्रकरीरवालांगुलयइति ।

अर्थ—अब बालकआदि जो अशस्त्रावचरणीयहै, अर्थात् जिनको शस्त्रकर्मकरना  
वर्जितहै अथवा शस्त्रकर्मके समय शस्त्र न मिलनेसे उसकर्मको अन्यद्रव्यद्वारा  
करना, उनद्रव्योंको अनुशस्त्र कहतेहैं; जैसे, त्वक्सार (वांस) स्फटिक, कांच(शीसा)  
कुरुविन्द ( पत्थरकी जातविशेष अर्थात् शिष्टी ) जोख, अग्नि, खार, नख, ( ना-  
खून ) गोजी ( गोभी, कोई सहेडा कहतेहै ) शेफालिका ( जिसकी डंढी लाल  
होतीहै और शरदऋतुमें खिलताहै ) शाकपत्र ( महावृक्ष जिसके कठोरपत्ते होतेहैं )  
करील, बाल, और ऊंगली, ए अनुशस्त्र अर्थात् हीनशस्त्रहैं, अथवा शस्त्रोंके तुल्य है ।

अनुशस्त्रोंकेविषय ।

शिशूनांशस्त्रभीरूणांशस्त्राभावेचयोजयेत् ।  
त्वक्सारादिचतुर्वगंछेद्येभेद्येचबुद्धिमान् ॥  
आहार्यच्छेद्यभेद्येषुनखंशक्येषुयोजयेत्वि-  
धिःप्रवक्ष्यतेपश्चात्क्षारवह्निजलौकसाम् ।  
येस्युर्मुखगतारोगानेत्रवर्त्मगताश्रये।गोजी  
शेफालिकाशाकपत्रैर्विस्त्रावयेत्तुतान्।एष्वे-  
ष्वेषण्यलाभेतुवालांगुल्यंकुराहिता ।

अर्थ—उक्त ही शस्त्रोंको बालक और शस्त्रोंसे डरपनेवाले, तथा शस्त्रउपस्थित न  
होनेसे कार्यमें लेनेचाहिये । तथा इन्में प्रथमके चार अनुशस्त्रोंको ( वांस, स्फटिक,  
कांच, और कुरुविन्दको ) छेदन भेदन कर्ममेंलेवे, और नखशक्य आहार्यछेद्य भे-  
द्योंमें नखशस्त्र योजनाकरे । क्षारकर्म, वह्निकर्म और जोकलगानेकी विधि आगे क-  
हेंगे । मुखरोग और नेत्रके कोएन्में होनेवाले रोगोंमें गोजीशस्त्र, शेफालिका, और  
शाकपत्र शस्त्रद्वारा खाव कराना चाहिये । और एष्य ( खींचनेयोग्य ) शल्योंमें ए-  
षणीशस्त्रके उपस्थित न होनेपर बाल अंगुली और अंकुरादि अनुशस्त्रकार्यमें  
लानेचाहिये ।

अब शस्त्रगुणसंपत्कारणकहतेहैं ।

शस्त्राण्येतानिमतिमान्शुद्धशैक्यायसानितु ।  
कारयेत्करणैःप्राप्तंकर्मारंकरं कर्मकोविदम् ॥

अर्थ—ए पूर्वोक्त मंडलाग्रादि शस्त्रोंको शुद्ध और तीक्ष्णलोहके बुद्धिमान् वैद्य स्व-  
कर्ममें निपुण और पंडित ऐसे लुहारसे बनवावे । कोई कहताहै कि इनशस्त्रोंको  
सेढी लोहके और जिस लुहारकेपास सब बनानेके आंजारहो उससे बनवावे ।

शस्त्राभ्यासकरनेकेगुण ।

प्रयोगज्ञस्यवैद्यस्यसिद्धिर्भवतिनित्यशः । त  
स्मात्परिचयःकार्यःशस्त्राणामादितःसदा ॥

अर्थ—शस्त्रका पकडना चलाना आदि प्रयोगके जाननेवालेवैद्यको सिद्धि (आरो-  
ग्यसंपादन ) सदैवहोतीहै । इसीसे वैद्यको उचितहै कि शस्त्रपरिचय ( शस्त्रग्रहणका  
अभ्यास ) प्रथमसैंही करनाचाहिये ।

इतिश्रीमदायुर्वेदोद्द्वारेबृहन्निधंतुरत्नाकरेसप्तदशस्तरङ्गः ॥१७॥

अथातोयोग्यासूत्रीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अबयोग्यासूत्रीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे । योग्या कहिये उत्तमकर्मा-  
भ्यास अथवा योग्या कहिये योग्यकास्थापक, उसका सूत्र जिस अध्यायमें हो उसकी  
व्याख्याकरेंगे ।

अधिगतसर्वशास्त्रार्थमपिशिष्ययोग्याङ्कारयेत्

छेद्यादिषुस्नेहादिषुचकर्मपथमुपदिशेत् ।

सुबहुश्रुतोऽप्यकृतयोग्यःकर्मस्वयोग्योभवति ।

अर्थ—सर्वशास्त्रोंके अर्थ पढभीगयाहो तथापि गुरु शिष्यको कर्ममार्गमें योग्यकरे  
और उसशिष्यको छेद्य ( आदिशब्दसे भेद्य वेध्यादि कर्मजानने ) और स्नेह ( आ-  
दिशब्दसै अनुवासन, वमन, विरेचन, स्वेदन आदिका ) कर्ममार्ग बतलाना  
चाहिये अर्थात् इसप्रकार छेदन, इसप्रकार भेदन, इसप्रकार वमन, और विरेचनआदि  
कर्मकराने चाहिये । यह विधि गुरु शिष्यको बतावे इसका यह कारणहै कि बहुत पढा  
और बहुश्रुतभी है परंतु जबतक छेद्यभेद्यादि कर्मोंका अभ्यासनहींकरे अर्थात् अपने-  
हाथसे चीराफाडी आदि करके नहीं देखे तावत्कालपर्यंत इसकर्ममें योग्य नहींहोवे ।

शिष्यकोदिखानेयोग्यकर्म ।

तत्रपुष्पफलालाबूकालिन्दकत्रापुषैर्वारुककर्कारुक  
प्रभृतिषुच्छेद्यविशेषान्दर्शयेदुत्कर्त्तनपरिकर्त्तनानिचो  
पदिशेत् । दृतिवस्तिप्रसेवकप्रभृतिषूदकपङ्कपूर्णेषुभे  
दयोग्याम् । सरोम्णिचर्मण्याततेलेख्यस्य ।

अर्थ—तहां कहते हैं कि पेटा, घीया, तरबूज, खीरा, ककडी, कौंला आदिमें छेद्य दिखावे ( अर्थात् कहींका कहीं हाथ न चलाजावे इसलिये प्रथम हाथ साधनेको पेटे तरबूजके ऊपर छेद्यकर्मोंको दिखावे ) तथा कतरना और परिकर्त्तन कहिये चारों ओरसे कतरना दिखावे ( अर्थात् ऐसे रोगमें इतनाटुकडा कतरे और ऐसे रोगोंमें इसप्रकार चारोंतरफसे कतरना यह दिखावे । तथा उसीप्रकार शिष्यके हाथसेभी कतरावे कि जिससे उसको काटने और कतरनेका अभ्यास होजावे ) और दृति ( भस्त्रा वा धोंकनी ) पशूआदिका मूत्राशय, प्रसेवक ( बीणाकेनीचे अधिक शब्दहोनेके अर्थ जो चमडेसे मढातूंबा होताहै ) इत्यादिकोंमें जल, कीच, भरकर भेदकर्म ( जैसे मूत्रमार्गरुकनेमें सलाई डालकर खोलनाआदि ) दिखावे । रोमयुक्तचमडेमें लेखनकर्मको दिखावे ।

मृतपशुशिरामूत्पलनालेषुचवेध्यस्य । घृणोपहत  
काष्ठवेणुनलनालीशुष्कालाबुमुखेष्वेष्यस्य । पनस  
बिम्बीबिल्वफलमज्जामृतपशुदन्तेष्वाहार्यस्य । मधू  
च्छिष्टोपलिप्तेशालमलीफलकेविस्राव्यस्य । सूक्ष्म  
घनवस्त्रान्तयोर्मृदुचर्मान्तयोश्चसीव्यस्य ।

अर्थ—बकरीआदि मरेपशून्की नसोंमें तथा कमलकीनालमें वेध्यकर्म करके दिखावे । घुनेहुए काष्ठमें पोलेबांसमें, नरसलकीडंडीमें, सूखीघीया इनके मुखपर पृष्यकर्म ( खीचनेयोग्योंको ) दिखावे । कटहर, कंदूरी, बेलफल, इनकी मज्जामें और मृतपशुओंके दातोंमें आहार्य ( उखाडनेयोग्य ) कर्मोंको दिखावे । मधुकेछत्तेमें अथवा सहतालिपटे हुए सेमरके पट्टेपर विस्राव्यकर्मोंको दिखावे । पतले मजबूतवस्त्रके छोरोंपर तथा नरम चमडेके किसीभागमें सव्य ( सीनेयोग्य ) कर्मोंको दिखावे ।

पुस्तमयपुरुषाङ्गप्रत्यङ्गविशेषेषुबन्धयोग्याम् ।  
मृदुमांसपेशीषूत्पलनालेषुचकर्णसन्धिबन्धयोग्याम् ।  
मृदुषुमासखंडेष्वग्निक्षारयोग्यामुदकपूर्णघटपार्श्वस्रो  
तस्यलाबुमुखादिषुचनेत्रप्रणिधानवस्तिव्रणवस्तिपी  
डनयोग्यामिति ।

अर्थ—वस्त्रनिर्मित मनुष्यके अंग और प्रत्यंगविशेषोंपर बंधन ( बांधनेयोग्य ) कर्मोंको दिखावे । नम्रचर्म, मांसपेशी, और कमलनालमें कर्णसंधिबन्धन योग्य क-

मौंको दिखावे । नम्रमांसके टुकड़ोंमें अग्निकर्म और क्षारयोग्य कर्मोंको दिखावे । जलपूर्णघटपाश्र्वोंके छिद्रोंमें और घीयाआदिके मुखमें नेत्रप्रवेशन तथा व्रणवस्तिपीडन योग्य कर्मोंको दिखावे ।

एवमादिषुमेधावीयोग्याहर्षुयथाविधि ।  
द्रव्येषुयोग्यांकुर्वाणोनप्रमुह्यतिकर्मसु ॥  
तस्मात्कौशलमन्विच्छन्शस्त्रक्षाराग्निकर्मसु ।  
यस्ययत्रेहसाधर्म्यतत्रयोग्यांसमाचरेत् ॥

अर्थ—इसीप्रकार बुद्धिमान् पुरुष औरभी पुष्प फलादिकोंमें योग्यकर्मोंको अपनीबुद्धिसे बतलावे । इसप्रकार द्रव्योंमें अभ्यासकरानेसे वहशिष्य चीरने फाड़ने आदिकर्ममें मोहको नहीं प्राप्तहोवे इसीसे कुशलहोनेकी इच्छा जिसके उसको शस्त्र, क्षार, और अग्नि इत्यादि कर्मोंके यथायोग्य अर्थात् जिसद्रव्यमें जैसी समानता पाई जावे उसको उसीमें शिक्षादेवे ।

इतिश्रीबृहन्निघंटुरत्नाकरेअष्टादशस्तरंगः ॥ १८ ॥

अथातोऽष्टविधशस्त्रकर्मण्यमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब अष्टविधशस्त्रकर्म जिसमें ऐसीअध्यायकी व्याख्याकरेंगे ।

छेद्यकर्मकेयोग्य ।

छेद्याभगंदराग्रन्थिःश्लैष्मिकस्तिलकालकः । व्रणवर्त्मांबुंदा  
न्यर्शश्चर्मकीलोऽस्थिमांसगम् । शल्यंजतुमणिर्मांससंघातो  
गलशुण्डिकाः । स्रायुर्मांसशिराकोथेवल्मीकशतपोनकः ।  
अधुषश्चोपदंशाश्चर्मांसकन्द्यधिमांसकः ।

अर्थ—भगंदरादिरोग, कफजन्यगांठ, तिलकालक, व्रणवर्त्मरोग, अर्बुद, बवासीर, चर्मकीलक, हड्डी, और मांसगतशल्य, लहसन, मांससमूह, गलशुण्डिका, स्रायुर्मांस, और नाडी आदिकापचन ( सडजाना ) बल्मीक, शतपोनक, अधुष, उपदंश, मांसकंदी, और अधिमांसक, इतनेरोग छेद्य ( छेदनेयोग्य ) हैं ।

भेदनेकेयोग्य ।

भेद्याविद्रधयोऽन्यत्रसर्वजाग्रंथयस्त्रयः । आदितोयेविसर्पा  
श्वबृद्धयःसविदारिकाः । प्रमेहपिडिकाशोफस्तनरोगावम

न्थकाः।कुम्भिकानुशयीनाडयोवृन्दोपुष्करिकालजी। प्रा  
यशःक्षुद्ररोगाश्चपुष्पुटौतालुदन्तजौ । तुण्डकेरीगिलायुश्च  
पूर्वयेचप्रपाकिणः । बस्तिस्तथाश्मरीहेतोर्मेदोजायेचकेचन ।

अर्थ—सन्निपातकी विद्रधिकेविना, और सबविद्रधि, तीनप्रकारकीगांठ, प्रथमसेही  
बढनेवाली विसर्पवृद्धि, विदारिका, प्रमेहपिडिका, सूजन, स्तनरोग अवमंयक, कुं-  
भिका, अनुशयी, नाडीव्रण, वृन्द, पुष्करिका, अलजी, क्षुद्ररोग, तालुपुष्पुट, दंतपु-  
ष्पुट, तुंडकेरी, गिलायु, और जो पूर्वपाकी रोगहै, बस्ति, और पथरीकेहेतुरूपजो  
रोगहै तथा मेदासे उत्पन्नहोनेवालेरोग ए सब भेदनेयोग्यहैं ।

लेख्ययोग्य ।

लेख्याश्चतस्रोरोहिण्यःकिलासमुपजिह्विका ।

मेदोजोदंतवैदर्भोग्रंथिवर्त्माधिजिह्विका ।

अर्शासिमण्डलंमांसकंदीमांसोन्नतिस्तथा ।

अर्थ—चारप्रकारकी रोहिणी, किलास, उपजिह्विका, मेदसेप्रगट दंतवैदर्भ, और  
गांठ, वर्त्मरोग, अधिजिह्वा, ववासीर, मंडल, मांसकंदी, मांसोन्नति, इतनेरोग लेख्य  
हैं । अर्थात् ऊपरसे छीलने योग्यहैं ।

वेध्यऔरएष्य ।

वेध्याशिराबहुविधामूत्रवृद्धिदकोदरम् । एष्या

नाड्यःसशल्याश्चव्रणाउन्मार्गिणश्चये ।

अर्थ—अनेकप्रकारकीशिरा ( नस वा रग ) मूत्रवृद्धि, और दकोदर ए रोग वेध्य  
हैं । सश्लयनाडीव्रण और उन्मार्गिव्रण ए रोग एष्य ( चूसकरखीचनेयोग्य ) हैं ।

आहार्यऔरस्त्राव्य ।

आहार्याःशर्करास्तिस्त्रोदन्तकर्णमलाश्मरी । शल्यानिमूढ

गर्भाश्चवर्चश्चनिचितंगुदे । स्त्राव्याविद्रधयः पञ्चभवेयुःसर्व

जादृते । कुष्ठानिवायुः सरुजः शोफोयश्चैकदेशजः ।

अर्थ—त्रिविधशर्करा रोग, दन्तमल, कर्णमल, पथरी, श्लय, मूढगर्भ, गुदामें मल-  
कासमूह, एरोग आहार्य अर्थात् निकालने योग्य हैं । संनिपातकी को त्यागकर पांच  
विद्रधि, कोठ, पीडासाहित वायुरोग, एक अंगकी सूजन ।

पाल्यामयाः श्लिषदानिविषजुष्टस्यशोणितम् । अर्बु  
दानिविसर्पाश्वग्रंथयश्चादितस्तुये । त्रयस्त्रयश्चोपदं  
शाःस्तनरोगाविदारिका । शौषिरोगलशालूकंकण्ट  
काः कृमिदन्तकः।दन्तवेषुः सोपकुशःशीतादोदन्त  
पुप्पुटः।पित्तासृक्कफजाश्वोष्याःक्षुद्ररोगाश्वभूयशः ।

अर्थ—कर्णपालीके रोग, श्लिषपद, विषदूषित रुधिर, अर्बुद, विसर्प, वातकी पित्त-  
की और कफकी गांठ, उपदंश, स्तनरोग, विदारिका, शौषिर, गलशालूक, कंटक,  
कृमिदंतक, मसूढेके रोग, उपकुश, शीताद, दंतपुप्पुट, पित्तरक्त, कफसे होनेवाले  
होठोंके विकार, और बहुतसे क्षुद्ररोग ए सब रोग स्त्राव्य हैं ।

सीव्यरोगः ।

सीव्यामेदःसमुत्थाश्चभिन्नासुलिखितागदाः ।

सद्योव्रणाश्वयेचैवचलसंधिव्यपाश्रयाः ।

अर्थ—मेदसे होनेवाले रोग, चिरेहुए लिखित ( छिलेहुए ) सद्योव्रण और जो  
चलसंधिके आश्रित हैं, ए रोग सीव्यहैं अर्थात् सीने लायक हैं ।

नक्षाराग्निविषैर्जुष्टानवामारुतवाहिनः । नांतलोहितशल्यश्च  
तेषुसम्यग्विशोधनम् । पांशुरोमनखादीनिचलमस्थिभवेच्च  
यत् । अहतानियतोऽमूनिपाचयेयुर्भृशं व्रणम् । रुजश्चविविधाः  
कुर्युस्तस्मादेतान्विशोधयेत् । ततोव्रणंसमुन्नम्यस्थापयित्वा  
यथास्थितम् ।

अर्थ—जो व्रण क्षार, अग्नि और विषसंयुक्त हैं उनका सीव्य कर्म न करे । तथा  
जो पवनके वहनेवाले, तथा जिनके भीतर लोहितशल्य है, उनकाभी सीव्यकर्म न  
करे किंतु ऐसे व्रणोंका शोधन कर्म करे । जिनमें धूल, बाल, नख, आदि होवे और  
जिसमें चलायमान हड्डी होवे, इन सबको निकाल कर व्रणको, शुद्धकरे यदि  
पूर्वोक्त धूलवाल न निकाले तो वे व्रणको पचाय अनेक प्रकारकी पीडा करते हैं  
अतएव व्रणसे धूल आदिका विशोधन अवश्य करे, पीछे उसको नरमकर यथा-  
स्थित स्थापन करे ।

सीव्येत्सूक्ष्मेणसूत्रेणवल्केनाश्मन्तकस्यवा । शणजक्षौमसूत्रा

भ्यांस्त्राख्यावालेनवापुनः । मूर्वागुडूचीतानैर्वासीव्येद्रेल्लित  
कंशनैः॥सीव्येद्रोफणिकांवापिसीव्येद्रातुन्नसेविनीम् । ऋजु  
ग्रंथिमथोवापियथायोगमथापिवा ।

अर्थ—जब व्रण शुद्ध हो जावे तब उसको बहुत बारीक डोरेसे अथवा वक्लके सूतसे अथवा पटसन वा सन अथवा रेसम, तात, बाल इनसे सीना चाहिये । अथवा मूर्वा और गिलोयके टेढतंतूओंसे व्रणके दोनों प्रान्त मिलायकर धीरे २ सीना चाहिये । गोफणिका, तुन्नसेवनी, अथवा नम्रग्रंथी ए तीन प्रकार अथवा औरभी जो सीनेके योग्य हैं उनको जंहा जैसी चाहिये ऐसे सिलाई करे ।

अथसूची ( सुई ) .

देशेऽल्पमांसेसन्धौचसूचीवृत्तांगुलद्वयम् । आयतात्र्यंगु  
लात्र्यस्त्रामांसलेवापिपूजिता । धनुर्वक्राहितामर्मफलको  
शोदरोपरि । इत्येतास्त्रिविधाः सूचीस्तीक्ष्णाग्राःसुसमा  
हिताः । कारयेन्मालतीपुष्पवृन्ताग्रपरिमंडलाः ।

अर्थ—थोडे मांसवाले प्रदेशमें और सन्धिमें दो अंगुल लंबी और गोल सुई होनी चाहिये, और तीन अंगुल लंबी और कुछ त्रिकोण सूई मांसल प्रदेश अर्थात् जहां अधिक मांस होवे उस जगेकेलिये उत्तम है और धनुषके समान टेढी ऐसी सुई मर्मफल कोश, और उदरके ऊपर हितहै । ए तीन प्रकारकी सुईओंके अग्र-भाग तीक्ष्ण और मालतीपुष्पके डाँठरेके समान आगेको गोल होनी चाहिये ।

बहुतदूरऔरबहुतसमीपटाँकेलगानेकेदोष ।

नातिदूरेनिकृष्टेवासूचिकर्मणिपातयेत् । दूराद्ब्रुजोव्रणौष्टस्यस  
त्रिकृष्टेऽवलुञ्चनम् । अथक्षौमपिचुच्छन्नंसुस्यूतंप्रतिसारयेत् ।  
प्रियङ्ग्वञ्जनयष्ट्याह्वरोध्रचूर्णैःसमन्ततः । शल्लकीफलचूर्णैर्वा  
क्षौमध्यामेनवापुनः । ततोव्रणंयथायोगंबद्धाचारिकमादिशेत्

अर्थ—जिस समय वैद्य किसी घावको सीवे तो अत्यंत पास २ तथा बहुत दूर २ टाँके न देवे । दूर २ टाँके देनेसे पीडा होती है । और व्रण भरनेसे रहजाताहै । और बहुत पास २ टाँके देनेसे सब आपसमें मिलजाते हैं । इस प्रकार यथायोग्य टाँके देकर उन टाँकोंके ऊपर पटवस्त्र तथा रुईके गालेद्वारा आच्छादन करे । तथा प्रियंगु, सुरमा, मूलहटी, लोध और शल्लकी फल आदिके चूर्णद्वारा प्रतिसारण

करे । तदनंतर नियमितरूप व्रणबंधन करिके रोगीको कर्तव्य कर्म बतलावे अर्थात् अमुक कर्म करना तुमको पथ्यहै और अमुक कर्म अपथ्य है ।

एतदष्टविधं कर्म समासेन प्रकीर्तितम् । चिकित्सितेषु कात्स्न्ये  
न विस्तरस्तस्य वक्ष्यते । हीनातिरिक्तं तिर्यक् च गात्रच्छेदन  
मात्मनः । एताश्च तस्मोऽष्टविधे कर्मणि व्यापदः स्मृताः ।

अर्थ—इस जगे यह आठ प्रकारका शस्त्रकर्म संक्षेपसे कहा है, इसको विस्तारपूर्वक आगे चिकित्सास्थानमें कहेंगे । इस आठ प्रकार शस्त्र क्रियाका हीनता, अतिरिक्ता, तिर्यक्छेद, और अपने देहका छेद होना ये अष्टविध शस्त्रकर्ममें चार प्रकारकी व्यापदि ( व्याधि ) कही है । ये चार प्रकारके दोष रहित वैद्य होना चाहिये ।

कुशस्त्रचलानेके अवगुण ।

अज्ञानलोभाहितवाक्ययोगभयप्रमोहैरपरैश्च भावैः ।  
यदा प्रयुंजति भिषक् कुशस्त्रं तदा सशेषान्कुरुते विकारान् ॥  
तं क्षारशस्त्राग्निभिरौषधैश्च भूयोऽभियुञ्जानमयुक्तियुक्तम् ।  
जिजीविषुर्दूरत एव वैद्यं विवर्जयेदुग्रविषाग्नि तुल्यम् ॥  
तदेव युक्तं त्वतिमर्मसंधीन् हिंस्याच्छिरास्त्रायुमथास्थि चैव ।  
मूर्खप्रयुक्तं पुरुषक्षणेन प्राणैर्वियुञ्ज्यादथवा कथंचित् ॥

अर्थ—अज्ञानसे, लोभसे, अहितवाक्यके कहनेसे, भय, मोह और अन्यभावसे यदि वैद्य खोटेशस्त्रका प्रयोगकरे तो वो शस्त्र अनेक विकारोंको करेहैं । जो चिकित्सक अयौक्तिक अर्थात् युक्तिरहितहो, क्षार, शस्त्र, अग्नि और औषधको वारंवार प्रयोगकरे उसवैद्यको जीवनेकी इच्छावाला रोगी दूरसेही त्यागदेव । मर्म और संधिस्थान इनका अतिक्रम करके शस्त्रादि प्रयोग करनेसे शिरा, स्त्रायु और अस्थिपर्यंतका क्षय होकर रोगीका जीवन विनाश होवे। अथवा अनेक कुशोसे प्राण न बचे इसीसे मूर्खवैद्यसे शस्त्रकर्म कदाचित् नहीं करना चाहिये ।

मर्मविद्धके लक्षण ।

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं संलपनोष्णता च । स्र-  
स्ताङ्गतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रारुजोवातकृताश्च तास्ताः ॥  
मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव ।  
दशार्धसंख्येष्वपि हि क्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥

अर्थ—पंच मर्मस्थानमें शस्त्र लगनेसे भ्रम, प्रलाप, गिरजाना, मोह, दुष्टचेष्टा, पुकारना, गरमी, अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, ऊर्ध्ववात, वातकी तीव्रपीडा, मांसके धोनेसे जैसा जल निकलेहै ऐसा रुधिर निकसे, तथा सर्वइन्द्रियोंकी शक्तिका लोपहोना ए लक्षण होते हैं ।

छिन्नभिन्नशिराके लक्षण ।

सुरेन्द्रगोपप्रतिमंप्रभूतरक्तंस्रवेद्वैक्षततश्चवायुः । करोति  
रोगान् विविधान्यथोक्तान्छिन्नासुभिन्नास्वथवाशिरासु ॥

अर्थ—शिरा ( रग ) के छिन्न भिन्न होनेसे जो घाव होजावे उसमेंसे अत्यंत अधिक वरिबहूटीके समान लाल रुधिर और वायु निकले तथा अनेक प्रकारके रोग होतेहैं ।

स्नायुविद्धके लक्षण ।

कौब्जंशरीरावयवाङ्गसादःक्रियास्वशक्तिस्तुमुलारुजश्च ।

चिराद्दणोरोहतियस्यचापितंस्नायुविद्धंमनुजंव्यवस्येत् ॥

अर्थ—स्नायुविद्धहोनेसे शरीका कुबडा होना, तथा सर्व अवयवोंका रहजाना, सर्व कार्यमें अशक्ति तथा अत्यंत पीडाहो और घावके भरनेमें बहुत दिन लगतेहैं ।

सन्धिस्थानमेंक्षतहोनेकेलक्षण ।

शोफातिवृद्धिस्तुमुलारुजश्चबलक्षयः पर्वसुभेदशोफौ ।

क्षतेषुसन्धिष्वचलाचलेषुस्यात्सन्धिकर्मोपरतिश्चलिङ्गम् ॥

अर्थ—सन्धिस्थानमें घाव होनेसे सूजनकी अतिवृद्धिहो, प्रबलपीडा, दुर्बलता, पर्वस्थलोंमें टूटेके समान पीडा और सूजन तथा संधिकर्मका उपराम अर्थात् अंगचालन विषयमें सामर्थ्यका न होना ए लक्षण होते हैं ।

अस्थिविद्धके लक्षण ।

घोरारुजोयस्यनिशादिनेषुसर्वास्ववस्थासुनशान्तिरस्ति ।

तृष्णाङ्गसादौश्वपथुश्चरुक्चतमस्थिविद्धंमनुजंव्यवस्येत् ॥

अर्थ—अस्थि विद्धहोनेसे दिन रात्र घोरतर पीडा, प्यास, अंगोंका रहजाना, सूजन और वेदना उपस्थित होवे । अस्थिविद्ध व्यक्तिको वैद्य किसी अवस्थामें आराम नहीं करसकता ।

मांसमर्मविद्धकेलक्षण ।

यथास्वमेतानिषिभावयेयुर्लिङ्गानिमर्मस्वभिताडितेषु । स्प  
र्शन्नजानातिविपाण्डुवर्णोयोमांसमर्मस्वभिताडितःस्यात् ॥

अर्थ—मांसमर्ममें घाव होनेसे स्पर्शज्ञानका अभाव, तथा शरीरका पाण्डुवर्ण हो ।  
शस्त्रकर्ममें कुवैद्यकी निन्दा ।

आत्मानमेवाथजघन्यकारीशस्त्रेणयोहन्तिहिकर्मकुर्वन् ।  
तमात्मवानात्महनंकुवैद्यंविवर्जयेदायुरभीप्समानः ॥

अर्थ—जो कुवैद्य शस्त्रक्रियाकालमें अपने अंगकोही शस्त्रसे छेदलेवे ऐसे  
आत्महननकर्त्ता कुवैद्यसे आयुकी कामनावाले रोगीको कदाचिन् शस्त्रकर्म न  
कराना चाहिये ।

तिर्यक्प्रणिहितेशस्त्रेदोषाः पूर्वमुदाहृताः ।

तस्मात्परिचरन्दोषान्कुर्याच्छस्त्रनिपातनम् ॥

अर्थ—तिरछे शस्त्रके लगनेसे जो दोष प्रगट होते हैं वो प्रथम लिखआए हैं ।  
वो उक्त दोष जैसे न होवे उस रीतिसे सावधानीके साथ शस्त्रपात करना चाहिये ।

आगे जो चार श्लोक हैं वे वैद्यपरीक्षामें कहेंगे ।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्दारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे एकोनविंशस्तरंगः ।

इतिशस्त्रचिकित्साविधिः समाप्तः ।

( इसके आगे दूसरा भाग देखो )

पुस्तकें मिलने के स्थान

- १) खेमराज श्रीकृष्णदास,  
श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस,  
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग  
खेतवाडी, बम्बई ४००००४
- २) खेमराज श्रीकृष्णदास,  
६६, हडपसर इण्डस्ट्रिअल इस्टेट  
पुणे - ४११०१३
- ३) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,  
लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस,  
व बुक डिपो,  
अहिल्याबाई चौक, कल्याण  
(जि.ठाणे- महाराष्ट्र)
- ४) खेमराज श्रीकृष्णदास  
चौक - वाराणसी (उ. प्र.)







UNIVERSITY OF ILLINOIS-URBANA



3 0112 032245976

खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई-४